महाकाल संहिता

गुह्यकाली खण्डः





डॉ. किशोर नाथ झा

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्
इलाहाबाद.

महाकाल संहिता

गुह्यकालीखण्डः

डॉ. किशोरनाथ झा

सम्मति

डा० किशोर नाथ झा ने महाकाल संहिता के गुह्यकालीखण्ड का जो सम्पादित संस्करण तैयार किया है, वह सर्वथा उपादेय एवं सुन्दर है। हमारी सम्मति में यह ग्रन्थ उसी रूप में जाना चाहिये जिसमें डा. झा ने इसे प्रस्तुत किया है। विभिन्न परिशिष्टों से ग्रन्थ की उपादेयता अत्यधिक बढ़ जायेगी। वास्तविकता तो यह है कि उनकी सहायता के बिना ग्रन्थ का पूरा रहस्य ही अनुद्घाटित रह जायेगा।

डा० आद्या प्रसाद मिश्र
अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

Opinion

I had the occasion to know in detail the proposed plan for publishing the GUHYAKALI KHANDA of the MAHA-KALA SAMHITA. I found there is a remarkable improvement in the plan as compared to that of earlier published KAMA KALA KHANDA, a welcome thing. Pandit Kishora nath Jha is a competent scholar and his editing is of sufficient merit. I endorse the opinion of Dr. A. P. Mishra of Allahabad University about its suitability for publication.

Prof. S. P. Chaturvedi
Ex-Head of the Sanskrit Deptt.
Allahabad Universiy

महाकालसंहिता

श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च ।
उभयं कुर्वते देवि मदुदीरितवेदिनः ॥१०॥१२६४॥
वेदाविरुद्धं कुर्वन्ति यद् यदागमचोदितम् ।
आगमादेशितमपि जहति श्रुत्यदेशितम् ॥१२॥२१३८॥

महाकालसंहिता ।

महाकालसंहिता

गुह्यकाली खण्डः

द्वितीयो भागः

सम्पादकः

डा० किशोर नाथ झा



गंगानाथझा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ

मोतीलाल नेहरू पार्क,

इलाहाबाद—२

१९७७

प्रकाशकः
प्राचार्यः
गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्
इलाहाबाद

मूल्यम्

मुद्रक—दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स प्रा० लि०, जीरो रोड, इलाहाबाद।


जयति ॥
२५-९-१८७१ ई

आमुख

भगवती परमेश्वरी की असीम अनुकम्पा से आज—महाकालसंहिता गुह्यकाली खण्ड का यह दूसरा भाग पहली बार इस विद्यापीठ से प्रकाशित होकर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। वर्षों से चलती आ रही महती योजना का सफल समापन वस्तुतः हर्ष का विषय है। इस संहिता का कामकला खण्ड १९७१ ई० में इसी विद्यापीठ से पहली बार प्रकाशित हुआ था, जिसमें स्वनामधन्य महामहोपाध्याय डाक्टर गोपीनाथ कविराज की गम्भीर तथा विस्तृत भूमिका संलग्न है। इस संहिता का यह दूसरा खण्ड (गुह्यकाली खण्ड) अपने दीर्घतम कलेवर के कारण तीन भागों में विभक्त होकर इसी विद्यापीठ से प्रकाशित हो रहा है। इसका पहला भाग आदि से नवम पटल पर्यन्त गत वर्ष प्रकाशित हो चुका है। साधकों के उपयोगी अनेक परिशिष्टों में मन्त्र, उपमन्त्र, गायत्री, षडङ्गन्यास, न्यास, षोढान्यास, यन्त्र तथा बीजकोष आदि उस प्रथम भाग के साथ समाविष्ट है साथ ही प्रस्तावना में इस संहिता के लेखक, समय, उद्देश्य, वैशिष्टच एवं विषय वस्तु आदि विषयों पर यथामति प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। अत एव उनका यहाँ पिष्टपेषण उचित नहीं प्रतीत होता है।

इस द्वितीय भाग में दशम पटल से द्वादशतम पटल तक समाविष्ट हुए है। दशम पटल में नित्यपूजा की साङ्गोपाङ्ग पद्धति निर्दिष्ट है। इसे प्रकरण की दृष्टि से मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम प्रकरण में साधारणतः यन्त्र अथवा प्रतिमा की विधि पूर्वक पूजा का विधान है। द्वितीय प्रकरण में देवी के दश-मुखों की पूजा तथा उसके अङ्ग रूप में अन्य करणीय विधियां विहित हैं और तृतीय प्रकरण में आवरणपूजा, बिन्दुपूजा तथा शक्तिपूजा आदि का विशेष विवरण दिया गया है। सिद्धितत्त्व स्तोत्र, सहस्रनाम स्तोत्र, गद्यसञ्जीवन स्तोत्र तथा विश्व-मङ्गलकवच आदि के व्याज से शाक्त दर्शन के प्रतिपाद्य विषयों का उपपादन तथा दक्षिण एवं वाम मार्गों के यथोचित कर्तव्यों का विवरण, विविध तान्त्रिक सम्प्रदायों का परिचय, उनके प्रक्रियात्मक तथा सिद्धान्त विषयक मतभेदों का प्रदर्शन साधकों के मार्ग दर्शन में सहायक सिद्ध होता है। एकादश पटल में बलि का सविधि वर्णन तथा मोक्ष साधक योगमार्ग का विस्तृत विवरण प्रस्तुत है। पातञ्जल योग दर्शन में अभिहित इसके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि-रूप आठ अङ्गों का परिचय तथा माहात्म्य-कीर्तन सहज रूप से यहाँ प्रस्तुत हुआ है।

प्रसङ्गतः शरीरविज्ञान तथा गर्भप्रक्रिया का वर्णन भी आया है। क्रमशः अभ्यास करने योग्य क्रामिक योग की उपादेयता का अभिधान तथा प्रशंसा और बल प्रयोग द्वारा प्रचलित हठयोग की निन्दा साधकों को उचित मार्ग दर्शन में सहायिका होती है। द्वादशतम पटल में नैमित्तिक एवं काम्य पूजा की साङ्ग विधियाँ अभिहित हैं। वर्ष में जितनी नैमित्तिक तिथियाँ सम्भव हैं उन सभी पर्वों के परिगणन के साथ उन दिनों में कर्तव्य विशेष का विवरण तथा प्रसङ्गवश कापालिक आदि विविध तान्त्रिक सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के साथ अपने सिद्धान्तों का सयुक्तिक कथन साधकों के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

कापालिकानां सिद्धान्तमारभ्य सकलं क्रमात्।
यावन्मदीयसिद्धान्तं तावद्वक्ष्येऽखिलं तव ॥ १२।२६१ ॥

यहाँ मैं उन सुधीजनों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनकी सहायता समय-समय पर मुझे सम्पादन तथा प्रकाशन में मिली है। इस प्रसङ्ग में गुरुवर पण्डित श्री सीतानाथ झा मित्रवर डा० जगन्नाथ पाठक, (शोध अधिकारी) पण्डित श्रीचन्द्रशेखर शुक्ल तथा पण्डित श्री जीवेश्वर झा (सहायक ग्रन्थाध्यक्ष) का मैं कृतज्ञ हूँ। इलाहाबाद ब्लॉक वर्क्स के सभी सहयोगी बन्धु धन्यवाद के पात्र हैं जिन लोगों की तत्परता से स्वच्छ तथा आकर्षक मुद्रण शीघ्र सम्पन्न हो सका है।

स्थानीय प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष आदरणीय डा० बाबू राम सक्सेना जी का आशीर्वाद तथा डा० हरिहर झा कार्यकारी प्राचार्य का प्रशासन चातुर्य ही अल्प समय में अच्छे ढंग से इसका प्रकाशन करा पाया है। अतएव इन लोगों के प्रति कृतज्ञता जैसी औपचारिकता शोभा नहीं देती इनका आधमर्ण्य ही मेरे लिए उपयुक्त है। आशा एवं विश्वास है कि इनके सत्प्रयास से शीघ्र ही इस संहिता का अन्तिम भाग (तीसरा भाग) भी सुधीजनों के हाथ में आ सकेगा। उसी अन्तिम भाग के परिशिष्ट रूप में समग्र-ग्रन्थ की पारिभाषिक शब्दावली तथा उद्धृत ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार आदि उपयोगी सामग्रियाँ संकलित करने का संकल्प भी पूरा होगा, अतएव इस भाग के साथ किसी परिशिष्ट का समावेश नहीं किया गया है।

जन्माष्टमी २०३४

विनीत

किशोरनाथ झा

अनुसन्धान अधिकारी

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ

इलाहाबाद

प्रकाशकीयम्

महाकालसंहितायाः कामकलाखण्डस्य प्रकाशनानन्तरं गुह्यकालीखण्डस्य नवमपटलान्तः प्रथमो भागः प्रकाशितः। इदानी-मेतत्खण्डस्य द्वितीयो भागः दशमपटलतो द्वादशपटलं यावत् प्रकाश्य विदुषां पुरः प्रस्तूयत इत्यस्माकं महान् प्रमोदः।

सम्पादनकर्मणि महता श्रमेण प्रवृत्तस्य **डा० किशोर नाथ झा शर्मणः** जागरूकतायाः फलमिदं यत् सामीक्षिकं संस्करण-मेतत् साधकानां तद्विदां च महते उपकाराय कल्पते। महनीयेऽ-स्मिन्नध्यवसाये पण्डित **श्री सीतानाथ** झा महाशयानां साहाय्यं सर्वथोल्लेखनीयम्।

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्याधिकारिणः सम्पादकमण्डल-सदस्याः स्थानीयप्रबन्धकसमितेः सभापतयः **डा० बाबूराम सक्सेना** महाभागाश्च मदीयकार्तज्ञ्यभाजनानि। एतेषां साहा-य्येन दाक्षिण्येनानुकूल्येन चेयं संहिता विदुषां समक्षं राजते।

डा० हरिहर झा

कार्यकारी प्राचार्यः

प्रयागः

श्रावणी पूर्णिमा

२०-८-७७

वर्त्मद्वयं भगवता दर्शितं करुणावशात् ।
यस्येच्छा वर्तते यत्र स तत्र रमतां सुखम् ।।११।।११३०।।

महाकालसंहिता ।

विषय-सूची

विषयाः	पृष्ठसंख्या
दशमः पटलः १-२२७	

एकादशतमः पटलः २२९-३४२

द्वादशतमः पटलः ३४३–६००

विषय पृष्ठ संख्याः

महाकालसंहिता

गुह्यकालीखण्डः

दशमः पटलः

[गुह्यकालीपूजाविधेरवतरणिका]

देव्युवाच

लघुषोढा महाषोढा महानिर्वाणषोढिका ।
पञ्चविंशतिसंख्याकाश्चान्ये न्यासा महोदयाः ॥१॥
योगरत्नादयश्चान्ये श्रुतास्त्वत्तो[1] मया प्रभो ।
अधुना पूजनविधिं शुश्रूषे सिद्धिदायिनम्[2] ॥२॥
तथावरणपूजां च बलिमन्त्रानपि प्रिये ।
किन्तु न्यासवदर्चासु नित्यत्वं काम्यता तथा ॥३॥
नैमित्तिकत्वमथवा वर्तते प्राणवल्लभ ।
गृहस्थकौलयतिनामेकैवार्चाऽथवेतरा[3] ॥४॥
यावदुक्तोऽथवा कार्यः स्वल्पः पूजाविधिक्रमः ।
सर्वं विशिष्य वद मे मयि तेऽनुग्रहो यदि ॥५॥

[नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन पूजाया मूलतस्त्रैविध्याभिधानम्]

महाकाल उवाच

साधु धन्यासि देवि त्वं यस्मात् पूजाविधिक्रमम् ।
श्रोतुमिच्छसि गुह्याया बल्यङ्गावरणैर्युतम् ॥६॥

१—श्रुत्वा त्वत्तो क. । २—°दायिनः ख. ग. घ. । ३—°थ चेतरा ग. ङ ।

गृहिकौलमुमुक्षूणामेकैवार्चा वरानने ।
न भिन्ना यावती शक्या कर्तव्या तावती सदा ॥७॥
नैमित्तिकत्वं काम्यत्वं पूजायां किन्तु वर्तते ।
सम्भाराधिकता चापि तथा बल्यतिरेकता ॥८॥

[पूजाक्रमविवरणम्]

अतः परं त्वं कलय कालिकापचितिक्रमम् ।
एवं न्यस्ततनुर्मन्त्री ध्यानं पूर्वोदितं चरेत् ॥९॥
करकच्छपिकां बद्ध्वा त्रिखण्डां योनिमेव वा ।
अञ्जलिं चाथ तेष्वेव संस्थाप्य कुसुमाक्षते ॥१०॥
पूर्वोक्तवद् भगवतीं प्रत्यङ्गं परिचिन्तयेत् ।
ध्यात्वेत्थं मानसैरेवोपचारैः सर्वरूपिभिः ॥११॥
पूजयेत् किन्तु चात्मानं देवीरूपं विभाव्य हि ।

[शङ्खस्थापनविधिः]

ततो बाह्यार्चनकृते शङ्खस्थापनमाचरेत् ॥१२॥
त्रिकोणं मण्डलं कृत्वा भूमौ मध्येन्दुसंयुतम् ।
अर्घपात्रासनाधाराय नमस्कारसंयुतः ॥१३॥
मण्डलं पूजयित्वेत्थं पूजयीत त्रिपादिकाम् ।
तारो ङेऽन्तं चार्घपात्रासनं हृन्मनुरेव च ॥१४॥
शङ्खं प्रक्षाल्य सलिलैर्ङेऽन्तादस्त्रपदादनु ।
अस्त्रबीजेन सम्पूज्य देव्या दक्षे स्ववामतः ॥१५॥

त्रिकोणमण्डलस्योद्ध्वं शङ्खं संस्थाप्य साधकः ।
ताराद् रावाद् गुह्यकाली ङेऽन्ता हृन्मन्त्रसंयुता ॥१६॥
गन्धपुष्पाक्षते शङ्खे प्रक्षिपेन् मनुनाऽमुना ।
क्षकारादीनकारान्तान् वर्णान् सर्वान् विलोमतः ॥१७॥
बिन्दुयुक्तान् पठन् शङ्खं पूरयेद् विमलोदकैः ।
पालीबीजाद् वदेत् ङेऽन्तं वह्निमण्डलमेव च ॥१८॥
धूम्रादिदशशब्दानु कलात्मा पूर्ववन्मतः ।
हृन्मन्त्रसंयुतस्तेन आधार परिपूजयेत् ॥१९॥
नादाच्च पूर्ववत् सूर्यमण्डलं समुदीरयेत् ।
तपिन्यादिद्वादशकलात्मने हृन्मन्त्र एव च ॥२०॥
अनेन पूजयेच्छङ्खं स्थाणुतः सोममण्डलम् ।
विभक्त्या तुर्यया चैनं वेष्टयेत् सुरवन्दिते ॥२१॥
अमृतादिषोडशकलात्मने हृन्मन्त्र एव च ।

[शङ्खस्थजलेन तीर्थावाहनविधिः]

जलमेतेन सम्पूज्य तीर्थमावाह्येत् ततः ॥२२॥
मुद्रयाङ्कुशनाम्न्या वै सा भुग्ना तर्जनी मता ।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ॥२३॥
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।
मन्त्रेणानेनार्कबिम्बान् मुद्रया पूर्वमुक्तया ॥२४॥
तीर्थान्यावाह्य शङ्खस्थजलेषु विनिवेशयेत् ।

[शङ्खस्थजलस्यामृतीकरणम्]

वौषडुच्चार्य दृष्ट्वाप आच्छाद्य मत्स्यमुद्रया ॥२५॥

दीर्घाङ्गुष्ठचपेटाख्य कर उत्तान एव चेत् ।
तद्वद्वामेनोद्ध्वंगेन चलाङ्गुष्ठेन जायते ॥२६॥
ततोऽमृतीकृत्य धेनुमुद्रया शङ्खगं जलम् ।
[शङ्खस्थजलस्यावगुण्ठनम्]
बीजेन संभ्रमाख्येन पुनस्तदवगुण्ठयेत् ॥२७॥
[धेनुमुद्रा]
वामया तु प्रदेशिन्या वामया च कनिष्ठया ।
दक्षमध्यानामिके द्वे पीडिते ते तथैतया ॥२८॥
धेनुमुद्रा भवेदेषा धेनोः स्तनचतुष्कवत् ।
मूलानुच्चारयन् येन ता अपो ह्यभिमन्त्रयेत् ॥२९॥
तारत्रपाच्छोटिकाभिर्दिग्बन्धनमथाचरेत् ।
आवाहयेत् तत्र जले तत्तन्मुद्राभिरीश्वरीम् ॥३०॥
[शङ्खस्थजलस्य सकलीकरणविधिः]
मूलमन्त्रं षडङ्गेन षडङ्गं तज्जले चरेत् ।
इत्यङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य तत्सलिलं प्रिये ॥३१॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपैर्देवीधिया चरेत् ।
एतेषामुपचाराणां दाने मूलमनुर्मतः ॥३२॥
मूलमन्त्रं तदुपरि दशकृत्वः समुच्चरेत् ।
तज्जलं प्रोक्षणीपात्रे किञ्चिदेव विनिःक्षिपेत् ॥३३॥
[प्रोक्षणीपात्रस्थजलेन पूजोपकरणस्यात्मनश्चाभिषेकः]
तेनाभिषिञ्चेदात्मानं पूजोपकरणं तथा ।
[पञ्चपात्रस्थापननिर्देशः]
अर्घस्योत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् ॥३४॥

सामान्यार्घं च स्नानीयं मधुपर्कार्थमेव च ।
भिन्नभिन्नानि कार्याणि पञ्च पात्राणि पार्वति ॥३५॥
तानि गन्धाक्षतजलकुसुमैः परिपूरयेत् ।
पाद्ये पाद्योक्तवस्तूनि अर्घे अर्घोदितानि च ॥३६॥
स्नानीयाचमनादौ च द्रव्याण्युक्तानि वै पुरा ।
तैरन्वितानि कार्याणि पात्राणि सकलानि हि ॥३७॥
अभाव एकमेव स्याच्चतुर्णां पात्रमीश्वरि ।

[गणपत्यादिदेवचतुष्टयपूजानिर्देशः]

पञ्चायतनवानस्मिन्नेवावसर उत्सुकः ॥३८॥
गणेशविष्णुसूर्येशान् पूजयेदौपचारिकैः ।
आग्नेये स्थापयेच्छम्भुमीशाने गणनायकम् ॥३९॥
नैर्ऋत्ये भास्करं देवं वायुकोणे तथाऽच्युतम् ।

[देवीपूजारम्भनिर्देशः]

पञ्चोपचारैः सम्पूज्य मूलपूजामथाचरेत् ॥४०॥
अपञ्चायतनी त्वेकां देवीमेव प्रपूजयेत् ।
पूर्वं यदुदितो योगरत्नपीठाह्वयो मया ॥४१॥
न्यासः स्वतनुकर्तव्यताको यन्त्रे तमाचरेत् ।
महामण्डूकमारभ्य परमाख्यसदाशिवम् ॥४२॥
शेषे बीजान्वितैस्तत्तन्मन्त्रैर्यन्त्रे यजेच्छिवाम् ।
सामान्यपीठन्यासोक्तमन्त्रैरपि यजेत् प्रिये ॥४३॥

यन्त्रस्य दक्षिणे भागे गणेशं परिपूजयेत् ।

[पूजायां गुरूणां स्थाननिर्देशः]

गुरूनुदीच्यां परमगुरूनपि ततः परम् ॥४४॥
परमेष्ठिगुरुं चापि परापरगुरूनपि ।
स्वगात्रवत् पीठगात्रं परिकल्प्य प्रपूजयेत् ॥४५॥

[श्रीपात्रस्थापनविधिः]

अस्मिन्नेव ह्यवसरे श्रीपात्रस्थापनं चरेत् ।
कौलः प्रसन्नया कुर्यात् क्षीरमध्वादिभिर्द्विजः ॥४६॥

[यतिनः कृते श्रीपात्रस्थापननिषेधः]

यतिस्तु नोभयं कुर्यान् नेच्छंस्ताभ्यामपि द्विजः ।
अतः कौलिककार्यार्थं विशिष्य तदहं ब्रुवे ॥४७॥

[श्रीपात्रस्थापनविधौ मन्त्रनिर्देशः]

तारह्लीयोगिनीरावकूर्चा अस्त्राय फट् ततः ।
पठित्वा मण्डलं कुर्याद् वर्तुलं वारिणा प्रिये ॥४८॥
वनिताशाकिनीरोषा अस्त्राय फडतः परम् ।
मन्त्रमेनं समुच्चार्य क्षालयित्वा त्रिपादिकाम् ॥४९॥
स्थापयेन् मण्डलस्योर्द्ध्वं शनैर्न स्याद् यथा स्वनः ।
ततस्त्रिपादिकां वक्ष्यमाणेन मनुनाऽर्च्चयेत् ॥५०॥
तारह्लीरावडाकिन्यः फेत्कारीयोगिनीस्त्रियः ।
रमाकामौ गुह्यकालीदेव्यर्घपदतः स्मरेत् ॥५१॥
पात्राधारं साधयामि रोषास्त्रे हृदयं शिरः ।
मैधामृतह्लीशाकिन्यः पद्मकूटस्ततः परम् ॥५२॥

ततो धूम्रादिदशकलात्मने परिकीर्तयेत् ।
वह्निमण्डलतो ङेऽन्तो हृन्मनुः सर्वशेषगः ॥५३॥
इति मध्ये पूजयित्वा प्रादक्षिण्यक्रमेण हि ।
कलाभिर्दशभिर्देवि पूजयेच्च त्रिपादिकाम् ॥५४॥
वेदादिमाये धूम्रार्चिःकलायै नम इत्यपि ।
तारलक्ष्म्यौ नीलरक्तकलायै नम ईरयेत् ॥५५॥
तारकामौ च कपिलाकलायै नम उल्लिखेत् ।
तारात् कूर्चाद् विस्फुलिङ्गिनीकलायै नमस्ततः ॥५६॥
तारयोगिन्यनु ज्वालिनीकलायै नमोऽपि च ।
अर्चिष्मती कलायै हृत् ताराद् वध्वा अनुस्मरेत् ॥५७॥
ताराद् रावाद् हव्यवाहिनी कलायै नमस्ततः ।
ओं डाकिनी कव्यवाहिनी कलायै नमो वदेत् ॥५८॥
तारात् प्रलयतारौ ह्लीकलायै नम इत्यपि ।
तारफेत्कारिसंहारिणीकलायै नमस्तथा ॥५९॥
एभिर्मन्त्रैः पूजयीत चतुर्दिक्षु त्रिपादिकाम् ।
पात्रं प्रक्षाल्य च ततो वक्ष्यमाणमनुं गृणन् ॥६०॥
घनसारेणागुरुणा कौशिकेनापि धूपयेत् ।
सन्धूप्य कथ्यमानेन मन्त्रेण त्र्यंघ्रिकोपरि ॥६१॥
श्रीपात्रं निःस्वरं दद्यादतो मन्त्रद्वयं शृणु ।

[श्रीपात्रसन्धूपनमनुः]

तारलज्जारमाकाममुक्तानृहरयः क्रमात् ॥६२॥

अस्त्रं हृच्चापि विज्ञेयो देवि सन्धूपने मनुः ।
कुलस्त्रीकमलाकामा रुड् डाकिनी पिशाचिनी ॥६३॥
बलिश्च गुह्यकाल्यम्बार्घपात्रं स्थापयामि च ।
नम एष मनुः प्रोक्तस्त्रिपाद्यां पाद्यरक्षणे ॥६४॥
उदीर्यमाणमन्त्रेण मध्ये श्रीपात्रमर्चयेत् ।

[श्रीपात्रपूजनमन्त्रः]

मायारमारोषकामयोगिनीशाकिनीसुधाः ॥६५॥
क्षेत्राधीशखगाधीशौ सिद्धिप्रदपदं ततः ।
तपिन्यादिद्वादशकलात्मने तदनन्तरम् ॥६६॥
सूर्यमण्डलतो ङेऽन्तादर्घपात्राय सन्धिमत् ।
नम एतेन श्रीपात्रं मध्ये सम्पूजयेत् सुधीः ॥६७॥
प्रादक्षिण्यद्वादशभिः कलाभिस्तदनन्तरम् ।
अभिधास्यमानमनुभिः श्रीपात्रं बहिरर्चयेत् ॥६८॥

[श्रीपात्रस्य बहिरर्चाविधिः]

मायाकामामृतान्यादौ त्रीणि बीजानि पार्वति ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां स्थिराणि हि ततः कलाः ॥६९॥
केवलाः स्युः कलाशब्दैस्ततस्तासां च विग्रहः ।
श्रीपादुकां पूजयामि नमः शेषे च सर्वगम् ॥७०॥
तपिनी तापिनी चैव भ्रामरी क्लेदिनी तथा ।
शोधिनी बोधिनी चापि वारुण्याकर्षणी तथा ॥७१॥

सुषुम्णा वृष्टिवाहार [च?] ज्येष्ठा चापि हिरण्यका ।
[कुलकुम्भपूजानिर्देशः]
कुलकुम्भं ततो देवि पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥७२॥
उदीर्यमाणमन्त्रेण वामपार्श्वस्थितं सदा ।
[कुलकुम्भपूजनमन्त्रः]
तारमैधत्रपालक्ष्मीकालरावाश्च योगिनी ॥७३॥
त्रिशिखारोषफेत्कारीजम्भपङ्क्तय एव च ।
कुलकुम्भस्ततो ङेऽन्तो नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥७४॥
कुलकुम्भमनेनैव पूजयेत् सुसमाहितः ।
ततो दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा तं घटं प्रिये ॥७५॥
गृणन् मनुं वक्ष्यमाणं मूलं वारत्रयं तथा ।
कुलकुम्भस्थितद्रव्यैः श्रीपात्रं परिपूरयेत् ॥७६॥
[कुलकुम्भस्थद्रव्येण श्रीपात्रपूरणस्य समन्त्रो विधिः]
तारराववत्रपा उक्त्वा योगिनीं वनितामपि ।
संहारकूटं हैरण्यगर्भकूटमनन्तरम् ॥७७॥
आनन्दभैरवो ङेऽन्तो वौषट् शेषे नियोजयेत् ।
ततो धेन्वाऽमृतीकृत्य मत्स्येनाच्छाद्य सत्वरम् ॥७८॥
कृताञ्जलिः पठेन्मन्त्रं श्लोकरूपं वरानने ।
ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतपीयूषसमतावह ॥७९॥
आपूरितमहापात्र[1]पीयूषं रसमावह ।
[प्रसन्नायाः शापविमोचनमन्त्रः]
ततस्तु पञ्चभिर्मन्त्रैरस्याः शापं विमोचयेत् ॥८०॥

१—स्वमशेषं रसं वह ङ.

तांच्छृणु क्रमतो देवि व्युत्क्रमाद् दोषभाग्भवेत् ।
मैधयोरन्तरे मायाकमले चामृते ततः ॥८१॥
अमृतोद्भव उच्चार्य ततोऽप्यमृतवर्षिणि ।
कामार्णादमृतं वर्णं न तु बीजं वरानने ॥८२॥
आ[पा?]वय द्वितयं प्रोच्य भैरवीबीजमुद्धरेत् ।
ततः सुधे शुक्रशापं मोचयेति प्रकीर्तयेत् ॥८३॥
चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं दहयुग्मकम् ।
महार्णात् खेचरीमुद्रां ततः प्रकटयद्वयम् ॥८४॥
कूर्चशीर्षे सर्वशेषे प्रथमोऽयं मनुर्मतः ।
मैधत्रयं दण्डलज्जागोंऽशुशुक्लाः समेषकाः ॥८५॥
ततः सुधे शुक्रशापं नाशयेति समुद्धरेत् ।
अमृतं शब्दमुच्चार्यं आ[पा?]वय द्वितयं शिरः ॥८६॥
द्वितीयोऽयं मनुः प्रोक्तस्तृतीयमवधारय ।
सारस्वतत्रयं प्रोच्य उषस्तृष्णापराधकान् ॥८७॥
विकारशोधिनि ततः कुलद्रव्यस्य चेत्यपि ।
विकारान् हरयुग्मं च तृतीयोऽयं मनुर्मतः ॥८८॥
सारस्वतश्चतुष्कानु सुकृतव्ययकौशिकाः ।
नान्दीबलिपृथुह्रस्वा तदनूत्कोचिनी प्रिये ॥८९॥
बीजद्वादशकानु स्यादमृते चामृतोद्भवे ।
ततोऽमृतस्वरूपे चामृतवर्षिणि चेत्यपि ॥९०॥
महाप्रकाशयुक्ते च चतुर्थो मनुरोरितः ।
पुनश्चत्वारि मैधानि ततो माह्लीरुषः स्मरः ॥९१॥

वधू रावः शाकिनी च चामरव्यजने तथा ।
सर्वागमश्च षट्चक्रं तुरीयारागसारसाः ॥९२॥
तिरस्करिणि सम्भाष्य सकलानुजन ईरयेत् ।
वाग्वादिनि समुद्धृत्य सकलानु पशूच्चरेत् ॥९३॥
जनवाक्चक्षुरुच्चार्य श्रोत्रघ्राणेति कीर्तयेत् ।
जिह्वा वचस्तिरस्कारं कुरुद्वन्द्वं ततोऽस्त्रके ॥९४॥
मन्त्रैरेतैः पञ्चभिस्तु द्रव्यशापं विमोचयेत् ।
[कुलद्रव्यपूजनमन्त्रः]
ततः कुलद्रव्यमर्घ्यं कीर्त्यमानं मनुं पठन् ॥९५॥
पूजयेत् तारमायाश्रीसुधाकामाश्च शाकिनी ।
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ॥९६॥
कामप्रदामृताद्युक्त्वानु षोडशकलात्मने ।
सोममण्डलमुच्चार्य ङेऽन्तमर्घामृतं च हृत् ॥९७॥
पूर्वोदितेषु मन्त्रेषु सर्वेष्वेतदवध्यपि ।
सन्धिहीना वेदितव्या सन्धियोग्यस्थलादयः ॥९८॥
वामावर्तक्रमेणैव कलाषोडशभिस्ततः ।
[श्रीपात्रस्थितद्रव्यपूजाविधिः]
श्रीपात्रसंस्थितं द्रव्यं वक्ष्यमाणैः प्रपूजयेत् ॥९९॥
शाकिनीकामवनिताबीजत्रयमिदं पुरः ।
ततः सा सा कला ज्ञेया कलाशब्दोपबृंहिता ॥१००॥
श्रीपादुकां पूजयामि नमः शेषे नियोजयेत् ।
अमृता मानसी तुष्टिः पुष्टिः प्रीतिश्च रेवती ॥१०१॥

ह्रीश्रीकालीसुधाज्योत्स्नास्ततो हैमवती मता ।
छाया पूर्णा तथा वामा अमृताश्चेति षोडश ॥१०२॥
एतैः षोडशभिर्मन्त्रैः प्रत्येकमुदितक्रमैः ।
पात्रस्थितं हि तद्द्रव्यं बहिरेव प्रपूजयेत् ॥१०३॥

[पात्रदिग्बन्धनविधिः]

डाकिन्यर्णाच्च सकलशत्रुप्रशमनीति च ।
कूर्चद्वयमथास्त्राय फडित्येवं मनुं वदेत् ॥१०४॥
पात्रदिग्बन्धनं कुर्याच् छोटिकाभिरितस्ततः ।
अस्मिन्नेव क्षणे देवि विशेषार्घ इवेश्वरि ॥१०५॥
पुष्पैरावाहयेद् ध्यात्वा मध्य एवास्य वस्तुनः
तत्रोपचारान् पाद्यादीन् योग्यान् मध्ये बहिस्तथा ॥१०६॥
पुनराचमनीयान्ताद् दद्यान् मूलमनुं पठन् ।

[आनन्दभैरवध्यानम्]

ततो द्रव्यस्य मध्ये तु ध्यायेदानन्दभैरवम् ॥१०७॥
आनन्दभैरवीं चापि सामरस्यमुपागताम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥१०८॥
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
अमृतार्णवमध्यस्थं श्वेतपद्मोपरि स्थितम् ॥१०९॥
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ।
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् ॥११०॥
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुशलधारिणम् ।
खड्गखेटकचक्रर्ष्टिपर्शुमुद्गरशूलिनम् ॥१११॥

भुशुण्डीधारिणं घोरं वरदाभयपाणिनम् ।
धवलं देवदेवेशं भावयेद् भैरवीयुतम् ॥११२॥
एवं ध्यात्वा सुधाबीजैर्वषट् तं पूजयेत् त्रिधा ।
[सुधादेव्याः ध्यानम्]
ततो ध्यायेत् सुधादेवीं चन्द्रकोटयमृतप्रभाम् ॥११३॥
हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ॥११४॥
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सन्निधौ ।
सुधाबीजैः सुधादेवीं वौषट् सम्पूज्य पार्वति ॥११५॥
[पञ्चरत्नपूजानिर्देशः]
पूजयेत् पञ्चरत्नानि वक्ष्यमाणमनुक्रमैः ।
अपारमावधूकामयोगिनीशाकिनीक्रमाः ॥११६॥
एतानि सप्त बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ।
तत्तल्लोकादिमावर्णो हरत्युपरि विष्टितः ॥११७॥
तत्तद्भुवनरत्नाय नम इत्यपि कीर्तयेत् ।
गगनं स्वर्गमर्त्ये च पातालं नाग एव च ॥११८॥
ततो मध्ये सुधादेवीं बालार्कसदृशीं स्मरेत् ।
[श्रीपात्रसंस्कारविधिः]
हिरण्यगर्भकूटं हि वारत्रयमुदीरयेत् ॥११९॥
अकारादिक्षकारान्तान् मध्ये वर्णान् लिखेत्ततः ।
मन्त्रेणैवामृतेश्वर्या दशवारं विभावयेत् ॥१२०॥
लज्जारमे समुच्चार्य अमृते अमृतोद्भवे ।
अमृतवर्षिण्युच्चार्य अमृतं श्रा[पा?]वयद्वयम् ॥१२१॥

कामबीजं ततो जूं सोऽमृतेश्वर्यै नमो वदेत् ।
मन्त्राद्यबीजैः प्रोच्चार्य श्लोकं च समुदीरयेत् ॥१२२॥
अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मके ।
अधिष्ठानं स्वके पात्रे निधेहि कुलरूपिणि ॥१२३॥
एवं श्रीपात्रसंस्कारं देव्या दक्षे विधाय च ।
वामे संस्थापयेच्छक्तिपात्रं त्रिदशवन्दिते ॥१२४॥

[अन्यपात्रचतुष्टयस्थापननिर्देशः]

मध्ये चत्वारि पात्राणि पुनरन्यानि योजयेत् ।
गुरुर्भोगश्च वीरश्च कुलं चेति प्रकीर्तितम् ॥१२५॥
यावान् श्रीपात्रसंस्कारे क्रम उक्तो मया तव ।
तावानेवैषु कर्तव्यस्तत्तन्मन्त्रप्रयोगतः ॥१२६॥
नामसूहः प्रकर्तव्यो न मन्त्रे नापि वार्चने ।
श्रीपात्रस्य च ये मन्त्रास्ते मन्त्राः सर्वपात्रगाः ॥१२७॥
श्रीपात्रस्य क्रिया या हि सा क्रिया सर्वपात्रगा ।
तादृक्पूजाद्यशक्तौ तु सामान्येनापि पूजयेत् ॥१२८॥
पृथक्कला न चास्वर्च्या दशद्वादशषोडश ।

[पात्रोपयोगनिर्णयार्थं तत्पात्रेषु तत्तद्व्यक्तेरावाहनम्]

शक्तेरावाहनं शक्तौ गुरोरपि गुरौ तथा ॥१२९॥
परिवारान् भोगपात्रे वीरे त्वावरणात्मिकाम् ।
कौलिकान् कुलपात्रेषु समावाह्य यजेच्छनैः ॥१३०॥

पुष्पेण चापि पत्रेण तत एकैकशः प्रिये ।

[कुलसंव्यत्ययविधिः]

कुलसंव्यत्ययं कुर्याद् वक्ष्यमाणमनुं पठन् ॥१३१॥
तारमैधामृतश्रीह्लीयोगिनीशाकिनीरुषः ।
एकीभावं जुषत्स्वानु भवेदस्त्रं नमः शिरः ॥१३२॥
षण्णामपि च पात्राणां परस्परसमागमः ।
त्रिंशद्वारात्मको ज्ञेयो न न्यूनो नाधिकोऽपि च ॥१३३॥

[श्रीपात्रस्थद्रव्योपयोगे तान्त्रिकमतभेदनिर्देशः]

अतः परं प्रकारौ द्वौ वर्तेते सुरवन्दिते ।
तौ शृणु ब्रुवतो मे त्वं श्रीपात्रादिक्रियात्मकम् ॥१३४॥

[प्रथमप्रकारनिर्देशः]

श्रीपात्रस्याधिकारी तु स्वयमेव न चेतरः ।
शक्तेस्तु शक्तिपात्रं स्यात् गुरुपात्रं गुरोरपि ॥१३५॥
भोगपात्रं सुतादीनां शिष्याणां वीरपात्रकम् ।
कुलपात्रं कौलिकानां निर्णयः प्रोक्त ईदृशः ॥१३६॥
सर्वेभ्यो विद्यमानेभ्यस्तत्तत्पात्रं समर्प्य हि ।
अर्हणामसमाप्यैव श्रीपात्रं स्वयमापिबेत् ॥१३७॥
सुतान्तेवासिकौलानां सन्निधाने ह्यसत्यपि ।
शक्तिगुर्वोर्निवेद्यापि स्वयं भोक्तुमलङ्कृती ॥१३८॥
अविद्यमानयोः किन्तु तयोर्नैवानिवेद्य हि ।
कदापि देवदेवेशि स्वयं भुञ्जीत साधकः ॥१३९॥

[प्रासरिकविषये कापालिकमतनिर्देशः]

कापालिकमते गुर्वभावेऽपि घटते क्रिया ।
नासन्निधाने शक्तेस्तु सर्वेषां मतमीदृशम् ।।१४०।।
येऽसन्निधाने तस्यास्तु उपयोगं प्रकुर्वते ।
प्रथमं शक्तयेऽदत्त्वा ते पिबन्ति वृथा सुराम् ।।१४१।।
निरयं यान्ति ते कौला अव्यवस्थाविधायिनः ।

[शक्तिविषये निर्णयाभिधानम्]

अभावे परकीयायाः स्वकीया शक्तिरिष्यते ।।१४२।।
तस्या अप्यनिवेद्यैव नार्चायाः पुरतो धयेत् ।
चतुर्णामप्यभावे तु तत्तत्पात्रं स्वयं धयेत् ।।१४३।।
वक्ष्यमाणप्रकारेण तर्पयित्वाऽखिलान् सुरान् ।

[अत्र स्वकीयासहमतिप्रकाशनम्]

नैतन्मम मतं देवि पूजादौ यत्प्रगृह्यते ।।१४४।।
मीनमांसोपयोगेन पुरो जाता भुजिक्रिया ।
पात्रादीनां च संस्कारो न मीनपललैर्विना ।।१४५।।
न पात्रग्रहणं कुर्यादेतयोर्ग्रहणं हिरुक् ।
स्वीकारात् सर्वपात्राणां मीनमांसोपयोगतः ।।१४६।।
सम्पूर्णं भोजनं जातमकृत्वा कालिकार्चनम् ।
अतो नेदं मम मतं मतमुक्तं परस्य तु ।।१४७।।
पूजादीनसमाप्यैव मध्ये भोजनमागतम् ।

[अपरप्रकारनिर्देशः]

द्वितीयं पक्षमधुना समाकलय सुन्दरि ।।१४८।।

अर्घपात्राणि षडपि क्रमेणैव तु साधकः ।
शनैः कराभ्यामुत्तोल्य श्रीपात्रं भुव्यनाक्षिपन् ॥१४६॥
गृणन् मनुं वक्ष्यमाणं यन्त्रे संस्पर्शयेन् मृदु ।
भूमौ संस्थाप्य तत्पात्रं पञ्चान्यानि क्रमेण हि ॥१५०॥
शक्त्यारव्यादीनि पात्राणि निःस्वरं पीठ उन्नयेत् ।
मन्त्रपाठं सकृद्वापि प्रत्येकं चापि वाचयेत् ॥१५१॥

[शक्तिपात्रादिचतुष्टयोत्सर्गमन्त्रः]

ते मन्त्राः पञ्च चाख्याताः क्रमेणैवोद्धरामि तान् ।
मैधत्रपारमासेतून् स्वरानप्यथ षोडश ॥१५२॥
शिवशक्ति समुच्चार्य सदाशिवेश्वरेति च ।
शुद्धविद्यातत्त्वमिति पराकूटं समैधकम् ॥१५३॥
आत्मतत्त्वेन संलिख्य स्थूलदेहमितीरयेत् ।
प्रतिलोम्ना पुनस्ते च क्रमशः षोडश स्वराः ॥१५४॥
रमां लज्जां पुनर्मैधं साधयाम्यग्निवल्लभा ।
अयमाद्यो महामन्त्रो द्वितीयं शृणु सादरा ॥१५५॥
बीजत्रयं तदेवोक्त्वा पञ्च वर्गान् सबिन्दुकान् ।
माया कला इति प्रोच्य विद्याराज्ञीति कीर्तयेत् ॥१५६॥
कालाच्च नियतेश्चापि पुरुषात्तत्त्वमित्यपि ।
मान्मथं च बृहत्कूटं विद्यातत्त्वेन रेच[चेर?]येत् ॥१५७॥
सूक्ष्मे देहं शोधयामि ततः परमुदीरयेत् ।
प्रतिलोम्ना पञ्च वर्गान् सेन्दून् बीज०० तथा ॥१५८॥

शेषे स्वाहा द्वितीयोऽयं तृतीयं शृणु पार्वति ।
तदेव बीजत्रितयं यकारादिक्षकारकम् ॥१५६॥

प्रकृत्यहङ्कारमनोबुद्धिश्रोत्र इतीरयेत् ।
त्वक् चक्षुश्च तथा जिह्वा घ्राणं वाक् पाणिरेव च ॥१६०॥

पादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसानपि ।
गन्धाकाशौ वायुतेजःसलिलं भूमिरित्यपि ॥१६१॥

तत्त्वं च भैरवीबीजं ज्येष्ठकूटं ततः परम् ।
शिवतत्त्वेन संलिख्य परदेहं ततो वदेत् ॥१६२॥

शोधयामीति संभाष्य प्रातिलोम्येन तान्यपि ।
शेषे शिरो मनुर्ज्ञेयश्चतुर्थमवधारय ॥१६३॥

तदेव बीजत्रितयमादिक्षान्तं च कीर्तयेत् ।
शिवशक्तिं समालिख्य सदाशिवेश्वरेति च ॥१६४॥

शुद्धे विद्या कला माया अविद्या रागमेव च ।
कालश्च नियतिश्चापि पुरुषः प्रकृतिस्तथा ॥१६५॥

अहङ्कारमनोबुद्धिश्रोत्रत्वक्चक्षुरेव च ।
जिह्वा घ्राणाच्च वाक्पाणिपादपायु ततः परम् ॥१६६॥

उपस्थशब्दः स्पर्शश्च ततो रूपरसोच्चरेत् ।
गन्धाकाशौ वायुतेजः सलिलाद् भूमिरित्यपि ॥१६७॥

तत्त्वं मैधं च कामं च परार्चिर्ज्येष्ठकूटकान् ।
सर्वतत्त्वाश्रयं जीवं शोधयामि ततो वदेत् ॥१६८॥

प्रातिलोम्येन चोद्धृत्य क्षाद्यन्तं सर्वबीजकम् ।
स्वाहान्तो मन्त्रराजोऽयं समाकलय पञ्चमम् ॥१६९॥
वेदादिमैधमायाश्च त्रपाकामवधूरुषः ।
नृसिंहक्षेत्रपालौ च योगिनी शाकिनी सुधा ॥१७०॥
हैमनास्त्रं दानवास्त्रं वायव्यास्त्रं गणास्त्रकम् ।
कुण्डलिन्यादिषट्चक्रकूटादि तदनन्तरम् ॥१७१॥
जीवात्मानमिति प्रोच्य ततश्च परमात्मना ।
शोधयामीति संलिख्य तारान्तो व्युत्क्रमोऽखिलः ॥१७२॥
फट्त्रयान्ते हृच्छिरसी महामन्त्रोऽयमीरितः ।
अमीभिः पञ्चभिर्मन्त्रैर्बद्धाञ्जलिरुदारधीः ॥१७३॥
दोषहानिफलाधिक्ये कुर्याद् भक्तिपरायणः ।
तर्पयेच्छक्तिपूजां च शान्तिकं पौष्टिकं तथा ॥१७४॥
पूजा समाप्ता श्रीपात्रग्रहणे वक्ष्यते मनुः ।
इति सामान्यतः प्रोक्तं श्रीपात्रस्थापनादिकम् ॥१७५॥
विशेषस्तु प्रसन्नायाः विधाने ज्ञेय ईश्वरि ।

[पूजारीतिनिर्देशः]

अधुनार्चारीतिमहं कथयामि विशेषतः ॥१७६॥
पात्रणामपि षण्णां वै परिष्कारं विधाय च ।

[प्राणायामविधिः]

प्राणायामं ततः कुर्यात् षडङ्गन्यासमेव च ॥१७७॥
पुनः पूर्वोक्तविधिना पुष्पमादाय साधकः ।
मुद्रां पूर्वोदितां बद्ध्वा ध्यानं कुर्वीत निश्चलः ॥१७८॥

हृदो निःसारयेद् देवीं वहन्नासापुटानिलैः ।
तत्पुष्पं कालिकारूपं पीठमूर्ध्नि विनिःक्षिपेत् ॥१७९॥

[यन्त्रप्रतिष्ठाविधिः]

कराग्रेण स्पृशन् यन्त्रं वक्ष्यमाणान् मनून् पठन् ।
भक्तिभावयुतः प्राणप्रतिष्ठां समुपाचरेत् ॥१८०॥

[यन्त्रस्य प्राणप्रतिष्ठापनमन्त्रः]

तारपाशत्रपासृण्यः कुणी फल्यपि तर्जनी ।
धूमला च तथा वेधी दुरी दर्वी गुडोऽपि च ॥१८१॥
ब्रह्मबीजं ङसन्ता श्रीगुह्यकाली ततः परम् ।
ततः प्राणा इह प्राणाः पुनस्तानि त्रयोदश ॥१८२॥
तादृश्येव पुनर्ज्ञेया गुह्यकाली वरानने ।
ङसन्तोद्धरणीया तु ततो नीच [?] इह स्थितः ॥१८३॥
पुनर्बीजानि तावन्ति ङसन्ता सा तथाम्बिका ।
सर्वेन्द्रियाणि सङ्कीर्त्य पुनर्वर्णास्त्रयोदश ॥१८४॥
ततः श्रीगुह्यकाल्यास्तु वाङ्मनश्चक्षुरुद्धरेत् ।
श्रोत्रघ्राणा नु प्राणाश्च इहागत्य सुखं चिरम् ॥१८५॥
तिष्ठन्तु शिर इत्यन्तो मन्त्रः प्राणप्रतिष्ठया ।

[प्रात्यहिकयन्त्रप्राणप्रतिष्ठाविधिः]

पुनः प्राणप्रतिष्ठाकृदन्यो मन्त्रो मयेर्यते ॥१८६॥

तारमैधत्रपालक्ष्मीशाकिनीचण्डविद्युतः ।
कालीहयग्रीवधर्मोऽङ्कुशप्रासादगारुडाः ॥१८७॥

अमुकाक्षरमन्त्रस्येत्यूहः स्यात्तदनन्तरम् ।
ततः शिरो मुख प्रोच्य पाणिपाद ततः परम् ॥१८८॥
पृष्ठोदराणि च ततो यावन्त्यङ्गानि चेत्यपि ।
कल्पयाम्यह संलिख्य ततो मपनयामि च ॥१८९॥
अस्यानु शेषवृजिनानि स्वाहा च तदनन्तरम् ।
आभ्यां मनुभ्यां च प्राणप्रतिष्ठां समुपाचरेत् ॥१९०॥
इयं प्रात्यहिकी प्राणप्रतिष्ठा परिकीर्तिता ।
पीठमूलप्रतिष्ठा तु पुरा ते प्रतिपादिता ॥१९१॥
त्रिपुरायाः प्रसङ्गेन तत्रोहः स्वल्प इष्यते ।
अन्यैर्वैदिकमन्त्रैस्तु देव्याः प्राणाङ्गकल्पना ॥१९२॥
क्रियते तेन तन्त्रोक्ता न मयापीरिता अतः ।
मूलमन्त्रं त्रिः पठित्वा तु अम्बाहृदयमेव च ॥१९३॥
तारात् सजीवा भव च फट् स्वाहेत्युच्चरेत्ततः ।
ततो देवीशरीरेऽङ्गन्यासं मन्त्रैः पुरोदितैः ॥१९४॥
विधाय मायामुच्चार्य संनिरोध्य महेश्वरीम् ।

[कुसुमाञ्जलिदानविधिः]

मूलमन्त्रेण कुसुमाञ्जलिं दद्यात् त्रिवारकम् ॥१९५॥
तारह्लीशाकिनीयुक्ता गुह्यकालि ततः परम् ।
इहेत्युक्त्वागच्छयुग्मं सन्धियुक्तं वदेच्छनैः ॥१९६॥
इह तिष्ठ युगं चापि इह सन्निहिता भव ।
युगं ततः सन्निरुद्धा भव युग्ममुदीरयेत् ॥१९७॥

मम पूजां गृहाणेति वारैकं त्रिदशेश्वरि ।

[आवाहनार्थं करमुद्रायाः निर्देशः]

एताः पूर्वोदिताश्चापि दर्शयेत् करयोः क्रिया ॥१९८॥

तास्वादिमं करयुगं विशारि चलमन्वितम् ।

[स्थापनाख्यकरमुद्रायाः निर्देशः]

तदेवोत्तानितं मुद्रा स्थापनाख्याभिजायते ॥१९९॥

[सन्निधानार्थं करमुद्रायाः निर्देशः]

निःसृताङ्गुष्ठकौ मुष्टी संहतौ सन्निधाय तम् ।

[सन्निरोधनाख्यकरमुद्रायाः निर्देशः]

गूढाङ्गुष्ठैर्धितं तच्च सन्निरोधनमुच्यते ॥२००॥

अमृतीकरणादीनि पूर्वमेवोदितानि ते ।

इति सामान्यतः प्रोक्ता आवाहनकरक्रिया ॥२०१॥

विशेषमधुना वच्मि तत्तमन्त्रपुरःसराः ।

[आवाहनादेः मन्त्रनिर्देशः]

तारं मायां स्मरं पाशं समाभाष्य चतुष्टयम् ॥२०२॥

श्रीकारादीनि पञ्चापि कालीनामाक्षराण्यतः ।

आगच्छ द्वितयं प्रोच्य दण्डादीन् पञ्च कीर्तयेत् ॥२०३॥

रावकूर्चौ शिरःशेषे मनुरावाहने मतः ।

[देव्याः स्थापनमन्त्रः]

मैधं कामं च लक्ष्मीं च योगिनीं डाकिनीमपि ॥२०४॥

तिष्ठ द्वन्द्वं सिद्धिकालीहयग्रीवान् सधर्मकान् ।

गरुडः शाकिनीरोषौ शिरोऽन्ते स्थापने मनुः ॥२०५॥

[देव्याः सन्निधापनमन्त्रः]

तारमैधौ तथा पाशः क्षेत्रपालो वधूरपि ।
केशवः काकिनी नेमिश्छन्दो विद्यास्ततः परम् ॥२०६॥
ततः सन्निहिताशब्दाद् भवान्तं युगलं वदेत् ।
रावकूर्चशिरांस्यन्ते सन्निधापनकृन्मनुः ॥२०७॥

[देव्याः सन्निरोधनमन्त्रः]

मैधपाशौ तारमाये फेत्कारी तदनन्तरम् ।
सन्निरुद्धा भवेत्यन्ते द्वितीयं तदनन्तरम् ॥२०८॥
कल्पादिपञ्चकं पश्चात् रावः कूर्चं शिरस्तथा ।
सन्निरोधनकार्येषु मन्त्रस्तव मयोदितः ॥२०९॥

[विशेषमन्त्राभावे मन्त्रस्यास्य उपयोगिताया निर्देशः]

सर्वेषामन्ततो दद्यान् मूलमन्त्रं वरानने ।
ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चार्य रावबीजाद्यमेव हि ॥२१०॥
सर्वेष्वेवोपचारेषु मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः ।
विशेषमन्त्रो नो यत्र तत्रासौ मनुरिष्यते ॥२११॥
यत्र यत्र विशेषोऽस्ति तं तं वक्ष्ये तवाधुना ।

[उपकरणाभ्युक्षणविधिः]

पूर्वसंशोधितं द्रव्यं स्थापयित्वा शिवाग्रतः ॥२१२॥
अभ्युक्ष्य सलिलेनैव धूमलाबीजमुच्चरन् ।
प्रवदेदमुकद्रव्याय नमस्तदनन्तरम् ॥२१३॥
सम्पूज्य मूलमन्त्रं च पठित्वा तदनन्तरम् ।
ङेऽन्तां देवीं तथोल्लिख्य अमुकं द्रव्यमेव च ॥२१४॥

निवेदयेन् मन्त्रपाठपूर्वकं सुरवन्दिते ।

[आसनदानविधिः]

तत्रादावासनं दद्याद्दारवं काष्ठमेव च ॥२१५॥

तस्य मन्त्रं शृणु शिवे वक्ष्यमाणं मया०० ।

तारो माया भूतिनी च लक्ष्मीः कामो वधूर्विधिः ॥२१६॥

इदमासनमुच्चार्य गुह्यकाल्यै ततः परम् ।

स्वाहान्तं समनूच्चार्य पादयोर्विनिवेदयेत् ॥२१७॥

[पाद्यदानविधिः]

ततः पूर्वोदितद्रव्यसहितं पाद्यमीश्वरि ।

गृहीत्वा वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण विनिवेदयेत् ॥२१८॥

मैधमाये कामवधूशाकिन्यो डाकिनी तथा ।

प्रलयश्चापि फेत्कारी गुह्यकाल्यै ततः परम् ॥२१९॥

इदं पाद्यमिति प्रोच्य नमः शेषे नियोजयेत् ।

इत्युच्चार्य शनैर्मूलमन्त्रान्ते पाद्यमुत्तमम् ॥२२०॥

दद्याच्चरणयोर्देव्या भक्तिभावेन साधकः ।

[अर्घदानविधिः]

पुनः पूर्वोदितैर्द्रव्यैरन्वितं शीतलं जलम् ॥२२१॥

शङ्खं [ङ्खे ?] संस्थापितं कृत्वा मनुमेनमुदीरयेत् ।

स्वाहापदेन वै दद्यादर्घं देव्यै वरानने ॥२२२॥

प्रणवं पाशरोषौ च मायां भौतं च बीजकम् ।

श्मशानवासिनी ङेऽन्ता ङेऽन्तं नाम तथोच्चरेत् ॥२२३॥

एषोऽर्घः शिर इत्युक्त्वा दद्यादर्घं सुकल्पितम् ।

[आचमनीयदानविधिः]

जातीलवङ्गकक्कोलसहितं शीतलं जलम् ॥२२४॥

गृहीत्वा मन्त्रमुच्चार्य सु[स्व?]धाशब्दैर्मुखेऽर्पयेत् ।

मैधं कामो वधूप्रेतौ भैरवी हाकिनी तथा ॥२२५॥

गुह्यकाली ततो ङेऽन्ता भगवत्यै पुरोऽन्विता ।

इदमाचमनीयं च शेषे दद्यात्सु[स्व ?]धापदम् ॥२२६॥

[कस्यचिन्मते आचमनीयं शीतलजलमात्रम् न तु सुवासितं तदिति निर्देशः]

केवलं शीतलेनैव जलेनाचमनीयकम् ।

दद्याद्देव्यै स्वधाशब्दैर्मुखे वै कस्यचिन्मतम् ॥२२७॥

[मधुपर्कदानविधिः]

अस्मिन्नेव ह्यवसरे मधुपर्कं निवेदयेत् ।

घृतं दधि मधु द्रव्यं समभागेन कल्पयेत् ॥२२८॥

अधिकेनापि भवति तन्मुखे सु[स्व ?]धयाऽर्पयेत् ।

तारः पाशो वाग्भवश्च कूर्चः प्रासाद एव च ॥२२९॥

चतुर्थ्यन्तां गुह्यकालीं ततः परमुदीरयेत् ।

एषो नु मधुपर्कश्च सु[स्व?]धांशेषे नियोजयेत् ॥२३०॥

[पुनराचमनीयदानविधिः]

मधुपर्कानन्तरं च पुनराचमनीयकम् ।

पुरोक्तेनैव मन्त्रेण दद्यात् साधकसत्तमः ॥२३१॥

[स्नानीयजलदानम्]

स्नानीयार्थमथो पेयशीतलं स्वच्छमेव च ।

निवेदयेच्छनैर्मूर्ध्नि कथ्यमानं मनुं पठन् ॥२३२॥

तारह्रीकमलाकामवध्वो ङेऽन्ता तथेश्वरि ।
इदं स्नानीयमुच्चार्य ब्रूयाच्छेषे नमः पदम् ॥२३३॥
इति मूर्ध्नि प्रदातव्यं कुम्भस्थं शीतलं जलम् ।

[वस्त्रदानविधिः]

ततः पूर्वोदितं वस्त्रं यथावैभवकल्पितम् ॥२३४॥
दद्याद्देव्या अभावेऽपि केवलं कुसुमं तथा ।

[वस्त्रार्पणमहत्वख्यापनम्]

वस्त्रार्पणेन तु विना पूजा भवति निष्फला ॥२३५॥
अतो दद्यात् पुष्पमपि वस्त्राभावे सुरेश्वरि ।

[वस्त्रार्पणमन्त्रः]

तस्य मन्त्रं शृण्विदानीं कीर्त्यमानं मया शनैः ॥२३६॥
मैधं पाशो भौवनेशी रोषो नृहरिरेव च ।
संबुद्धिर्भगवत्याश्च गुह्यकाल्यास्ततः परम् ॥२३७॥
इदं वस्त्रमिति प्रोच्य तेऽर्पयामि ततः परम् ।
परिधत्स्व ततश्चापि विजयो मन्द एव च ॥२३८॥
सम्मोहः पतनं चापि शेषे संहार उच्यते ।
कूर्चास्त्रहार्दशीर्षाणि मन्त्रो वस्त्रार्पणे मतः ॥२३९॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य मूलमन्त्रं ततो वदेत् ।
द्रव्यनाम ततः प्रोच्य देवीनाम तथा ततः ॥२४०॥
नमः पदेन चोत्सृज्य प्रदद्याद् भक्तिभावितः ।
एष एव हि विज्ञेयः सर्वत्रैव क्रमः प्रिये ॥२४१॥

विशेषं कञ्चिदाचक्षे तन्निशामय पार्वति ।

[मृतचेलतन्तुदानविधानम्]

अस्मिन्नेव क्षणे देया मृतचेलस्य तन्तवः ॥२४२॥

[मृतचेलतन्तोः महत्वख्यापनम्]

नैतत्तुल्या भविष्यन्ति देविप्रीतिकराः पटाः ।
न क्षौमं राङ्कवं चापि नैवोर्णादिविनिर्मितम् ॥२३४॥
न पट्टग्रथितं चापि न रागै रञ्जितं तथा ।
न पत्रोर्णं न शाटी च वस्त्राण्यन्यानि नापि च ॥२४४॥
देवीप्रीतिकरास्ते स्युः सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ।
यथा मृतांशुतन्त्वंशो देव्याः सन्तोषकारकः ॥२४५॥
न तत्र निन्दा कर्तव्या न घृणा नापि गर्हणा ।
मृतचेलाञ्चलं देयं देव्याः प्रीतिकरं सदा ॥२४६॥

[मृतचेलतन्तुदानमन्त्रः]

तस्य मन्त्रं समाचक्षे निशामय सुरेश्वरि ।
तारो मैधश्च पाशश्च जम्भश्चापि प्रचण्डया ॥२४७॥
कर्णिकापद्मकुटिला मणिमाला उदीरयेत्
इदं प्रेतांशुकं प्रोच्य ततस्तुभ्यमहं ददे ॥२४८
अर्पयामि च गन्धाढ्यं परिधत्स्वेदमेव च ।।
मम सिद्धिं दद युगं देहि युग्मं तथैव च ॥२४९॥
श्मशानवासिनि प्रोच्य रोषत्रितयमीरयेत् ।
फट्त्रयान्ते हृच्छिरसी मृतचेलार्पणे मनुः ॥२५०॥

[अलङ्कारदानविधिः]

ततः स्वर्णादिघटितोऽलङ्कारः खलु दीयते ।
देव्यै तस्य मनुं वक्ष्ये तेन मन्त्रेण दीयते ॥२५१॥
चैतन्यं भौवनेशी च कामः प्रेतश्च भैरवी ।
गुह्यकाल्यै समुच्चार्य इदमाभरणं वदेत् ॥२५२॥
नमः स्वाहा च चरमेऽलङ्काराद्यर्पणे मनुः ।
मूलमन्त्रस्तु सामान्यस्तेन नायं प्रसिद्ध्यति ॥२५३॥
विशेषो यद्यपि शिवे तस्माद् युग्ममपेक्षते ।
एवं सर्वत्रैव बोध्यं पुनः पुनरिदं वदेत् ॥२५४॥

[गन्धदानविधिः]

अतः परं गन्धदानमन्त्रं समुपवर्णये ।
द्रव्याणि पूर्वमुक्तानि मन्त्रमाकर्णयाधुना ॥२५५॥
तारो माया च रावश्च योगिनी कमला स्मरः ।
एष गन्धो भगवती ङेऽन्ता मूलाभिधानयुक् ॥२५६॥
कूर्चास्त्रशीर्षाण्यन्ते च गन्धदानमनुः स्मृतः ।

[अनङ्गगन्धस्य महत्त्वख्यापनम्]

चन्दनादगुरुभ्योऽपि कुङ्कुमाद् घनसारतः ॥२५७॥
मृगनाभेरपि तथा कक्कोलाच्च लवङ्गतः ।
जातीफलात्तथा काशाद् यक्षकर्दमतोऽपि च ॥२५८॥
एकं वस्त्वस्ति गन्धार्थं देव्याः प्रीतिकरं परम् ।
तद्दानफलबाहुल्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥२५९॥

सा सन्तुष्टा यथैतेन न तथा प्रथमोदितैः ।
वस्तुभिर्जायते तुष्टाऽत एतत् साधकोऽर्पयेत् ॥२६०॥
न तत्र कुर्वीत घृणां न निन्दां नापि च त्रपाम् ।
सन्तोषस्तद्द्रवैर्देव्या अत एव समर्पयेत् ॥२६१॥
सैव वेत्ति न जानेऽहं क आमोदोऽत्र वर्तते ।
तद्द्रव्यमधुना वक्ष्ये देवीप्रीतिप्रदं महत् ॥२६२॥
[अनङ्गगन्धपरिचयः]
यदष्टादशवार्षिक्या न्यूनाया अपि वा भवेत् ।
आर्तवं मासिकं यत्स्यादाद्याहोजातशोणितम् ॥२६३॥
अनङ्गगन्धस्तन्नाम नाधिकायाः कदाचन ।
न द्वितीयदिनोद्भासि न तृतीयदिनागतम् ॥२६४॥
यथा यथाल्पवयसः प्रशस्तं हि तथा तथा ।
तद्दानफलबाहुल्यं वक्तुमेव न शक्यते ॥२६५॥
स्वयमागत्य सा देवी गृह्णाति शिरसार्पितम् ।
तस्माद् घृणां न कुर्वीत तद्दाने प्रयतेत वै ॥२६६॥
[अनङ्गगन्धदानमन्त्रः]
अनङ्गगन्धदानस्य मन्त्रमाकर्णय प्रिये ।
तारवाग्भवपाशाश्च प्रासादः कमला स्मरः ॥२६७॥
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ।
क्रोधरावौ च भूतार्णं प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ॥२६८॥
ङेऽन्तं रतिप्रियाशब्दं प्रोच्चरेन् मनुबीजतः ।
ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चार्यमेष तन्नाम चोद्धरेत् ॥२६९॥

ससन्धियुक्तः कर्तव्यः स्त्रीबीजं तदनन्तरम् ।
हार्दमन्त्रं समुच्चार्य सु[स्व?]धा देव्यै तमर्पयेत् ॥२७०॥

[स्वयम्भूपुष्पपरिचयः]

जाताद्यरजसो नार्या यदाद्यदिनसम्भवम् ।
पुष्पं स्वयम्भूपुष्पं तत्तदानन्त्याय कल्पयेत् ॥२७१॥
न सौवर्णेन पुष्पेण न मुक्तामणिभिस्तथा ।
न धूपदीपैर्नैवेद्यैर्नापि पूजादिभिः स्तवैः ॥२७२॥
न होमैर्न जपैर्नापि तर्पणैः प्रीयते शिवा ।
यथा स्वयम्भूपुष्पेण प्रीयते जगदम्बिका ॥२७३॥
तत्रापि परयोषाया इत्यागमसुगोपितम् ।

[स्वयम्भूपुष्पदानमन्त्रः]

अधुना कथ्यते तस्य दानमन्त्रो मया तव ॥२७४॥
प्रणवादी त्रपारत्यौ ङेऽन्तं नाम ततो वदेत् ।
नादान्तकादींश्चतुरो वर्णांस्तदनु कीर्तयेत् ॥२७५॥
क्रोधं पाशं समुद्धृत्य ङेऽन्ता च भगमालिनी ।
वाग्भवं च वधूबीजं ङेऽन्ता चापि भगप्रिया ॥२७६॥
पिशाचिनी च कमला ङेऽन्ता च मदनातुरा ।
एतत्पुष्पस्य नामापि नम इत्यक्षरद्वयम् ॥२७७॥
उच्चार्य दद्यात् तद्देव्यै सर्वकामार्थसिद्धये ।
मनसोऽभीष्टमाप्नोति दत्त्वैतत् पुष्पमुत्तमम् ॥२७८॥

[रतिपुष्पपरिचयः]

एवं परस्त्रीसङ्गेन यद्रेतः स्खलितं भवेत् ।
रतिपुष्पं तदाख्यातं न स्वीयायाः कदाचन ॥२७९॥

[रतिपुष्पोत्सर्गमन्त्रः]

तत्प्रदानमनुं वक्ष्ये सावधाना निशामय ।
तारं मैधं क्षेत्रपालं मारमायारुषः स्मरः ॥२८०॥
धन्यं घटी च ह्लां ह्लीं ह्लूं एतत्त्रितयमुद्धरेत् ।
भगप्रिये चेति पदं भगमालिनि चेत्यपि ॥२८१॥
रतिपुष्पमिति स्मृत्वा गृह्ण गृह्णेति कीर्तयेत् ।
भक्षयेति द्विरुच्चार्य मम शत्रूंस्ततो वदेत् ॥२८२॥
नाशयोच्चाटय हन त्रुट छिन्धि पचापि च ।
मथ विध्वंसय तथा मारय द्रावयापि च ॥२८३॥
युगं युगं दश भवेन्मायाग्निदयितायुतः ।
प्रदाने रतिपुष्पस्य महामन्त्रोऽयमीरितः ॥२८४॥

[रतिपुष्पदानस्य फलश्रुतिः]

रतिपुष्पप्रदाता हि शिव एव न संशयः ।
सर्वविद्योपविद्यानां पारगः स हि जायते ॥२८५॥
तस्यालोकनमात्रेण निःप्रभाः स्युर्हि वादिनः ।
गद्यानि पद्यानि तथा निःसरन्ति तदास्यतः ॥२८६॥
अन्यजातिः स्वेष्टसिद्धिं प्राप्नोति विभवं तथा ।

[पुष्पदानविधिः]

अतः परं पुष्पदानमाकर्णय शुचिस्मिते ॥२८७॥

पुष्पाणि पूर्वमुक्तानि युक्तायुक्ततया प्रिये ।

[पुष्पोत्सर्गमन्त्रः]

तद्दानमन्त्रमधुना समाकलय भामिनि ॥२८८॥

गायत्रीमुखचैतन्यकामस्त्रीकमलात्रपाः ।
चण्डाट्टहासिनि प्रोच्य महापिङ्गलतो जटे ॥२८९॥

भगवत्या गुह्यकाल्याः सम्बोधनपदं ततः ।
एतानि पुष्पाण्युल्लिख्य गृह्णद्वन्द्वं ततो वदेत् ॥२९०॥

सौख्यं च देहि युगलं श्मशानानु विहारिणि ।
कूर्चमन्त्रं नमः स्वाहा सर्वशेषे नियोजयेत् ॥२९१॥

सर्वत्र मूलमन्त्रान्ते तत्तद्द्रव्यं नमोऽपि च ।

[मालादानविधौ अवसरविषयकमतभेदनिर्देशः]

अस्मिन्नेव क्षणे देव्यै केचिन्मालां ददत्यपि ॥२९२॥

केचिदारात्रिकात् पूर्वं पुर एव प्रशस्यते ।
एकपुष्पादिरचिते भिन्नो मनुरुदीर्यते ।
नानाप्रसूनैर्घटिते भिन्नो मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥२९३॥

[एकपुष्परचितमालादानमन्त्रः]

तारमैधे त्रपाकामौ योगिनी शाकिनी वधूः ।
मालाबीजं ततोऽप्येषा मालापदमुदीरयेत् ॥२९४॥

भगवत्यै गुह्यकाल्यै व्युत्क्रमादष्ट तानि च ।
बीजानि समनूद्धृत्य कूर्चास्त्राग्न्यङ्गना च हृत् ॥२९५॥

इत्येकजातिकुसुमरचितायां स्रजीरयेत् ।

[नानापुष्पनिर्मितमालादानमन्त्रः]

अथापरं शृणु मनुं नानापुष्पस्रगर्पणे ॥२६६॥

चैतन्यं कमला माया ततः पाशाङ्कुशावपि ।

प्रासादप्रेतभैरव्यो ङेऽन्ता सिद्धिकराल्यपि ॥२६७॥

श्मशानवासिनी ङेऽन्ता व्युत्क्रमात् तानि चाष्टवै ।

कूर्चास्त्रे शिर उच्चार्य नमः शेषे नियोजयेत् ॥२६८॥

इति नानापुष्पजातिविनिर्माणस्रगर्पणा ।

[स्रगर्पणस्य समयविषये मतभेदनिर्देशपूर्वकं स्वमताभिधानम्]

स्रगर्पणं तु केषाञ्चित् पुष्पदानादनु स्मृतम् ॥२६९॥

केषामपि भवेदारात्रिकदानात् पुरः प्रिये ।

मन्मतं तु प्रसूनानां दानादनु विधीयते ॥३००॥

[सिन्दूरदानविधिः]

ततः सिन्दूरमानीय महारागि च नागजम् ।

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण देव्याः सीमन्तसीमनि ॥३०१॥

प्रदद्यात् कुसुमे कृत्वा न तु हस्तेन पार्वति ।

[सिन्दूरोत्सर्गमन्त्रः]

मैधतारौ रमामाये मन्मथः कामिनी तथा ॥३०२॥

मेघनीला भगवती चण्डकापालिनी तथा ।

संबुद्धयन्तं त्रयं प्रोच्य वदेद् दण्डादिपञ्चकम् ॥३०३॥

इदं सिन्दूरमिति च ततो गृह्णद्वयं पठेत् ।

ज्वलयुग्मं समाभाष्य प्रज्वलद्वितयं ततः ॥३०४॥

स्फुरयुग्मं समाभाष्य प्रस्फुरद्वितयं वदेत् ।
महाङ्कुशो महानङ्गो महामारी तथैव च ॥३०५॥
महाद्रावो महामाया बीजानीमानि पञ्च च ।
हूं फट् स्वाहेति चरमे सिन्दूरस्यार्पणे मनुः ॥३०६॥

[अञ्जनदानविधिः]

ततः पूर्वोदितं नेत्रशोभार्थमञ्जनाह्वयम् ।
प्रदातव्यं साधकेन नित्यपूजाविधावपि ॥३०७॥
नेत्राञ्जनं प्रसूनेन गृहीत्वा तदनन्तरम् ।
भक्त्या देव्यै प्रदातव्यं कथ्यमानं मनुं पठन् ॥३०८॥

[अञ्जनदानमन्त्रः]

पाशाङ्कुशौ तु मैधादिप्रासादप्रेतभैरवीः ।
सौमतं च प्रतानं च महाचण्डपदादनु ॥३०९॥
योगेश्वरि समुद्धृत्य भोगवत्यथ कीर्तयेत् ।
महाभोगपदाद् ज्ञेयं लोलुपे पदमीश्वरि ॥३१०॥
इदमञ्जनमाभाष्य ततो गृह्णयुगं वदेत् ।
उक्त्वा गृह्णापय युगं नेत्राञ्जनपदं सकृत् ॥३११॥
ततो मयि कृपादृष्टिं कुरुयुग्ममनन्तरम् ।
हारिण्युत्कोचिनी तन्त्रा कुटिला रञ्जनी घटी ॥३१२॥
कूर्चमस्त्रं हृच्छिरसी मन्त्रो नेत्राञ्जनार्पणे ।
स्थानं यद्यत् परिख्यातं यस्य यस्य हि वस्तुनः ॥३१३॥

तत्तत्स्थानं धिया ध्यात्वा दद्यात् तद्वस्तु साधकः ।
[वस्त्वर्पणस्थानम्]
सिन्दूरमलिके दद्यादथ सीमन्तसीमनि ॥३१४॥
अञ्जनं नेत्रयोरेव पादुकं पादयोस्तथा ।
तथा ताम्बूलनैवेद्यै दीयते मुख एव हि ॥३१५॥
उपानहौ चरणयोः व्यजनं दर्पणं करे ।
छत्रं वितानं शिरसि चामरं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥३१६॥
पृष्ठे च शिविकाशय्ये दातव्ये सुरवन्दिते ।
पाद्यादीनां विभागस्तु पुरैव प्रतिपादितः ॥३१७॥
[समन्त्र अलक्तकदानविधिः]
अलक्तकप्रदानस्य मन्त्रं त्वं कलयाधुना ।
त्रितारांश्च त्रिमैधांश्च समुच्चार्याग्रतः प्रिये ॥३१८॥
क्षेत्रपालो नरहरिः शाकिनी डाकिनी तथा ।
भासुरे शब्दतः पूर्वं महाभोगपदं वदेत् ॥३१९॥
ततः सिद्धिकराल्युक्त्वा कुण्डले नरमुण्डतः ।
ततो भगवतीदं च तथालक्तकमेव च ॥३२०॥
आद्यं सन्धिविहीनं स्यादितरत् संहितं तथा ।
तव पादयोरर्पयामि गृह्ण गृह्णेत्यनन्तरम् ॥३२१॥
हाकिनीसंहिताचञ्चुबीजानि स्युरतः परम् ।
रोषास्त्रहृदयं शीर्षं सर्वशेषे निगद्यते ॥३२२॥
पुष्पेणालक्तकं रक्तं गृहीत्वा पीठपादयोः ।
दातव्यं यत्नतो नैव यन्त्रोपरि लगेद् यथा ॥३२३॥

[धूपदानविधिः]

अतः परं तु धूपस्य विधानं वर्णयामि ते ।
यद्यद्द्रव्या यादृशा हि ते पुरैव प्रकीर्तिताः ॥३२४॥
ते ते प्रज्वालिता कार्या नैव देवि कदाचन ।
धूपो यथा निःसरति महासौरभशोभितः ॥३२५॥
तथा प्रयत्नः कर्तव्यो देव्यङ्गे च यथा लगेत् ।
अधुना तत्प्रदानस्य मन्त्रमाकलय प्रिये ॥३२६॥

[धूपदानमन्त्रः]

त्रपारमाकामवध्वः शाकिनी योगिनी तथा ।
धन्यमुल्लोप्यशिल्पे च कौलसर्वागमावपि ॥३२७॥
सृष्टिस्थित्याह्वयौ कूटौ तदनन्तरमीरितौ ।
ततो नु पिङ्गलजटे वज्रकापालिनी ततः ॥३२८॥
सम्बोधनान्ता तदनु गलद्रुधिरचर्चिते ।
इमं धूपं समुद्धृत्य संदध्यादर्पयामि च ॥३२९॥
सुरभीकुरु गात्राणि ततः परमुदीरयेत् ।
निद्रा च योगिनी पूर्णा धूमो ललितया सह ॥३३०॥
शेषे कूर्चास्त्रहृच्छीर्षं मनवः परिनिष्ठिताः ।

[धूपदीपयोर्दानावसरे घण्टावादनस्यानिवार्यतानिर्देशः]

धूपदाने दीपदाने घण्टावादनमिष्यते ॥३३१॥
वामेन वादयन् घण्टां करेण वरवर्णिनि ।

[धूपदीपदानप्रक्रिया]

गृहीत्वा दक्षहस्तेन धूपदीपस्य भाजनम् ॥३३२॥

पारावतभ्रमाकारं चालयेदम्बिकापुरः ।
यथा पीठेषु लगति सौरभो ज्योतिषच्छटा ॥३३३॥
ऊर्ध्वाध एवं कुर्वीत प्रदानं धूपदीपयोः ।

[धूपदीपदानमाहात्म्यम्]

यत्फलं धूपदानस्य दीपदानस्य यत्फलम् ॥३३४॥
वक्तुं तच्छक्यते नैव कल्पकोटिशतैरपि ।
आमोदितनुतां धूपदाता प्राप्नोति पार्वति ॥३३५॥
अग्निसालोक्यतां दीपदाता वा चक्षुरुत्तमम् ।
फलातिरेकतामेवं विदित्वा धूपदीपयोः ॥३३६॥
साधकः प्रत्यहं दाने प्रयतेत तयोः प्रिये ।

[दीपदानमन्त्रः]

दीपदानमनुं वक्ष्येऽतः परं शृणु सादरा ॥३३७॥
रावश्च डाकिनी दीप एकावल्यथ मुन्तला [?] ।
सौरङ्गः[?]शक्तिलिङ्गं च तत्त्वार्णव इतः परम् ॥३३८॥
मुण्डमालिनि सङ्कीर्त्य घोररावे ततः परम् ।
दंष्ट्राकरालिनि ततो भगवत्यपि तत्परम् ॥३३९॥
गुह्यकालि समाभाष्य वदेत्तत इमं पदम् ।
दीपं गृह्ण द्वयं प्रोच्य गृह्णापय युगं तथा ॥३४०॥
विभा वधू विराट् चैव फैरवश्च कुमारिका ।
धूपप्रदानमन्त्रस्य या शेषस्था षडक्षरी ॥३४१॥
सा शेषेऽत्रापि संयोज्या ततः पूर्णो मनुर्भवेत् ।
धूपवद्दीपदानस्य विधिः पूर्वोक्तवन्मतः ॥३४२॥

पारावतभ्रमाकारः स ह्यत्रापि प्रशस्यते ।

[नैवेद्यदानविधिः]

अतः परं तु नैवेद्यमन्त्रांस्ते कथयाम्यहम् ॥३४३॥

[नैवेद्यस्य पञ्चप्रकारताभिधानम्]

नैवेद्यं पञ्चधा प्रोक्तं भिन्नभिन्नाभिधानयुक् ।
अग्निसम्पर्कसंसिद्धमेकं तद्दीपिताह्वयम् ॥३४४॥
द्वितीयमुद्भिजाज्जातं फाणितं तत्प्रचक्षते ।
तृतीयं पारितं ज्ञेयं प्राणिदेहसमुद्भवम् ॥३४५॥
चतुर्थं विश्रमुदितं पञ्चमं मिश्रमेव च ।
दीपितं पृथुलाजादि फलमूलादि फाणितम् ॥३४६॥
पारितं दधिदुग्धादि विस्रं मांसकषादिकम् ।
मिश्रं तु शर्करादीनि सिद्धमांसादिकं च यत् ॥३४७॥
एतेष्वन्तर्भविष्यन्ति सर्वा नैवेद्यजातयः ।
तत्तन्नैवेद्यवित्तानि तेषां तत्तन्मनूनपि ॥३४८॥
बुद्ध्या नियोजयेत् प्राज्ञो ये ये यत्रोचिताः प्रिये ।

[नैवेद्यविशेषाणामर्पणे मन्त्रविशेषस्य निर्देशः]

इदानीं क्रमशस्तत्तन्नैवेद्यार्पणहेतुकान् ॥३४९॥
मनूनाकर्णय शिवे तैस्तदानीं प्रशस्यते ।

[दीपितनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

रमाकामवधूमायाशक्तिनक्षत्रविद्युतः ॥३५०॥
योगिनीकुलिकप्रेतबलयः पृथुरेव च ।
महेन्द्र ईश्वरश्चापि मेखला कुण्डमेव च ॥३५१॥

रागश्च सारसः सिद्धिविकरालि ततः परम् ।
महाट्टहासिन्युल्लिख्य कुलमार्गप्रवर्तिनि ॥३५२॥
इदं दीपितमाभाष्य तुभ्यं तदनु कीर्तयेत् ।
निवेदयामि तदनु गृह्ण खाद युगं युगम् ॥३५३॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य मर्दय द्वितयं लिखेत् ।
लाङ्गूलं मोचिनी पूर्वं वर्द्धमानं ततः परम् ॥३५४॥
चित्राषाढौ च तदनु शेषं धूपवदीरितम् ।
अयं दीपितनैवेद्यदाने मनुरुदाहृतः ॥३५५॥

[फाणितनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

शृणु मन्त्रमिदानीं त्वं फाणितार्पणकारिणम् ।
मैधं पाशस्त्रपा रावः कापालं काकिनी तथा ॥३५६॥
सत्त्वकूटश्च हैरण्यगर्भकूटं ततः परम् ।
मारण्डादिचतुष्कं च तदनु कीर्तयेच्छिवे ॥३५७॥
ततोऽन्विदमहं प्रोच्य फाणितं परिकीर्तयेत् ।
समर्पयामि तदनु गृह्ण खाद युगं युगम् ॥३५८॥
अनाहतश्च भोगश्च सृष्टिस्त्रेता तथैव च ।
कृत्या शेषे धूपवत् स्यात् शृणु फाणितदं मनुम् ॥३५९॥

[पारितनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

प्रणवः क्षेत्रपालश्च चण्डविश्वौ ततः परम् ।
अमादस्रादिचत्वारि बीजानि तदनन्तरम् ॥३६०॥
ततो नु खेचरीकूटं कूटं चाचलमेव च ।
प्रासादकूटं तस्यानु दिगम्बरि महापदात् ॥३६१॥

लोलजिह्वे महाघोररूपधारिणि चेत्यपि ।
ततश्च वरशब्दानु जटामुकुटमण्डिते ॥३६२॥
इदं पारितमुल्लिख्य ततस्तुभ्यमहं वदेत् ।
गिरयुग्मं ग्रसयुग्मं खाद खाहि युगं युगम् ॥३६३॥
मम सिद्धिमिति प्रोच्य दद देहि च पूर्ववत् ।
दापयद्वयमाभाष्य हिलियुग्मं किलिद्वयम् ॥३६४॥
मामुच्चार्य युगं रक्ष पालयद्वितयं ततः ।
राकात्रयं समुद्धृत्य भगमालिन्यथोद्धरेत् ॥३६५॥
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ।
शेषं पूर्ववदुन्नेयं धूपमन्त्रानुगामिनी [नम् ?] ॥३६६॥

[विश्वनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

अधुना देवदेवेशि विश्वमन्त्रं निशामय ।
मैधतारौ रमामाये कालादित्यौ च काकिनो ॥३६७॥
ज्ञानमिच्छा ततः कूटावर्णमेव महोदया । [?]
ततो ब्रह्मकपालानु मालाभरणमीरयेत् ॥३६८॥
अत्राक्षराणि नो बीजं भैरवासन इत्यतः
जगज्जननि तत्पश्चाद् दावानलनिवासिनि ॥३६९॥
इदं विश्वं तुभ्यमहं दद इत्यपि कीर्तयेत् ।
भक्ष युग्मं गिलयुग्मं जय जीव तथैव च ॥३७०॥
ध्वानो विवत्सः संभावः संयोगोऽपि वियोगयुक् ।
हारिण्युत्कोचिनी चापि शेषमत्रापि पूर्ववत् ॥३७१॥

[मिश्रनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

इदानीं मिश्रदानस्य मन्त्रं समुपवर्णये ।
वेदादिमैधपाशाख्यास्त्रयो वर्णाः पुरः स्मृताः ॥३७२॥
सुरसः समरश्चापि षडङ्गं जम्भपूर्वकम् ।
ककुच्छैशुकनामानौ तदनु प्रथिताविह ॥३७३॥
ताटङ्कलीले धेनुश्च मारिषस्तदनन्तरम् ।
उदयास्ताह्वयौ कूटौ मणिरत्नाह्वयावपि ॥३७४॥
अपराजितनामापि कूटस्तदनु भामिनि ।
एवमष्टादशभ्यस्तु बीजकूटेभ्य ईश्वरि ॥३७५॥
वदेदिदं मिश्रमिति रूपं चापि कृताकृतात् ।
तुभ्यं समर्पयाम्युक्त्वा गृह्णद्वन्द्वं समुद्धरेत् ॥३७६॥
पुनर्गृह्णापययुगं युग्मं युग्मं हस ग्रस ।
खाद युग्मं किलि किलि ततो भगवतीति च ॥३७७॥
गुह्यकालि समाभाष्य मम शत्रूनितीरयेत् ।
युगलं मर्दय प्रोच्य पातय द्वितयं तथा ॥३७८॥
शोषयोच्छादय हन मथ छिन्धि पच त्रुट ।
युग्मं युग्मं सप्तकस्य सर्वसिद्धिं ततो वदेत् ॥३७९॥
दद देहि युगं युग्मं दापय द्वितयं तथा ।
कलावती च सर्वस्वं विप्रियं तदनन्तरम् ॥३८०॥
सन्तारवैकक्षमपि सर्वशेषे षडक्षरी ।
धूपादारभ्य या प्रोक्ता सर्वमन्त्रान्तगामिनी ॥३८१॥

नैवेद्यभेदा इति ते मया समुपवर्णिताः ।
पृथक् पृथक् च मनवस्तेषां वै प्रतिपादिताः ॥३८२॥
भिन्नं भिन्नं हि नैवेद्यं प्रदद्याद् विभवे सति ।
यावच्छक्यमभावेऽपि किन्त्वावश्यकमेव तत् ॥३८३॥

[शीतलजलदानविधिः]

नैवेद्यं विनिवेद्याथ शीतं तोयं निवेदयेत् ।
कर्पूरशकलोन्मिश्रं यथा वामोदि तद्भवेत् ॥३८४॥

[शीतलजलदानमाहात्म्यम्]

नैवेद्यानन्तरं शीतजलदानस्य यत्फलम् ।
तन्मया कथितुं नैव शक्यते त्रिदशेश्वरि ॥३८५॥
यथात्मनस्तृषा ज्ञेया तथा देव्या अपि प्रिये ।
अन्नदानादपि ह्येतद् दानं देवैः प्रशंसितम् ॥३८६॥
द्वापरादौ युगे भूपाः केवलं जलदानतः ।
श्रूयन्ते स्वर्गता दत्वा तृषिताय हिमं जलम् ॥३८७॥
अदत्वा केचन पुनर्गता निरयमेव च ।
अतो दद्यात् प्रयत्नेन भगवत्यै सुरार्चिते ॥३८८॥
निर्मलं हिममामोदि जलं तृष्णापनुत्तये ।
तत्तैजसेन पात्रेण न तु वै मार्तिकादिना ॥३८९॥

[शीतलजलदानमन्त्रः]

तद्दानमन्त्रमधुना कथयामि वरानने ।
तारप्रासादनृहरिगोंऽशुशुक्लाश्च दक्षिणा ॥३९०॥

कर्णिकाश्टृङ्खलाहारा बीजानि पुरतो दश ।
महामाये समाभाष्य प्रपञ्चातीत उद्धरेत् ॥३६१॥
नव पञ्च पदाच्चक्रनिलये तदनूच्चरेत् ।
इदं शीतलमुल्लिख्य जलं तदनु कीर्तयेत् ॥३६२॥
पिबद्वन्द्वं समुद्धृत्य प्रपिब द्वितयं तथा ।
महाप्यायनकारिण्यनु ब्रूयाद् बीजपञ्चकम् ॥३६३॥
परेष्टिव्रतनिर्मोकवेतण्डाभिधमीश्वरि ।
पूर्ववत् सर्वशेषस्थं कूर्चास्त्रहृदयं शिरः ॥३६४॥

[पुनराचमनीयदानविधिः]

ततः पुनः प्रदातव्यं पुनराचमनीयकम् ।
तस्य मन्त्रः पुरा प्रोक्तो यथाचमन ईरितः ॥३६५॥

[ताम्बूलदानमाहात्म्यम्]

इदानीं श्टृणु ताम्बूलदानमन्त्रं शुचिस्मिते ।
यद्द्रव्यं यादृशो भागः स पुरैव प्रकीर्तितः ॥३६६॥
ताम्बूलतुल्यं नो किञ्चिन्मुखसौरभ्यकारकम् ।
मदहेतुकमानन्ददायि वक्त्रप्रभाकरम् ॥३६७॥
जिह्वाजाड्यहरं श्रेष्ठं सौभाग्यकरणं परम् ।
सद्यस्तुष्टा जायते हि जगदम्बा तदर्पणात् ॥३६८॥
अतः प्रयत्नतो देयं ताम्बूलं विभवे सति ।
ताम्बूलान्नापरं किञ्चिदेवमाह पुरद्विषः ॥३६९॥

[ताम्बूलार्पणमन्त्रः]

इदानीं केवलं मन्त्रं प्रवदामि तदर्पणे ।
वेदादिरथ चैतन्यं रमाकामौ वधूस्त्रपा ॥४००॥
प्रासादः क्षेत्रपालश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
प्रलयश्चापि फेत्कारो बीजानि द्वादशैव तु ॥४०१॥
ततः परं तु ज्ञेयानि कूटानीह षडेव तु ।
सत्त्वहैरण्यगर्भाख्यपुष्कराणि वरानने ॥४०२॥
किञ्जल्कः केसरश्चापि दृ[तु?]ष्टिदे तदनन्तरम् ।
एवमष्टादश प्रोच्य बीजकूटानि साधकः ॥४०३॥
वदेत् सकलमन्त्रानु तन्त्राध्यनु च दैवते ।
गुह्यातिगुह्यपदतः परापर पदं वदेत् ॥४०४॥
शक्तितत्त्वावतारे च नरमुण्डपदात्ततः ।
नक्षत्रमालालङ्कृते च इदं ताम्बूलमित्यपि ॥४०५॥
पुनस्तुभ्यमहं प्रोच्यमर्पयामि समालिखेत् ।
वदेत्ततोऽनु बह्वास्य विरामय[?]सुरेश्वरि ॥४०६॥
मम सिद्धिं देहि युगं दापय द्वितयं ततः ।
चराचरं जगत् प्रोच्य मोहय द्वितयं लिखेत् ॥४०७॥
कृपादृष्टया ततः सन्धिवियुगानन्दयद्वयम् ।
ततो विनिमयं ब्रूयादिन्दिरादि मयीश्वरि ॥४०८॥
सञ्जीवनीं विपक्षं च विरागं तदनूद्धरेत् ।
पूर्ववत् सर्वशेषस्था परिज्ञेया षडक्षरी ॥४०९॥

इत्येवं सर्वसामान्या उपचारा य ईरिताः ।
तेषां पृथक् पृथङ्मन्त्रा विविच्य प्रतिपादिताः ॥४१०॥

[अपणीयवस्त्वभावे कर्तव्यतानिर्देशः]

वस्तुनो यस्य यस्य स्यादभावः परमेश्वरि ।
स स मन्त्रो निवर्तेत सह संशोधनार्पणैः ॥४११॥

[राजोपचाराभिधानम्]

अथ राजोपचाराणामर्पणे मनवो हि ये ।
ते कथ्यन्ते मयेदानीं सावधाना निशामय ॥४१२॥
न दुर्गतैस्ते शक्यन्ते दातुं देव्यै कथञ्चन ।
भूमिपालैरेव ते तेऽन्वहं दीयन्त इत्यपि ॥४१३॥
तेषां मन्त्रास्तदर्थं हि कथ्यन्ते दानहेतवे ।

[पादुकादानविधिः]

तत्रादौ पादुकादानं सर्वकामफलप्रदम् ॥४१४॥
ददतः पादुकादानं देव्यै त्रिदशवन्दिते ।
पादुके प्रतिगृह्णन्ति शिरसा वसुधाधिपाः ॥४१५॥
सामुद्ग[1]रचिता श्रेष्ठा मध्यमा वास्त्रतैजसी ।
अधमा तु परिज्ञेया पादुका चार्मदारवी ॥४१६॥
नानारागसमायुक्ता दृढबन्धनसंयुता ।

[पादुकार्पणमन्त्रः]

अथैतस्या मनुं वक्ष्ये यदुच्चार्य वितीर्यते ॥४१७॥
पञ्च मैधानि संभाष्य पञ्च दण्डादिकानपि ।
तुङ्गं च पारिजातं च कर्णिकां हारमेव च ॥४१८॥
गोसवादिद्वयं कूटं निजकूटं ततः परम् ।

१—सा पट्ट ङ ।

बीजकूटानि जायन्ते एवं सप्तदश प्रिये ॥४१९॥
ततः प्रोच्य हूं हूं कारनादिनि त्रासदायिनि ।
शिवाघातपदाद्द्याल्ललालनि क्षोभकारिणि ॥४२०॥
ततो भगवतीत्युक्त्वा गुह्यकालीति कीर्तयेत् ।
इमे पादुक आभाष्य ततो नु तव पादयोः ॥४२१॥
अर्पयामि च सन्धी द्वे ततश्चरणयोरिति ।
आमुञ्च पूर्ववत् सन्धियुक्तं कार्यं वरानने ॥४२२॥
हसद्वयं गाययुगं नृत्ययुग्मं तथैव च ।
रयिमुद्भिन्नापतीर्थवाटीस्तदनु कीर्तयेत् ॥४२३॥
कल्पादीनि तु बीजानि पञ्चापि तदनन्तरम् ।
हूं फट् ततो नमः स्वाहा सर्वं शेषे नियोजयेत् ॥४२४॥
इत्युक्तः पादुकादानमन्त्रः परमशोध[भ?]नः ।
अनेन पादुकादानं सर्वसिद्धिविधायकम् ॥४२५॥

[छत्रप्रकाराभिधानम्]

अतः परं छत्रदानमवधेहि वरानने ।
द्रव्यं तु मुख्यं प्रथमं मुक्तारत्नविनिर्मितम् ॥४२६॥
महार्हवस्तूपचितं घर्मवर्षनिवारकम् ।
जातरूपशलाकादिघटितं पट्टवेष्टितम् ॥४२७॥
स्वर्णदण्डविनिर्माणमूर्द्धं हेमघटान्वितम् ।
मध्यमं पट्टवस्त्रेण रचितं तादृशेव हि ॥४२८॥
नानावर्णपरिष्कारं दण्डकुम्भविराजितम् ।

कार्पासवस्त्ररचितमधमं परिचक्षते ॥४२९॥
पर्णवंशशलाकादिरचितं सर्वतोऽधमम् ।
एवं चतुर्धा कथितं छत्रं तव सुरेश्वरि ॥४३०॥
एतेषु यद्यच्छत्रञ्च स्यात् तत्तद् देव्यै निवेदयेत् ।

[छत्रदानमाहात्म्यम्]

छत्रदानस्य माहात्म्यं वर्णितुं केन शक्यते ॥४३१॥
यद्यपि स्वयमायाति विधाता चतुराननः ।
सहस्रशीर्षो देवो वा शेषनागो धराधरः ॥४३२॥
इदमेकमहं जाने नान्यज्ञाने[?]सुरेश्वरि ।
देवीमूर्ध्नि ददेच्छत्रं स्वमूर्ध्नि स्थापयत्यसौ ॥४३३॥
अच्छत्रधारी तद्वंशे कदापि च न जायते ।
तं सेवन्ते सदा भूपा अन्येऽपि च्छत्रधारिणः ॥४३४॥

[छत्रदानमन्त्रः]

साम्प्रतं तत्प्रदानस्य मन्त्रं शृणु समाहिता ।
तारो रमा च कामश्च माया रावश्च योगिनी ॥४३५॥
प्रासादनारसिंहौ च प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ।
छन्दविश्वौ तु बीजानि पुरतो द्वादश स्मरेत् ॥४३६॥
ऐन्द्रं चैन्तामणेयं च कूटं तदनु कथ्यते ।
गन्धर्वरत्नप्रासादनीलकूटास्ततः परम् ॥४३७॥
एह्येहि गुह्यकालीति ततः परमुदीरयेत् ।
भगवत्यथ संकीर्त्य महारुद्रपदादनु ॥४३८॥
कुणपारूढ आभाष्य ततश्चतुरशीत्यपि ।

कोटिमूर्ते समुद्धृत्य विश्वरूपे समीरयेत् ॥४३६॥
इदं छत्रं तुभ्यमहं ददे तदनु चोद्धरेत् ।
शिरसा धारय युगं प्रसीद द्वितयं तथा ॥४४०॥
दारिद्र्यमिति सङ्कीर्त्य दह युग्ममनन्तरम् ।
भञ्ज भञ्ज समालिख्य मर्दय द्वितयं ततः ॥४४१॥
राज्यं मे देहि युगलं युगलं दापयेत्यपि ।
मम शत्रूनथोद्धृत्य हन छिन्धि युगं युगम् ॥४४२॥
कूर्चमस्त्रं नमः शीर्षं चरमे परिविन्यसेत् ।
एवं छत्रप्रदानस्य मया मन्त्रः प्रकाशितः ॥४४३॥

[छत्रोत्सर्गावसरप्रतिपादनम्]

छत्रमेतेन दातव्यं यदा दित्सा भवेत् प्रिये ।
नित्यपूजाविधौ वापि पर्वसु ग्रह एव वा ॥४४४॥
देव्यालयप्रतिष्ठासु यदा वा मनसो रुचिः ।
विशेषतस्तु भूपानामावश्यकतया स्थितम् ॥४४५॥
छत्रदानं जगद्धात्र्यै शिरसि च्छत्रधारिणाम् ।

[चामरदानविधिः]

अधुना देवदेवेशि प्रवक्ष्ये चामरार्पणम् ॥४४६॥
यथा राजोपकरणे छत्रं श्रेष्ठमुदाहृतम् ।
तद्वदेव श्रेष्ठमिदं चामरं परिकीर्तितम् ॥४४७॥

[चामरपरिचयः]

चमरीणां गवां पुच्छबालभारो हि चामरम् ।

तद्दानमन्तरा छत्रदानं निष्फलमेव हि ॥४४८॥
अङ्गिनो नृपचिह्नस्य छत्रस्याङ्गं हि चामरम् ।
अत एव हि तद्दानं विहितं तदनु प्रिये ॥४४९॥
द्रव्यमुक्तमिदानीं तद्दानमन्त्रं निशामय ।

[चामरार्पणमन्त्रः]

पञ्च सारस्वतान्यादौ विधिः कुलिक एव च ॥४५०॥
शिखा च प्राग्भवश्चापि कल्याणं साधकोऽपि च ।
मन्दारसिन्धू तदनु चण्डवृद्धचपराजिताः ॥४५१॥
त्रयः कूटाः समाख्याता इति त्वेवं हि षोडश ।
नवकोटिपदं गुह्यानन्ततत्त्वपदं प्रिये ॥४५२॥
धारिण्यनु महाभीमरसनापदमप्युत ।
विकराले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले ततः परम् ॥४५३॥
जगज्जननि संभाष्य जगदाश्रय ईरयेत् ।
इदं चामरमुद्धृत्य तुभ्यं पदमतः परम् ॥४५४॥
समर्पयामि च तत उपवीजय युग्मकम् ।
ततो मयि कृपादृष्टिं वितर द्वितयं पुनः ॥४५५॥
सम्पदं देहि युगलं युगलं दापयापि च ।
मनोरथान् पूरय च युगलं परिकीर्तितम् ॥४५६॥
शरणं खण्डकेतू च श्रुतिमन्दे तथैव च ।
शेषे सैवेह विज्ञेया या शेषस्था षडक्षरी ॥४५७॥
इति चामरदानस्य मन्त्रः समुपवर्णितः ।

[चामरदानफलकीर्तनम्]

फलं तच्छत्रदानस्य यत्फलं परिकीर्तितम् ॥४५८॥

[व्यजनार्पणविधिः]

व्यजनार्पणमीशानि शृण्वतः परमुत्तमम् ।

[व्यजनप्रकाराभिधानम्]

व्यजनं तु दुकूलादिरचितं पट्टवाससा ॥४५९॥
अथवा कल्पितं श्रेष्ठं चन्दनाम्भः समुक्षितम् ।
बर्हिबर्हादिभिः क्लृप्तं मध्यमं परिचक्षते ॥४६०॥
वंशकाष्ठादिघटितमधमं परिकथ्यते ।
ग्रीष्मर्तौ विह्वलीभूते शरीरस्वेदवारिभिः ॥४६१॥
व्यजनैर्वीजिते देवि सद्य आत्मा प्रसीदति ।
अत एवामुष्य दानं छत्रचामरदानवत् ॥४६२॥

[व्यजनार्पणमन्त्रः]

अतः परं मन्त्रमस्य कथ्यमानं मया शृणु ।
प्रणवः शाकिनी चैव डाकिनी प्रलयोऽपि च ॥४६३॥
फेत्कारी कमलाकामौ भौवनेशी वधूरपि ।
संहिता हाकिनी चैव रम्भावटचौ ततः परम् ॥४६४॥
सूक्तमाथर्वणं पश्चात् सरस्वत्यपि निम्नगा ।
ततो नाडी हस्तिजिह्वा धूमो वर्णस्ततः परम् ॥४६५॥
खेचरीनामकं कूटं ततः परमुदीर्यते ।
पुनर्विश्वजनन्युक्त्वा विश्वेश्वरि समीरयेत् ॥४६६॥
विश्वाधारे विश्वसंहारिणि पश्चात् प्रकीर्तयेत् ।

इदं व्यजनमुच्चार्य गृहाणेति सकृद्वदेत् ॥४६७॥

शरीरं तदनु प्रोच्य संवीजययुगं ततः ।

ततो ममाभीष्टसिद्धिं निष्पादय युगं ततः ॥४६८॥

आनन्दय युगस्यान्ते द्विवारमनुकम्पय ।

ततश्च खेचरीमुद्रां सकृत् प्रकटयोच्चरेत् ॥४६९॥

ततो रचय युग्मं च तथा विरचय द्वयम् ।

वरणो कूटशापौ च विच्छन्नः प्रमितिस्तथा ॥४७०॥

कूर्चबीजास्त्रबीजे च मन्त्रो हृच्छिरसोरपि ।

इत्येवं व्यजनोत्सर्गमन्त्रस्ते कथितो मया ॥४७१॥

[दर्पणार्पणविधिः]

निबोध साम्प्रतं मन्त्रं दर्पणार्पणकारिणम् ।

[दर्पणप्रकाराभिधानम्]

कालायसीयकांसीयौ मुकुरावुत्तमौ स्मृतौ ॥४७२॥

काचीयगावलीयौ द्वौ मध्यमौ परिकीर्तितौ ।

मन्दानीयस्फाटिकौ द्वावधमौ समुदीरितौ ॥४७३॥

द्रव्यमुक्तं मन्त्रमतः सावधाना निशामय ।

[दर्पणार्पणमन्त्रः]

प्रणवांस्त्रीन् पुरः प्रोच्य भ्रामरीं सप्रचण्डिकाम् ॥४७४॥

केकराक्षीं कालरात्रिं वीरवेतालमेव च ।

ततो नु भैरवपुटकौ हारिण्युत्कोचिनी तथा ॥४७५॥

कूटं वैहायसं प्रोच्य शक्तिकूटं ततः परम् ।

अनाख्याकूटमस्यानु भासाकूटमितोऽप्यनु ॥४७६॥
नमः कूटं सर्वशेषे एवमष्टादश प्रिये ।
सकृज्जयानु प्रवदेद् गुह्यकालीति पार्वति ॥४७७॥
भगवत्यपि सम्बोध्य शोणितार्णवशब्दतः ।
मज्जनोन्मज्जनार्णाच्च प्रिय इत्यपि कीर्तयेत् ॥४७८॥
प्रिये इत्येष मन्त्रार्णो न तु संबोधनं तव ।
ततो वदेन् मन्त्रमयशरीरे जगदम्ब च ॥४७९॥
इममादर्शमुल्लिख्य ततस्तुभ्यमहेति च ।
मर्पयामि च तस्यानु विकरालानि तत्परम् ॥४८०॥
मुखानि पश्य युगलं मम दुःखानि चेत्यतः ।
उदीर्य युग्मं दलय पुनः प्रशमय द्वयम् ॥४८१॥
दुरितेभ्य इति प्रोच्य सन्धियुक् मोचय द्वयम् ।
तथैव तारय युगं युगलं पावयापि च ॥४८२॥
वितन्त्राकैतवाट[त?]ङ्कसंहारिण्यो विघट्यपि ।
हूं फट् नमश्च स्वाहा च ततोऽनन्तरमुच्यते ॥४८३॥
इत्यादर्शप्रदानस्य मनुरुक्तः सविस्तरः ।

[शिविकार्पणविधिः]

अधुना शिविकादानं वर्ण्यते वरवर्णिनि ॥४८४॥

[शिविकाप्रकाराभिधानम्]

छत्रवद् द्रव्यमेतस्या अपि स्यात्त्रिप्रकारकम् ।
उपरि स्वर्णकुम्भेन शोभितं रत्नशोभिना ॥४८५॥
मुक्ताजालपरिच्छिन्नं पट्टतुल्यास्तृतं महत् ।

पट्टवस्त्रातपत्राढ्यं स्वर्णकुम्भादधः प्रिये ॥४८६॥
उपधानान्वितं पृष्ठे हेमदण्डावलम्बिना ।
दुकूलेनावृतं मध्ये बहुचित्रविचित्रितम् ॥४८७॥
नरवाह्यं हि यद् यानं सा दोला परिकथ्यते ।
उत्तमेयं समाख्याता मध्यमा काष्ठदण्डिनी ॥४८८॥
कार्पासवस्त्रघटिता रीतिकांस्योपशोभिनी ।
कुम्भयुक्ताप्ययुक्ता वा लम्बमाना चलन्त्यपि ॥४८९॥
अधमा रचिता काष्ठै रज्जुभिश्च परिस्तृता ।
इति ते कथितं वित्तमितो दानफलं शृणु ॥४९०॥

[शिविकादानमाहात्म्यम्]

यावन्ति पट्टसूत्राणि भवन्त्यस्यां वरानने ।
तावत् वर्षसहस्राणि दानात् स्वर्गे महीयते ॥४९१॥
देव्या गणत्वं सम्प्राप्य तल्लोके निवसत्यसौ ।
अथ चेज्जन्मभाग्भूयात् सम्राट् भवति भूतले ॥४९२॥
अप्सरोगणसङ्कीर्णं विमानं चाधिगच्छति ।
वदामि साम्प्रतं मन्त्रं येन दानं प्रशस्यते ॥४९३॥

[शिविकादानमन्त्रः]

मायालक्ष्मीकामरावा अमानक्षत्रविद्युतः ।
भारुण्डायोगिनीनागाः क्रमो नृहरिरेव च ॥४९४॥
चन्द्रकूटं हंसकूटं कूटं पौष्करमेव च ।

बृहद्रथन्तरे कूटे ततः कूटमनाख्यकम् ॥४९५॥
बीजानि द्वादशोक्तानि तदर्द्धं कूटमेव च ।
एवमष्टादशभ्यस्तु बीजकूटेभ्य ईश्वरि ॥४९६॥
जययुग्मानन्तरं हि वदेत् सिद्धिकरालि च ।
भगमालिनि सङ्कीर्त्य भगप्रिय इतीरयेत् ॥४९७॥
अथो भगवतीत्युक्त्वा सौभाग्यप्रद एव च ।
इमां दोलां तुभ्यमहं ततः परमुदीरयेत् ॥४९८॥
निवेदयामि च पुनः सर्वदुष्टानितःपरम् ।
सन्धानहीनं तदनु चूर्णय द्वितयं लिखेत् ॥४९९॥
चूर्णापय हस छिन्धि दह बन्ध द्वयं द्वयम् ।
विकरालि समाभाष्य मम सर्वमनोरथान् ॥५००॥
पूरय द्वितयस्यान्ते निष्पादय युगं वदेत् ।
सन्धानरहितं पश्चादष्टैश्वर्यं समुद्धरेत् ॥५०१॥
ददयुग्मं देहि युगं दापय द्वितयं तथा ।
चूलिकश्चानुवृत्तिश्च गुप्ताका[चा?]रस्तथैव च ॥५०२॥
गुह्यखेचर्यनु पुनः पाषाणः परिकीर्तितः ।
सर्वशेषे परिज्ञेया सर्वान्तस्था षडक्षरी ॥५०३॥
इति दोलाप्रदानस्य मन्त्रो निर्वर्णितो मया ।

[शय्यादानविधिः]

शय्यादानविधेर्मन्त्रं कथयाम्यधुना तव ॥५०४॥

[शय्यापरिचयः]

शय्या पर्यङ्कसहिता शिवायै परिदीयते ।

पर्यङ्केन विना शय्या ह्यङ्गहीना प्रकीर्त्यते ॥५०५॥
न केवलेन तल्पेन शय्या परिनिगद्यते ।
स पर्यङ्को दारुणा हि रच्यते त्रिदशेश्वरि ॥५०६॥
चन्दनागुरुकाष्ठेन मुख्यः पर्यङ्क उच्यते ।
मध्यमश्चम्पकाशोकबिल्वशालकदम्बकैः ॥५०७॥
अधमो येन केनापि काष्ठेन रचितो भवेत् ।
स कर्तव्यो विशेषेण बहुधातुविचित्रितः ॥५०८॥
स पट्टसूत्रावर्तेन नानारागेण संवृतः ।
शय्या प्रोक्ता तूलगर्भा पट्टवासोभिरावृता ॥५०९॥
पार्श्वयोः शीर्षपदयोरुपधानाचिता सदा ।
संच्छन्ना प्रच्छदपटैराभूमिस्पर्शनं प्रिये ॥५१०॥
मध्यमा वादरचिता श्वेता वा लोहिताथवा ।
यादृच्छिकैः प्रच्छदपटैरुपधानैः समावृता ॥५११॥
यथा कथञ्चिद्घटिता छिन्ना भिन्नाथ संहताः ।
केवलं नामरक्षार्थमधमा परिगीयते ॥५१२॥
इदं द्रव्यं फलमतः समाकलय पार्वति ।

[शय्यादानफलकीर्तनम्]

मुख्यपर्यङ्कसहितां यः शय्यां सम्प्रयच्छति ॥५१३॥
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।
यद्यागच्छति संसारे कदाचित् कालपर्ययात् ॥५१४॥
सप्तद्वीपपतिर्भूत्वा राज्यं कृत्वायुतत्रयम् ।

शक्रस्यार्द्धासनं प्राप्य तेनैव सह मोदते ॥५१५॥
चन्द्रहंसप्रतीकाशे देवि शय्यातले स्थितः ।
अप्सरोगणसङ्कीर्णो देववद्दिवि मोदते ॥५१६॥
अथैतदर्पणमनुं प्रवदामि समासतः ।

[शय्यादानमन्त्रः]

वेदादिमथ चैतन्यं मायां लक्ष्मीं स्मरं स्त्रियम् ॥५१७॥
नृसिंहं कुलिकं चापि शाकिनीं डाकिनीमपि ।
प्रलयं चापि फेत्कारीं कूटषट्कमतः परम् ॥५१८॥
मन्दारमुदयं नीलं चिदानन्दौ सकेसरौ ।
जयद्वयं समाभाष्य महापिङ्गलशब्दतः ॥५१९॥
पुनर्जटाभारपदाद् भासुरे परिकीर्तयेत् ।
भगवत्यास्तथा कात्यायन्याः संबोधनद्वयम् ॥५२०॥
काली तथा च कापाली गुह्यकाली च पूर्ववत् ।
एतस्यानन्तरमिदं शयनीयं मयेरयेत् ॥५२१॥
तुभ्यं निवेदितं प्रोच्य ततोऽत्रेति च सन्धिमत् ।
युगं स्वपिहि सम्भाष्य जीवयुग्मं स्फुरद्वयम् ॥५२२॥
ममाभीष्टपदात् सिद्धिं कुरुयुग्ममतः परम् ।
विपत्तिं हर युग्मं च नाशय द्वितयं तथा ॥५२३॥
ततः सम्पत्तिमुच्चार्य दद देहि युगं युगम् ।
अनाहतश्च भोगश्च सृष्टिस्त्रेता च कृत्यया ॥५२४॥

ततः कूर्चं सहास्त्रेण नमः स्वाहान्वितं ततः ।
एवं शय्याप्रदानस्य विधिमन्त्रो मयोदितः ॥५२५॥

[वितानदानविधिः]

वितानदानस्य विधिं द्रव्यं मन्त्रं तथा ब्रुवे ।

[वितानपरिचयः]

शय्योपरि रजःकीटतृणपातादि हानयेत् ॥५२६॥
चन्द्रातपत्रवत् स्थायि वितानं तदिहोच्यते ।
उत्तमं तत् परिज्ञेयं यत् पट्टाम्बरनिर्मितम् ॥५२७॥
मध्यमं वस्त्रनिर्मितमधमं शाणमुच्यते ।
आख्यास्ये सम्प्रति मनुं वितानोत्सर्गकारिणम् ॥५२८॥

[वितानदानमन्त्रः]

चैतन्यं पाशमाये च सृणिः प्रेतश्च भैरवी ।
चण्डविश्वौ योगिनी च मेखलाकुण्डसेतवः ॥५२९॥
ततो बर्हिरथं कूटं कूटमश्वप्रतिग्रहम् ।
सावित्री चार्धसावित्री सौत्रामण्यप्यनन्तरम् ॥५३०॥
पुण्डरीकं सर्वशेषे एवमष्टादश प्रिये ।
भीमरावे समुल्लिख्य भगवत्यथ तत्परम् ॥५३१॥
भयानके पुनः सिद्धि विकरालि प्रकीर्तयेत् ।
इदं वितानमहमावेदयामि ततो वदेत् ॥५३२॥
प्रसीद युगलं गृह्णयुगलादनु पठ्यते ।
विश्वरूपपदस्यान्ते वैभवे परिकीर्तयेत् ॥५३३॥

भवबन्धप्रमोचिन्यनु ब्रूयाज्जगदम्ब च ।
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ॥५३४॥
सर्वशेषे परिज्ञेया क्रमायाता षडक्षरी ।
इति वैतानिको मन्त्रो विशिष्य प्रतिपादितः ॥५३५॥
राजोपचारा एते हि दीयन्ते यैर्धनाधिपैः ।
न दुर्गतेन शक्यन्ते दातुमेते कथञ्चन ॥५३६॥

[दानादिकार्ये स्वकीयसिद्धान्तप्रतिपादनम्]

विशेषं कञ्चिदधुना बुद्धयस्व सुरवन्दिते ।
कियन्तो न पदार्था हि विद्यन्ते धरणीतले ॥५३७॥
हृदयाह्लाददा नित्यं देवीसन्तोषकारकाः ।
तेषामुत्सर्गकार्ये तु नैव मन्त्राः पृथक् पृथक् ॥५३८॥
नान्तोऽस्ति भुवि वस्तूनां देवीप्रीतिप्रदायिनाम् ।
नैवैतत् तत्प्रदानस्य मन्त्रा भिन्ना मयोदिताः ॥५३९॥
ये यामलादावुक्तास्ते न कपालाख्यडामरे ।
अत एव ब्रुवे मन्त्रमेकं हि सर्ववस्तुनः ॥५४०॥
सर्वाणि वस्तूनि पुनरुपस्करणमुच्यते ।
उपस्करणमध्ये तु यान्युच्यन्ते सुरेश्वरि ॥५४१॥
तानि ते पुरतो वच्मि वक्ष्ये मन्त्रं ततः परम् ।

[उपस्करणवस्तुनां नामानि]

उद्वर्तनं कङ्कतिका केशबन्धनमेव च ॥५४२॥
वीणातालमृदङ्गाश्च वादनीयभिदा अपि ।
गन्धस्थापनपात्राणि कज्जलालक्तयोरपि ॥५४३॥

सिन्दूरस्यापि पात्राणि ताम्बूलामत्रमेव च ।
धूपस्य दीपस्य तथा स्नानभोजनभाजनम् ॥५४४॥
पुनः पाकोपयोगीनि यावन्ति भुवि सन्ति हि ।
वेशविन्यासोपयोगि स्त्रीणां यद्यत् प्रकीर्त्यते ॥५४५॥
देवालयो गृहारामा नगरं भूमिरेव च ।
नागा रथा हयाश्चैव गोमहिष्योऽप्यजाविकम् ॥५४६॥
वनोद्भवानि सत्त्वानि कलङ्गाश्च विहङ्गकाः ।
दासी दासो मणिर्मुक्ता स्वर्णरूप्यादिभाजनम् ॥५४७॥
शाटीभिन्नानि यावन्ति परिधेयानि योषिताम् ।
पट्टोर्णस्तरणीयानि बहुमूल्यानि यानि च ॥५४८॥
वर्षवातातपहिमनिवारणकराणि हि ।
भूरुहत्वक्फलोत्थानि प्राणिरोमोद्भवानि हि ॥५४९॥
चर्माणि वन्यजन्तूनां कीटकोषोद्भवानि च ।
नानारागादिनिर्माणाः किलिञ्जादेश्च देशजाः ॥५५०॥
भृङ्गारा भद्रकुम्भाश्च राजोपकरणाह्वयाः ।
मूसलोलूखलघनहसन्त्यो याः प्रकीर्तिताः ॥५५१॥
स्वर्णरत्नादिवस्तूनि मीयन्ते यैश्च मानकैः ।
तथा पुस्तकसामग्री यावती भुवि विद्यते ॥५५२॥
अस्त्रशस्त्राणि यावन्ति सम्भवन्ति महीतले ।
यावदामोदिहेतूनि वस्तूनि क्षितिमण्डले ॥५५३॥

शोभाकराणि द्रव्याणि यावन्ति प्रभवन्ति हि ।
यावन्तः खलु संसारे पदार्थाः परिकीर्तिताः ॥५५४॥
संहितासंहितं चापि कुप्याकुप्यं कृताकृतम् ।
सिद्धासिद्धं स्थले जातं वारिजं वृक्षजं तथा ॥५५५॥
समुद्रजं पर्वतजं नानाद्वीपजमेव वा ।
अप्राणिजातं च तथा प्राणिजातं तथैव च ॥५५६॥
मया यदुक्तं यन्नोक्तं तत् सर्वं त्रिदशेश्वरि ।
उपस्करणमध्ये तु प्रविष्टं परिकीर्त्यते ॥५५७॥
कपालडामरे त्वस्य नामोक्तिरचनेति च ।
एषां देवेशि सर्वेषां प्रदाने पुरवैरिणा ॥५५८॥
एक एव हि निर्दिष्टो मन्त्रो नान्यो हि कुत्रचित् ।
मनुराजं प्रवक्ष्ये तं समाकलय सादरा ॥५५९॥

[उपस्करणार्पणमन्त्रः]

प्रणवो वाग्भवः पाशलक्ष्मीकामत्रपास्तथा ।
प्रासादनरसिंहौ च योगिनीवनिते ह्यपि ॥५६०॥
विद्युत् कापालकाकिन्यौ मेखलाकुण्डसेतवः ।
डाकिनी शाकिनी चैव प्रलयो हार एव च ॥५६१॥
जम्भक्रोधमहाक्रोधचूडामणय एव च ।
चतुर्विंशतिबीजानि मन्त्रस्यादिगतानि हि ॥५६२॥
एतदर्द्धप्रमाणानि वक्ष्ये कूटानि साम्प्रतम् ।
वारुणं कूटमादौ स्याद् भोगकूटमतः परम् ॥५६३॥

गौह्यकं कूटमस्यानु सत्त्वकूटं ततोऽप्यनु ।
हैरण्यगर्भकूटं च पौष्करं कूटमेव च ॥५६४॥
भासाकूटं ततोऽनाख्याकूटं संहारकूटकम् ।
अनाहतमतः कूटं मणिपूरकमेव च ॥५६५॥
स्वाधिष्ठानं सर्वशेषे द्वादशेमानि निर्दिशेत् ।
ततो जय युगं ब्रूयात् जीवयुग्मं ततः परम् ॥५६६॥
ततो भगवति प्रोच्य गुह्यकालि प्रकीर्तयेत् ।
महाकङ्कालिनि ततः कङ्कालपदमुच्चरेत् ॥५६७॥
करङ्ककिङ्किणीनादभूषितार्णच्चि विग्रहे ।
महार्णवाच्छायिनि च महोरगविभूषिते ॥५६८॥
भीमाकाराद्धारिणि च प्रहारिणि महापदात् ।
श्मशानचारिणि प्रोच्य वदेदिदमतः परम् ॥५६९॥
ततस्तत्तन्नामधेयमुपस्करणवस्तुनः ।
विधेयस्तत्र तत्रोहः यत्रोपस्करवस्तुनः ॥५७०॥
प्रतिष्ठितं नाम भवेदथाग्रे कलयोद्धृतिम् ।
तुभ्यं निवेदयाम्युक्त्वा गृह्णयुग्मं समुच्चरेत् ॥५७१॥
प्रणतं जनमाभाष्य आनन्दय युगं लिखेत् ।
उभयत्रापि देवेशि ससन्धानमुदीरयेत् ॥५७२॥
पालय द्वितयं प्रोच्य पावय द्वितयं तथा ।
सर्वदुष्टान् समाभाष्य द्वितयं चूर्णयोच्चरेत् ॥५७३॥

मार भिन्धि छिन्धि दह युगं युग्मं युगं युगम् ।
ततश्चिन्तितमर्थं च युगलं वर्ष कीर्तयेत् ॥५७४॥
उक्त्वा वर्षापय युगं निधिं युग्मं च पालय ।
देहि युग्मं दद युगं सर्वान् कामानतः परम् ॥५७५॥
पूरय द्वन्द्वमाभाष्य ततोऽप्याज्ञापय द्वयम् ।
आदेशय द्विवारं च तावद् वारं प्रसीद च ॥५७६॥
विसन्ध्यनन्तरूपार्णाद् धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
ततः सर्वोपद्रवेभ्यो मां रक्ष युगलं लिखेत् ॥५७७॥
चतुर्विंशतिबीजानि पुनरन्यानि कीर्तयेत् ।
नादान्तकं विनादं च विरूपं दाक्षिकं तथा ॥५७८॥
सन्दर्शनं विप्रियाद्यं मायां हारं च विक्रियम् ।
संवर्तकं सन्तानं च संव्यानं पिप्पलं तथा ॥५७९॥
विवर्तकं विवत्सं च गुप्ताचां च कैतवम् ।
तुरीयामथ षट्चक्रं शक्तिसर्वस्वमेव च ॥५८०॥
परापरं शाम्भवं च चिच्छक्तिं तदनन्तरम् ।
महाकल्पस्थायिनं च ततो ब्रह्मकपालकम् ॥५८१॥
अथैतदर्धसंख्याकाः कूटास्त्रिदशवन्दिते ।
मालाकूटं चण्डकूटं वैदिकं हि न चेतरत् ॥५८२॥
उच्चखण्डाह्वयं कूटं कूटं सामयिकं तथा ।
त्रिकूटकूटं कूटं च मेरुसंज्ञमतः परम् ॥५८३॥

ऐश्वर्यकूटं च महोदयसंज्ञं तथैव च ।
इच्छाकूटमहङ्कारकूटं तदनु भामिनि ॥५८४॥
खेचरीकूटमस्यानु कूटमौदयिकं तथा ।
दण्डलज्जागोंऽशुशुक्लांस्ततः परमुदीरयेत् ॥५८५॥
हूं फट् नमः शिरो युक्तो भाषितो मनुरेष ते ।
मन्त्रेणानेन देवेशि देव्यै सर्वाणि सर्वदा ॥५८६॥
उपस्करणवस्तूनि शक्यन्ते दातुमञ्जसा ।
येऽत्रोक्ता ये च नात्रोक्ताः पदार्था जगदुद्भवाः ॥५८७॥
तेषामेष हि सर्वेषां दाने मनुरुदीरितः ।
द्वात्रिंशदुपचाराणां मन्त्रा उक्ताः पृथक् पृथक् ॥५८८॥
एतेनैवापि ते शक्या उत्स्रष्टुं कमलानने ।
तथापि किन्तु सामान्यो विशेषाभाव आगते ॥५८९॥
विशेषो बाधते देवि सामान्यं नैव तं पुनः ।

[आरात्रिकविधिः]

अत आरात्रिकविधिं जानीहि गदतो मम ॥५९०॥

[आरात्रिकपरिचयः]

एकस्मिन् भाजने यत्र भूयस्यो दीपवर्तयः ।
तिष्ठन्ति ज्वलिताः सर्वास्तदारात्रिकमुच्यते ॥५९१॥
वृक्षाकारा लताकारा वर्तुलाकारधारिणः ।
नानाप्रकाराः दीपौघाः स्नेहपूर्णा ज्वलच्छिखाः ॥५९२॥
आमोदिवस्तुसम्पृक्ता मण्डलीकृतविग्रहाः ।
ऊर्ध्वाधोभागसहिता दीर्घाकारास्तथैव च ॥५९३॥

दीपवद् विधिरस्यापि नैव मन्त्रो वरानने ।
तन्मन्त्रमभिधास्यामि सावधाना निशामय ॥५९४॥

[आरात्रिकार्पणमन्त्रः]

तारो रावो डाकिनी च प्रलयस्तदनन्तरम् ।
फेत्कारी चामरं चैव विनादमपरान्तकम् ॥५९५॥
ततः सौमतमुल्लोप्यं ज्ञानमिच्छा तथैव च ।
कूटौ च सिद्धपैशाचौ सत्त्वं कूटमतः परम् ॥५९६॥
हिरण्यगर्भसंहारानाख्याकूटास्ततः परम् ।
लेलिहानपदाच्चापि रसनातो भयानके ॥५९७॥
ततो विकटदंष्ट्रा नु कराले परिकीर्तयेत् ।
कुलाकुलाच्चक्रतत्त्वावतारे तदनन्तरम् ॥५९८॥
पुनः सिद्धकराल्युक्त्वा इदमारात्रिकं वदेत् ।
सकृदुक्त्वा गृहाणेति कृपादृष्टिमितीरयेत् ॥५९९॥
वितर द्वयमाभाष्य सर्वं जनमथो वदेत् ।
ततो नु रञ्जय पदं सन्धियुक्तं समुच्चरेत् ॥६००॥
ततो राजानमुद्धृत्य वशीकुरु समादिशेत् ।
महैश्वर्यं दद युगं देहि द्वितयमेव च ॥६०१॥
सर्वमन्त्रान्तगा योक्ता ततः सैव षडक्षरी ।
इत्यारात्रिकदो मन्त्रो मया ते परिवर्णितः॥६०२॥

[आरात्रिकदानफलम्]

अनेनारात्रिकं दत्वा देव्यै यत्फलमश्नुते ।
तत्फलं केन वक्तव्यं वर्षकोटिशतैरपि ॥६०३॥

सूर्यलोके वह्निलोके देवीलोके तथैव च ।
समानां कोटिमेकैकां क्रमेण वसति ध्रुवम् ॥६०४॥
इत्येवं केवला पूजा देव्यास्ते प्रतिपादिता ।
द्वात्रिंशदुपचाराणां भिन्नो भिन्नो मनुः क्रमात् ॥६०५॥
विशिष्य कीर्तितस्तुभ्यं त्रिपुरघ्नमुखोद्गतः ।

[दशमुख्याः गुह्यकाल्याः पूजोपक्रमः]

अधुना दशवक्त्राणां पूजनं प्रवदामि ते ॥६०६॥
एकैकवक्त्रेणैकैकं देवीरूपं प्रधार्यते ।
तत्तद्रूपेण देव्यास्तु तत्तद्वक्त्रं प्रपूजयेत् ॥६०७॥
मन्त्रोद्धारमथो वच्मि चेतः प्रणिहितं कुरु ।

[वक्त्रपूजामन्त्रः]

आदौ बीजत्रयं भिन्नं भिन्नं सर्वत्र तिष्ठति ॥६०८॥
ततो नामान्यपि पुनर्देव्या देवि पृथक् पृथक् ।
तैः स्वरूपपदस्यापि विग्रहो ङेऽन्तवानपि ॥६०९॥
भिन्नभिन्नपदैः साकं वक्त्रशब्दोऽपि विग्रही ।
पूर्ववत् सोऽपि ङेऽन्तः स्याद् द्वयोरपि यथाक्रमम् ॥६१०॥
आद्यो विशेषणीभूतो विशेष्यश्चापरो मतः ।
हार्दमन्त्रेण सहितः सर्वशेषे प्रकीर्तितः ॥६११॥
इत्येष वक्त्रपूजाया विधिः सामान्य ईरितः ।

[दशमुख्या गुह्यकाल्या वक्त्रपूजायां मन्त्रविशेषाभिधानम्]

विशेषमधुना वक्ष्ये मनवः स्युः स्फुटास्ततः ॥६१२॥

वेदादिरावदीपाश्च मैधकामसटास्ततः ।
मायारमाभैरवाणि चण्डाङ्कुशरुषोऽपि च ॥६१३॥
योगिनीशक्तिखेचर्यः कालीरावमहाक्रुधः ।
क्षेत्रपालवधूताक्ष्या नृहरिः प्रेतभैरवी ॥६१४॥
हाकिनीकाकिनीनागा गर्भनागान्तकास्त्रयः ।
सर्वादिमा महाचण्डयोगेश्वर्युच्यते प्रिये ॥६१५॥
वज्रकापालिनी चापि महाडामर्यनन्तरम् ।
करालीसिद्धितः सिद्धिविकराली ततः परम् ॥६१६॥
गुह्यकाली चण्डकापालिनी तदनु कथ्यते ।
अट्टहासिन्यथो मुण्डमालिनी सुरवन्दिते ॥६१७॥
कालचक्रेश्वरी सर्वशेषे परिनिगद्यते ।
द्वीपः[पी?]सिंहश्च फेरुश्च कपि ऋक्षस्तथैव च ॥६१८॥
नरश्च गरुडश्चापि मकरो गज एव च ।
दशमस्तु परिज्ञेयः सर्वपाश्चात्यगो हयः ॥६१९॥
इत्येतैरीदृशैश्चापि मन्त्रैः परमशोभनैः ।
दशानामपि वक्त्राणां क्रमात् पूजा विधीयते ॥६२०॥
ऊर्ध्वाधोभावसहिता गन्धोक्तकुसुमाक्षतैः ।

[समन्त्रास्त्रपूजाविधिः]

एवं वक्त्राणि सम्पूज्य ततोऽस्त्राणि प्रपूजयेत् ॥६२१॥
तत्र कश्चिद्विशेषोऽस्ति स दुरूहो वरानने ।
गम्यः सूक्ष्मधियामेव नान्यस्य मनसापि हि ॥६२२॥

तमिदानीमहं वक्ष्ये सावधाना निशामय ।
विभागः प्रथमो वामस्ततो दक्षिण उच्यते ॥६२३॥
एकं बीजं भिन्नभिन्नं पुरतः परिकीर्तयेत् ।
तत्तत्करस्थितं वस्तु ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिशेत् ॥६२४॥
तत्तच्छब्दस्य यल्लिङ्गं तल्लिङ्गत्वेन तन्मतम् ।
ततो हार्दमनुर्ज्ञेय इत्यस्त्रार्चा मयोदिता ॥६२५॥
बीजं पुनरथैकैकं भिन्नं भिन्नं सुरेश्वरि ।
ङेऽन्तत्वेन पुरा प्रोक्ता ये शब्दा अस्त्रनामकाः ॥६२६॥
करस्थास्ते क्रमेणैवास्त्रान्ताः कार्या यथास्थिताः ।
[अ?]स्त्रान्ता ङेऽन्ता पुनश्चैव ततः पञ्चाक्षरी प्रिये ॥६२७॥
शेषसंस्था स्थिरा ज्ञेया सर्वत्रैव समा तथा ।
सा रावहृच्छिरांसीत्थमिति व्यक्ततयोदितः ॥६२८॥
उभयोर्मन्त्रयोर्ज्ञेयस्तारस्तु प्रथमः स्थिरः ।
बीजात् प्रागिति निर्दिष्टं त्रिपुरघ्नेन माम् प्रति ॥६२९॥
एवमष्टाधिकशते मन्त्रे तारोऽग्रतः प्रिये ।
विशेषः सुमहानन्यो वर्तते तं निशामय ॥६३०॥
वामभागे सप्तदशतमस्थाने शुचिस्मिते ।
विहायागममूर्धानं द्वे बीजे भवतो ध्रुवम् ॥६३१॥
एवं दक्षेऽपि नवमस्थाने तारं विनाऽपि हि ।
भवन्ति पञ्चबीजानि सावधाना ततो भवेत् ॥६३२॥

पुरोक्तवत् सर्वमन्यन्न क्वापि व्यत्ययः कृतः ।
इदानीं क्रमतो बीजनामानि श्रृणु पार्वति ।।६३३।।
मणिमालां कपालं च चर्मपाशस्तथैव च ।
शक्तिखट्वाङ्गमथ च मुण्डं पश्चाद् भुशुण्डयपि ।।६३४।।
पिनाकश्चक्रमस्यानु घण्टा प्रेतश्च सानु च ।
कङ्कालो नकुलश्चापि निर्मोकस्तदनन्तरम् ।।६३५।।
उन्मादवेण्वेतस्यानु मुद्गरः कुण्डमेव च ।
डमरुः परिघश्चापि भिन्दिपालोऽप्यनन्तरम् ।।६३६।।
मुसलः पट्टिशः पाशः शतघ्नी फैरवं तथा ।
इति वामकरास्त्राणां प्राग् बीजान्युदितानि ते ।।६३७।।
अथ दक्षकरस्यापि सावधाना निशामय ।
माला कर्त्री च खड्गश्च तर्जनं चाप्यथाङ्कुशः ।।६३८।।
दण्डश्च रत्नकुम्भश्च शूलं तदनु कथ्यते ।
नालीको वत्सदन्तक्षुरप्रभल्लार्धचन्द्रकाः ।।६३९।।
कुन्तश्च पारिजातश्च छुरिका तोमरोऽपि च ।
पुष्पमाला डिण्डिमश्च तथोलूकं कमण्डलुः ।।६४०।।
फलं श्रुक्फलमस्यानु कीलपर्शुगदास्तथा ।
यष्टिर्मुष्टिश्च कुणपः शैशुकस्तदनन्तरम् ।।६४१।।
इति दक्षभुजास्त्राणां बीजानि कथितानि ते ।

अथास्त्राणि समाख्यास्ये ङेऽन्तान्युक्तानि यानि हि ॥६४२॥
तेनैव चरितार्थत्वमिति चेदुत्तरं श्रृणु ।
नामभेदेन बीजानां तथास्त्राणां विपर्ययः ॥६४३॥
कदाचित् स्यादतो वक्ष्ये विशदीकरणाय हि ।
पुनरुक्तादिदोषेण तस्माद् दूष्यं वचो न मे ॥६४४॥
ब्रवीमि तस्य दृष्टान्तं श्रृणु पार्वति सादरा ।
बीजपूरं गुह्यकाल्या वर्तते दक्षिणे करे ॥६४५॥
बीजपूराह्वयं बीजं नहि बीजेषु वर्तते ।
एतदर्थं प्रब्रवीमि नामास्त्राणां पृथक् पृथक् ॥६४६॥
रत्नमाला कपालश्च चर्मपाशस्तथैव च ।
शक्तिः खट्वाङ्गमुण्डे च भुशुण्डी च पिनाकयुक् ॥६४७॥
चक्रं घण्टा तथा बालप्रेतशैलोऽप्यनन्तरम् ।
नरकङ्कालनकुलौ सर्प उन्मादवंश्यपि ॥६४८॥
मुद्गरो वह्निकुण्डश्च डमरुः परिघस्तथा ।
भिन्दिपालश्च मुसलः पट्टिशः प्रास एव च ॥६४९॥
शतघ्नी च शिवापोतः सव्यहस्तस्थितानि हि ।
अस्त्राण्युदीरितानीत्थमथ दक्षस्य वै श्रृणु ॥६५०॥
रत्नमाला च कर्त्री च खड्गस्तर्जन्यपि प्रिये ।
ततोऽङ्कुशश्च दण्डश्च रत्नकुम्भस्तथैव च ॥६५१॥
शूलं वाणाश्च कुन्तश्च पारिजातस्तथैव च ।

छुरिका तोमरः पुष्पमाला डिण्डिम एव च ॥६५२॥
गृध्रः कमण्डलुर्मांसखण्डः स्रग् बीजपूरकः ।
सूचीपर्शुर्गदायष्टिर्मुष्टिः कुणपलालनम् ॥६५३॥
इति दक्षिणहस्तस्य प्रोक्तान्यस्त्राणि पार्वति ।
अथेन्नन्तप्रत्ययान्तङेऽन्तस्त्रीलिङ्गशब्दतः ॥६५४॥
प्राग्बीजानि प्रवक्ष्यामि तानि त्वं क्रमतः शृणु ।
त्रपाकामवधूलक्ष्मीडाकिन्यो योगिनी तथा ॥६५५॥
अंशुर्मुक्ता च फेत्कारी ततः शुक्लो महा तथा ।
ताटङ्को भ्रामरी लीला मन्दः सम्मोह एव च ॥६५६॥
केकराक्षी कालरात्रिः पतनं संहृतिस्तथा ।
कर्णिका शृङ्खला चापि दुष्कृतं पद्ममेव च ॥६५७॥
सुरसः सुरसस्तन्त्रा कुटिला तदनन्तरम् ।
सम्भूतिश्चतुरस्रं च नादान्तक इतोऽप्यनु ॥६५८॥
चामरश्चैव मारण्डो विनादोऽप्यथ कथ्यते ।
विरूपश्चापरान्तश्च दाक्षिकः सौमतोऽपि च ॥६५९॥
धन्यमुल्लोप्यसर्वस्वं विप्रियं तदनूद्यते ।
ततो विवत्ससंभावौ पुनर्विनिमयोऽपि च ॥६६०॥
सञ्जीवनी च संवर्तकविवर्तकनामकौ ।
विराधश्च तुरीया च षट्चक्रमथ कथ्यते ॥६६१॥
सर्वागमः स्यात्तदनु शक्तिसर्वस्वमेव च ।

सर्वशेषे परिज्ञेया चिच्छवितर्वरवर्णिनि ॥६६२॥
इति तत्तच्छस्त्रवत्या बीजाली पूर्वगामिनी ।
क्रमेण पूर्वभागात्तु मया ते कथिताऽखिला ॥६६३॥
अस्त्रपूजैवमाख्याता अस्त्रवत्यास्ततोऽप्यनु ।

[अस्त्रपूजायां कापालिकमौलेययोर्मतभेदकथनम्]

केचित् पूर्वां प्रकुर्वन्ति नोत्तरां यामलादयः ॥६६४॥
विपरीतं तथा चान्यत् सर्वं कापालिकादयः ।

[अस्त्रपूजाविवादे स्वमताभिधानम]

मन्मतं तूभयं कुर्यात् त्रिपुरघ्नवचो यथा ॥६६५॥

[वक्त्रबाह्वस्त्रबाहुल्यपूजायां सिद्धान्तकथनम्]

इदानीं वक्त्रबाह्वस्त्रबाहुल्यसमयं ब्रुवे ।
तारह्लीयोगिनीरावडाकिनीकामिनीरुषः ॥६६६॥
सप्तबीजनि सर्वत्र स्थिराणीमानि कीर्तयेत् ।
घोररावस्वरूपायेत्येते वर्णास्ततः स्थिराः ॥६६७॥
ततस्तु तत्तद्वक्त्राणां नामसूहो विधीयते ।
ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिश्य नमः स्वाहा नियोजयेत् ॥६६८॥
एवं प्रणवरावाभ्यां तत्तदस्त्राय नामतः ।
संकीर्त्य हार्दमन्त्रेण संयोज्य परिपूजयेत् ॥६६९॥
पुनश्च मैधयोगिन्योरनु पूर्वोक्तवत् प्रिये ।
नामानि तत्तदस्त्राणामुक्त्वा विग्रहवन्ति हि ॥६७०॥
इन्नन्तस्त्रीङेन्तरूपविभक्तिवचनेरणात् ।

हृच्छिरोमन्त्रकथनान् नानाभेदा भवन्ति हि ॥६७१॥

[देव्याः समन्त्र अङ्गप्रत्यङ्गपूजाविधिः]

अस्मिन्नेव क्षणे केचिदङ्गप्रत्यङ्गपूजनम् ।
प्रकुर्वते तद्विधानं कथ्यमानं मया शृणु ॥६७२॥
भौत्रनेशी योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा ।
एतानि पञ्च बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ॥६७३॥
हार्दमन्त्रः सर्वशेषे कूटत्वेन व्यवस्थितः ।
मध्येषूहाः प्रकर्तव्यास्तान् ब्रवीमि क्रमेण ते ॥६७४॥
सप्तविंशतिशब्दानु लोचनेभ्यः प्रकीर्तयेत् ।
आभाष्य विंशतिपदं ततश्चेमान् प्रकीर्तयेत् ॥६७५॥
कर्णेभ्यस्तत्परं नासापुटेभ्यो भ्रूभ्य एव च ।
कपोलेभ्योऽथ गण्डेभ्यो हनुभ्यस्तदनन्तरम् ॥६७६॥
असृग्भ्यो दन्तपंक्तिभ्योऽधरौष्ठेभ्यस्ततः परम् ।
ततः पुनर्दश प्रोच्य नासाभ्यः परिकीर्तयेत् ॥६७७॥
जिह्वाभ्योऽथ गलेभ्यश्च पार्श्वाभ्यां वक्षसे तथा ।
पृष्ठाय जठरायापि नाभये वस्तयेऽपि च ॥६७८॥
ऊरूभ्यामथ जानुभ्यां जङ्घाभ्यां तदनन्तरम् ।
गुल्फाभ्यां चरणाभ्यां च चतुर्विंशतिरित्यमी ॥६७९॥
तेष्वप्यूहः प्रकर्तव्यो वक्त्राधिक्येषु पार्वति ।
अत एव गुरुप्रज्ञाताच्यो मन्त्रमहार्णवः ॥६८०॥
यदत्रोक्तं च यन्नोक्तं नररीतिक्रमेण वै ।

तत्सर्वं योजयेद् देव्या अङ्गे साधकसत्तमः ॥६८१॥
तेषां मन्त्रास्तु मन्त्रार्णे भारत्याष्टममीश्वरि ।
यावद्द्वादशवर्णाः स्युरेते ज्ञेयाः पुरःसरा ॥६८२॥
मध्ये सोऽहं विधिं कृत्वा हृच्छीर्षं चरमे वदेत् ।
एतेन मनुना देवि सर्वं कर्तुं हि शक्यते ॥६८३॥
पूजाविधानं देव्यास्तु उदितानुदितक्रमे ।
अमुं तु सर्वगां विद्यां मन्त्रराजं प्रचक्षते ॥६८४॥
येऽन्यान् मन्त्रान्न जानन्ति तेषां मन्त्रोऽयमीरितः ।
विद्यया सर्वगतया पूजा बहुफला भवेत् ॥६८५॥
इमां तु सर्वगां विद्यां यत्नतो नृषु गोपयेत् ।
अथाऽन्ये देवि विद्येते विद्ये परमगोपिते ॥६८६॥
समयाख्या च हृदयनामिका तदनन्तरम् ।
नैताभ्यामन्तरा देव्या भवेदावरणार्चनम् ॥६८७॥
तत्प्रसङ्गेन ते विद्ये कथयिष्यामि ते प्रिये ।

[आवरणपूजोपक्रमः]

अधुना प्रस्तुतं वच्मि तत्र चेतो निवेशय ॥६८८॥
पूजामित्थं विनिर्वर्त्त्य संविधाय षडङ्गकम् ।

[अञ्जलित्रयदानविधिः]

मूलमन्त्रेण पुष्पाणामञ्जलित्रितयं ततः ॥६८९॥
दत्वा देव्यै ततो वद्ध्वावाञ्जलिं नेत्रे निमील्य च ।
क्षणं ध्यात्वा तदाकारामनुज्ञां प्रार्थयेत वै ॥६९०॥
परिवारगणार्चायै साङ्गावरणकक्रमैः ।

कृताञ्जलिः श्लोकयुगं वक्ष्यमाणमुदीरयेत् ॥६६१॥

[आवरणपूजायै देव्या अनुज्ञाप्रार्थनम्]

यथाज्ञानं यथाशक्ति तव पूजा मया कृता ।
तया तुष्टा भवेशानि मयि दास्यमुपेयुषि ॥६६२॥
कुलाकुलसमुद्भूतसम्प्रदायप्रबोधिनि ।
अनुज्ञां देहि मे देवि परिवारार्चनाय ते ॥६६३॥

[प्राणायामाचरणनिर्देशः]

आज्ञां देव्याः प्रगृह्येत्थं प्राणायामं विधाय च ।
तदावरणपूजां तामारभेत विचक्षणः ॥६६४॥

[मुख्यावरणपूजाप्रक्रमः]

तत्रापि मुख्यावरणपूजा काचन विद्यते ।
तां पुरः कथयिष्यामि ततोऽन्या सुरवन्दिते ॥६६५॥
याऽगुणाऽद्वितयाऽतीता निराकारा चिदुज्ज्वला ।
रूपाकारादिना तस्या न ध्यानं चैव नार्चनम् ॥६६६॥
गतायां द्विगुणीभावं बिभ्रत्यां रूपविग्रहौ ।
चैतन्यमय्यामपि च प्राणिवत्सर्वकल्पना ॥६६७॥
एवं स्थिते महेशानामवश्यं पतिकल्पना ।

[महेश्वरस्य नृसिंहाकारतयोग्रतमरूपता]

कालाग्निरुद्रो भगवान् स्वयमेव महेश्वरः ॥६६८॥
निरीक्ष्याकारमेतस्या विकरालं महोत्कटम् ।
सौम्यरूपैः सन्निधातुमशक्तः साध्वसाकुलः ॥६६९॥
कृत्वा घोरतरं रूपं सिंहाकारं विभीषणम् ।

उपासांचक्र ईशानीं दुर्निरीक्ष्यतराकृतिम् ॥७००॥
प्रतिरूपेण देवेशि कामभोगरसाकुला ।
तादृगुग्रो नृसिंहोऽपि यादृगुग्रा महेश्वरी ॥७०१॥
तयोर्योगो योग्यरूपोऽत एव परिकीर्तितः ।
पुर आवरणार्चाया अतस्तं परिपूजयेत् ॥७०२॥
कालाग्निरुद्ररूपस्य भीषणस्य महेशितुः ।
आकारो नरसिंहस्य यथा तस्य तथैव च ॥७०३॥
ज्वालामालीनृसिंहेति तस्य नाम निगद्यते ।
स एव भगवान् रुद्रः सिंहरूपेण संस्थितः ॥७०४॥
सिंहरूपमतस्तस्याः पतिं रुद्रं प्रपूजयेत् ।
देव्या दक्षिणभागे तु सर्वदा स्थितमीश्वरम् ॥७०५॥
चिन्तयित्वार्चयेत् सर्वोपचारैरम्बिकां यथा ।

[नृसिंहार्चामन्त्रः]

तत्रादौ तन्मनुं वक्ष्ये ध्यानं वक्ष्याम्यतः परम् ॥७०६॥
वेदादिः कमला कामः प्रासादो भुवनेश्वरी ।
योगिनो वनिता हारो बीजं तस्य ततः परम् ॥७०७॥
नरसिंहपदं ङेऽन्तं ततः परमुदीरयेत् ।
कूर्चमस्त्रं शिरश्चापि मन्त्रो ह्यष्टादशाक्षरः ॥७०८॥
महामन्त्रः समाख्यातो ज्वालामाल्यर्चनाविधौ ।

[नृसिंहार्चामन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अथैतस्य प्रवक्ष्यामि ऋष्यादिकमनुत्तमम् ॥७०९॥
अष्टादशाक्षरमनोर्हयग्रीव ऋषिर्मतः ।

प्रतिष्ठाच्छन्द उदितं स्वक्षरेण विभूषितम् ॥७१०॥
श्रीज्वालामाल्युपपदान्नरसिंहोऽस्य देवता ।
लक्ष्मीबीजं समाख्यातं शक्तिः काम उदाहृतः ॥७११॥
प्रणवः कीलकं प्रोक्तमेतस्य सुरवन्दिते ।
आवाहनादिमारभ्य यावदेव विसर्जनम् ॥७१२॥
अनेनैव तु मन्त्रेण तावत् कार्यं विपश्चिता ।

[नरसिंहध्यानम्]

अथ संक्षेपतो देवि ध्यानमस्योपवर्णये ॥७१३॥
उद्यन्मार्तण्डकोटयंशुसमारुणतनुप्रभम् ।
वर्तुलोल्मुकसंकाशनेत्रत्रितयभूषितम् ॥७१४॥
विदारिसृक्कनिर्गच्छद्दंष्ट्रामन्त्रकलान्वितम् ।
विदीर्णविकरालास्यं ललज्जिह्वाविभीषणम् ॥७१५॥
विमुक्तचामराकारसटाकेसरमण्डितम् ।
आबद्धयोगपट्टान्तं जानुन्यस्तकराम्बुजम् ॥७१६॥
कोटिकल्पान्तार्कसमं भीमदंष्ट्राट्टहासिनम् ।
कौस्तुभोद्भासि हृदयं श्वेतपद्मोपरि स्थितम् ॥७१७॥
किरीटहारकेयूरकिङ्किण्युद्गतशोभितम् ।
मुखैः कल्पान्तकालाग्नि वमन्तं सर्वतो मुखम् ॥७१८॥
करालभ्रुकुटीदृष्टिसन्त्रासितजगत्त्रयम् ।
नखनिर्भिन्नदैत्येन्द्ररुधिरोक्षितदोर्युगम् ॥७१९॥
विपाटितान्त्रनिर्गच्छद्वसालिप्ताङ्गकुक्षिकम् ।

अस्त्रैर्विभूषितान् दीर्घान् भुजान् षोडश बिभ्रतम् ।७२०॥
शरं चक्रं गदां खड्गं पाशमङ्कुशमेव च ।
वज्रं विदारणं चापि दक्षिणेन क्रमादपि ॥७२१॥
धनुः शङ्खं च पद्मं च खेटकं मुसलं तथा ।
परशुं पट्टिशं चापि विदारणमतः परम् ॥७२२॥
वामैर्भुजैर्धारयन्तं रत्नाकल्पविराजितम् ।
योगपट्टान्तरस्थायिसर्वबाहुकफोणिकम् ॥७२३॥
स्थितं देव्या दक्षभागे रुद्रं सिंहतनूधरम् ।
अत्युग्रमपि रुद्राण्या आज्ञाकारिणमाश्रितम् ॥७२४॥
कामलालसया देव्यालिङ्गितं दक्षिणैः करैः ।
ध्यायेन्नृसिंहमीदृक्षघोराकृतिधरं प्रभुम् ॥७२५॥
इति ध्यानं समाख्यातं पुरैव मनुरीरितः ।

[नृसिंहार्चमन्त्रस्य षडङ्गन्यासः]

षडङ्गन्यासमधुना मन्त्रस्य त्वं निशामय ॥७२६॥
कल्पबीजेन चाङ्गुष्ठहृदयाभ्यां नमो वदेत् ।
तर्जनीभ्यां च शिरसे मुक्तया च शिरो वदेत् ॥७२७॥
मध्यमाभ्यां शिखायै च महार्णेन वषड् वदेत् ।
अनामिकाभ्यां कवचाय क्रमेण च संभ्रमम् ॥७२८॥
कनिष्ठाभ्यां तथा नेत्रत्रयाय नरसिंहतः ।
वौषडुच्चारयेद् देवि करपृष्ठतलद्वये ॥७२९॥
अस्त्राय चास्त्रमनुना न्यसेत् साधकसत्तमः
एवं षडङ्गं निर्वर्त्य ध्यानं पूर्वोदितं तथा ॥७३०॥

मूलमन्त्रेण वै दद्यादुपचारान् दशापि हि ।

[नृसिंहगुह्यकाल्योः सामरस्यध्यानम्]

सह देव्योपेयिवांसं सामरस्यनृसिंहकम् ॥७३१॥

नृसिंहेन समं देवीं सामरस्यमुपेयुषीम् ।

ध्यात्वा क्षणं कामभोगैरेकीभावं गतावुभौ ॥७३२॥

पुटितौ द्वावपि मनू दशकृत्वो जपेच्छनैः ।

[बलिद्रव्यप्रोक्षणविधिः]

अथ पूर्वोदितबलिद्रव्यं देव्याः पुरो गतम् ॥७३३॥

कृत्वा सम्पूज्य कुसुमाक्षतगन्धजलादिभिः ।

रक्तचन्दनतोयेन प्रोक्षितं तद् विधाय च ॥७३४॥

समांसखण्डमदिराबिन्द्वक्तं धूपधूपितम् ।

ज्वलत्प्रदीपवर्त्याढ्यं ताम्बूलशकलान्वितम् ॥७३५॥

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण बल्युत्सर्गविधायिना ।

[नृसिंहगुह्यकाल्योः एकस्यैव बलेरर्पणे कारणाभिधानम्]

एकीभावं गताभ्यां तु ताभ्यां सर्वं निवेदयेत् ॥७३६॥

एकमेव बलिद्रव्यमुभयोः संप्रदीयते ।

भिन्नं भिन्नं न दातव्यमेवमाहुः पुरद्विषः ॥७३७॥

एतस्य कारणं वच्मि सावधाना निशामय ।

सामरस्यं गतावेतौ न पृथक् तनुधारिणौ ॥७३८॥

एकरूपत्वमापन्नौ विलीनाविव तत्तनौ ।

अतो न भिन्नभिन्नं स्यादेकस्य बलिवस्तु तत् ॥७३९॥

[बल्यर्पणमन्त्रः]

इदानीं दानमन्त्रं त्वं निशामय सुरेश्वरि ।
तारमैधे त्रपालक्ष्म्यौ मन्मथो योगिनी च रुट् ॥७४०॥
वधूरावौ डाकिनी च फेत्कारी तदनन्तरम् ।
अनाहतं ततः कूटं खेटमुक्ते ततः परम् ॥७४१॥
हारसानू तथा प्रेतः शक्तिरङ्कुशमानसम् ।
वज्रं कापालमिति च द्वाविंशतिरितीरितः ॥७४२॥
अस्त्रत्रितयमुच्चार्य विसन्ध्येह्येहि कीर्तयेत् ।
पुनर्भगवतीत्युक्त्वा गुह्यकालि समुद्धरेत् ॥७४३॥
शिवशक्ति समाभाष्य सामरस्येति कीर्तयेत् ।
पदप्रकाशिनी प्रोच्य सकलाच्च परापर ॥७४४॥
कुलचक्रेति च ततो मन्त्रयन्त्रमयेत्यपि ।
देहि समांसमदिरं बलिमित्यपि कीर्तयेत् ॥७४५॥
गृह्ण गृह्णापय तथा भक्ष भक्षय खाद च ।
खाहि षण्णां प्रविलिखेत् युगलं युगलं प्रिये ॥७४६॥
प्रत्यक्षार्णात् परोक्षार्णात् द्वेषिणो मम कीर्तयेत् ।
शत्रून् दह युगं प्रोच्य मर्दय द्वितयं ततः ॥७४७॥
द्विरुक्त्वा पातय ततो द्विः शोषय च मूर्च्छय ।
द्विरुक्त्वा त्रासय ततो वदेद् देवि स्वखर्परे ॥७४८॥
स्थापय द्वन्द्वमाभाष्य प्रवदेद् दीर्घदंष्ट्रया ।
भिन्धि छिन्धि युगं युग्मं ब्रूयादस्त्रत्रयं ततः ॥७४९॥

पाशः कला च शर्वश्च वाग्भवोऽश्वस्थ एव च ।
मम राज्यं ततो देहि युगलं दापय द्वयम् ॥७५०॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायुः स्त्रीवाजिगजेरयेत् ।
ततश्च रत्नसौभाग्यारोग्यशब्दं समुच्चरेत् ॥७५१॥
समृद्धचा मामथोच्चार्य पूरय द्वितयं वदेत् ।
वर्ष युग्मं ततो वर्षापय द्वन्द्वं समुद्धरेत् ॥७५२॥
तारो माया योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा ।
डाकिनीप्रलयौ चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ॥७५३॥
अस्त्रत्रितयमाभाष्य हृद्द्वयं सन्धिपूर्वकम् ।
सर्वशेषे शिरो मन्त्रो बलिदाने महामनुः ॥७५४॥
सामरस्यबलेर्दाने नैतत्तुल्यो मनुः प्रिये ।
पूर्वोदितं बलिद्रव्यमर्चितं कुसुमादिभिः ॥७५५॥
उत्सृज्य मन्त्रेणानेन प्रदद्यादुभयोरपि ।
नरसिंहार्हणामित्थं समाप्य त्रिदशेश्वरि ॥७५६॥

[आवरणपूजायां सनिर्णयं मतभेदप्रदर्शनम्]

पूजामावरणाख्यां तां कुर्वीत तदनन्तरम् ।
अस्मिन्नर्थे मतं भिन्नं भिन्नतन्त्रानुसारतः ॥७५७॥
दिव्यौघानां तथा सिद्धौघानां मानवसंज्ञिनाम् ।
परस्परं विवादाः स्युस्तत्र निर्णय उच्यते ॥७५८॥
केचिदावरणार्चां तु सृष्टि[क्रमत]ऊचिरे ।
संहार[क्र]मतः केचिदत्र सिद्धान्त उच्यते ॥७५९॥

विद्यन्ते परमेश्वर्याः सौम्याः काश्चनमूर्तयः ।
काश्चिदुग्रास्तथा काश्चिदुग्रादुग्रतराः स्मृताः ॥७६०॥
तासां सौम्याः सत्त्वरूपाः पालनाय व्यवस्थिताः ।
उग्रास्तथा रजोरूपाः सृष्टिकर्मण्यवस्थिताः ॥७६१॥
उग्रोग्रास्तु तमोरूपाः संहाराय व्यवस्थिताः ।

[देव्याः सौम्यरूपाणामभिधानम्]

अन्नपूर्णा महालक्ष्मी बाला त्रिपुरसुन्दरी ॥७६२॥
सरस्वती च मातङ्गी बगला भुवनेश्वरी ।
एताः सौम्याः सत्त्वगुणाः सत्त्वचिच्छक्तिजृम्भिताः ॥७६३॥

[देव्या उग्ररूपाणामभिधानम्]

उग्रतारा शूलिनी च पद्मावत्यथ कुब्जिका ।
त्वरिता जयदुर्गा च त्रिपुटा धनदा तथा ॥७६४॥
एता रजोगुणा उग्रा रजोंशाधिक्यसंभवाः ।

[देव्या उग्रतररूपाणामभिधानम्]

भैरव्यश्छिन्नमस्ता च यावत्यः सन्ति कालिकाः ॥७६५॥
चण्डेश्वरी च चामुण्डा फेत्कारिण्यर्धमस्तका ।
उग्रचण्डा सिद्धिलक्ष्मी कालरात्रिर्दिगम्बरा ॥७६६॥
शिवदूती बाभ्रवी च कालसङ्कर्षिणी तथा ।
भीमादेवी च कोरङ्गी डामरी चर्चिकापि च ॥७६७॥
घोणकी तामसी चण्डखेचरी रक्तदन्तिका ।
मायूरी शक्तिसौपर्णी महामारी तथैव च ॥७६८॥

एता देव्यस्तु विज्ञेया उग्रोग्राः सुरवन्दिते ।

राजसाः सृष्टिकारिण्यः सात्त्विकाः पालनप्रियाः ॥७६९॥

ज्ञेयाः संहारकारिण्यस्तामस्यो जगदम्बिकाः ।

[कासामावरणार्चा कया रीत्या विधेयेत्यत्र सिद्धान्तकथनम्]

देवीनां सत्त्वरूपाणां देवि सृष्टिक्रमेण हि ॥७७०॥

भवेदावरणी पूजा नैव संहाररीतितः ।

रजोगुणानामुभयप्रकारेणैव जायते ॥७७१॥

संहारक्रमतो ज्ञेया तामस्यावरणार्हणा ।

अन्तर्भावात् कालिकानामेतस्या अपि पार्वति ॥७७२॥

संहाराख्यक्रमेणैव पूजावरणनामिका ।

[सृष्टिक्रमगावरणपूजाविवरणम्]

मध्यादारभ्य बाह्यान्तं केशादारभ्य पादवत् ॥७७३॥

या पूजा सा सृष्टिरीतिरित्थं निर्णय ईरितः ।

[संहारक्रमगावरणपूजाविवरणम्]

बाह्यादारभ्य मध्यान्तं पादादारभ्य केशवत् ॥७७४॥

सा पूजा जगदम्बायाः संहारक्रमगोदिता ।

[गुह्यकाल्याः संहारक्रमगार्चायां युक्तेरभिधानम्]

श्रीगुह्यकाल्यावरणपूजा संहाररीतितः ॥७७५॥

कर्तव्या नात्र सन्देहो विधेयो येन केनचित् ।

अन्या च युक्तिरुदिता त्रिपुरघ्नेन वै पुरा ॥७७६॥

ज्ञेयः प्रथम आरम्भः सामान्येनापि कर्मणा ।

मध्ये तु मध्यमेनैव समाप्तौ महता भवेत् ॥७७७॥

सामान्या आहुतीर्हुत्वा पूर्णायां महती क्रिया ।
पूर्णां समाप्य न ह्यादावन्या आहुतयो मताः ॥७७८॥
न च प्रागशने मिष्टं समाप्तौ तिक्तमिष्यते ।
मूलपूजां विधायादौ पश्चात् भूतापसारणम् ॥७७९॥
यथा न कुत्रापि भवेदेवमत्रापि बुध्यताम् ।
पूजामधस्तादारभ्य बिन्दावेव समाप्यते ॥७८०॥
न बिन्दुपूजामारभ्य सिंहासनधरेऽधरे ।
इत्याद्या बहुला युक्तिरेतस्यैव प्रसङ्गतः ॥७८१॥
कपालडामरे शम्भुरुक्तवान् करुणानिधिः ।
कालिकावरणार्चायां तस्मात् संहारगः क्रमः ॥७८२॥
स चाधस्तादुपक्रम्य बिन्दौ परिसमाप्यते ।

[आवरणपूजागतान्तरिकसमस्यायाः समाधानम्]

अथान्यदवधेहि त्वं न च किञ्चिन् मम प्रिये ॥७८३॥
एतदावरणार्चायां बह्वचो देव्यो वसन्ति हि ।
देवाश्च बहवः सन्ति मिश्रीभावं गता मिथः ॥७८४॥
बहुत्वाद्देवदेवीनामल्पस्थानतया तथा ।
पीठस्य परमेशान्याः पूजाधिकतया तथा ॥७८५॥
कर्तव्या भक्तिभावेन मनसा स्थानकल्पना ।
तस्योदाहरणं वक्ष्ये समासादवधारय ॥७८६॥
षोडशद्वादशाष्टाख्यच्छदं यन्त्रे सरोरुहम् ।
विद्यते परमेश्वर्या न चतुर्विंशतिच्छदम् ॥७८७॥

तथापि तत्तत्पूजार्थं कल्प्यं तत्त्वच्छदाम्बुजम् ।
भूपुरे भैरवार्चार्थं चतुष्कोणप्रकल्पना ॥७८८॥
वर्तुले मण्डले चापि दिगष्टकविभावना ।
दलयोरन्तरे चापि केसरे च स्थलाङ्कनम् ॥७८९॥
इत्यादिकल्पना ज्ञेयावरणार्चनहेतवे ।
पीठे यदस्ति यन्नास्ति यदुक्तं यच्च नोदितम् ॥७९०॥
निर्माय मनसा तत्तत् सर्वं पूजादिकं चरेत् ।

[आवरणपूजाविधिनिर्वचनम्]

इदानीं क्रमतो वक्ष्ये देव्यावरणपूजनम् ॥७९१॥
गुह्यकालीनरहरी सामरस्यमुपागतौ ।
पूजयित्वा बलिं दत्वा प्राणायामं ततश्चरेत् ॥७९२॥
ततः षडङ्गं विन्यस्य विकीर्य कुसुमाञ्जलिम् ।
स्पृशन् देव्यास्तु हृदयं वक्ष्यमाणं मनुं जपेत् ॥७९३॥
देव्या हृदा निजहृदः कुर्वन्नेकत्वमादरात् ।
विद्यामेतामूचुरतो हृदयाख्यां वरानने ॥७९४॥
विद्यां पूर्वप्रतिज्ञातां वक्ष्यमाणतया तव ।
कथयामि शृणु यतः सद्यः सिद्धिप्रदायिनीम् ॥७९५॥
हृदयस्य जगद्धात्र्या आत्मनो हृदयस्य च ।
अनेककरणाद्देवि महान् दोषोऽभिजायते ॥७९६॥
फलं न जायतेऽर्चायाः सिद्धिहानिः पदे पदे ।
अतो हृदयविद्यां तु दशवारं जपेत् सुधीः ॥७९७॥

[मन्त्रात्मिकायाः हृदयाख्यविद्यायाः स्वरूपम्]

वेदादिः कमला रावोऽन्वेतस्माद् गुह्यकालिके ।
अस्त्रमन्त्रः शाकिनी च कूर्चो हृन्मन्त्र एव च ॥७९८॥
त्रयोदशाक्षरी विद्या महाघोघप्रणाशिनी ।

[हृदयाख्यमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देश]

ऋषिरस्याः भरद्वाजः पंक्तिश्छन्द उदीर्यते ॥७९९॥
हृदयं देवतैतस्याः कामलं बीजमुच्यते ।
शाकिनी शक्तिरुदिता कूर्चः कीलकमीरितम् ॥८००॥
विनियोगो हृदययोरेकीकरण एव च ।

[हृदयाख विद्यायाः जपनिर्देशः]

इति संस्मृत्य ऋष्यादिमङ्गे विन्यस्य चात्मनः ॥८०१॥
दशकृत्वः कालिकाहृत् दशकृत्वो निजं च हृत् ।
संस्मृत्य प्रजपेदेनं मन्त्रं साधकसत्तमः ॥८०२॥
आवाह्यैनां पूजयीत गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
पुनः हृद्यञ्जलिं वद्ध्वा नयने विनिमील्य च ॥८०३॥
समयाख्यामथो विद्यामन्यामेकां जपेद् बुधः ।
स्वनाम्नैव समाख्याता विद्येयं सुरदुर्लभा ॥८०४॥
नैनां जग[प]न्नचाप्नोति फलं देव्यर्चनेऽण्वपि ।

[मन्त्रात्मिकायाः समयाख्यविद्यायाः स्वरूपम्]

ताररोषघ्राणरावहृच्छीर्षाणि क्रमेण हि ॥८०५॥
अष्टाक्षरो महाविद्या समयाख्या प्रकीर्तिता ।
शतकृत्वो जपेदेनां दशकृत्वोऽपि वा प्रिये ॥८०६॥

[समयाख्यविद्याया ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋष्यादिमधुनैतस्य समाकलय तत्त्वतः ।
ऋषिरस्याः श्वेतकेतुरनुष्टुप् छन्द एव च ॥८०७॥
देवता गुह्यकाली च शाकिनी बीजमुच्यते ।
डाकिन्यपि तथा शक्तिः फेत्कारी कीलकं स्मृतम् ॥८०८॥
विनियोगस्तथैकाकाराचाराय प्रकीर्तितः ।
इति ते समया विद्या विविच्य प्रतिपादिता ॥८०९॥
पूर्ववत् फलमेतस्या अपि विज्ञेयमर्थिभिः ।

[कापालिकादिसम्प्रदायान्तराणामिह हृदयाख्यसमयाख्यविद्ययोरसहमतिः]

एते विद्ये न मन्यन्ते देवि कापालिकादयः ॥८१०॥
ते वै हृदयविद्यायामम्बाहृदयमूचिरे ।
तथा च समयाख्यायां विष्णुतत्त्वं प्रपेदिरे ॥८११॥
नैतद्युक्तमिति प्राह त्रिपुरघ्नः पुरा मम ।

[स्वमतपोषणार्थं परमतनिरासे युक्तिः]

जपार्थं मूलमन्त्रास्ते ये मया पूर्वमुद्धृताः ॥८१२॥
तैरेव हि जपः कार्यः पुरश्चरणमेव च ।
एते पूजार्थमुदिता उपमन्त्राः पुरारिणा ॥८१३॥
उपमन्त्रैर्जपः कार्यो नैवेति प्रतिषिद्धता ।
मूलमन्त्रा न कर्तव्या उपमन्त्रा कथञ्चन ॥८१४॥
इत्यावरणपूजार्थमङ्गीकुर्वद्भिरैश्वरम् ।
वचः कापालिकमतप्रपन्नैः साधकादिभिः ॥८१५॥

विष्णुतत्त्वाम्बाहृदयमन्त्रोपासनकारिभिः ।
कर्तव्यमनयोः स्थाने किमिति त्वं विचारय ॥८१६॥
तस्मात् सामयिकीं विद्यां हार्दीं विद्यामपि प्रिये ।
अङ्गीकुर्वीत मतिमान् विचार्यैवं बलाबले ॥८१७॥
एते आवरणार्चायाः स्मर्तव्ये पूर्वमेव हि ।
प्रकृते कर्मणोदानीं धत्स्व चेतः समाहिता ॥८१८॥

[आवरणपूजाया ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य श्री गुह्यकाल्यावरणपूजनकर्मणः ।
गर्ग उक्त ऋषिश्छन्दः प्रोक्ताभ्यष्टिर्वरानने ॥८१९॥
सर्वे देवास्तथा सर्वा देव्यो वै देवताः स्मृताः ।
व्ययबीजं बीजमुक्तं कुटिला शक्तिरेव च ॥८२०॥
विधृतिः कीलकं प्रोक्तं विनियोगोऽस्य पार्वति ।
कथितो गुह्यकाल्यावरणपूजनमेव हि ॥८२१॥
यावत्यो मूर्तिसंबन्धाद् यावत्यः पीठयोगतः ।
तावत्यः प्रक्रिया बोध्या उभयोरपि पार्वति ॥८२२॥
तनुमर्यादया काश्चित् पीठमर्यादया पराः ।
मर्यादयोभयोः काश्चित् विज्ञेयास्तनुपीठयोः ॥८२३॥

[पीठमध्ये सकलदेवानामर्चायै मन्त्रनिर्देशः]

अतः परं निबोध त्वं मन्त्रानावरणात्मकान् ।
क्रमेणोद्ध्रियमाणान् [तान्] तत्तच्छब्दोपबृंहितान् ॥८२४॥
तारमैधत्रपारावकूर्चान् पुरत उद्धरेत् ।
ततः शब्दो महावर्तः पुनः कल्लोलमाल्यपि ॥८२५॥

अनु रक्तसमुद्रश्च ङेऽन्तमेतत्त्रयं वदेत् ।
हृच्छीर्षनन्त्रौ शेषस्थौ प्रथमो मनुरोरितः ॥८२६॥
इमं च वक्ष्यमाणाञ्च मन्त्रानुच्चार्य पार्वति ।
पुष्पैरथाक्षतैः पत्रैर्जलबिन्दुभिरेव वा ॥८२७॥
देवताः सकला पीठमध्य एव प्रपूजयेत् ।
सारस्वतरमाकामवधूप्रासादमेव च ॥८२८॥
विलिख्य मांसपदतः सैकतं तदनन्तरम् ।
रक्तद्वीपपदद्वन्द्वं कृत्वा ङेऽन्तं नमः शिरः ॥८२९॥
पाशो माया तथा प्रेतभैरव्यङ्कुश एव च ।
चामुण्डा भैरवमयवेष्टनायेति वर्णयुक् ॥८३०॥
हृदुत्तमाङ्गे प्रवदेत् तृतीये शोभने मनौ ।
शाकिनो डाकिनो चैव प्रलयस्तदनन्तरम् ॥८३१॥
फेत्कारी च तथा त्रेताऽयुतयोजनशब्दतः।
प्रमाणं तदनूद्धृत्य भूमिमण्डलमेव च ॥८३२॥
ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिश्योभयं कूर्चास्त्रमुच्चरेत् ।
नमः स्वाहा मन्त्रयुगं चरमे च प्रतिष्ठितम् ॥८३३॥
दण्डलज्जागोंऽशुशुक्लान् वर्णानुच्चार्य पञ्च वै ।
भैरवीदेहघटितः प्राकारस्तदनन्तरम् ॥८३४॥
चतुर्थ्यन्तावुभौ कार्यावेकस्मिन् वचने प्रिये ।
अङ्गुष्ठतर्जनीसंज्ञावुभौ मन्त्रौ ततोऽप्यनु ॥८३५॥

प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा तदनु स्मृता ।
केकराक्षी कालरात्रिरिति पञ्च पुरः स्मरेत् ॥८३६॥
शतयोजनप्रमाणं च ततोऽनु सुरवन्दिते ।
महाश्मशानशब्दं च ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिशेत् ॥८३७॥
तावेव मन्त्रौ शेषस्थौ यावेतस्य पुरोदितौ ।
द्वीपो जम्भः षडङ्गश्च ककुच्छैशुक एव च ॥८३८॥
व्यापिन्यै योगिनीभित्तये रोषास्त्रद्वयं तथा ।
अन्त्योदितौ चतुर्वर्णौ सप्तमो मनुरेष वै ॥८३९॥
वेणुसान्वक्षमौञ्जांश्च सूत्रबीजं ततः परम् ।
नरान्त्रतोरणशब्दो मुण्डस्रगिति वै पदम् ॥८४०॥
हृदयं शिरसा युक्तं चरमे तु विभावयेत् ।
मैधकालादित्यशक्तिकुलिकानि यथाक्रमम् ॥८४१॥
ज्वालाजालकरालेभ्यऽष्टश्मशानेभ्य एव च ।
हूं फट् नमस्ततः स्वाहा सामान्यो व्यापको मनुः ॥८४२॥

[अष्टश्मशानपूजामन्त्रः]

ब्रवीम्यष्टश्मशानानां प्रत्येकमधुना मनुम् ।
भौवनेशी योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा ॥८४३॥
एतानि पञ्च बीजानि सर्वेषामग्रगानि हि ।
कालव्यापीनि बोध्यानि ततः शब्दाश्चलाः पृथक् ॥८४४॥
तेषां श्मशानशब्देन विग्रहो ङेविभक्तिकः ।
पूर्वे चलाः स्थिराः शेषा उभयोः पदयोरपि ॥८४५॥

कूर्चास्त्रहृच्छिरोरूपाः सर्वशेषे षडक्षरी ।
विज्ञेयैषापि कूटस्था सर्वमन्त्रान्तगामिनी ॥८४६॥

[अष्टश्मशाननामानि]

नामान्यथ श्मशानानां क्रमेण व्याहरामि ते ।
महाघोरः कालदण्डो ज्वालाकुल इतः परम् ॥८४७॥
चण्डपाशस्तथा कापालिको धूमाकुलस्तथा ।
भीमाङ्गारो भूतनाथो दिक्ष्वित्यष्टसु पूजयेत् ॥८४८॥
भारुण्डा काकिनी नागश्चक्रमौदुम्बरस्तथा ।
ज्वालाकुलश्मशानाष्टदिग्भागेभ्य इतीरयेत् ॥८४९॥
केवलं नम उच्चार्यं न कूर्चास्त्रे न वा शिरः ।
इति सामान्यतोऽभ्यर्च्य विशेषात् पूजयेत् ततः ॥८५०॥
वेदादिमायाकमलाकामयोगिन्य एव च ।
अचलानि समस्तानि बीजानीमानि वै पुराः ॥८५१॥
मध्ये पूर्वादिहरितां विदिशां च क्रमेण हि ।
विभागा नामभिर्भिन्नैः प्रत्येकं प्रतिपादिताः ॥८५२॥
तांश्चतुर्थ्येकवचनान् कृत्वा तदनु कीर्तयेत् ।
एतैः पृथक् पृथग् ब्रूयाः पूर्वगैर्नामभिः प्रिये ॥८५३॥
द्वितीयैः स्थिरतापन्नैः सपरस्परविग्रहैः ।
या पूर्वमीरिता शेषे सैव ज्ञेया षडक्षरी ॥८५४॥
श्मशानानां दिग्विदिशोरष्टौ नामानि वै क्रमात् ।
शृणु पार्वति यत्नेन श्रुत्वा चैवावधारय ॥८५५॥

[श्मशानानां दिग्विभागः]

प्रथमः स्वस्तिकावर्तो ज्वालावर्तस्ततः परम् ।
याम्यावर्तस्ततो ज्ञेयो नद्यावर्तः सुरेश्वरि ॥८५६॥
भद्रावर्तः पुनः सौम्यावर्तोऽपि प्रतिपादितः ।
मङ्गालावर्त इति च सम्भ्रमावर्त एव च ॥८५७॥
इत्येतेऽष्टश्मशानानां दिग्विभागाः क्रमात् प्रिये ।
पूज्या आवरणार्चायां साधकेन विपश्चिता ॥८५८॥

[द्वारपालपूजामन्त्रविधिः]

द्वारपालांस्ततश्चाष्टौ वक्ष्यमाणैर्मनूत्तमैः ।
पूजयेत् त्रिदशेशानि देव्यावरणपूजने ॥८५९॥
पञ्च बीजानि सर्वेषां मनूनामादिगामीनि ।
विज्ञेयान्यचलान्येव ततः पूर्वोदितैः प्रिये ॥८६०॥
श्मशानस्याष्टदिग्भागनामभिर्द्विपदान्वितैः ।
अधिष्ठातृपदस्यापि विग्रहो ङेवचोऽन्वितः ॥८६१॥
त्रयाणामेव शब्दानां सर्वाद्यं चञ्चल मतम् ।
उत्तरं पदयोर्युग्मं निस्तरङ्गं प्रकीर्तितम् ॥८६२॥
भिन्नभिन्नाः पुनः शब्दास्ततः परमुदीरिताः ।
तैर्द्वारपालशब्दस्य समासो ङेस्वरूपधृक् ॥८६३॥
ततोऽनु भिन्नभिन्नानि नामानि सुरवन्दिते ।
चतुर्थ्येकवचोरूपः कर्तव्यः सोऽपि तत्परम् ॥८६४॥
परम्परागता या तु सा पश्चिमषडक्षरी ।
इति सामान्य उद्धारो मयोक्तो दुर्ग्रहो नृभिः ॥८६५॥

[द्वारपालानां विशेषपूजाविधिः]

विशेषमधुना वक्ष्ये भविष्यन्ति स्फुटास्ततः ।
मैधपाशाङ्कुशाः कूर्चः शाकिनी तदनन्तरम् ॥८६६॥
अपरिप्लवरूपाणि ज्ञेयानीमानि पञ्च वै ।
द्वारपालपदात् पूर्वंगतान् शब्दान् निशामय ॥८६७॥
पूर्व आग्नेयविदिशः दक्षिणस्तदनन्तरम् ।
तन्नैर्ऋतविदिक् चापि पश्चिमोऽस्यानु कीर्तितः ॥८६८॥
वायव्यविदिगस्यानु तत उत्तर एव च ।
ऐशानविदिगन्ते स्यादेवंरूपपदोद्धृतिः ॥८६९॥
द्वारपालपदस्यानु भिन्नान् शब्दान् शृणूत्तरान् ।
कालपाशो भीमपाशो यमपाशस्ततः परम् ॥८७०॥
मृत्युपाशो दण्डपाशो नागपाशस्ततः परम् ।
ज्वालापाशो घोरपाश इत्यष्टौ द्वारपालकाः ॥८७१॥
अथ शृणु मनूद्धारानन्यानावरणाध्वनि ।

[त्रिशूलसामान्यपूजा]

वैकारिकः प्रथमतो मन्दारस्तदनन्तरम् ॥८७२॥
सिन्धुर्महेन्द्रेश्वरौ च बीजानीमानि पञ्च वै ।
ततोऽष्टभ्यस्त्रिशूलेभ्यो नम इत्येव केवलम् ॥८७३॥
इति सामान्यरूपेण त्रिशूलानि प्रपूज्य वै ।

[विशेषेण त्रिशूलपूजा]

क्रमात् पुनर्विशेषेण वक्ष्यमाणैर्मनूच्चयैः ॥८७४॥

पूजयीत समुद्धारमधुना कलयेश्वरि ।
मैधो गारुडविश्वौ च मेघो विद्युदनन्तरम् ॥८७५॥
एते वर्णाः स्थिरा ज्ञेयाः प्रतिमन्त्रं महोदयाः ।
पूर्वादितः श्मशानाष्टदिग्भागाख्यपदैः सह ॥८७६॥
र्वातिशब्दस्य विज्ञेयो विग्रहो ङेविभक्तिकः ।
क्रमेणैव चलाः पूर्वं स्थिरावुत्तरगौ पुनः ॥८७७॥
चतुर्वर्णात्मकानां वै त्रिशूलानां ततः परम् ।
नामानि भिन्नभिन्नानि तैस्त्रिशूलपदस्य च ॥८७८॥
विग्रहः स चतुर्थ्येकवचनात्मा व्यवस्थितः ।
कूर्चमस्त्रं च हृदयं ततोऽप्यनलवल्लभा ॥८७९॥

[अष्टौ त्रिशूलनामानि]

अथ त्रिशूलनामानि क्रमेण शृणु पार्वति ।
जयावहो विद्युदस्त्रश्चण्डखण्डस्ततः परम् ॥८८०॥
विकरालः कालकूटो घोरनादो विदारणः ।
शोणितोदश्च नामानि त्रिशूलानाममूनि हि ॥८८१॥

[वज्रस्य सामान्यपूजामन्त्रः]

विचित्रं धन्यमुल्लोप्यं विस्मृतिः पाणिगीतिका ।
चतुर्भ्योऽनु च वज्रेभ्यो नम इत्यथ कीर्तयेत् ॥८८२॥
वज्राण्यभ्यर्च्य सामान्यप्रकारेण सुरेश्वरि ।

[वज्रस्य विशेषपूजामन्त्रः]

पुनः सम्पूजयेत् तानि विशेषनामपूर्वकम् ॥८८३॥

कलावती च सर्वस्वं विप्रियं तदनन्तरम् ।
सन्तारं वैकक्षमपि पञ्च बीजाग्रतस्त्वसौ ॥८८४॥
सर्वत्रैव स्थिरतरश्चलाँच्छब्दानतः शृणु ।
उल्कामुखोऽङ्गारमयो भस्मान्तकभयङ्करौ ॥८८५॥
एभिर्वज्रपदस्यापि विग्रहस्तदनन्तरम् ।
तङ् ङेऽन्तत्वेन निर्दिश्य नमोऽन्ते विनियोजयेत् ॥८८६॥
ततोऽध्वानविवत्सौ च सम्भारोऽथास्य पश्चिमे ।
संयोगश्च वियोगश्च पञ्चैतानि पुरो वदेत् ॥८८७॥
अथोल्कामुखवज्राभिपदैर्धारिन् पदस्य च ।
विग्रहीकृत्य युञ्जीत ङेविभक्ति वरानने ॥८८८॥

[वेतालचतुष्टयपूजाविधिः]

चत्वार्यन्यानि नामानि तैर्वेतालपदस्य च ।
पूर्ववत् सकलं कृत्वा नमोऽन्ते विनियोजयेत् ॥८८९॥
तान्यग्नितुण्डः प्रथमं मृत्युजिह्वस्ततोऽप्यनु ।
कालदण्डो जम्बुनादः कार्यः सन्ध्यन्वितोऽग्रगः ॥८९०॥
वेदादिरथ चैतन्यं मायालक्ष्मीस्मरस्त्रियः ।
योगिनी क्षेत्रपालश्च बीजान्यष्टौ पुरो लिखेत् ॥ ९१॥
सर्वाधः स्थितशब्दश्च ततः सिंहासनं पुनः ।
विधायोभयमीशानि ङेऽन्तत्वेन ततः परम् ॥८९२॥
कूर्चरावोऽस्त्रहृच्छीर्षबीजान्यन्ते नियोजयेत् ।
इति सामान्यतः सिंहासनं सम्पूज्य साधकः ॥८९३॥

[विशेषेण सिंहासनपूजनम्]

विशेषतः पुनरपि कुसुमादिभिरर्चयेत् ।
तस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि दुरूहं शृणु सादरा ॥८९४॥
सारस्वतरमाकामाः कूर्चविश्वावमान्वितौ ।
दस्रशक्ती चाष्टबीजी पुरतः कथिता स्थिरा ॥८९५॥
सर्वाधःस्थितसिंहासनधरायापि च स्थिरम् ।
आयुर्वेदो धनुर्वेदस्ततो गन्धर्ववेदयुक् ॥८९६॥
अर्थवेदः क्रमादेते चतुर्थ्येकवचोधराः ।
रोषरावास्त्रहृच्छीर्षाण्यतः परमुदीरयेत् ॥८९७॥
आद्यन्तौ सन्धिरहितौ करणीयौ मनूद्धृतौ ।
ततस्तारस्त्रपाक्षेत्रपालप्रासादयोगिनोः ॥८९८॥
रत्नसिंहासनायानु नमः पदमुदीरयेत् ।
इत्थं सिंहासनं रात्नं सामान्येनार्च्य पार्वति ॥८९९॥

[सिंहासनधारिणः विशेषपूजाविधिः]

विशेषतः पुनः सिंहासनधारिण आर्चयेत् ।
ताररावौ पुरो वाच्यौ नमो वाच्यं च पश्चिमे ॥९००॥
आद्यन्तौ सुस्थिरौ प्रोक्तौ कलयान्यत्पुरः स्थिरम् ।
नमः पदात् पूर्वगतं मुण्डासनपदं प्रिये ॥९०१॥
चतुर्थ्येकवचः कृत्वा स्थिरं सर्वत्र योजयेत् ।
पदानि मध्यसंस्थानि मत्तः कलय साम्प्रतम् ॥९०२॥
आदौ कृतयुगं त्रेतायुगं तदनु कथ्यते ।
ततोऽनु द्वापरयुगं ततः कलियुगं मतम् ॥९०३॥

ऋग्वेदश्च यजुर्वेदः सामवेदस्तथैव च ।
अथर्ववेदः कथितः सर्वशेषे वरानने ॥६०४॥
एतैर्मुण्डासनस्यापि कर्तव्यो द्वन्द्वविग्रहः ।
भविष्यन्ति ततो मन्त्राः स्फुटा आवरणार्चने ॥६०५॥
अनाहतो भोगसृष्टी फेत्कारी त्रेतयाऽन्विता ।
कराली च तथा कृत्या तर्जनी च कटङ्कटा ॥६०६॥
नव बीजानि पुरतो व्याहृत्य वरवर्णिनि ।
हीरमौक्तिकसिंहासनाय तस्मात् परं नमः ॥६०७॥
पूजयित्वेति सामान्याद् विशेषेण ततोऽर्चयेत् ।
तारराबौ पुरः सर्वमन्त्राणां कथिताविमौ ॥६०८॥
हार्दमन्त्रः सर्वशेषे तादृगेव व्यवस्थितः ।
मध्ये पदत्रयं ङेऽन्तं सर्वत्रैव स्थिरं समम् ॥६०९॥
नमः पदात् पूर्वपदं सिंहासनधरं पदम् ।
द्विबीजतोऽष्टदिक्पालाः स्वस्वनाम्ना व्यवस्थिताः ॥६१०॥
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ।
वायुः कुवेर ईशान एतादृग्भिः स्वनामभिः ॥६११॥
अनयोरन्तरपदं त्रिपद्यैव विनिर्मितम् ।
परस्परं विग्रहिण्याऽमुष्यास्तु चरमं पदम् ॥६१२॥
पतिरित्यभिनिर्दिष्टं तत्पूर्वे द्वे पदे शृणु ।
दिशां चतसृणामेव न चान्येषां कथञ्चन ॥६१३॥
पूर्वदिग् विदिगित्येवं ततो दक्षिणादिक् पुनः ।
विदिक् पश्चिमदिक् चापि विदिगुत्तरदिक् तथा ॥६१४॥

पुनर्विदिगथोच्चार्य मन्त्रानष्टौ प्रपूजयेत् ।
अथवान्यप्रकारेण दिक्पालानां प्रपूजनम् ॥६१५॥

[प्रकारान्तरेण दिक्पालानां विस्तृतपूजा]

विस्तरेण प्रब्रवीमि मनो दत्वा निशामय ।
एतेषामेव मन्त्राणां ये द्वे बीजे पुरः स्थिते ॥६१६॥
ते एव बीजे विज्ञेये वक्ष्यमाणमनुष्वपि ।
अमीषामेव सर्वान्ते कथिता या नवाक्षरी ॥६१७॥
साऽप्येतेष्वपि विज्ञेया तत्पूर्वं वरवर्णिनि ।
परं सपरिवारं तु ङेऽन्तं कृत्वा नियोजयेत् ॥६१८॥
इदमप्यखिले मन्त्रे शिरस्त्वेन नियोजितम् ।
द्विबीजादनु दिक्पालान् सर्वान् पूर्वोदिताक्षरैः ॥६१९॥
ङेऽन्तान् विधाय युञ्जीत विशेषणपदत्रयम् ।
ततस्तत्त्वेन निर्दिश्य तदग्रे विनियोजयेत् ॥६२०॥
इदानीं क्रमतो वक्ष्ये मध्यगानां समुद्धृतिम् ।
पीतो रक्तश्च कृष्णश्च धूमः श्वेतस्तथैव च ॥६२१॥
श्यामो गौरस्तथा शुभ्र एतैर्वर्णपदस्य हि ।
विग्रहः स क्रमाज्ज्ञेय आद्यमेकं विशेषणम् ॥६२२॥
ऐरावतस्तथा छागो महिषस्तुरगस्तथा ।
मकरो हरिणश्चैव नरो वृषभ एव च ॥६२३॥
एतैर्वाहनशब्दस्य समासः पूर्ववत् क्रमः ।
विशेषणमिदं बोध्यं द्वितीयं सुरवन्दिते ॥६२४॥

वज्रं शक्तिर्दण्डखड्गपाशध्वजगदाः क्रमात् ।
त्रिशूलश्चेदृशैः शब्दैरायुधस्य च विग्रहः ॥९२५॥
इदं तृतीयं विज्ञेयं त्रिशेषणमतः परम् ।
विभक्तिवचने पूर्वमीरिते ते सुरेश्वरि ॥९२६॥

[प्रकारान्तरेण दिक्पालपूजाविधिः]

एवमन्यप्रकारेण दिगीशपरिपूजनम् ।
कार्यमेकमशक्तौ तु शक्तौ तूभयमाचरेत् ॥९२७॥
फलातिरेकमिच्छूनामुभयं शस्यते प्रिये ।
तारो लज्जा शाकिनी च नृसिंहः प्रेतभैरवी ॥९२८॥
कर्णिकाश्रृङ्खले चोक्त्वा ज्योतिर्मयपदादनु ।
सिंहासनाय च नमः सामान्येन प्रपूजयेत् ॥९२९॥

[सिंहासनधराणां विशेषपूजाविधिः]

ततो विशेषं कलय सिंहासनधरार्चने ।
सारस्वतरमाकामाः प्रासादक्षेत्रपाविति ॥९३०॥
बीजानि पञ्च संलिख्य ताररावौ ततः परम् ।
सामान्यैतानि सर्वेषामन्ते च नम इत्यपि ॥९३१॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एकैकमेषामेकस्मिन् मन्त्रे क्रमत ईरयेत् ॥९३२॥
महाप्रेतपदं सर्वसामान्यत्वेन तत्परम् ।
ज्योतिर्मयानु सिंहासनधरस्तत्परोऽपि च ॥९३३॥

विशेष्यत्वेनोक्त आद्यो विशेषणतयाऽपरौ ।
ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिष्टास्त्रयोऽपि त्रिदशार्चिते ॥६३४॥
अथ वेदादिचैतन्यरमामायास्मरस्त्रियः ।
प्रासादनरसिंहौ च भैरवीकूटमन्वतः ॥६३५॥
कृष्णवर्णेत्यतः शब्दस्ततत्पिङ्गलजटोऽपिच ।
नरमुण्डास्थिमाली च महाशब्दादनु प्रिये ॥६३६॥
भैरवासनमित्येवं चत्वार्येव पदानि हि ।
कार्याणि ङेऽन्तरूपाणि सर्वाण्येव मनूद्धृतौ ॥६३७॥
कूर्चरावास्त्रहृच्छीर्षमनवश्चरमस्थिताः ।

[शिवासनार्चामन्त्रः]

क्रमाभावेऽपि देवेशि शिवासनमनुं शृणु ॥६३८॥
तारो लज्जा च कमला प्रलयः कर्णिका तथा ।
नादान्तकश्चामरश्च विमर्दः शेखरोऽपि च ॥६३९॥
श्रीकण्ठकूटं तदनु कूटौ शाङ्करशाम्भवौ ।
द्वादशैवं समुद्धृत्य बीजकूटानि पार्वति ॥६४०॥
शशाङ्कशेखरपदं नागहारिपदं ततः ।
भीमदर्शनमित्येवं वज्रदंष्ट्रानखं ततः ॥६४१॥
व्याघ्रचर्माम्बरमपि शूलखट्वाङ्गधार्यपि ।
ततो धूम्रलवर्णश्च पुनः पिङ्गजटाधरः ॥६४२॥
शिवाकारश्च नवमो दशमश्च शिवासनम् ।
सर्वेऽप्येते चतुर्थ्येकवचः सुपरिगुम्फिताः ॥६४३॥

क्रोधोऽपि शाकिन्यस्त्रं च नमः स्वाहा तथैव च ।
शिवासनस्य पूजायां मन्त्र एष प्रकाशितः ॥६४४॥

[शिवासने चतुर्विंशदलाम्बुजकल्पनाकथा]

अतः परं सुरेशानि दुरूहं समुपस्थितम् ।
तत्र धेहि मनः सूक्ष्मं तस्माद् बोधमुपैष्यसि । ६४५॥
मया यत्पूर्वमुदितं तस्यावसर आगतः ।
अविद्यमानमप्यत्र मण्डले परिकल्प्य हि ॥६४६॥
धियावरणपूजार्थं प्रकारं विदधीत वै ।
दशवक्त्रार्चनविधौ न चतुर्विंशतिच्छदम् ॥६४७॥
वर्तते कमलं यन्त्रे मयैव समुदीरितम् ।
तथाप्यावरणार्चार्थं पद्मं कल्प्यं धियेदृशम् ॥६४८॥
यस्मिन् यस्मिन् भवेद् यन्त्रे चतुर्विंशदलाम्बुजम् ।
न तत्रेदृग्विधं पद्मं कल्पनीयं धियाऽनघे ॥६४९॥
अभावे यत्र यत्र स्याद् यस्य यस्य सरोरुहः ।
तत्र तत्र धिया कार्यमेवमाह पुरद्विषः ॥६५०॥
शिवासनोपरि ध्यात्वा चतुर्विंशदलाम्बुजम् ।
आवृत्तिव्यावृता देवीरर्चयेत् कुसुमाक्षतैः ॥६५१॥

[चतुर्विंशदलाम्बुजस्थदेवीपूजायाः समन्त्रो विधिः]

अथोद्धारक्रमेणैव मन्त्रान् वक्ष्यामि पार्वति ।
सावधानमना भूत्वा निशामय महोदयान् ॥६५२॥

एकैकस्मिन् पद्मदले काल्येका परिपूज्यते ।
तारो माया योगिनी च प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ॥६५३॥
पञ्चेमानि च बीजानि पुरः सर्वत्र योजयेत् ।
अम्बा श्री पादुकामुक्त्वा पूजयामि ततः परम् ॥६५४॥
रोषरावौ च हृदयं मन्त्राणामखिलात्मनाम् ।
वर्णावली शेषगेयं विविच्य प्रतिपादिता ॥६५५॥
मध्ये काली क्रमाद् वक्ष्ये ताभिरम्बासु संस्थिता ।
उग्रकाली रौद्रकाली ततो वेतालकाल्यपि ॥६५६॥
संहारकाली तदनु भीमकाली ततः परम् ।
धूमकाली मुण्डकाली नादकाल्यनु कथ्यते ॥६५७॥
ततो महारात्रिकाली नग्नकाल्यनु कथ्यते ।
ततो दुर्जयकाली च पुनर्मन्थानकाल्यपि ॥६५८॥
कल्पान्तकाली रुधिरकाली कङ्कालकाल्यपि ।
सन्त्रासकाली तदनु स्याद्भयङ्करकाल्यपि ॥६५९॥
स्यात् त्रयोविंशतितमा काली विकटपूर्विका ।
घोरघोरतरार्णानु काली शेषे प्रतिष्ठिता ॥६६०॥
चतुर्विंशतिराख्याता इत्येताः कालिका प्रिये ।
एकैकस्मिन् दले पूज्याः काल्यावरणपूजने ॥६६१॥

---

१. ततः प्रलयकाली च विद्याकाली ततोऽप्यनु ।
शक्तिकाली महाकाली कुलकाली ततः परम् ॥ ख पुस्तकेऽधिकपाठः ।

[षोडशदलाम्बुजस्थदेवीपूजायाः समन्त्रो विधिः]

अथ षोडशपत्रस्य कमलस्य निशामय ।
आदौ तु पञ्च बीजानि सर्वत्रैवाचलानि हि ॥६६२॥
ततः षोडश नामानि भिन्नभिन्नानि सुन्दरि ।
तैः शब्दैः मूर्त्तिशब्दस्य विग्रहो ङेविभक्तिकः ॥६६३॥
पुनः पृथक् पृथङ् नाम सर्वेषु मनुषु ध्रुवम् ।
तैः कालिकापदस्यापि पूर्ववत् सकलं स्मृतम् ॥६६४॥
रोषरावौ च हृदयं स्वाहेऽति च षडक्षरी ।
शेषे सर्वत्र सर्वेषां स्थिरा तुल्या प्रकीर्तिता ॥६६५॥
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषमधुना शृणु ।

[माहिम्नी आवरणार्चा]

वेदादिभौंवनेशी च शाकिनी प्रलयोऽपि च ॥६६६॥
फेत्कारी चेति बीजानां पञ्चकं पुरतो मतम् ।
महाज्ञानं महेच्छा च महारम्भ इतः परम् ॥६६७॥
महैश्वर्यं चापि महा वैराग्यं कान्त [ल ?] एव च ।
महाधर्ममहाशान्ती तदनन्तरमीरिते ॥६६८॥
महानन्दश्च देवेशि महाधनमतः परम् ।
महादण्डोऽपि महाप्रभा तदनु कथ्यते ॥६६९॥
महाकौमुद्यपि महास्फुलिङ्गोऽस्यानु वर्णितः ।
महाघोरोऽपि च महारणोऽप्यस्यानु कीर्तितः ॥६७०॥

महामोक्षश्चेति शेषे षोडशैवं प्रकीर्तिताः ।
तत्पदं नास्ति देवेशि यन्महोपपदान्वितम् ॥६७१॥
अत आवरणार्चेयं माहिम्नीति निगद्यते ।
मूर्त्तिशब्दस्य पूर्वोपपदान्युक्तानि वै तव ॥६७२॥
इदानीं कालिकाशब्दात् पूर्वशब्दान्निशामय ।
दिगम्बरस्तथोद्दामः प्रपञ्चो विजयस्तथा ॥६७३॥
योगः क्रतुस्तपोभोगः संग्रामश्चण्ड एव च ।
सूर्यश्चन्द्रस्तथैवाग्निर्वज्रो धीरस्ततः परम् ॥६७४॥
तान्यपि प्रब्रवीम्यत्र त्रुट्यभावाय केवलम् ।
आदौ विवेक उत्साह उद्यमः सम्भ्रमोऽपि च ॥६७५॥
विग्रहो मङ्गलं चैव नियमः समयोऽपि च ।
चैतन्यं च समाधिश्च निदानं विस्मयोऽपि च ॥६७६॥
प्रभावोऽनु प्रमाणं च कैवल्यं च प्रकाशयुक् ।
इति षोडश निर्दिष्टाः कालिकादिपदक्रमे ॥६७७॥
माहिम्नीति च पञ्चापि त्रिपुटीति निगद्यते ।
त्रिवर्णकत्वात् शब्दानां धर्मवाचितया तथा ॥६७८॥
त्रिपुटी वा त्रिवर्णा वा परिभाषाद्वयं समम् ।
संहितामतमीदृक्षमन्येषामवधारय ॥६७९॥

[कापालिकमतेन षोडशदलाम्बुजस्थदेवीपूजाप्रकारकथनम्]

कापालिकानां देवेशि महाकौलिकताजुषाम् ।
अर्चा षोडशपत्राब्जे पृथगेव निरुच्यते ॥६८०॥

तां ते ब्रवीमि कलय सम्यगुद्धारपूर्वकम् ।
आदौ बीजद्वयं सर्वसाधारणतयोदितम् ॥६८१॥
एकैकं कूटमस्यानु तत्पृथक् पृथगुच्यते ।
एतस्यानु स्थिरा ज्ञेया ङिविभक्तिः षडक्षरी ॥६८२॥
पुनर्विभिन्ननामानि प्रतिमन्त्रं सुरेश्वरि ।
अग्रे स्थिरा पुनः पञ्चाक्षरी पूर्वोदितैः पदैः ॥६८३॥
विग्रहोऽस्याः स च ङेऽन्तः चलं पूर्वं स्थिरं परम् ।
पुनरन्यानि नामानि क्रमेणैव पृथक् पृथक् ॥६८४॥
आद्योदितानां मन्त्राणां या तु शेषे दशाक्षरी ।
सैवामीषु प्रयोक्तव्या सामान्योद्धृतिरीदृशी ॥६८५॥
विशेषोद्धारमेतेषामिदानीं कलय प्रिये ।
वेदादिरावौ बीजे द्वे आसनाम्बुरुहस्य हि ॥६८६॥
दलनाम्ना तु ये कूटास्ते ततः परमीरिताः ।
अन्वेतेषां यज्ञमयपद्मशब्दः प्रतिष्ठितः ॥६८७॥
ततः क्रमेण कूटानां नामकूटं न चोद्धरेत् ।
पुनः क्रमेण चैतेषां दलाधिष्ठात्र्यनन्तरम् ॥६८८॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्रो वह्निर्यमस्तथा ।
वायुर्विश्वो वसुर्मृत्युर्यक्षोरक्षश्च साध्ययुक् ॥६८९॥
मेघो निधिश्च मोक्षश्चेत्येते क्रमत ईरिताः ।
एभिर्मन्त्रैर्यजन्त्याद्यां षोडशच्छदपङ्कजे ॥६९०॥

कापालिका यामलीयास्तथैव च दिगम्बरा: ।
इति नानाप्रकारेण पूजाभेदा मयोदिता: ॥९९१॥
एकमावश्यकं चैषां कर्तव्यत्वेन सुन्दरि ।
फलातिरेकता सर्वप्रकारकरणेन हि ॥९९२॥

[द्वादशपत्राम्बुजे देवीपूजाविधि:]

अत: परममुष्योद्ध्वं द्वादशच्छदमम्बुजम् ।
तदर्चनप्रकारं ते कथयामि सुरेश्वरि ॥९९३॥
एतद्वत् तदपि ज्ञेयं नानाविधतया स्थितम् ।

[एतस्या नैकविधतया अभ्यर्हितत्वेन त्रिपुरघ्नमतस्याभिधानम्]

प्रथमं त्रिपुरघ्नोक्तमाकर्णय वरानने ॥९९४॥
तारलक्ष्मीकामवधूकूर्चा: प्रथममीरिता:
हृच्छिरोऽभिहितौ मन्त्रौ योज्यौ चरमगामिनौ ॥९९५॥
विज्ञातव्याविमौ कालव्यापिनौ जगदीश्वरि ।
मध्ये काली ङेऽन्तरूपा भिन्नभिन्ना उदीरयेत् ॥९९६॥
आद्या दक्षिणकाली च द्वितीया धनकाल्यपि ।
भद्रकाली सिद्धिकाली चण्डकाली तथैव च ॥९९७॥
तत: कामकलाकाली भीमकाली ततोऽप्यनु ।
घोरकाल्युग्रकाली च नवमी परिकीर्तिता ॥९९८॥
श्मशानकाली तदनु ज्वालाकाली ततोऽप्यनु ।
सर्वशेषे गुह्यकाली द्वादशी परिकीर्तिता ॥९९९॥

मुख्यः पक्षोऽयमुदितस्त्रिपुरघ्नमुखोद्गतः ।

[अत्र कापालिकमताभिधानम्]

इदानीं डामरीयानां प्रकारमवधारय ॥१०००॥

आदौ बीजान्यष्ट शिवे स्थिराणि प्रतिमन्वपि ।
ङेऽन्ता षडक्षरी चैषा मनुः स्थिरतरा तथा ॥१००१॥
उपकूटानि चैतस्या अनुबोध्यानि वै पृथक् ।
ततः पुनर्भिन्नभिन्ननामानि सुरवन्दिते ॥१००२॥
षडक्षरी ततः स्थाष्णुर्ङेऽन्ता पूर्वोदितैः पदैः ।
विग्रहश्च तथा सन्धिरावश्यकतया स्थितः ॥१००३॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां पदाभ्यां तु द्विवर्णाभ्यां विनिर्मितम् ।
पदमेकमदन्तं च भिन्नभिन्नं ततः स्मृतम् ॥१००४॥
तैः कालिकापदस्यापि विग्रहो ङेविभक्तितः ।
सप्ताक्षरी ततः शेषे कालव्यापिन्युदीरिता ॥१००५॥
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषमधुना शृणु ।
तारत्रपे योगिनी च रमाकामौ च डाकिनी ॥१००६॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी बीजानि स्थैर्यभाञ्जि हि ।
ततोऽनु वै शस्त्रमयपदाशब्दः प्रतिष्ठितः ॥१००७॥
ब्रह्मास्त्रमाग्नेयास्त्रं च वायव्यास्त्रमनन्तरम् ।
ऐषीकास्त्रं पार्वतास्त्रं नागास्त्रं तदनन्तरम् ॥१००८॥
प्रस्वापनास्त्रं तदनु सौपर्णास्त्रं ततोऽप्यनु ।
मातङ्गास्त्रं दानवास्त्रं पैशाचास्त्रमतः परम् ॥१००९॥

सर्वशेषे ब्रह्मशिरोऽस्त्रं देवि परिकीर्तितम् ।
एतस्माद् देवदेवेशि तत्तदस्त्रस्य नाम हि ॥१०१०॥
पुनरष्टदलाधिष्ठात्री शब्द उपवर्णितः ।
सप्ताक्षरी दृश्यतया संहितार्था षडक्षरी ॥१०११॥
उल्कामुखः पिङ्गजटो दावानल इतः परम् ।
प्रेतासनश्च शुष्कोदर ज्वालाकुल एव च ॥१०१२॥
चण्डहासस्तथा भूतोन्मादश्चापि महोदयः ।
कुलचक्रो मेघनादो विश्वरूपोऽन्तगोचरः ॥१०१३॥
कूर्चरावावथास्त्रं च नमः स्वाहा तथैव च ।
एषा सप्ताक्षरी विद्या सर्वेषामन्तगामिनी ॥१०१४॥
द्वादशच्छदनाम्भोजावरणार्चा मयोदिता ।
कपालडामरीयास्तु एतामेव प्रकुर्वते ॥१०१५॥

[अत्र दिगम्बरमताभिधानम्]

दिगम्बराणां सिद्धान्तमधुना कलय प्रिये ।
तारो रमा च कामश्च कर्णिका दुष्कृतं तथा ॥१०१६॥
तन्त्रा तथा चर्पटं च शाम्भवं तदनन्तरम् ।
अष्टौ बीजानि पुरतः स्थिराण्येतानि कीर्तयेत् ॥१०१७॥
चतुर्वर्णात्मिका देव्यो द्वादशातः परं स्मृताः ।
कोकामुखी ऋक्षकर्णी पूर्णभद्रा महोदरी ॥१०१८॥
कपालिन्येकपादा च कुरुकुल्ला तथैव च ।
महामारी चण्डघण्टा जालन्धर्यवलोकिनी ॥१०१९॥

संहारिणी सर्वशेषे द्वादशैवं प्रकीर्तिताः ।
श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यन्तगो मनुः ॥१०२०॥
इति द्वादशपत्राब्जपूजा प्रोक्ता त्रिधा मया ।

[अष्टपत्राम्बुजे देवीपूजाविधिः]

इदानीमष्टपत्राब्जपूजारीतिं निशामय ॥१०२१॥
अत्र नानाविधा भेदा भूयांसः प्रतिपादिताः ।
नानामतप्रकाराश्च यदुक्ता **डामरादिषु** ॥१०२२॥
सर्वान् विशिष्य वक्ष्यामि सावधाना निशामय ।

[अत्रार्ग्यहितत्वात् त्रिपुरघ्नमताभिधानम्]

तत्रादौ त्रिपुरघ्नोक्तं तवाहं प्रतिपादये ॥१०२३॥
मैधं माया च सानुश्च कर्णिका दुष्कृतं तथा ।
आदाविमानि वीजानि पञ्चैव परमेश्वरि ॥१०२४॥
हूं फट् नमस्ततः स्वाहा शेषे सर्वत्र कीर्तयेत् ।
अष्टौ देव्यस्ततो ङेऽन्ता मध्ये प्रोक्ता वरानने ॥१०२५॥
आदौ महाचण्डयोगेश्वरी भवति देवता ।
वज्रकापालिनी चापि सिद्धिलक्ष्मीस्तथैव च ॥१०२६॥
कालसङ्कर्षणी चापि कुब्जिका तदनन्तरम् ।
चण्डेश्वरी तथा वज्रेश्वरी तदनु कथ्यते ॥१०२७॥
सर्वशेषे परिज्ञेया चण्डकापालिनी प्रिये ।

[अष्टपत्राम्बुजे प्रकारान्तरेण देवीपूजाविधिः]

अथवान्यप्रकारेण वसुपत्राम्बुजार्चनम् ॥१०२८॥

कङ्कालं मानसं शान्तिरु[मु]ग्रं डामरमेव च ।
एतानि पुरतः प्रोच्य नमः शेषे नियोजयेत् ॥१०२९॥
अन्तरे देवता अष्टौ तान् ब्रवीमि निशामय ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥१०३०॥
चण्डा चण्डवती चैव अतिचण्डा च चण्डिका ।
ङेऽन्ता अमूर्विनिष्पाद्य द्वयोर्मध्ये नियोजयेत् ॥१०३१॥

[पुनः प्रकारान्तरेण तद्विधेरभिधानम्]

पुनरन्यप्रकारेण वसुपत्राब्जपूजनम् ।
मैधपाशाङ्कुशप्रेतभैरव्यः प्रथमे स्थिताः ॥१०३२॥
शेषे कूर्चा योगिनी च नृसिंहो डाकिनी तथा ।
शाकिन्यस्त्रं च हृदयं शिरश्चेति दशाक्षरी ॥१०३३॥
सर्वेषां समरूपा च स्थिरा च जगदीश्वरि ।
मध्ये काला च कलविकरणी तदनन्तरम् ॥१०३४॥
पश्चादस्याश्च बलविकरणी च बला तथा ।
बलप्रमथिनी चापि तथैवोन्मन्यपि प्रिये ॥१०३५॥
मनोन्मन्यप्यघोराणि क्रमादष्टाविमा मताः ।
कर्तव्या ङेविभक्त्यन्ता विनिवेश्याश्च मध्यतः ॥१०३६॥
इति प्रकारत्रितयं त्रिपुरघ्नमुखोदितम् ।

[अत्र कापालिकमतम्]

कपालडामरप्रोक्तं कापालिकमतं शृणु ॥१०३७॥
वेदादिकामिनीपाशा इच्छा निर्वेद एव च ।
एते पञ्चापि वर्णाः स्युः सर्वमन्त्रादिवर्तिनः ॥१०३८॥

कलावती कालकर्णी कापालिन्यप्यथोच्यते ।
कालरौद्री कौलकिनी ततोऽपि च करालिनी ॥१०३९॥
कोकामुखी तथा कामेश्वरी चेत्यष्ट कीर्तिताः ।
आद्यवर्गाद्यवर्णाङ्काश्चतुर्वर्णात्मिकास्तथा ॥१०४०॥
मध्ये योज्याः सन्धियुक्ता एता ग्रम्बापदैः सह ।
श्रीपादुकां पूजयामि तत इत्यक्षराष्टकम् ॥१०४१॥
कूर्चः संविच्च हृदयं सर्वेषां चरमे स्थिरम् ।

[अथ दिगम्बरमतम्]

दिगम्बराणां समयमथाकलय भामिनि ॥१०४२॥
पुरतो नव बीजानि सर्वेषां स्थैर्यभाञ्जि हि ।
ततो नामानि भिन्नानि दीगोशानां च दिक्तथा[?]॥१०४३॥
तैः शब्दैर्दलशब्दस्य विग्रहो ङिविभक्तिकः ।
ततो नामानि भिन्नानि सुबन्तानि सुरेश्वरि ॥१०४४॥
ततश्च कालिकेत्येवं शब्दः सर्वत्र वै स्थिरः ।
प्रसीदतां तारबीजं सन्ध्यूनं चाप्यतः परम् ॥१०४५॥
तच्छब्दश्च ततो ङेऽन्ता सोऽपि स्थिरतयोदितः ।
पूर्वोदितानि नामानि कालिकापदमेव च ॥१०४६॥
ङेऽन्ते विधाय संभाष्ये शेषे नम इति स्थिरम् ।
इति सामान्य उदित उद्धारः परमेश्वरि ॥१०४७॥
ग्रधुनोद्धारमेतस्य विशेषादवधारय ।
वेदादिः सानुहारौ च कर्णिका सुरसोऽपि च ॥१०४८॥

दुष्कृतं च तथा तन्त्रा चर्पटं शाम्भवं तथा ।
दिगीशसंज्ञितदिशामतो नामानि मे शृणु ॥१०४९॥
ऐन्द्रमाग्नेययाम्यं च नैर्ऋत्यं वारुणं तथा ।
वायव्यं चापि कौवेरं शेष ऐशानमेव च ॥१०५०॥
चतुर्वर्णात्मकं नाम देवीनां कलयाधुना ।
ज्योतिर्मयी महाशक्तिः प्रभावत्यथ कथ्यते ॥१०५१॥
सन्तापिनी ततो ज्ञेया प्रमादिन्यप्यतः परम् ।
सन्त्रासिनी चापि बलाकिन्यतः शातकर्ण्यपि ॥१०५२॥
इत्येष उदितो देवि दिगम्बरमतक्रमः ।
परेषामथ च स्वस्य मिलित्वा जगदीश्वरि ॥१०५३॥
पञ्च प्रकाराः कथिता अष्टपत्राम्बुजार्चने ।

[पद्मोपरितनेऽवस्थितानां देवादीनां पूजायाः सप्रकारमभिधानम्]

एवं निर्वर्त्य पद्मार्चामथोपरितनार्चनम् ॥१०५४॥
कुर्वीत भक्तिभावेन साधकोऽनलसः प्रिये ।
तस्य प्रकाराः वर्तन्ते भूयांसः कुटिला[1] अपि ॥१०५५॥
तांस्ते वक्ष्यामि तत्त्वेन सावधाना निशामय ।
अष्टपत्राम्बुजस्योर्द्ध्वं रेखा अष्टौ सुरेश्वरि ॥१०५६॥
वर्तन्ते तेन पीठस्य शोणितोदक्रमस्य हि ।
ता रेखा पंक्तिशब्देन कथ्यन्ते **यामलादिषु** ॥१०५७॥

१—कठिना ङ

यस्यां यस्यां हि रेखायां यावत्यः सन्ति देवताः ।
तास्तावत्यः प्रवक्ष्यामि पूजादीनां क्रमेण च ॥१०५८॥
ता रेखा भित्तिरूपास्तु न दिग्रूपा वरानने ।
यस्यां दिशि च या भित्तिः सा हि तद्दिक्तयोच्यते ॥१०५९॥
मन्त्रो ध्यानं च कासाञ्चित् पूजा साधारणी तथा ।
कासाञ्चित् केवला पूजा सापि साधारणी स्मृता ॥१०६०॥
पुंरूपाः देवताः काश्चित् स्त्रीरूपा अपरा मताः ।
रेखादिषु च पूर्वादिव्यवस्था परिकीर्त्यते ॥१०६१॥
यष्टुरभिमुखा देवा देवाभिमुखतो दश ।
प्राच्यादयो दिशो ज्ञेयाः पूजायागादिकर्मणि ॥१०६२॥
अनयैव दिशा कार्या दिग्विदिक्परिकल्पना ।
रेखां रेखां प्रति ज्ञेया द्वात्रिंशत्सङ्ख्यदेवताः ॥१०६३॥

[प्रथमपंक्तिस्थदेवतार्चाविधिः]

नानाकल्पेषु याः सिद्धाः सिद्धा देवीप्रसादतः ।
ता आद्यायां तु रेखायां पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥१०६४॥
नासां मन्त्रो न च ध्यानं केवलं स्वस्वनामभिः ।
अभ्यर्चनीयाः कुसुमैर्दलैरप्यथवाक्षतैः ॥१०६५॥
तासामिदानीं नामानि स्थानान्यभिदधे तथा ।
वेदादिर्भौवनेशी च रुड् योगिन्यथ शाकिनी ॥१०६६॥
पञ्चैतान्यपि बीजानि पुरः शेषे नमोऽपि च ।
मध्येदन्तपदान्तस्थवत्प्रत्ययपुरःसरैः ॥१०६७॥

चतुर्थ्यैकवचोभिस्तु पूजामन्त्रविनिर्णयः ।
पितामहस्तथा नारायणो रुद्रस्तथैव च ॥१०६८॥
हेरम्बश्च विशाखश्च मार्तण्डेन्द्रधनास्तथा ।
[1]राक्षसश्च पिशाचश्च जम्भो मदन एव च ॥१०६९॥
मन्दारकामशकुनविलासास्तदनन्तरम् ।
आनैर्ऋत्यविदिग्भागादावायव्यान्तमर्चयेत् ॥१०७०॥
आरभ्यैशानविदिश आआग्नेयान्तमर्चयेत् ।
धर्मो यमश्च मन्त्रश्च कल्पः पाण्डर एव च ॥१०७१॥
चैतन्यं च हिरण्यं च तथा मातङ्ग एव च ।
आरभ्याग्नेयविदिश आनैर्ऋत्यान्तमर्चयेत् ॥१०७२॥
सम्भ्रमः प्रलयः सत्त्वं रागो ललितमेव च ।
प्रपञ्चश्च विवेकश्च निर्वाणं तदनन्तरम् ॥१०७३॥
आवायव्यविदिग्भागादाऐशानान्तमर्चयेत् ।
प्रथमाया इयं पंक्तेरुक्ता पूजा यथाविधि ॥१०७४॥

[द्वितीयपंक्तिस्थभैरवपूजाविधिः]

भैरवाणां तु पूजार्थं द्वितीया पंक्तिरुच्यते ।
अत्रापि हि परिज्ञेयः स एव हि विदिक्क्रमः ॥१०७५॥
ध्यानमन्त्रावुभावेषां वर्तते तौ वदामि ते ।

[भैरवपूजामन्त्रः]

तारं मैधं च माया च लक्ष्मीरङ्कुशमेव च ॥१०७६॥

१—इतः पंक्तित्रयं ङ पुस्तके नास्ति ।

रोषस्ततोऽनु प्रासादो महारोषो नृकेसरी ।
नवार्णोऽयं भैरवाणां सामान्यो मनुरुच्यते ।।१०७७।।

[भैरवध्यानम्]

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वेषामेकरूपि यत् ।
ज्वलद्धुतवहज्वालश्मशानस्थलचारिणः ।।१०७८।।
पादालम्बिजटाभारा मसीपुञ्जसमप्रभाः ।
ज्वलच्चिताकुण्डनिभलोचनत्रयभूषिताः ।।१०७९।।
लम्बोदराः पिङ्गजटाः स्थूलाः खर्वकलेवराः ।
नृमुण्डमालाघटितहारग्रैवेयकोज्वलाः ।।१०८०।।
मज्जासृङ्मांसमेदोऽस्थिवशासम्पूरिताननाः ।
घोरदंष्ट्राललज्जिह्वाकरालमुखमण्डलाः ।।१०८१।।
शवोपरि कृतावासा अट्टहासा भयानकाः ।
द्विशीर्षाश्च त्रिशीर्षाश्च तथा विंशतिमौलयः ।।१०८२।।
शतशीर्षास्त्रिपादाश्च बहुपादा अपादकाः ।
त्रिशूलचक्रपरिघगदामुसलतोमरान् ।।१०८३।।
भुशुण्डीचापविशिखपाशपट्टिशमुद्गरान् ।
परश्वङ्कुशखट्वाङ्गभिन्दिपालष्टर्ययोगुडान् ।।१०८४।।
कुन्तप्रासहुलायष्टिशक्तिच्छुरिककर्तृकाः ।
मुष्टीलीचर्मकुणपनागपाशाक्षछुच्छुकाः ।।१०८५।।
घण्टाखर्परपाषाणांस्तथा तर्ज्जनमेव च ।
धारयन्तः करैः सर्वैः व्याघ्रचर्मावगुण्ठिताः ।।१०८६।।

नृत्यन्तो विस्तृतकरा वेगकम्पिजटाभराः ।
द्वात्रिंशत्संख्यका एतादृशो भैरवरूपिणः ॥१०८७॥
ध्यातव्या भैरवाः सर्वे द्वितीयपंक्तिमण्डले ।
[पूज्यभैरवनामानि]
भैरवानामथो नाम क्रमतः कीर्तयामि ते ॥१०८८॥
कालः श्मशानो हुङ्कारोऽसिताङ्गो रुरुरेव च ।
भूताधिपः कृतान्तश्च कालाग्निर्भगमाल्यपि ॥१०८९॥
उग्रायुधो भूतनाथश्चण्डः क्रोधो यमान्तकः ।
प्रचण्डो विकरालश्च कालान्तक इतः परम् ॥१०९०॥
उन्मत्तश्च कपाली च भद्रो मृत्युस्तथैव च ।
उल्कामुखः प्रेतमाली वज्रमुष्टिर्दिगम्बरः ॥१०९१॥
सन्तापको घोरनादः शोषणस्त्रिपुरान्तकः ।
भीषणश्चापि संहारश्चण्डोग्रः सर्वशेषगः ॥१०९२॥
एभिः पदैः भैरवस्य समासो ङेविभक्तिकः ।
आदौ नवाक्षरं मन्त्रं समुच्चार्य ततोऽप्यदः ॥१०९३॥
नमो नियोजयेच्छेषे प्रकार इति कीर्तितः ।
रीतिः पूर्वोदितैवात्र काश्चिद्वक्ष्ये ततोऽपि च ॥१०९४॥
समाप्तावथ चारम्भे कोणेषु युगलं स्मरेत् ।
ऐशान्यां दिशि चारम्भसमाप्ती परिकीर्तिते ॥१०९५॥
इति भैरवपङ्क्तीस्ते समासादुपवर्णिता ।
[तृतीयपंक्तिपूज्यानां भैरवीणां पूजाविधिः]
इदानीं भैरवीपंक्ति कथयास्यवधारय ॥१०९६॥

[भैरवीपूजामन्त्रः]

तारो माया च रोषश्च योगिनी शाकिनी तथा ।
पञ्चेमानि पुरः स्मृत्वा व्याहरेच्चरमे नमः ॥१०९७॥
अन्तरा भैरवीनामान्युद्धरामि क्रमेण हि ।
एतासां हि ध्यानमन्त्रौ कथितौ त्रिपुरारिणा ॥१०९८॥

[पूज्यभैरवीध्यानम्]

लम्बोदरी शुष्कमुखी चर्चिका कालमर्दिनी ।
अग्निजिह्वा वज्रतुण्डी वातवेगा प्रभञ्जना ॥१०९९॥
सम्पत्प्रदा मेघमाला फेरुरावा कटङ्कटा ।
ज्वालिनी पिङ्गला चैव चण्डोग्रा कुलकुट्टिनी ॥११००॥
उल्कानना दीर्घदंष्ट्रा विकराली कपालिनी ।
शवाशिनी दीर्घकेशा काकपर्णी भगाकुला ॥११०१॥
रतिप्रिया पूतना च लेलिहाना विरोधिनी ।
चाण्डालिनी केकराक्षी वह्निकुण्डा मदोत्कटा ॥११०२॥
एतास्तृतीयरेखायां पूजनीया विधानतः ।
नामान्येतानि च तथा भैरव्याश्च पदद्वयम् ॥११०३॥
ङेऽन्तं पृथक् पृथक् कृत्वा मध्य एव नियोजयेत् ।
चतुर्विंशतिनामानि चतुर्दिक्षु नियोजयेत् ॥११०४॥
कोणे द्वयं द्वयं चापि पूर्तावारम्भ एव च ।

[चतुर्थपंक्तिस्थडाकिनीपूजाविधिः]

चतुर्थीं डाकिनीपंक्तिं गदतो विनिबुध्यताम् ॥११०५॥

वाग्भवश्च रमा माया योगिनी शाकिनी तथा ।
बीजानि पञ्चेभान्यादौ शेषे हार्दाभिधो मनुः ॥११०६॥
मध्ये तत्तन्नाम चैव डाकिनीति पदं तथा ।
ङेऽन्तं विधाय संयोज्य शृणु नामान्यतः परम् ॥११०७॥
महारात्रिः कालरात्रिर्विरूपा च महोत्सवा ।
गुह्यनिद्रा वज्रिणी च ततो दोर्दण्डखण्डिनी ॥११०८॥
कौमुदी विमला चैव कौलिनी कालसुन्दरी ।
कुम्भोदरी डमरुका भीमदंष्ट्रा च शूलिनी ॥११०९॥
तारावती भानुमती मेनका भगमालिनी ।
एकानङ्गा वज्रनखी विद्युत्केशाञ्जनप्रभा ॥१११०॥
प्रस्वापनी जम्भका च ज्वालिनी लिङ्गमर्दिनी ।
एकदन्तोल्कामुखी च सर्पजिह्वा रतोत्सवा ॥११११॥
कबन्धकन्धरा शेषे द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ।
रीतिः पूर्ववदेव स्यात् स्थानं सानुक्रमं तथा ॥१११२॥
मन्त्रा भिन्ना न चैतासां ध्यानमस्ति तदीरये ।

[डाकिनीनां ध्यानम्]

काश्चित् बन्धूकसदृशाः काश्चिन्नीलघनप्रभाः ॥१११३॥
काश्चिन्मार्तण्डविम्बाभाः काश्चिदिन्दीवरप्रभाः ।
काश्चित् स्फटिकखण्डाभाः काश्चित् स्वर्णसमप्रभाः॥१११४॥
इन्द्रगोपनिभाः काश्चित् काश्चित् धूमाभविग्रहाः ।
काश्चिच् चम्पकपुष्पाभाः काश्चिदेवाञ्जनप्रभाः ॥१११५॥

दीर्घकर्णचलद्घोरनृमुण्डाङ्कितकुण्डलाः ।
शुष्कस्तनकपोलोरोजङ्घाग्रीवामुखोदराः ॥१११६॥

नरास्थिकृतसर्वाङ्गभूषणाः घोरदर्शनाः ।
ज्वलच्चिताग्निजिह्वाभजटामण्डलमण्डिताः ॥१११७॥

अर्धचन्द्रसमुद्भासिललाटतटपट्टिकाः ।
विदीर्णमुखनिर्गच्छज्जिह्वादंष्ट्राविभीषणाः ॥१११८॥

पादालम्बिजटाभारा दिगम्बर्यः श्मशानगाः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैः सज्जन्त्यः कामलालसाः ॥१११९॥

दोर्भ्यामादाय कुणपान् गिलन्त्यः पितृकानने ।
त्रासयन्त्यस्तर्जयन्त्यो जगदेतच्चराचरम् ॥११२०॥

दीर्घैर्भुजैर्धारयन्त्यः शस्त्रास्त्राणि च भूरिशः ।
बाणान् धनूंषि परिघान् कृपाणांस्तोमरान् गदाः ॥११२१॥

खट्वाङ्गानि त्रिशूलानि कुठारान् मुद्गरानपि ।
भिन्दिपालान् भुशुण्डीश्च शक्तिश्चक्राणि पट्टिशान् ॥११२२॥

शूलान् प्रासांश्च कुणपान् मुसलानङ्कुशान् गुडान् ।
चर्माणि घण्टाडमरून् भेरीझर्झरमर्द्दलान् ॥११२३॥

सवसासृक्पलास्थीनि खर्पराणि बहूनि च ।
नृत्यन्तश्चर्चरीशब्दैः प्रकम्पितजगत्त्रयाः ॥११२४॥

कोटिविद्युद्दुर्निरीक्ष्यज्वलच्चपलतारकाः ।
दीर्घातिशुष्ककठिनगर्ताभुग्नकलेवराः ॥११२५॥

देव्या पारिषदीभूता बद्धाञ्जलिपुटद्वयाः ।
किङ्कर्य आज्ञाकारिण्यः सर्वा देव्याः पुरःस्थिताः ॥११२६॥
एवंरूपाः प्रधा[ध्या]तव्याः डाकिन्यो घोरदर्शनाः ।
अर्चास्थानानि बोध्यानि रीत्या पूर्वोक्तयैव हि ॥११२७॥

[पञ्चम्यां पंक्तौ पूज्यानां शक्तीनां पूजाविधिः]

पञ्चम्यामथ रेखायां पूज्यन्ते शक्तयोऽखिलाः ।

[शक्तिपूजामन्त्रः]

तारमायारमाक्रोधकालीकामाङ्कुशामृतैः ॥११२८॥
बीजैरष्टभिरादिस्थैश्चरमस्थैर्नमः पदैः ।
मध्ये तु शक्तयः सर्वाः तासां नामानि मे शृणु ॥११२९॥

[शक्तिनामानि]

सूक्ष्मा जया तथा माया सुप्रभा विजया प्रभा ।
विशुद्धिर्नन्दिनी कान्तिः विभूतिः कीर्तिरुन्नतिः ॥११३०॥
अपराजिता जिता ऋद्धिः स्मृतिर्लक्ष्मीर्धृतिः मतिः ।
श्रद्धा मेधा क्रिया दीप्ता प्रीतिरिच्छा च चेतना ॥११३१॥
सत्या शान्तिस्तथा रौद्री ज्येष्ठा भद्रा च विद्युता ।
एताः शक्तय आख्याता देव्याः सख्य इव स्थिताः ॥११३२॥

[शक्तिध्यानम्]

ध्यानं यथोदितं वक्ष्ये शक्तीनां शृणु सादरा ।
निरङ्कपूर्णिमापूर्णचन्द्रबिम्बसमाननाः ॥११३३॥
विशालफुल्लराजीवदलशोणायतेक्षणाः ।
विलसद्रत्नताटङ्कश्रवणाभरणोज्ज्वलाः ॥११३४॥

मन्दारमालासन्नद्धधम्मिल्लभरगर्विताः ।
विशालजघनाभोगा अतिक्षीणकटिस्थलाः ॥११३५॥
कठोरपीवरोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताः ।
रत्नमञ्जीरकेयूरकङ्कणाङ्गदशोभिताः ॥११३६॥
किङ्किणीहारमुकुटमुद्रिकावलयान्विताः ।
त्रैलोक्यसारसौन्दर्ययौवनोन्मादगर्विताः ॥११३७॥
सिंहासनसमारूढा विचित्रविविधाम्बराः ।
स्वच्छशीतांशुशकलविराजितललाटिकाः ॥११३८॥
सुशुक्लमाल्यवसनाः स्वस्वचेटीगणैर्वृता ।
गौराङ्गदेहसंशोभिचन्दनागुरुचित्रकाः ॥११३९॥
सुस्मितोद्भासिवदनचञ्चद्दशनपङ्क्तयः ।
भुजाभ्यां धारयन्त्यश्च वराभयमनुत्तमम् ॥११४०॥
आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाः ।
एवंरूपाः प्रयत्नेन ध्यातव्या शक्तयोऽखिलाः ॥११४१॥
उक्त्वा ङेन्तद्वयं शक्तेर्नाम शक्ति तथैव च ।
उभयोर्मन्त्रयोर्मध्ये प्रवेश्य स्थिररूपयोः ॥११४२॥
स्थानस्य परिपाटी तु पूर्ववत्परिकीर्तिता ।

[षष्ठ्यां पंक्तौ योगिनीपूजायाः विधिः]

पंक्त्यां षष्ठ्यां तु तदनु योगिनीः परिपूजयेत् ॥११४३॥
तारह्लीयोगिनीरावडाकिन्यः प्रथमं स्मृताः ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते मध्यस्थान्यधुना शृणु ॥११४४॥

[योगिनीनामानि]

गौरी शिवा कौशिकी च शाकम्भर्यपि शाङ्करी ।
शान्ताऽम्बिका क्षमा धात्री जयन्ती सर्वमङ्गला ॥११४५॥
अपर्णा च स्वधा स्वाहा ताराऽमा विजया जया ।
नन्दा हैमवती कल्या तामसी लिङ्गधारिणी ॥११४६॥
मानसी कुमुदा भद्रा काकाङ्गी पिङ्गलापि च ।
लोहिता कौलिकी वामा सर्वशेषे पतङ्गिनी ॥११४७॥
नामान्येतानि सर्वाणि योगिनीपदमेव च ।
पृथक् पृथक् विधायात्र ङेऽन्तत्वेनान्तरा क्षिपेत् ॥११४८॥
अनुक्रमणिका चान्या पूर्वोदितसमा स्मृता ।

[सप्तम्यां पंक्तौ चामुण्डापूजायाः विधिः]

सप्तम्यामप्यथो पंक्तौ चामुण्डां परिपूजयेत् ॥११४९॥
मायारोषौ डाकिनी च फेत्कारी प्रलयादनु ।
आद्यानीमानि शेषे तु हार्दमन्त्रः प्रतिष्ठितः ॥११५०॥
अन्तः स्थायीनि कलय पदानि खलु साम्प्रतम् ।

[चामुण्डानामानि]

चण्डिका भैरवी रौद्री शिवदूती च कालिका ॥११५१॥
करालिनी भ्रामरी च भीमा चाथ घटोदरी ।
कूष्माण्डी चण्डघण्टा च चाण्डाली कौणपी तथा ॥११५२॥
कात्यायनी स्कन्दमाता मसीपुञ्जा दिगम्बरी ।
मातङ्गिनी पिङ्गकेशी वर्वरा रक्तपायिनी ॥११५३॥

प्रेतमाला तारकाक्षी लोलजिह्वा च घर्घरा ।
कङ्कालिनी कङ्कमुखी राक्षसी च पिशाचिनी ॥११५४॥
व्याघ्रानना च वेताली सर्वशेषे करङ्किणी ।
एता आख्याश्च चामुण्डा ङेऽन्ता मध्ये नियोजयेत् ॥११५५॥
पूर्वोदितैव सरणिरत्रापि प्रतिबुध्यताम् ।

[अष्टम्यां पंक्तौ देवीनां पूजाया विधिः]

अष्टम्यामधुना पङ्क्तौ देवीः सर्वाः प्रपूजयेत् ॥११५६॥
यद्यप्यासां हि वर्तन्ते मन्त्राः ध्यानानि च ध्रुवम् ।
एतस्मिन् कर्मणि तथा न प्रयोजनमेतयोः ॥११५७॥
त्रिपुरघ्नेन यन्नोक्तं तदहं कथमीरये ।
अथावधेहि देवीनां पूजनं पङ्क्तिवर्ति यत् ॥११५८॥
तारो मैधं च पाशश्च भौवनेश्यङ्कुशोऽपि च ।
लक्ष्मीकामौ वधूश्चापि योगिनी रुट् च शाकिनी ॥११५९॥
द्वादशः परिविज्ञेयो नारसिंहार्ण उत्तमः ।
तत्तद्देवीनाम ङेऽन्तं मध्यतो विनियोजयेत् ॥११६०॥
अस्त्रद्वयं च हृदयं शीर्षं सर्वत्र शेषगम् ।

[पूज्यदेवीनामानि]

इदानीं क्रमतो नाम गदतो विनिबोध मे ॥११६१॥
सर्वाद्या तु महालक्ष्मीस्ततो महिषमर्दिनी ।
ततश्च राजमातङ्गी भुवनेश्वर्यनन्तरम् ॥११६२॥

राजराजेश्वरी चैव शूलिनी त्वरितापि च ।
स्वर्णकोटेश्वरी कात्यायनी वाग्वादिनी तथा ॥११६३॥
कुब्जिका कालरात्रिश्च शिवदूती च कुक्कुटी ।
जयकङ्केश्वरी चापि तुम्बुरेश्वर्यनन्तरम् ॥११६४॥
कालसंकर्षणी भोगवती च धनदा तथा ।
सिद्धिलक्ष्मीरुग्रतारा ततस्त्रिपुरसुन्दरी ॥११६५॥
हरसिद्धा छिन्नमस्ता भीमादेवी च बाभ्रवी ।
गुह्येश्वरी डामरी च चण्डेश्वर्यर्द्धमस्तका ॥११६६॥
धूमावती महामारी त्रिंशदेता द्व्याधिकाः ।
पंक्तीनामित्थमष्टानां क्रमतो देव्य ईरिताः ॥११६७॥
द्वात्रिंशत् प्रतिरेखं हि गुह्यावरणपूजने ।

[कापालिकदिगम्बरयोर्मते नवमीमिह पंक्तिं कृत्वा मातृणां पूजाया निर्देशः]

अधिकं कुरुतः किंचित् कापालिकदिगम्बरौ ॥११६८॥
उररीकृत्य नवमीं पङ्क्तिं मातृः महन्ति ते ।
वेदादिरोषरावार्णैरादिस्थैश्चरमे नमः ॥११६९॥
मध्ये मातृस्तथा ङेऽन्ताः कृत्वा संपूजयन्ति ते ।
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥११७०॥
देवसेना स्वधा स्वाहा तुष्टिः पुष्टिः स्मृतिर्धृतिः ।
कुलदेव्यात्मदेवी च षोडशेमाः प्रकीर्तिताः ॥११७१॥
अष्टौ निश्चितमेव स्युः कोणेषु च चतुर्ष्वपि ।
तथा द्विद्विमिता देव्य आशास्वपि चतसृषु ॥११७२॥

इयान् विशेषस्त्वत्रास्ते पूर्वं नामालिखं समम् ।
पूर्वोदितानां पङ्क्तीनामष्टानां मन्त्रगक्रमे ॥११७३॥
विशेषो वर्तते भूयान् न कोणरहितोऽणु:[?] ।
पंक्तीनां मत्क्रमोक्तानां व्युत्क्रमं केऽपि कुर्वते ॥११७४॥
न ते रहस्यं जानन्ति त्रिपुरघ्नमुखोद्गतम् ।
सिद्धानां पंक्तितः पूर्वं भैरवीपंक्तिमूचिरे ॥११७५॥
व्युत्क्रमं पुनरन्योन्यं विभिन्नं विदधत्यपि ।
वृथाभिमानिनस्ते ते तत्त्वं जानन्ति न प्रिये ॥११७६॥

[अष्टारबहिर्भागस्थवर्तुले कालीपूजाविधिः]

अथाष्टाराद् बहिःसंस्थं वर्तुलं वर्तते हि यत् ।
चतुर्धा तद्विभज्येशि पूर्वादिहरितो यथा ॥११७७॥
चतस्रस्तदधिष्ठात्रीः कालीः पीठगता यजेत् ।
तासां मन्त्रानुद्धरामि दत्तकर्णा भव क्षणम् ॥११७८॥

[वर्तुलस्थकालीपूजामन्त्रः]

वेदादिमायारोषाश्च योगिनीशाकिनीरमाः ।

[पीठचतुष्टयाभिधानम्]

ओड्रियानं तथा जालन्धरं पूर्णगिरिस्तथा ॥११७९॥
कामरूपं ततः शेषे पीठोऽमीभिर्विगृह्य हि ।
ङन्तत्वभावमास्थाय बीजषट्केन संमिलेत् ॥११८०॥
तथार्थकीर्तिपूर्णाश्च कामशब्दसमन्विताः ।
ऐक्यभावं समास्थाय मङ्गलेतिपदेन हि ॥११८१॥

पुनश्च कालिकाशब्दैः ङेऽन्तत्वेन निरूपितैः ।
पदात् स्वसमया पश्चात् सहितापदमेव च ॥११८२॥
ङेऽन्तरूपत्वमालम्ब्य योज्या हृन्मनुना सह ।
मण्डलस्य चतुर्भागस्थायिनीः कालिकास्तथा[१] ॥११८३॥
पूजयेत् प्रोक्तमनुना अथाग्रे प्रकृतं शृणु ।
अष्टारं वर्तते यत्तदष्टभागान्वितं स्फुटम् ॥११८४॥
नागा मुद्राः क्षेत्रपाला गणाधिपतयस्तथा ।
प्रत्येकं तेऽष्ट वै नागा मुद्रास्तावत्य एव च ॥११८५॥
क्षेत्रपालाश्च तावन्तो गणेशा अपि तत्समाः ।
क्रमेण तासां महनं निखिलं गदतः शृणु ॥११८६॥

[अष्टारमध्यगतनागपूजाविधिः]

तारो माया च नागश्च रोषो रावः पुरो गताः ।
नमः पदं शेषगतं मध्यगानुपवर्णये ॥११८७॥
वासुकिस्तक्षकश्चैव मणिभद्रश्च कालियः ।
धृतराष्ट्रैरावतौ च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥११८८॥
इत्येते क्रमतो नागा एषां वर्णानतः शृणु ।
श्वेतो रक्तः पाटलश्च श्यामः पाण्डुर एव च ॥११८९॥
पीतधूसरधूम्राश्च एतैर्वर्णपदस्य हि ।
विग्रहः कथितं ह्येतत् द्वितीयं पदमीश्वरि ॥११९०॥
जटासूत्रं नूपुरं च केयूरं हार एव च ।
यज्ञोपवीतं तदनु कङ्कणं क्षुद्रघण्टिका ॥११९१॥

१—का: परा: ङ ।

ताटङ्कं शेषगं चैते रूपिशब्दस्य विग्रहः ।
पदानि त्रीणि चैतानि ङेऽन्तानि परिकीर्तयेत्[1] ॥११६२॥
आद्यं विशेष्यभूतं हि शेषस्थे द्वे विशेषणे ।
पूर्वादिदिक्क्रमेणैव पूजयेदष्टपन्नगान् ॥११६३॥
नागशब्दस्य नानार्थतया कमललोचने ।
अष्टकाष्ठाधिपानष्टौ नागानस्मिन् क्षणे क्रमात् ॥११६४॥

[कापालिकदिगम्बराभ्यां नागपदेन दिग्गजमादाय तेषां पूजा क्रियते]

अर्हतो डामरोक्तत्वात् कापालिकदिगम्बरौ ।
प्रमाणमिति कृत्वा तत् प्रवदामि यथाविधि ॥११६५॥
मैधलक्ष्मीस्मरानुक्त्वा त्रीन् वर्णान् प्रथमस्थितान् ।
रोषरावास्त्रहृच्छीर्षाण्यन्ते सप्ताक्षरीमपि ॥११६६॥
मध्य ऐरावतं त्वाद्यं पुण्डरीकं द्वितीयगम् ।
तृतीयं वामनं चापि चतुर्थं कुमुदं तथा ॥११६७॥
अञ्जनं पञ्चमं षष्ठं पुष्पदन्तमथेरयेत् ।
सप्तमं सार्वभौमं च सुप्रतीकमथाष्टमम् ॥११६८॥
ङेऽन्तानेतान् संविधाय मध्येषु विनियोजयेत् ।
एतेषामनुदेव्येकं पदमास्ते विशेषणम् ॥११६९॥
पूर्वमाग्नेययाम्यं च नैर्ऋत्यां पश्चिमं तथा ।
वायव्यं चोत्तरमपि शेषमैशानमेव च ॥१२००॥

---

१ - परिनिर्दिशेत् ङ ।

एतैर्दिग्गजशब्दस्य विग्रहो ङेविभक्तिकः ।
एवंप्रकारेणोद्धारः कथितस्तव सुन्दरि ॥१२०१॥
फलबाहुल्यमिच्छन्तः कुर्युरेतामपि ध्रुवम् ।

[मुद्राणां पूजाविधिः]

आवृत्तौ तु द्वितीयायां मुद्रा अष्टौ प्रपूजयेत् ॥१२०२॥
तारह्रीकूर्चयोगिन्यः शाकिनीसहिता इमाः ।
पुरःशेषे नमो युक्ता मध्यगांच्छृण्वतः परम् ॥१२०३॥
मन्त्रः कला च सिद्धिश्च मात्रा माया ततः परम् ।
चक्रं कुलं च गुह्यं च शब्दैरेतैः सविग्रहाः ॥१२०४॥
मुद्राशब्दाः सङेन्ताश्च शब्दानन्यान् पुनः शृणु ।

[मुद्राष्टकनामानि]

योनिर्वशीकरणयुगङ्कुशं धेनुरेव च ॥१२०५॥
आकर्षणं द्रावणं च सामरस्यं च खेचरी ।
एते सन्धिविहीनाः स्युरेतदग्रपदं शृणु ॥१२०६॥
आद्यष्टमुद्रासहिताः पदैरेभिश्च विग्रहः ।
सन्धानं ङेविभक्त्या च मन्त्ररीतिरितीरितम् ॥१२०७॥

[क्षेत्रपालानां पूजाविधिः[

तृतीयावृत्तिरुदिता क्षेत्रपालैर्वरानने ।
सारस्वतरमाकामाङ्गनाशाकिन्य[1] एव च ॥१२०८॥
पुरः शेषे नमः स्वाहापदं समनुकीर्तयेत् ।
मध्ये ङेन्तान् क्षेत्रपालान् वक्ष्यमाणपदैः सह ॥१२०९॥

१—०डाकिन्य ङ ।

पूर्वभागस्थितैः साकं विग्रहीकृत्य संवदेत् ।

[पूज्यक्षेत्रपालनामानि]

अथ नामानि वक्ष्येऽहं तेषामाद्यस्तु हेतुकः ॥१२१०॥

त्रिपुरान्तको द्वितीयस्तु वेतालोऽपि तृतीयकः ।

हुताशजिह्वस्तुर्यश्च महाकालोऽपि पञ्चमः ॥१२११॥

कपाली चैकपादश्च भीमरावस्ततः परम् ।

[गणाधिपतीनां पूजायाः विधिः]

चतुर्थ्यामप्यथावृत्तौ गणाधिपतयः प्रिये ॥१२१२॥

पूजनीयाः प्रयत्नेन महाविघ्नौघनाशकाः ।

तारह्रीरोषयोगिन्यः शाकिनीसहिता इमाः ॥१२१३॥

पुरः स्थिता, नमः शब्दः सर्वशेषे प्रतिष्ठितः ।

चतुर्थ्येकवचः संस्थान् गणेशान् प्रवदामि ते ॥१२१४॥

लम्बोदरो वक्रतुण्डो गजवक्त्रस्तथैव च ।

हेरम्ब एकदन्तश्च महाकायस्ततः स्मृतः ॥१२१५॥

गणाधिपतिरस्यानु विघ्नान्तक इतः परम् ।

आवृत्तयश्चतस्रः स्युरेवमष्टारपूजने॥१२१६॥

कापालिका यामलीयास्तथा चैव दिगम्बराः ।

पुनरन्ये सुरेशानि द्वे आवृत्ती प्रकुर्वतः ॥१२१७॥

कपालडमरोक्तत्वात् ते अपि व्याहरामि ते ।

आवृत्तावथ पञ्चम्यां शैलानां पूजनं चरेत् ॥१२१८॥

तारमायारमाकामरूपं पञ्चादिभागगाः ।

रावास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते मध्ये शैलान्निशामय ॥१२१९॥

सुमेरुरथ कैलासो हिमालय इतः परम् ।
गन्धमादनविन्ध्यौ च हेमकूटस्ततोऽप्यनु ॥१२२०॥
महेन्द्रमलयौ वाथ चतुर्थ्येकवचोऽन्विताः ।
सर्वान् विधाय युञ्जीत मध्य ग्रावरणार्चने ॥१२२१॥
षष्ठ्यामथ नदीरष्टौ पूजयेत् पुण्यदायिनीः ।
सुमेरुविन्ध्यमलयहिमवत्पादनिःसृताः ॥ १२२२॥
याः स्वयं प्रविशन्त्यब्धिमसङ्गत्यापरा नदीः ।
यासु वर्षासु देवेशि रजोदोषो न विद्यते ॥१२२३॥
वाग्भवः पाशमाये चाङ्कुशः शाकिन्यनन्तरम् ।
इमानि पुर उच्चार्य पञ्च बीजानि सुन्दरि ॥१२२४॥
शेषे कूर्चास्त्रमूर्ध्नापि मध्यगाः सरितः शृणु ।
गङ्गा च नर्मदा तापी गोदावर्यथ कीर्त्यते ॥१२२५॥
कृष्णवेल्ला च कावेरी ताम्रपर्णी तथैव च ।
वितस्ता सर्वशेषस्था चतुर्थ्येकवचोऽन्विताः ॥१२२६॥
सर्वाः कृत्वान्तरा युज्यादित्येतत् सरिदर्चनम् ।
दोषो नाप्यत्राणुरपि दिग्गजार्चावदीश्वरि ॥१२२७॥
ज्ञात्वैते ग्रपि कर्तव्ये प्रमाणं तत्र मद्वचः ।
एवमष्टारसंस्थाने षडावृत्तय ईरिताः ॥१२२८॥

[अष्टारोपरितनस्थितवर्तुलस्थदेवानां पूजाविधिः]

ग्रष्टारस्योर्द्ध्वभागे तु पुनर्वर्तुलमस्ति हि ।
अष्टभागं च तत्कृत्वा पूर्वादिहरितो यथा ॥१२२९॥

वक्ष्यमाणाः पूजयीत देवताः सुरवन्दिते ।
आदौ पञ्चैव बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ॥१२३०॥
सर्वशब्दा भ्यसन्ताश्च पुंलिङ्गत्वेन तत्परम् ।
भिन्नभिन्नास्ततः शब्दास्तादृशाकारधारिणः ॥१२३१॥
निर्देश्यः सर्वशब्दोऽपि स्त्रीलिङ्गत्वेन तत्परम् ।
ये पूर्वमीरिताः शब्दास्तेऽपि स्त्रीलिङ्गधारिणः ॥१२३२॥
ङीवन्ता उभयं चापि भ्यसन्तत्वेन कथ्यते ।
अष्टाक्षरी सर्वशेषे सर्वेषां सदृशी मता ॥१२३३॥
इति सामान्यरूपेण मनवः प्रतिपादिताः ।
तानेव साम्प्रतं देवि विशेषात्प्रतिपादये ॥१२३४॥
वेदादिः शाकिनी चैव डाकिनी प्रलयस्तथा ।
फेत्कारी चैव बीजानि कथ्यन्ते पञ्च वै पुरः ॥१२३५॥
भिन्नाः शब्दाः नाकचरः खेचरो भूचरस्तथा ।
रोदसीचर इत्येवं पातालचर इत्यपि ॥१२३६॥
ततो जलचरश्चापि शाखाचर इतः परम् ।
गोचरः सर्वशेषे तु नानार्थत्वेन वर्णितः ॥१२३७॥
शेषगानधुना वर्णानष्टौ संप्रतिपादये ।
अस्त्रत्रयं च कूर्चश्च हृदयं शीर्षमेव च ॥१२३८॥
एतैः संपूजयेदेवं विभक्ते मण्डलेऽष्टधा ।

[लब्धसिद्धीनामृषीणां पूजाविधिः]

एतस्यैवाथ द्वितीयामावृत्तिमवधारय ॥१२३९॥

ये पूर्वमृषयो जाता नानाकल्पेषु पार्वति ।
यावद्भिः सहिताः शिष्यैः सिद्धिं देवीप्रसादतः ॥१२४०॥

प्राप्तवन्तः स्वयंसिद्धाः जाताश्च तदनुग्रहात् ।
स्वस्वशिष्यगणैर्युक्तास्तेषां पूजनमुच्यते ॥१२४१॥

द्वितीयायामथावृत्तौ तस्योद्धारं वदाम्यहम् ।
तारमैधौ योगिनी च रमाकामस्त्रियस्तथा ॥१२४२॥

कूर्चराव इमेऽष्टौ हि प्रतिमन्त्रं स्थिराः प्रिये ।
नारदो गौतमश्चापि वसिष्ठः कपिलस्तथा ॥१२४३॥

कश्यपोऽप्यथ जाबालो हारीतस्तदनन्तरम् ।
सम्बर्तः सर्वशेषे च ऋषयोऽमी प्रकीर्तिताः ॥१२४४॥

नाथशब्दस्य चैतेषां विग्रहो नित्य उच्यते ।
सङेन्तत्वेन वक्तव्योऽथ संख्याः क्रमतः शृणु ॥१२४५॥

आदावष्टौ षोडश च चतुर्विंशतिरित्यपि ।
द्वात्रिंशत्तदनु ज्ञेया चत्वारिंशदतः परम् ॥१२४६॥

अष्टचत्वारिंशदपि षट्पञ्चाशत्ततोऽप्यनु ।
चतुःषष्टिः सर्वशेषे पूर्वैरस्य पदैः सह ॥१२४७॥

षष्ठाद्ययोस्तु सन्धानं शेषे प्रकृतवत्स्थितम् ।
आभिस्तु शिष्यसहितेत्येवं शब्दस्य विग्रहः ॥१२४८॥

क्रमेण स विशेष्यस्य वचो लिङ्गधरः स्मृतः ।
हृच्छिरोमनुसंयुक्ताः प्रत्येकं मनवः स्फुटाः ॥१२४९॥

मौलेयाः किञ्चिदधिकं कुर्वन्त्यत्र सुरेश्वरि ।
तदपि व्याहरिष्यामि तेषां मततया स्थितम् ॥१२५०॥

[कापालिकादिसम्प्रदायपरिचयः]

देव्युवाच

कापालिकाः के देवेशि पुनः के च दिगम्बराः ।
मौलेयाः के च कथ्यन्ते मतं तेषां च कोदृशम् ॥१२५१॥
कैः कैस्तन्त्रैः तथा धर्मैः सर्वे व्यवहरन्ति ते ।
समासादेतदाचक्ष्व महत्कौतूहलं मम ॥१२५२॥

श्रीमहाकाल उवाच

साधु साधु वरारोहे धन्यासि त्वं न संशयः ।
मतज्ञनाय सर्वेषां रोचते यन्मनस्तव ॥१२५३॥
विशिष्य सर्वं वक्ष्ये ते श्रुत्वा चैवावधारय ।
कपालडामरप्रोक्तमतसञ्चारिणो नराः ॥१२५४॥
कापालिकाः निगद्यन्ते ते महाकौलिका अपि ।
संहितां भैरवप्रोक्तां ये पुनः समुपासते ॥१२५५॥
दिगम्बरास्ते विख्याता न पुनर्नग्नरूपिणः ।
एतेऽपि कौलिकश्रेष्ठाः श्मशानादिषु निर्घृणाः ॥१२५६॥
प्रसन्नाः [प्रपन्नाः?] **यामल**प्रोक्तं ये पन्थानं सुरेश्वरि ।
ते मौलेयाः परिख्याता महाकौलिकतो वराः ॥१२५७॥
ये च **शाबरतन्त्र**ज्ञास्तन्मतैकप्रवर्तिनः ।
विख्याता भाण्डिकेरास्ते मौलेयसदृशा मताः ॥१२५८॥

प्राप्ताः पाशुपतीं दीक्षां शैवाः कथ्यन्त ईश्वरि ।
अश्वमेधादिकर्तारो याज्ञिकाः वेदमार्गगाः ॥१२५९॥
अर्हतोपासका जैना बौद्धाः बुद्धोपसेवकाः[१] ।
चार्वाकाः बौद्धभेदाः स्युः सांख्याश्चैव निरीश्वराः ॥१२६०॥
निराकारं भावयन्तो वेदान्तिन इति स्मृताः ।
सौरवैष्णवगाणेशाः विज्ञेयास्ते पृथक् पृथक् ॥१२६१॥
स्मार्ताः स्मृत्युदिताध्वन्याः श्रौताः श्रुतिपथस्थिताः ।
मदुक्तसंहितोक्तिज्ञा मध्यस्थाः परिकीर्तिताः ॥१२६२॥
एषामाद्यास्तु चत्वारो मदुक्तज्ञोऽपि पञ्चमः ।
एते शाक्ततयाख्याता देव्युपासनतत्पराः ॥१२६३॥

[स्वसंहितोक्तोपासनपद्धतिवैशिष्ट्याभिधानम्]

श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च ।
उभयं कुर्वते देवि मदुदीरितवेदिनः ॥१२६४॥
अतोऽदः श्रेष्ठमन्येभ्यो मन्येऽहमिति पार्वति ।

[मौलेयादिसम्प्रदायनिन्दा]

मौलेयभाण्डिकेरौ हि स्यातां यद्यपि कौलिकौ ॥१२६५॥
युक्तायुक्तं[२] विचार्यैवं प्रवर्तेते तथापि तौ ।
गर्हाकृत्कर्मकर्तारौ निर्घृणौ निन्द्यतां गतौ ॥१२६६॥
सर्वाधमौ परिज्ञेयौ कापालिकदिगम्बरौ ।
श्मशानवासिनौ नित्यं कुणपाम्बरधारिणौ ॥१२६७॥

१—०पसेविनः ङः । २—इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके न दृश्यते ।

सर्वभक्षौ च बीभत्सौ वेदमार्गबहिष्कृतौ ।
भक्ष्येष्वेषामभक्ष्यं हि गोमांसं सुरवन्दिते ॥१२६८॥
शक्तिश्चैषामसंभोग्या स्वकीया जननी तथा ।
विमाता भ्रातृजाया च भगिनी दुहिता स्नुषा ॥१२६९॥
पितृमातृस्वसा चैव मातुलानी तथैव च ।
प्रवेशयन्त्यमूः सर्वाः शक्तिकोटौ वरानने ॥१२७०॥
देवीं विना भावयन्ति नैवान्यं मनसाऽपि ते ।
विस्तारबीजमित्येवं वर्तते पापकर्मणाम् ॥१२७१॥
दिगम्बरः पापतमो देवि कापालिकादपि ।
नरमांसं यदश्नाति देव्यै दत्वा प्रसादवत् ॥१२७२॥
डामरं यामलं चापि तथा **भैरवसंहिताम्** ।
तथा **शाबरतन्त्राणि** शास्त्रमेषां प्रकीर्तितम् ॥१२७३॥
कुर्वन्ति देव्याः पूजादिं तत्तत्तन्त्रोदित क्रमैः ।
पूजां कृत्वा उपादेयाः कदाचाराद्विगर्हिताः ॥१२७४॥
मतज्ञानैः किमेभिस्ते प्रकृतं शृणु सम्प्रतम् ।

[सम्प्रदायान्तरेषु निर्दिष्टस्य पूजाधिक्यस्य कथनम्]

यामलीयास्तु मौलेयाः पुनरष्टारसीमनि ॥१२७५॥
अर्चयन्त्यधिकं किञ्चित् तद्रीतिं कलय प्रिये ।
ताररावौ डाकिनी च फेत्कारी प्रलयादनु ॥१२७६॥
पञ्चेमानि पुरः स्मृत्वा पठेदन्ते नमः शिरः ।
चतसृष्वपि काष्ठासु मध्ये ङेऽन्तानुदीरयेत् ॥१२७७॥

धर्मो ज्ञानश्च वैराग्यमैश्वर्यं च क्रमात् पृथक् ।
विदिक्ष्वधर्ममज्ञानमवैराग्यमतः परम् ॥१२७८॥
अनैश्वर्यं तथैशान्यामित्येतस्य क्रमोऽखिलः ।
पुनरुक्ततया नैतन्मतं मम वरानने ॥१२७९॥
पीठन्यासे तथा योगरत्ने हृदय एव च ।
अमीषां पूजनं प्रोक्तं धर्मादीनां पुरा मया ॥१२८०॥
तथाप्यदोषः करणे फलबाहुल्यमेव च ।

[नवारपूजाविधिः]

नवारपूजामधुना समाकलय सुन्दरि ॥१२८१॥
नवबीजानि पुरतः प्रतिमन्त्रं स्थिराणि हि ।
तत्तद्देवीस्ततो ङेऽन्ताः स्त्रीलिङ्गाः परिकीर्तिताः[१] ॥१२८२॥
पञ्चाक्षरी पुनः शेषे सर्वत्रैव नियोजयेत् ।

[नवारपूजायाः विशेषेणाभिधानम्]

उक्तं सामान्यरूपेण विशेषेणाधुना ब्रुवे ॥१२८३॥
चैतन्यमायाकमलाकामस्त्रीरावडाकिनीः ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी बीजानीमानि वै नव ॥१२८४॥
ब्रह्माणी प्रथमा देवी माहेश्वर्यप्यनन्तरम् ।
कौमारी वैष्णवी चैव वाराही तदनन्तरम् ॥१२८५॥
नारसिंही तथैन्द्राणी शिवदूत्यष्टमी पुनः ।
चामुण्डा नवमी चापि नवेमा मध्यगाः स्मृताः ॥१२८६॥

१—०कीर्तयेत् ङ ।

हृदस्त्रं शीर्षमन्ते च ज्ञेया पञ्चाक्षरी त्वियम् ।

[तत्र नवग्रहपूजाविधिः]

द्वितीयायामथावृत्तौ पूजयेद्वै नव ग्रहान् ॥१२८७॥

मायारमाडाकिनी च बीजत्रयमिदं पुरः ।

नमः शेषेऽन्तरासंस्थपदानि कलयाधुना ।।१२८८॥

आदित्यः प्रथमः सोमो मङ्गलो बुध एव च ।

बृहस्पतिस्तथा शुक्रः शनैश्चर इतः परम् ॥१२८९॥

राहुः केतुरितीदृक्षांच्छब्दाङ्ङेऽन्तान् समुद्धरेत् ।

ईदृग्गुणग्रहपदमस्यानु प्रतिकीर्तयेत् ॥१२९०॥

एवं मन्त्रा नव व्यक्ता द्वितीयावृत्तिपूजने ।

[अत्र नवचक्रपूजाविधिः]

अतः परं तु चक्राणि देहस्थानि समर्चयेत् ॥१२९१॥

यद्यपि स्युः षडेतानि चक्राण्येव शुचिस्मिते ।

सूक्ष्मरूपतयान्येषामपि ग्रहणमिष्यते ॥१२९२॥

कन्दमूलाधारयुक्त सहस्राम्बुरुहग्रहः ।

मैधपाशौ तथा प्रेतो भैरव्यङ्कुशमेव च ॥१२९३॥

पञ्चेमान्यादिमार्णानि शेषे कूर्चास्त्रहृच्छिरः ।

पदानि मध्यसंस्थानि प्रवदाम्यधुना तव ॥१२९४॥

कन्दमूलाधार इति ततः कुण्डलिनीत्यपि ।

ततः स्वाधिष्ठानमपि मणिपूरकमेव च ॥१२९५॥

अनाहतं विशुद्धं च तत आज्ञाह्वयं प्रिये ।

सहस्रदलमस्यानु शब्दाः एते नवेरिताः ॥१२९६॥

एतैश्चक्रपदस्यापि विग्रहो ङे विभक्तितः ।
विशिष्य कथिता तुभ्यं नवचक्रार्हणेदृशी ॥१२९७॥

[सम्प्रदायान्तरविहितकर्तव्याधिक्याभिधानम्]

चक्रशब्दस्य सन्धाय नानार्थत्वं वरानने ।
अधिकं कुरुतः किञ्चित् कापालिकदिगम्बरौ ॥१२९८॥
सिद्धान्तकथने प्रान्ते या रेखा वर्तुलाकृतिः ।
तदत्र चक्रशब्देन कथ्यते वरवर्णिनि ॥१२९९॥
न कदापि बहिर्गच्छेत् स्वस्वसिद्धान्तयुक्तितः ।
अभेद्यमप्रतीकार्यं चक्रवच्चक्रमुच्यते ॥१३००॥
अथोद्धारक्रमं वक्ष्ये कापालिकमतक्रमैः ।
तारमैधत्रपालक्ष्मीकामाः पञ्चादिगोचराः ॥१३०१॥
पूर्वोदितैरविज्ञेया सर्वशेषे षडक्षरी [?] ।
जन्मकालश्च मृत्युश्च मन्त्रः सिद्धिः कुलं तथा ॥१३०२॥
समयो भावना योनिः शब्दा एतेऽन्तरस्थिताः ।
विगृह्य चक्रशब्देन ङेऽन्तं रूपं विधृत्य च ॥१३०३॥
एवं नवारपूजेयं चतुर्द्धा कथिता मया ।

[पञ्चारपूजाविधि]

पञ्चारपूजामधुना समाकलय सादरा ॥१३०४॥
दुरूहामल्पबुद्धीनां विचार्यां धीमतामपि ।
असंलक्ष्यक्रमां मध्ये प्रसङ्गान्तरयोगतः ॥१३०५॥
परिपाटीं पुरो वक्ष्ये शेष उद्धारमेव च ।
नवानामपि कोणानामुपरिष्टाद्वरानने ॥१३०६॥

पञ्च कोणाः स्थिताः ज्ञेया एकैकस्मिँस्तु तत्र हि ।
सप्तविंशतिसंख्याका कोणे पूजा प्रजायते ॥१३०७॥
पञ्चानामपि कोणानां पञ्चत्रिंशच्छताधिका ।
आख्या पुनर्भिन्नभिन्ना कोणानां जगदीश्वरि ॥१३०८॥
सृष्टिस्थित्याख्यसंहारानाख्याभासापदाभिधा ।
कुलक्रमतयैकैव साख्या भिन्नार्चनक्रमे ॥१३०९॥
आदौ सामान्यरूपेण तत्कुलक्रमकालिकाः ।
पूजयेत्तदनु ह्यासामुपासकतयोद्भटान् ॥१३१०॥
पूजयेत्तत्क्रमेणैव दिव्यौघानपि तत्परम् ।
पूजाद्वयमिदं प्रोक्तं ततो द्वादशकालिकाः ॥१३११॥
तत्सोपासकदिव्यौघपुटिताः प्रत्यनन्तरम् ।
चतुर्विंशतिसंख्याका पूजेयं सुरवन्दिते ॥१३१२॥
उक्तानुक्ततया शेषे पूर्णाप्येका निगद्यते ।
सप्तविंशतिरित्येकरूपिण्यर्चा प्रजायते ॥१३१३॥
रीत्यानया परिज्ञेया पञ्चस्वर्चासमाकृतिः ।
दिव्यौघनाम्नाञ्चरमे पदव्या समये तया ॥१३१४॥
नामानि भिन्नभिन्नानि तिष्ठन्त्येकञ्च पार्वति ।
तत्तत्समय एवादः प्रकाश्यं युक्तियुक्ततः ॥१३१५॥
क्रमादुद्धारमधुना कथयाम्यवधारय ।
तारह्रीकूर्चयोगिन्यः सरावाः प्रथमं स्थिताः ॥१३१६॥
ततः सृष्टिकुलेत्युक्त्वा क्रमार्णाद्गतकालिका ।
देव्यम्बाश्रीपादुकाभ्यो नम इत्यपि कीर्तयेत् ॥१३१७॥

एष सामान्यरूपेण मन्त्रः सर्वार्च्चने मतः ।
अपरः सर्वदिव्यौघसामान्यार्चासु कथ्यते ॥१३१८॥
चैतन्यकमलाकामस्त्रीडाकिन्यः क्रमात् स्थिताः ।
पूर्वमन्त्रस्य पञ्चार्णबीजादनु चतुर्दश ॥१३१९॥
यानि वर्णानि तान्यत्र देयानि तदनन्तरम् ।
ससन्ध्युपासकपदाद्दिव्यौघश्रीपदं भवेत् ॥१३२०॥
पादुकाभ्यो नमश्चेति द्वितीयो मनुरीरितः ।
अतः परं चतुर्विंशमन्त्रानाकर्णय प्रिये ॥१३२१॥
आदौ द्वादशकालीनां दिव्यानां द्वादशापि हि ।
एकैकं तस्य चैकेकं पुटितं मन्त्रमुच्चरेत् ॥१३२२॥
पूजावसर ईशानि शृणूद्धारमतः परम् ।
पुरतः पञ्चबीजानां श्रेणो परिनिगद्यते ॥१३२३॥
सर्वत्र सा स्थिरा ज्ञेया ततोऽनु च षडक्षरी ।
सा कालव्यापिनी चोक्ता ततो नामानि वै पृथक् ॥१३२४॥
अन्ते षोडशवर्णाः स्युः कालव्यापिन एव हि ।
इति सामान्य उद्धारो विशेषमवधारय ॥१३२५॥
आदिमन्त्रादिमाः पञ्चबीजश्रेणीपुरस्थिताः ।
ततः स्थिरा सृष्टिकुलक्रमे वेति षडक्षरी ॥१३२६॥
नामान्यथो भिन्नभिन्नान्याकर्णय वरानने ।
आदिविश्वौ सर्गगुप्तभावनीतय ईरिताः ॥१३२७॥

मोहहर्षक्रोधजम्भप्राणसृष्टय एव च ।
शेषसंस्थान् षोडशार्णानतःपरमुदीरये ॥१३२८॥
तच्चापि कालिकाशब्दाद्देव्यम्बापदमेव च ।
श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यपि पार्वति ॥१३२९॥
पूर्वशब्दैः कालिकाया विग्रहश्च समर्थ्यते ।
निः सन्धिरादिशब्देन प्रथमः परिकीर्तितः ॥१३३०॥
अथ दिव्यौघमन्त्राणामुद्धारं वर्णयामि ते ।
अत्रापि पञ्चबीजानि[1] कूटस्थानि पुरः सदा ॥१३३१॥
पुनरष्टाक्षरी पूर्ववदेषा स्थिरतान्विता ।
ततः पूर्वोदितैः शब्दैर्मोहत्वेन[2] व्यवस्थितैः ॥१३३२॥
स्थिरया च नवाक्षर्य्या विगृह्य परिरक्ष्यते ।
ततो नामानि भिन्नानि द्विद्विवर्णात्मकानि हि ॥१३३३॥
तैरिन्द्रशब्दस्य पुनर्विग्रहः परिपठ्यते ।
तदन्ते नाथशब्दश्च पञ्चस्वपि समः स्थिरः ॥१३३४॥
शेषे दशाक्षरी ज्ञेया नाथवत्स्थैर्य्यभागिनी ।
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषमवधारय ॥१३३५॥
एषां सामान्यपूजायां पञ्चबीज्युदिता हि या ।
सैवात्रापि प्रयोक्तव्या स्थिरामष्टाक्षरीं शृणु ॥१३३६॥

१—वर्णानि ङ । २—शब्दैः सोहत्वेन ङ ।

तच्च सृष्टिकुलस्यानुक्रमागतपदं भवेत् ।
नवाक्षरी कालिकानु देव्यम्ब्रोपासकेति च ॥१३३७॥
द्विद्विवर्णात्मकान् भिन्नभिन्नांच्छब्दानथो शृणु ।
देवीविद्या खगो ज्ञानं धर्मः सत्यं सुखं तथा ॥१३३८॥
सिद्धः कल्पकुलं विज्ञो धीरश्च द्वादशैव हि ।
श्री पादुकां पूजयामि नम एषा दशाक्षरी ॥१३३९॥
एवं षड्विंशतिर्मन्त्रा मयोद्धृत्य प्रकाशिताः ।
सप्तविंशतिसंख्याकं पूर्णरूपं मनुं शृणु ॥१३४०॥
तारह्रीरावडाकिन्यः फेत्कारी तदनन्तरम् ।
सृष्टिकूटं सृष्टिकालीं कालग्रसनकारिणि ॥१३४१॥
निराकारे च तदनु पुनः खेचरचर्यपि ।
ततस्त्रिभुवनेत्यर्णात् भरिताद् भैरवाद्रवेः ॥१३४२॥
निस्तरङ्गपरे सर्वार्थसाधक इतीरयेत् ।
कुलाकुलाद्रूपिणी च शून्ये शान्ते मनोन्मनि ॥१३४३॥
कैवल्ये च निरूपे च ततो निरुपमेऽपि च ।
निर्विकाशे सुप्रकाशे सृष्टीश्वरि तथैव च ॥१३४४॥
योगिनीकमलाकामवधूकूर्चास्त्रहृच्छिरः ।
इति मन्त्रं समुच्चार्य्य तारः सृष्टिकुलक्रम ॥१३४५॥
पालिकायै गुह्यकाल्यै नम एतेन पूजयेत् ।
इत्येकारपरिपाटी विशिष्य गदिता तव ॥१३४६॥

द्वितीयामधुना वक्ष्ये सावधाना निशामय ।
अस्यां क्रमो यः कथितः स एवात्रानुवर्त्तते ॥१३४७॥
अग्रे तान्येव बीजानि शेषे तान्येव कीर्त्तयेत् ।
दिव्यौघमन्त्रेष्वप्येवं विशेषस्त्वधुनोच्यते ॥१३४८॥
सृष्टिस्थाने स्थितिर्ज्ञेया सर्वमन्यत्पुरोक्तवत् ।
नामानि कालिकायास्तु त्रित्रिवर्णात्मिकानि हि ॥१३४९॥
दिव्यानामपि तावन्ति क्रमात्तान्यधुना ब्रुवे ।
नियमः समयश्चापि प्रकाशो मङ्गलं तथा ॥१३५०॥
सम्मोहश्च प्रतापश्च सम्बर्तो विभवोऽपि च ।
प्रकृतिः सुकृतञ्चैव समाधिस्ताण्डवं तथा ॥१३५१॥
स्थितिक्रमे कालिकातः पूर्वशब्दा इति स्मृताः ।
व्यभिचारो नाणुरपि पूर्वस्मादस्य बुध्यताम् ॥१३५२॥
दिव्यौघा अथ कथ्यन्ते सर्वदैतदुपासकाः ।
भुवनञ्च विवेकश्च कौलिको दीक्षितोऽपि च ॥१३५३॥
प्रलयश्च प्रमोदश्च संविच्च [1]कमलोदयौ ।
मर्यादाश्च विवादाश्च सर्वशेषेऽमृतं तथा ॥१३५४॥
अजादिनामभिः सन्धिः कर्तव्यस्तत्तदन्तरे ।
पूर्वं यथेन्द्रशब्दान्तै दिव्यौघपदमीरिता ॥१३५५॥
तथात्रानन्दशब्दोऽन्ते तदन्ते नाथ एव च ।
सप्तविंशतिमन्त्राश्च स्युरेतेष्वपि पूर्ववत् ॥१३५६॥

१–संविदचकमलोदयौ–घ. ।

स्थितिक्रमस्य वै पूर्णामधुना कथयामि ते ।
चैतन्यं नरसिंहश्च विनादादित्रयं तथा ॥१३५७॥
स्थितिकूटं समुच्चार्य स्थितिकालि समीरयेत् ।
सर्वाप्यायनकारिण्यनु स्थिति प्रतिकीर्तयेत् ॥१३५८॥
निरोधसम्पूर्णपदाल्लक्षणीति समुद्धरेत् ।
भवबन्धपदस्यानु विमोचिनि समुद्धरेत् ॥१३५९॥
शुद्धबुद्धस्वरूपेण ततोऽपरिमिताक्षरात् ।
तेजो निधानं सन्ध्यूनं महाबलपराक्रमम् ॥१३६०॥
सामरस्यपदस्यानु चारिणि प्रति संस्मरेत् ।
पुनः स्थितोश्वरीत्युक्त्वा पूर्वमन्त्रान्तगामिनः ॥१३६१॥
वर्णान् दशात्रापि वदेत् साधको मन्त्रपूर्त्तये ।
एवं मन्त्रं समुच्चार्य तारात् स्थितिकुलक्रमम् ॥१३६२॥
पालिकायै गुह्यकाल्यै नम एतेन पूजयेत् ।
इति द्वितीयाररीतिर्विविच्य प्रतिपादिता ॥१३६३॥

[तृतीयारविधानम्]

तृतीयारविधानं त्वमधुना कलय प्रिये ।
अत्रापि सैव मर्यादा या प्रोक्ता पूर्वयोर्द्वयोः ॥१३६४॥
चतुर्वर्णानि नामानि ज्ञेयान्यत्रोभयोरपि ।
पूर्ववत् पञ्चबीज्यत्र सैवात्र प्रतिपाद्यते ॥१३६५॥
सृष्टिस्थितिपदस्थाने संहारपदमीरयेत् ।
नामानि कलयेदानीं कालिकानां क्रमेण हि ॥१३६६॥

शवाशिनी रक्तमुखी कालरात्रिस्ततः परम् ।
संहारिणी चण्डवृत्तिरावेशिन्यथ कथ्यते ॥१३६७॥
वेगाकुला महामाया ततोऽप्यनु भगप्रिया ।
कामातुरा ततो जालन्धरी त्रिदशवन्दिते ॥१३६८॥
कल्पमूर्त्तिः सर्वशेषे कालिकापूर्वगा इमाः ।
दिव्यौघानामथो नाम चतुर्वर्णात्मकं शृणु ॥१३६९॥
कुलाकुलं प्रथमतः परापरमतः परम् ।
धर्म्माधर्मस्ततो ज्ञानाज्ञानं चैव वरानने ॥१३७०॥
नित्योऽनित्यश्च सदसद् विद्याविद्या ततः परम् ।
चराचरं ततो भावाभावोऽपि च मदामदः ॥१३७१॥
लयालयः शक्त्यशक्तिरित्थं द्वादश कीर्त्तिताः ।
इन्द्रानन्दपदस्यान्ते पदमीश्वरसंज्ञितम् ॥१३७२॥
तदन्ते नाथशब्दश्च सर्वमन्यत्पुरोक्तवत् ।
तार्तीयाख्यमथो पूर्णं शृणु मन्त्रं क्रमात्प्रिये ॥१३७३॥
वेदादिः कर्णिका चैव दुष्कृतं तदनन्तरम् ।
तन्त्रा चर्पटमस्यानु कूटं संहारनामकम् ॥१३७४॥
संहारकालीति ततो वदेत् सम्बुद्धिपूर्वकम् ।
महाचण्डपदाद् योगेश्वरि चण्डपदं ततः ॥१३७५॥
कर्मसाधिनि संकीर्त्य विश्वग्रासपदं वदेत् ।
घस्मर्यनु महामारी ततो विग्रहधारिणि ॥१३७६॥

जगद्भक्षिणि संकीर्त्य रुद्रक्रोधिनि संलिखेत् ।
सर्वशत्रुपदस्यान्ते प्रमर्द्दिनि विभावयेत् ॥१३७७॥
ततो महापापपदात् प्रमोचिनि समुद्धरेत् ।
भोगमोक्षप्रदे चोक्त्वा संहारेश्वरि कीर्तयेत् ॥१३७८॥
शेषे सैवात्रापि वेद्या पूर्वयोर्या दशाक्षरी ।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य वेदादिं तदनन्तरम् ॥१३७९॥
संहारपदतश्चापि कुलक्रमपदं वदेत् ।
पालिकायै गुह्यकाल्यै नम एतेन पूजयेत् ॥१३८०॥

[चतुर्थारपूजाविधिः]

विधानमवधेहि त्वं तुर्यस्यारस्य साम्प्रतम् ।
कुलक्रमपदस्य प्रागनाख्यापदमीरयेत् ॥१३८१॥
दिव्यौघानां च सामान्यपूजास्वप्येतमीदृशम् ।
बीजाली सैव चात्रादौ सैवान्ते षोडशाक्षरी ॥१३८२॥
कालिकानां नाममध्ये त्रित्रिवर्णात्मकं प्रिये ।
कालाग्निरथ मार्त्तण्डो विचित्रं मुखरं तथा ॥१३८३॥
ततो निदानमाधारो हिरण्यं भैरवोऽपि च ।
संक्षोभश्च विरावश्च दुर्गमस्तदनन्तरम् ॥१३८४॥
विज्ञेया द्वादशतमा तुरीया सर्वशेषगा ।
इयान्विशेषः कथितः सर्वमन्यत्पुरोक्तवत् ॥१३८५॥

[दिव्यौघनामानि]

दिव्यौघानामथो नाम वर्णयामि सुरेश्वरि ।
द्विद्विवर्णात्मकं नाम शेषे पादपदादिकम् ॥१३८६॥

सर्वत्रैवं परिज्ञेयं तदाख्या चतुरक्षरी ।
आचार्यपदमेतेषां पद्धतिः परिकीर्तिता ॥१३८७॥
तदन्ते नाथशब्दश्च सर्वत्रैव समः स्थितः ।
पद्मः शङ्खो ध्वजो वज्रः कल्पः सिद्धिस्तथैव च ॥१३८८॥
धर्मो लोकः सत्यनित्यौ शुद्धसूक्ष्मौ ततः परौ ।
अष्टवर्णात्मकं चैषां तेन नाम प्रसिद्ध्यति ॥१३८९॥

[अनाख्यापूर्णहोममन्त्रः]

अथा नाख्यापूर्णहोममनुमाकर्णयोत्तमम् ।
विवत्सादिचतुष्कं च तारादिं प्रथमं स्मरेत् ॥१३९०॥
अनाख्याकूटमस्यान्तेऽनाख्याकालि ततः परम् ।
महाचण्डे चण्डमुखि चण्डयोगेश्वरीति च ॥१३९१॥
ततोऽनु सर्वसमयलोपिनि प्रतिकीर्त्तयेत् ।
कुलार्णतसमयार्णाच्च प्रकाशिनि समालिखेत् ॥१३९२॥
विसन्ध्यं मृतमूर्त्ते च तथैवासिद्धिदायिनी[1] ।
नवपञ्चचक्रनिलये ततः परमुदीरयेत् ॥१३९३॥
ततः सन्धिविहीनं स्यादनाख्येश्वरि चेत्यपि ।
योगिन्याद्या शिरोऽन्ता च सैवात्रापि दशाक्षरी ॥१३९४॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य प्रणवञ्च ततः परम् ।
यथाक्षरपदं पश्चात् स्यादनाख्याकुलक्रम ॥१३९५॥
पालिकायै गुह्यकाल्यै नमः शेषे नियोजयेत् ।
एवमारस्य तुर्यस्य विधानं प्रतिपादितम् ॥१३९६॥

१—'साधिनी ख. ञ ।

भासाभिधस्य चारस्य पञ्चमस्याधुना शृणु ।
भारापदं प्रयोक्तव्यं पञ्चबीजाक्षरादनु ॥१३९७॥
दिव्यौघानामादिमन्त्रेष्वेवमेव सुरेश्वरि ।
भिन्नभिन्नानि नामानि कालिकानामथ ब्रुवे ॥१३९८॥
तान्यपि द्विद्विवर्णानि भासाकालीकुलार्चने ।
मन्त्रो हंसक्रमश्चक्रं बलं योगस्तथैव च ॥१३९९॥
व्योम ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र ईशः शिवस्तथा ।
पुरोक्तवत्सर्वमन्यद्विज्ञेयं बुद्धिशालिभिः ॥१४००॥
दिव्यानामप्यथो नाम द्विद्विवर्णात्मकं शृणु ।
मही छत्रं योगधरासिद्धिवृद्धय एव च ॥१४०१॥
प्राणः काशी कुलं मन्त्रं सुधा ज्ञानानि च क्रमात् ।
एषामन्ते प्रदातव्यो धरशब्दोऽखिलात्मकम् ॥१४०२॥
अस्याप्यन्ते सिद्धपदं पद्धतित्वेन विश्रुतम् ।
तदन्ते नाथशब्दश्च सर्वत्रैव समः स्थिरः ॥१४०३॥
सर्वमन्यत्पूर्वरीत्या वेदितव्यं वरानने ।

[भासापूर्णाहुतिमन्त्रः]

भासापूर्णाहुतिमनुमधुनाकलय स्फुटम् ॥१४०४॥
षट्चक्रादिद्वयं तारपूर्वं प्रथमतः स्मरेत् ।
शाम्भवं चैव चिच्छक्ति भासाकूटं ततः परम् ॥१४०५॥
भासेश्वरि समाभाष्य महातेजोवति स्मरेत् ।
प्रकाशिनीति प्रवदेत्तुरीयापदतस्ततः ॥१४०६॥

विसन्ध्यवर्णेश्वरि च सर्वाप्यायनकारिणि ।
प्रबोधिनि ब्रह्मविद्यापदादनु ततः परम् ॥१४०७॥
स्वमित्यक्षरं ते ब्रूयात् प्रकाशय युगं प्रिये ।
सामरस्यपदात् तद्वत् समयाच्चापि चारिणी ॥१४०८॥
सर्वशेषे परिज्ञेया योगिन्यादिदशाक्षरी ।
इति पञ्चारचक्रस्य विधानमुपपादितम् ॥१४०९॥
अत्र मन्त्रः समुदितः पञ्चत्रिंशच्छतं तथा ।
पञ्चारे पूजितेऽमुष्मिन्नेतेन विधिना प्रिये ॥१४१०॥
अन्यावरणपूजा हि न कृताऽपि कृता भवेत् ।
अकृतायाममुष्यां तु कृताप्यन्याऽकृताभवेत् ॥१४११॥

[प्रकारान्तरेण प्रत्येकपञ्चारपूजाविधिः]

अथ प्रत्येकपञ्चारपूजामन्यां निशामय ।
पृथिव्यादीनि पूज्यानि महाभूतानि पञ्च वै ॥१४१२॥
विधानं तस्य कलय गदतो मम सुन्दरि ।
मैधरावौ पाशमायाङ्कुशाः पञ्चाग्रतः स्थिताः ॥१४१३॥
केवलौ हृच्छिरोमन्त्रौ सर्वशेषे प्रतिष्ठितौ ।
मध्ये पृथिव्यै अद्भ्यश्च किन्त्वयं सन्धिनान्वितः ॥१४१४॥
तेजसे वायवे चैव तथाकाशाय चेत्यपि ।

[अत्र कापालिकमतम्]

विदधत्यधिकं किञ्चित् अत्र कापालिकाः प्रिये ॥१४१५॥
तदपि व्याहरिष्यामि फलाधिक्याय केवलम् ।
पञ्चेन्द्रियाण्यर्चयन्ति पञ्चारे मन्त्रपूर्वकम् ॥१४१६॥

तच्च भूतक्रमेणैव तत्तद्वस्तुनिदानतः ।
तारो रमा च रावश्च डाकिनी कर्णिकाऽपि च ॥१४१७॥
अग्रतोऽमूनि बीजानि चरमे हृदयं शिरः ।
मध्ये घ्राणाय जिह्वायै चक्षुषे च त्वचे तथा ॥१४१८॥
कर्णायेति च पूज्यन्ते पञ्चेन्द्रियगणाः क्रमात् ।
आत्मानं पण्डितम्मन्याः किञ्चिदन्यद्दिगम्बराः ॥१४१९॥
प्रस्तुवन्त्यन्यदधिकं तदपि व्याहरामि ते ।

[अत्र दिगम्बरमतम्]

कल्पादीनि तु बीजानि पञ्च तारादिमानि हि ॥१४२०॥
अग्रतः समनूद्धृत्य पश्चिमे केवलं नमः ।
मध्ये गन्धो रसो रूपं स्पर्शः शब्दोऽप्यनुक्रमात् ॥१४२१॥
प्रत्येकं विग्रहीभूतास्तन्मात्रापदसंचयैः ।
ङेऽन्तश्चेत्युदिता मन्त्रा इन्द्रियग्राह्यवस्तुनः ॥१४२२॥

[अत्र मौलेयमतम्]

आधिक्यमाचरन्त्यत्र मौलेयाः पुनरेव हि ।
पञ्च प्राणान् पूजयन्ति तच्चापि विनिबोध मे ॥१४२३॥
पाशः कला च शर्वश्च मैधमश्वत्थ एव च ।
व्याहृत्य पुरतः पञ्च शेषे हृच्छिरसी वदेत् ॥१४२४॥
आदौ प्राणस्ततोऽपानः समानस्तदनन्तरम् ।
उदानस्तदनु व्यानो ङेन्तान् मध्ये क्रमात् पठेत् ॥१४२५॥

[अत्र भाण्डिकेरमतम्]

इतोऽप्यधिकमिच्छन्ति भाण्डिकेरा वरानने ।
एभिरेवादिभागस्थैः बीजैः शेषे नमोऽन्वितैः ॥१४२६॥

मध्ये ङेऽन्तान् पूजयन्ति पञ्चान्यान् प्राणमारुतान् ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥१४२७॥

इति पञ्चारपूजा ते विस्तरेणोपपादिता ।

[त्र्यारपूजाविधिः]

त्र्यारपूजाऽधुना देवि कथ्यते बहुविस्तरा ॥१४२८॥

गुणास्त्रयस्त्रयो देवा अग्नयस्त्रय एव च ।
भुवनानि तथा त्रीणि तिस्रोऽवस्थास्ततः परम् ॥१४२९॥

तिस्रः सन्ध्यास्त्रयः कालास्तिस्रो वीथय एव च ।
वस्तूनामेवमष्टानां त्रितयं त्रितयं भवेत् ॥१४३०॥

तारह्रीरावबीजानि पुरो भागे नियोजयेत् ।
चरमे हृच्छिरौमन्त्रौ मध्यगांछृण्वतः परम् ॥१४३१॥

सत्वं रजस्तमश्चैभिर्गुणशब्दस्य विग्रहः ।
शुक्लो रक्तः श्याम एभिर्वर्णशब्दस्य विग्रहः ॥१४३२॥

पालनसृष्टिसंहारैः कर्तृशब्दस्य विग्रहः ।
ङेऽन्तास्त्रयोऽपि कर्तव्या नियोज्या मध्य एव च ॥१४३३॥

तारः स्मरश्च प्रासादो बीजानि त्रीणि वै पुरः ।
शेषे तावेव मन्त्रौ द्वौ त्रींच्छब्दान् मध्यगाँच्छृणु ॥१४३४॥

विष्णुर्ब्रह्मा च रुद्रश्च ङेऽन्तत्वेन निरूपिताः ।
पुरः कामत्रपालक्ष्म्यस्तावेव चरमे मनू ॥१४३५॥
मध्ये ङेऽन्ता दक्षिणश्च गार्हपत्यस्तथैव च ।
पुनराहवनीयश्च ङेऽन्तोऽप्यग्निः पृथक् पृथक् ॥१४३६॥
मैधाऽमाशाकिनीरादौ वदेच्छेषे नमः शिरः ।
स्वर्गं मर्त्यं च पातालं मध्ये ङेऽन्तं विनिर्दिशेत् ॥१४३७॥
चैतन्यकामताराः स्युरेकैकार्णाः पृथक् पृथक् ।
मध्ये बाल्यं यौवनं च जराः ङेऽन्ताः पृथक् पृथक् ॥१४३८॥
हृच्छिरोऽस्त्रं क्रमेणैवैकैकत्र विनियोजयेत् ।
पुरस्ताराङ्गना कूर्चा अङ्गुष्ठोऽन्तकेवलः ॥१४३९॥
मध्ये प्रातश्च मध्याह्नसायाह्नाख्यैः पदैः प्रिये ।
सन्ध्यां विगृह्य ङेऽन्तांश्च प्रत्येकं योजयेन् मनौ ॥१४४०॥
पाशमायाङ्कुशाः पूर्वं शेषे हृच्छिरसी अपि ।
अतीतो वर्तमानश्च भविष्यदिति नामभिः ॥१४४१॥
पदैः कालपदश्चापि विगृह्य वरवर्णिनि ।
सप्तम्यावरणार्चायां मध्ये ङेऽन्तां विनिःक्षिपेत् ॥१४४२॥
तारो माया योगिनी च शाकिनी डाकिनी तथा ।
एतानि पुरतो दत्वा शेषे कूर्चास्त्रहृच्छिरः ॥१४४३॥
मध्येऽजवीथी प्रथमं नागवीथी ततः परम् ।
देववीथी च निर्देश्या ङेऽन्तत्वेन सुरेश्वरि ॥१४४४॥

प्रत्येकं त्रित्रिरूपेण प्रोक्ताष्टौ त्र्यारगार्हणा ।

[प्रत्येकत्र्यारपूजामन्त्रः]

अतः परं तु प्रत्येकं त्र्यारस्य मनुरुच्यते ॥१४४५॥

पञ्चारपूर्णाहुतिवदुक्तानुक्तस्य पूजनात् ।
नामुष्मिन् मतभेदोऽस्ति केषाञ्चिदपि पार्वति ॥१४४६॥

सर्वागमानामत्रार्थे ऐकमत्यं व्यवस्थितम् ।
अथ त्रयाणामाराणां प्रत्येकं वच्मि ते मनुम् ॥१४४७॥

मैधत्रयं शाकिनी च भ्रामर्यादिद्वयं ततः ।
पुरश्च मन्दसंमोहौ भोगसृष्टी ततः परम् ॥१४४८॥

दशैतानि तु बीजानि पुरतः समुदाहरेत् ।
वज्रकापालिनि प्रोच्य ततः सिद्धिकरालि च ॥१४४९॥

पुनर्वदेत् महाघोररूपधारिणि चेत्यपि ।
श्मशानचारिणि ततः सर्वभूतभयङ्करि ॥१४५०॥

द्विवारमीरयेद्देवि कूर्चास्त्रे तदनन्तरम् ।
पुनश्च सर्वसमयलाभं कुरुयुगं ततः ॥१४५१॥

भौवनेशी योगिनी च वधूर्ह्च्छिर एव च ।
इत्येको मन्त्र उदित प्रथमारस्य पार्वति ॥१४५२॥

[त्र्यारषटकद्वितीयारपूजनमन्त्रः]

मनुं द्वितीयस्यारस्य गदतो विनिबोध मे ।
तारत्रयं पुरः प्रोच्य रमा कामश्च गारुडः ॥१४५३॥

पाशः प्रेतोऽङ्कुशश्चापि डाकिनी चेति वै दश ।
ततो महाचण्डयोगेश्वरि घोराट्टहासिनि ॥१४५४॥
श्मशानचारिणि ततः फेरुराकिणि [?] चेत्यपि ।
विमुक्तचिकुरे चापि नवपञ्च पदात् ततः ॥१४५५॥
प्रवदेच्चक्रनिलये नीलमेघप्रभे ततः ।
अक्षादित्रितयं हार्दशिरोमन्त्रौ ततः स्मृतौ ॥१४५६॥
इति द्वितीयस्यारस्य मन्त्रः संप्रतिपादितः ।

[त्र्यारघटकतृतीयारपूजामन्त्रः]

तार्तीयकारमन्त्रं तमधुना कलय प्रिये ॥१४५७॥
मायाबीजत्रयं चादौ तदग्रे हारकर्णिके ।
नाराचतन्त्रे तस्यानु नादान्तक इतः परम् ॥१४५८॥
ततोऽनु चर्पटं वीरो दशैते पुरतः स्थिताः ।
ततो भगवति प्रोच्य चण्डकापालिनि स्मरेत् ॥१४५९॥
एतस्याग्रे कौलमतप्रवर्तिनि समालिखेत् ।
कल्पान्तकारिण्युक्त्वा च महापिङ्गजटाक्षरात् ॥१४६०॥
भारभासुर इत्येवं मुण्डमालिन्यतः परम् ।
प्रकृत्यपरवर्णानु शिवनिर्वाणदे ततः ॥१४६१॥
कुण्डो गर्भश्च दीपश्च नमः स्वाहा च पश्चिमे ।
एवमारत्रयस्यापि मनुरुद्धृत्य दर्शितः ॥१४६२॥
स्मार्तकौलिकभिक्षूणां सर्वेषां सदृशं त्विदम् ।

[बिन्दुपूजोपक्रमः]

वक्ष्येऽधुना बिन्दुपूजां यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१४६३॥

तस्यैकमन्त्र आदिस्थः शेषेऽप्येक उदाहृतः ।
मध्ये उच्चावचाश्चान्ये पूजारीतय ईरिताः ॥१४६४॥
क्रमतः सर्वमाख्यास्ये सावधाना निशामय ।
आदावादिस्थितं मन्त्रं वदाम्युद्धृतिपूर्वकम् ॥१४६५॥
तारो मैधश्च पाशं च कला माया च शाकिनी ।
मन्मथः कमला कान्ता कूर्चो डाकिन्यतः परम् ॥१४६६॥
प्रलयश्चापि फेत्कारो व्यजनं हारिणी तथा ।
रञ्जनी सर्वशेषे च षोडशैवं प्रकीर्तिताः ॥१४६७॥
ङेऽन्ता ततो गुह्यकाली कूर्चास्त्रं हृदयं शिरः ।
एतेनैवादिभूतेन मन्त्रेण गुणशालिना ॥१४६८॥
प्रथमं पूजयेद् बिन्दुं ततोऽन्यैर्मन्त्रसंचयैः ।
अतः परं तु कौलानां मतभेदान्निशामय ॥१४६९॥

[कापालिकरीत्या बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्]

पूर्वोक्तानां चतुर्णां हि डामरन्यस्तचेतसाम् ।
विरुद्धं नैकमप्येषु कृत्वैतत् प्रब्रवीम्यहम् ॥१४७०॥
उपदिष्टं च यन्मह्यं त्रिपुरघ्नेन वै पुरा ।
तदपि व्याहरिष्यामि सर्वशेषे स्वकं मतम् ॥१४७१॥
गणरूपेण संख्याता ये देवा देव्य एव वा ।
या देवयोनयश्चापि बिन्दौ तेषां समर्हणा ॥१४७२॥
अवरा शतकोटैस्तु न न्यूना कोटितस्तथा ।
सा संख्या वेदितव्यात्र कापालिकमतार्चने ॥१४७३॥

प्रतिमन्त्रं स्थिराण्यादौ नव बीजानि पार्वति ।
भिन्नभिन्नास्ततः संख्यास्ताभिः कोटिपदस्य च ॥१४७४॥
विग्रहोऽसौ चिरस्थायि पुनर्भिन्नपदानि हि ।
ताभिस्ततः पूर्वगस्य समासः परिकीर्तितः ॥१४७५॥
विभक्तेरथ तुर्याया बहुत्वे सकलो मतः ।
शब्दमर्यादयोर्न्नेयं लिङ्गमेषां धिया तथा ॥१४७६॥
सप्तवर्णाः सर्वशेषे सर्व्वेषां सदृशाः स्मृताः ।
उद्धार एव सामान्यः प्रथमं कथितो मया ॥१४७७॥
विशेषमधुना वच्मि प्रयोगं मन्त्रसिद्धये ।
भौवनेशी योगिनी च वधूरङ्कुशमेव च ॥१४७८॥
नृसिंहकमलाकामडाकिन्यः प्रेत एव च ।
आदौ चतुरशीतिः स्यादशीतिस्तदनन्तरम् ॥१४७९॥
द्विसप्ततिश्चानुभवेदष्टषष्टिरितः परम् ।
चतुःषष्टिश्च षष्टिश्च षट्पञ्चाशत् ततः परम् ॥१४८०॥
पञ्चाशत् पञ्चचत्वारिंशच्चत्वारिंशदेव च ।
षट्त्रिंशच्च त्रयस्त्रिंशद्द्वात्रिंशस्त्रिंशदेव च ॥१४८१॥
चतुर्विंशतिरस्यानु विंशतिः षोडशापि च ।
द्वादशोऽनु नव त्रि स्यादेकं शेषे प्रतिष्ठितम् ॥१४८२॥
भैरवो भैरवी चापि चामुण्डा डाकिनी तथा ।
योगिनीयक्षयक्षिण्यः खेचरः खेचरी तथा ॥१४८३॥

सिद्धः सिद्धा देवता च गन्धर्वस्तदनन्तरम् ।
गन्धर्वी किन्नरश्चापि किन्नरी तदनूद्यते ॥१४८४॥
विद्याधरस्ततो विद्याधरी चापि प्रकीर्त्यते ।
देवयोनिश्चाप्सरसो देवी चाप्येकविंशतिः ॥१४८५॥
रावरोषास्त्रहृच्छिर्षाण्यन्ते च विनियोजयेत् ।
इत्येकविंशतिमितैर्मनुभिर्बिन्दुपूजनम् ॥१४८६॥
कापालिका विदधति डामरोक्ततया तथा ।

[दिगम्बरपथा बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्]

अन्यदेव प्रस्तुवन्ति पुनरस्मिन् दिगम्बराः ॥१४८७॥
तदपि व्याहरिष्यामि फलभूयस्त्वहेतवे ।
तेषामपि च देवेशि संख्यापूर्वोऽर्चनक्रमः ॥१४८८॥
साधकैः सा च विज्ञेया पञ्चाशद्भ्यो नवाधिका ।
क्वचिद् द्वे द्वे तिष्ठतोऽस्यां वर्तन्ते त्रीणि च क्वचित्॥१४८९॥
तत्र तत्रैव वक्ष्यामि तेषामपि च निर्णयम् ।
आदौ सामान्यमुद्धारं कथयिष्यामि ते मनाक् ॥१४९०॥
अत्राप्यादावष्टबीजी स्थिराः संख्यास्ततः परम् ।
त अस्थिराः परिज्ञेयाः पुनः शब्दाः पृथक् पृथक् ॥१४९१॥
तेऽप्यस्थिरा वेदितव्यास्ततोऽनु चतुरक्षरी ।
स्थावरा साथ वक्ष्यामि विशेषोद्धारमस्य हि ॥१४९२॥
मैधपाशाङ्कुशक्रोधरावप्रेतपरामृतम् ।
पञ्चाशदूनपञ्चाशत् सप्तविंशतिरेव च ॥१४९३॥

षड्विंशतिस्तथा पञ्चविंशतिस्तदनन्तरम् ।
अष्टादश ततः सप्तदश षोडश एव च ॥१४९४॥

ततोऽनु पञ्चदश च द्वौ वारौ च चतुर्दश ।
त्रयोदशस्ततश्चापि द्विवारं द्वादशोच्चरेत् ॥१४९५॥

एकादश दश प्रोच्य नव वारद्वयं वदेत् ।
अष्टवारद्वयं चाथ सप्त वारत्रयं वदेत् ॥१४९६॥

षड्वारौ द्वौ पञ्च चापि चतुर्वारद्वयं तथा ।
त्रिवारद्वितयं चाथ द्वि ततोऽप्येकमेव हि ॥१४९७॥

द्वात्रिंशत्संख्यकाः संख्या एवं ते प्रतिपादिताः ।
एतासामुत्तरपदं क्रमतो वर्णयाम्यहम् ॥१४९८॥

लिपिर्वायुश्च नक्षत्रं छन्दस्तत्त्वं तथैव च ।
द्वीपो मेघस्तथा यज्ञक्रिया तस्यानु वै तिथिः ॥१४९९॥

भुवनञ्च तथैवेन्द्रो विश्वे च तदनु स्मृताः ।
आदित्यो राशिरथ वै रुद्रादिरपि कथ्यते ॥१५००॥

ग्रहो निधिर्वसु ततः कुलाचल उदीर्यते ।
ऋषिः स्वरश्च जिह्वा च ऋतुर्वाणस्ततः परम् ॥१५०१॥

क्लेशः समुद्रस्तदनु आश्रमस्ताप एव च ।
ज्योतिः कर्म तथा ब्रह्म द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ॥१५०२॥

अथोत्तरपदैरेभिः समासः पुरतोदितैः ।
चतुर्थ्यास्तु बहुत्वेन निर्देश्याः सर्व एव ते ॥१५०३॥

उपान्त्यं द्विवचोरूपमन्त्यं चैकवचस्तथा ।
हार्दशीर्षाभिधौ मन्त्रौ सर्वशेषे प्रतिष्ठितौ ॥१५०४॥
कार्यं सर्वत्र सन्धानं विशेषोद्धार ईदृशः ।
ईदृशीमधिकां बिन्दुपूजां कुर्युर्दिगम्बराः ॥१५०५॥
न दोषः करणे त्वस्य फलबाहुल्यमिच्छताम् ।

[मौलेयमार्गतः बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्]

मौलेयानामथो वच्मि मतं बिन्दुप्रपूजने ॥१५०६॥
तद्यामलोक्तमिति हि सर्वैः संगृह्य ते वचः ।
अभिधास्यामि निखिलं मन्त्रोद्धरणपूर्वकम् ॥१५०७॥
पुरतः पञ्च बीजानि सर्वत्रैकत्वभाञ्जि हि ।
ततः परं द्विद्विपदघटितं पदमुच्यते ॥१५०८॥
तद्विग्रहीभूतमथ भिन्नं भिन्नं तदीरितम् ।
विभक्तेरथ तुर्याया द्विवचोरूपमिष्यते ॥१५०९॥
ततो नवाक्षरी शेषे प्रतिमन्त्रं स्थिरा मता ।
एषोऽवरो निगदित इदानीमुत्तमं शृणु ॥१५१०॥
मैधं माया रमा कामो डाकिनी च यथाक्रमम् ।
शुभाशुभं पुण्यपापं जन्ममृत्यू ततः परम् ॥१५११॥
ततश्च स्वर्गनरकं शीतोष्णमपि चान्वतः ।
ततो ज्ञेयञ्च जीवात्मपरमात्मेति वै पदम् ॥१५१२॥
भावाभावमहोरात्रमावापोद्वाप एव च ।
ततोऽनु प्रकृतिविकृतिशिवशक्ति ततः परम् ॥१५१३॥

नादविन्दु च तस्यानु द्वादशैवं प्रकीर्तिताः ।
रावकूचौं ततोऽस्त्राणां त्रितयं हृदयं शिरः ॥१५१४॥
मौलेयानामियं पूजा विशेषेणोपपादिता ।
युक्तरूपतयाऽदोऽपि ग्राह्यं पूजाविधौ नरैः ॥१५१५॥

[भाण्डिकेरसंप्रदायानुसारं बिन्दुपूजाप्रकारकथनम्]

पुनः **शाबरतन्त्रज्ञा** भाण्डिकेराः प्रयुञ्जते ।
बिन्दुपूजाविधावन्यत्तदपि व्याहरामि ते ॥१५१६॥
या या शक्तिर्यत्र यत्र देव्यास्तिष्ठत्यबाधिता ।
सा सा शक्तिस्तत्र तत्र पूज्यते तन्मतस्थितैः ॥१५१७॥
अभिधास्ये तदुद्धारं सामान्याच्च विशेषतः ।
बीजत्रयं भिन्न भिन्नं प्रतिमन्त्रमुदीर्यते ॥१५१८॥
ततः शब्दा भिन्नभिन्नास्ते च ङेऽन्ताः प्रकीर्तिताः ।
पदानि पुनरन्यानि पृथक् पृथगितः परम् ॥१५१९॥
तैर्विग्रहः शक्तिपदस्यापि ङेरूपधारकः ।
अन्ते षडक्षरी ज्ञेया स्थिरा सा शक्तिशब्दवत् ॥१५२०॥
इति सामान्य उद्धारो विशेषमधुना शृणु ।
तारमायारमाः शक्तिसुधासोमास्ततः परम् ॥१५२१॥
पाशप्रेतपराश्चापि योगिनीशाकिनीस्त्रियः ।
चूडामणिशिखाजम्भास्तुङ्गमन्दारवेदयः ॥१५२२॥
सुरसः समरो रागः कुटिला रञ्जिनी घटी ।
नादान्तकश्चामरश्च व्यजनं तदनन्तरम् ॥१५२३॥

चर्पटं मणिमाला च हारिणी तदनु स्मृता ।
मारण्डश्च विनादश्च विमर्दस्तदनूदितः ॥१५२४॥
दाक्षिकं सौमतं चापि प्रतानं सर्वशेषगम् ।
त्रिबीजानि द्वादशैवं तव देवि मयोदिता ॥१५२५॥
ङ्यन्तानिदानीं कलय शब्दान् क्रमत एव हि ।
पृथिव्यापश्च वह्निश्च वायुः सूर्यस्तथैव च ॥१५२६॥
चन्द्रो विद्युच्च माया च प्रपञ्चो ब्रह्म तत्परम् ।
अद्वैतं परमात्मा च क्रमतो व्याहृता इमे ॥१५२७॥
एतेषामुत्तरपदं गौणं हि कलयाधुना ।
उद्भूतृत्वं क्लेदकत्वं दाहिका शोषिका तथा ॥१५२८॥
प्रभा कौमुद्यपि तथा पुनरुद्योतिकापि च ।
विक्षेपासत्त्वमिति च ततः परमुदीरितम् ॥१५२९॥
आविर्भावतिरोभावः कैवल्यं तदनन्तरम् ।
सर्वशेषे परिज्ञेयं निर्वाणमिति वै पदम् ॥१५३०॥
इति कर्तव्यता चास्य पुरैव प्रतिपादिता ।
षडक्षरी तु कूर्चास्त्रे हृदयं शिर एव च ॥१५३१॥
क्रमोऽयं भाण्डिकेराणां बिन्दुपूजाविधौ मतः ।
एषोऽपि युक्तरूपत्वात् कर्तव्यः फलकाङ्क्षिभिः ॥१५३२॥

[बिन्दुपूजायां स्वकीयरीतिकथनम्]

इदानीं त्रिपुरघ्नस्य मतमाकलय प्रिये ।
त्रिकोणं त्रिगुणाकारं बिन्दुर्ब्रह्मस्वरूपधृक् ॥१५३३॥

तस्मिन् प्राप्ते प्रपञ्चानां पूजनं कथमिष्यते ।
भावाभावौ जन्ममृत्यू माया दुःखं सुखं तथा ॥१५३४॥
तावदेव हि तिष्ठन्ति यावद् ब्रह्म न दृश्यते ।
बिन्द्वर्चने यदन्येषां पूजनं प्रोच्यते परैः ॥१५३५॥
त्रिपुरघ्नमतं तन्न मयापि न तदिष्यते ।
अतो बिन्दोः स्वरूपस्य पूजनं विनिगद्यते ॥१५३६॥

[बिन्दुपदार्थनिर्वचनम्]

बिन्दुः पुल्लिङ्ग उदितो ब्रह्म चैव नपुंसकम् ।
स्त्रीलिङ्गा गुह्यकाली च त्रयमेतत् समं मतम् ॥१५३७॥
शब्दार्थौ द्वावपि शिवे ब्रह्मणः प्रतिपादकौ ।
परं तु लिङ्गं स्त्रीसंज्ञं निर्देश्या कालिका यतः ॥१५३८॥

[बिन्दुपूजामन्त्रः]

उद्धारमधुना वच्मि सर्वेषां बुद्धिगोचरम् ।
सप्तविंशतिसंख्यानि पदानि सुरवन्दिते ॥१५३९॥
विभिन्नं बीजमेकैकं सर्वत्र प्रथमं स्थितम् ।
स्त्रीलिङ्गाश्च ततः शब्दा विभिन्नास्तेऽपि चेरिताः ॥१५४०॥
ङेऽन्तत्वेन विनिर्देश्याः शेषे हृत्केवलं स्थितम् ।
तारो माया योगिनी च वधू रावश्च डाकिनी ॥१५४१॥
प्रासादो गरुडश्चापि प्रेतो नरहरिस्तथा ।
कापालं काकिनी चापि क्षेत्रपालश्च फैरवम् ॥१५४२॥
सूत्रं दीपश्च तुङ्गश्च जम्भस्तदनु कर्णिका ।
भूतिनी केकराक्षी च कालरात्रिरतः परम् ॥१५४३॥

मन्दसंमोहपतनसंहारास्तदनन्तरम् ।
सर्वेषां चरमस्था तु ज्ञेया चिच्छक्तिनामिका ॥१५४४॥
नित्या शुद्धाऽक्षरा सूक्ष्माऽग्राह्याऽरूपाप्यनिन्द्रिया ।
निर्गुणा निर्विकारा च निराभासा निरञ्जनी ॥१५४५॥
अवासना च निर्बन्धा कूटस्था चिद्विलासिनी ।
अनिमित्ता च कैवल्याऽद्वैताऽबाधप्रकाशिका ॥१५४६॥
वेदान्तवेद्या चैतन्याकारा साक्षिण्यथामृता ।
परानन्दा गुणातीताऽनिर्देश्या तदनन्तरम् ॥१५४७॥
तुरीया सर्वशेषस्था यया मुक्तिरवाप्यते ।
इत्येवं बिन्दुगा पूजा त्रिपुरघ्नमुखोद्गता ॥१५४८॥
अहं च त्रिपुरघ्नानुशिष्टमेव ब्रवीमि ते ।
पञ्चानां मतभेदेन पञ्चधेत्थं समर्हणा ॥१५४९॥

[सकलसम्प्रदायानुमतबिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्]

ऐकमत्येन सर्वेषां बिन्द्वर्चा काऽपि विद्यते ।
तां तेऽहं कथयिष्यामि भिन्नमन्त्रोद्धृतिं विना ॥१५५०॥
या विद्या पूर्वमुदिता सर्वगेति मया तव ।
पठित्वा नववारं तु तया बिन्दुं प्रपूजयेत् ॥१५५१॥
हृदयाख्या तु या विद्या तस्याः षड्वारकीर्तनात् ।
अभ्यर्चयेद् बिन्दुमेव प्रतिपूजां मनुं पठन् ॥१५५२॥
त्रिवारं समयाविद्यामुच्चरन् बिन्दुमर्चयेत् ।
बिन्दुपूजा त्रिविद्याभिरेवं सकलसंमतम् ॥१५५३॥

[सकलसम्प्रदायानुमतबिन्दुपूजाप्रकारान्तराभिधानम्]

सर्वेषां संमतत्वेन बिन्द्वर्चान्याऽपि विद्यते ।
तामपि व्याहरिष्यामि फलबाहुल्यशालिनीम् ॥१५५४॥
उपदिष्टा इमे मन्त्रा येषां स्युर्गुरुणा प्रिये ।
तैरियं संविधातव्या नान्येन शुभमिच्छता ॥१५५५॥
विधात्रुपासितामादौ कामोपास्यामनन्तरम् ।
ततोऽनु वरुणाराध्यां पावकोपासितां ततः ॥१५५६॥
[1]आदित्योपासितां पश्चाच्छच्याराध्यामतः परम् ।
दानवाराधितां मृत्युकालोपास्यामनन्तरम् ॥१५५७॥
च्यवनोपासितां पश्चाद्धारीतोपासितामपि ।
जाबालाराधितां विद्यां दक्षोपास्यामनन्तरम् ॥१५५८॥
ततः सप्तदशीमन्त्रं रामाराधितमेव हि ।
हिरण्यकशिपूपास्यां ब्रह्माराध्यामनन्तरम् ॥१५५९॥
ततोऽनु विद्यां वासिष्ठीं विष्णुतत्त्वं ततः परम् ।
अम्बाराधितमस्यानु तां महाषोडशीमपि ॥१५६०॥
षोडशानां सप्तदशीं रावणाराधितां ततः ।
षड्त्रिंशदक्षरीमन्त्रं रावणाराधितं ततः ॥१५६१॥
सिद्धोपास्यां भोगविद्यां किन्नरोपासितामथ ।
मन्त्रं नवनवार्णाख्यं तं सहस्राक्षरीमनुम् ॥१५६२॥

१—अदित्युपासितां ङ ।

शक्तौ सत्यां सुराराध्ये बीजमालामयीमपि ।
नोपात्तेयमशक्तौ तु त्रिपुरघ्नवचो यथा ।।१५६३।।
ततोऽनु शाम्भवी विद्या या महाशाम्भवी तथा ।
तुरीयाख्याऽप्यथ महातुरीया तदनन्तरम् ।।१५६४।।
निर्वाणमप्यनु महानिर्वाणं जगदीश्वरि ।
द्वात्रिंशत्संख्यकैरेतैर्मनुभिः फलदायिभिः ।।१५६५।।
त्रयस्त्रिंशद्बीजमालामय्या सह भवन्ति हि ।
सकृदुच्चरितैरेभिर्मनुभिर्बिन्दुमर्चयेत् ।।१५६६।।
अयं समानः सर्वेषां बिन्दुपूजाविधिक्रमः ।

[बिन्दुपूजासमाप्तिकारिमन्त्राभिधानम्]

समाप्तिकारिणीं बिन्दुपूजामनुमथो शृणु ।।१५६७।।
तारत्रयं प्रथमतो मैधत्रयमनन्तरम् ।
मायारमाकामरावयोगिनीरोषकामिनीः ।।१५६८।।
डाकिनीप्रलयौ चापि फेत्कारीमप्यनन्तरम् ।
षोडशेमानि संभाष्य बीजानि सुरवन्दिते ।।१५६९।।
सत्त्वकूटं च हैरण्यगर्भकूटमनन्तरम् ।
तस्यानु पुष्करं कूटं भासानाख्ये ततः परम् ।।१५७०।।
संहारानाहते चापि मणिपूरकमेव च ।
स्वाधिष्ठानं नवेमानि कूटानि पुरतो वदेत् ।।१५७१।।
ततो भगवतीशब्दो गुह्यकालीपदं ततः ।
साङ्गा सवाहना चापि सायुधा तदनन्तरम् ।।१५७२।।

ततः सपरिवारा च शब्दानेतान् क्रमेण षट् ।
ङेऽन्तानुच्चारयेद्धीमान् अस्त्रत्रयमतः परम् ॥१५७३॥
चरमे हृच्छिरौ मन्त्रौ महामन्त्रोऽयमीरितः ।
एतेन शेषगां पूजां बिन्दोः परिसमापयेत् ॥१५७४॥
आदावन्ते च पूजायां बिन्दोरेतौ मनू स्मृतौ ।
एतावता समाप्तं हि सर्वमावरणार्चनम् ॥१५७५॥

[आवरणपूजापदार्थपरिचयः]

आबिन्दुपूजनं शेष आनृसिंहार्चनं पुरः ।
गण्यते सकलं मध्ये देव्यावरणपूजनम् ॥१५७६॥
अशक्नुवानः सकलं यावच्छक्यं समाचरेत् ।

[पात्रग्रहणविषये मतभेदप्रदर्शनं स्वनिर्णयश्च]

अथावधेहि देवेशि बिन्द्वर्चानन्तरां क्रियाम् ॥१५७७॥
कापालिकाद्याः सकलाः भाण्डिकेरान्तिमाः प्रिये ।
मध्य एव हि पूजायाः कुर्वते पात्रसंग्रहम् ॥१५७८॥
युक्तायुक्तकुलाध्वन्यास्तथा ये चानुकल्पिकाः ।
ये च श्रौतमताशक्तास्तेषां विधिरुदीर्यते ॥१५७९॥
ते षड्भिर्मनुभिर्देव्यै षट्पात्राणि ददत्यपि ।
तान् मन्त्रान् संप्रवक्ष्यामि क्रमेण जगदर्चिते ॥१५८०॥

[देवीपात्रसमर्पणमन्त्रः]

वेदादिमायाशाकिन्यः प्रथमं परिकीर्तिताः ।
ततोऽनु गुह्यकाल्यम्बा पात्रमित्यभिनिर्दिशेत् ॥१५८१॥

भगवत्यै ततः सिद्धिविकराल्यै समुद्धरेत् ।
समर्पयाम्यनु नमो रावबीजं ततः परम् ॥१५८२॥
गृह्णयुग्मं भक्षयुगं सामरस्यपदं ततः ।
गच्छद्वन्द्वं समाभाष्य फट्युगं शिर एव च ॥१५८३॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य मूलपात्रं समुत्सृजेत् ।
प्रोक्षण्यादाय पात्रात् तत् किंचिद्देव्याननेऽर्पयेत् ॥१५८४॥

[शक्तिपात्रसमर्पणमन्त्रः]

अथ वक्ष्ये शक्तिपात्रसमर्पणमनुं प्रिये ।
सारस्वतं डाकिनी च प्रलयस्तदनन्तरम् ॥१५८५॥
शक्तिपात्रमिति प्रोच्य महाचण्डपदादनु ।
योगैश्वर्यै समुद्धृत्य गुडानां त्रितयं लिखेत् ॥१५८६॥
समर्पयामि च पुनः भुङ्क्ष्व खाद युगं युगम् ।
रोषरावौ ततोऽस्त्राणां त्रितयं हृदयं शिरः ॥१५८७॥
आदाय भाजनात्तस्मात् दद्याद्देव्यानने मनाक् ।

[गुरुपात्रसमर्पणमन्त्रः]

पाशमायाङ्कुशानुक्त्वा गुरुपात्रमितीरयेत् ॥१५८८॥
वज्रकापालिनीं ङेऽन्तां तदनन्तरमुद्धरेत् ।
निवेदयामि तदनु पिबयुग्मं हसद्वयम् ॥१५८९॥
ततश्च सर्वसमयलाभं कुरुयुगं तथा ।
अस्त्रत्रयं पुनः स्वाहा पूर्ववत् किञ्चिदर्पयेत् ॥१५९०॥

[भोगपात्रसमर्पणमन्त्रः]

चैतन्यकमलाकामान् भोगपात्रं च कीर्तयेत् ।
ङेऽन्तां सिद्धिकरालीं च ततस्तुभ्यमहं ददे ।।१५६१।।
इदं ततः खादयुगं धयद्वितयमेव च ।
कह नृत्य तथा गाय त्रितयानां द्वयं द्वयम् ।।१५६२।।
कौलिकावक्षयुगलं नमः स्वाहा ततो वदेत् ।
पूर्ववत् किञ्चिदादाय देवीवक्त्रे समुत्सृजेत् ।।१५६३।।

[वीरपात्रसमर्पणमन्त्रः]

वेदादिमैधनृहरीन् पुरतः समुदीरयेत् ।
वीरपात्रमिति प्रोच्य कालरात्र्यै ततो वदेत् ।।१५६४।।
समर्पयामि च पुनः गृह्णद्वन्द्वं तुरुद्वयम् ।
खादयुग्मं भुञ्जयुगं खेचरीसिद्धिमेव च ।।१५६५।।
दद देहि द्वयं द्वन्द्वं हूं फट् स्वाहा नमस्ततः ।
दद्यादेतस्यापि किञ्चिज्जगदम्बामुखं कुलम् ।।१५६६।।

[षष्ठपात्रसमर्पणमन्त्रः]

भाजनस्यापि षष्ठस्य मन्त्रमाकर्णयार्पणे ।
तारो रावो डाकिनी च प्रासादक्षेत्रपावपि ।।१५६७।।
सत्त्वकूटं च हैरण्यगर्भं पुष्करमेव च ।
भगवत्यै गुह्यकाल्यै कुलपात्रं ततो वदेत् ।।१५६८।।
निवेदयामि चाभाष्य जय जीव युगं युगम् ।
खाद खाहि द्वयद्वन्द्वं राज्यं देहि द्वयं ततः ।।१५६९।।

पुनश्च खेचरीसिद्धिं ददयुग्मं पुनस्ततः ।
सामरस्यं भजद्वन्द्वं कौलिकानामितीरयेत् ॥१६००॥
पुनश्च सर्वसमये रक्षां कुरुयुगं तथा ।
रावरोषास्त्रहृच्छीर्षाण्यन्ते च समनूद्धरेत् ॥१६०१॥
पूर्ववत्किंचिदादाय मण्डलोपरि निःक्षिपेत् ।
इत्येवं देवि पात्राणां षण्णामुत्सर्गमाचरेत् ॥१६०२॥
मन्त्रैर्यथा क्रमोदीर्णैः प्रत्येकं व्युत्क्रमं त्यजन् ।

[बलिदानविधिः]

बलिदानमथो वक्ष्ये दत्तचित्ता निशामय ॥१६०३॥
यद्यद्द्रव्यं तत्तदुक्तं पुरैव तव विस्तरात् ।
मन्त्रविधानं चेदानीं समाकलय तत्त्वतः ॥१६०४॥

[अष्टाभ्यो देवताभ्यो बलिदानविधिः]

अष्टधा संप्रदातव्या मूलं गणपतिस्तथा ।
वटुकाः क्षेत्रपालाश्च मातरस्तदनन्तरम् ॥१६०५॥
योगिन्यश्चापि डाकिन्यः स्थानं चेत्यष्टसंमिताः ।
संस्थाप्य देव्याः पुरतो बलिद्रव्यममत्रय[क]म् ॥१६०६॥
समांसमीनं ससुरां बिन्दुं दातुरनुक्रमात् ।
पूजितं गन्धकुसुमाक्षतसिन्दूरयावकैः ॥१६०७॥
धूपदीपान्वितं मूर्ध्नि ताम्बूलादिभिरर्चितम् ।
समुत्सृजदथैतेषां पूजामन्त्रं निशामय ॥१६०८॥

[बल्यभ्युक्षणमन्त्रः]

प्रत्येकं पूजयेत् सर्वानथ तन्त्रेण चार्चयेत् ।
तारो माया योगिनी च भूतिनी डाकिनी तथा ॥१६०९॥
भूतदैवतशब्दश्च बलिशब्दस्ततः परम् ।
वाच्यौ बहूत्वेन तुर्यविभक्तेरीदृशाविमौ ॥१६१०॥
हृद्रोषास्त्रशिरोमन्त्राश्चरमस्थानसंस्थिताः ।
मन्त्रेणानेनार्चयित्वा क्रमाद् बलिमथोत्सृजेत् ॥१६११॥
तत्रादौ दीयते यद्यद् देव्यै तन्मूलमुच्यते ।

[बल्युत्सर्गमन्त्रः]

तच्चतुष्पात्रमथवा द्विपात्रश्चैकमेव वा ॥१६१२॥
तारमैधौ योगिनी च रावडाकिन्यमारुषः ।
विमर्दव्यजनत्र्यस्रप्रतानाः प्रकरी तथा ॥१६१३॥
संबुद्धिर्भगवत्याश्च गुह्यकाल्यास्ततः परम् ।
विसन्धीमं बलिं गृह्णयुगलं खाहि च द्वयम् ॥१६१४॥
ततश्च सर्वसमयसिद्धीश्वरि समुच्चरेत् ।
परविद्यामाकृष्यानु त्रुट छिन्धि युगं युगम् ॥१६१५॥
मां रक्ष युगलं चापि सर्वसिद्धिमितीरयेत् ।
देहि दापय सङ्कीर्त्य मायाबीजात्तुरुद्वयम् ॥१६१६॥
रावरोषौ ततोऽस्त्राणां त्रितयं हृदयं शिरः ।
अनेन मनुना दद्यात् मूलदेव्यै बलिं प्रिये ॥१६१७॥

[गणाधिपबल्युत्सर्गमन्त्रः]

ततो गणाधिपतये साधको बलिमाहरेत् ।
तन्मन्त्रं कलयेदानीं प्रयतेनान्तरात्मना ॥१६१८॥
मैधं माया च लक्ष्मीश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
देवीपुत्रपदं पश्चात् महाबलपराक्रमः ॥१६१९॥
लम्बोदरो वक्रतुण्डः सर्वविघ्नहरोऽपि च ।
ङेन्तानेतान् वदेत्पञ्च शब्दान् क्रमत ईश्वरि ॥१६२०॥
गणेशबीजत्रितयं महागणपतिस्ततः ।
ङेऽन्तः सन्धिविहीनं स्यादिमं बलिमिदं पदम् ॥१६२१॥
गृह्णयुग्मं सर्वविघ्नं हरयुग्ममतः परम् ।
नाशयद्वितयं चापि मर्दद्वन्द्वं सुखं घृणा ॥१६२२॥
मर्यादापञ्चमः शुक्रः कूर्चास्त्रे हृदयं शिरः ।
बलिदानमनुस्त्वेष प्रोक्तो गणपतेरपि ॥१६२३॥

[वटुकबल्युत्सर्गमन्त्रः]

वटुकेभ्यो बलिं दातुं मनुमाकलयाधुना ।
तारः कामश्च कमला प्रलयो योगिनी तथा ॥१६२४॥
देवी सहचरः शब्दो महावटुकनाथयुक् ।
पिङ्गलोर्द्ध्वजटश्चापि मुक्ताट्टाट्टपदादनु ॥१६२५॥
हासः श्मशानवासी च शूलखट्वाङ्गधार्यपि ।
षडिमान् प्रवदेत् ङेन्तानिमं बलिमतः परम् ॥१६२६॥
गृह्णद्वयं समाभाष्य भक्षयद्वितयं तथा ।
ततश्च सर्वसमयसिद्धिं देहि युगं वदेत् ॥१६२७॥

त्रैलोक्यडामरपदं चित्तक्षोभणमेव च ।
विघ्नहर्तृपदं चापि ङेऽन्तं त्रितयमीरयेत् ॥१६२८॥
हुंफट्नमस्ततः स्वाहा सर्वशेषगतं स्मरेत् ।
[क्षेत्रपालबल्युत्सर्गमन्त्रः]
अतो निशामय मनुं क्षेत्रपालबलिप्रदम् ॥१६२९॥
तारो मैधश्च माया च योगिनी वनिताऽपि च ।
शाकिनी डाकिनी चापि प्रलयोऽस्यानु गद्यते ॥१६३०॥
फेत्कारी चेति बीजानि पुरतो नव भावयेत् ।
हृन्मन्त्रः क्षेत्रपालेभ्यो भूतप्रेतपिशाच च ॥१६३१॥
कूष्माण्डाधिपतिभ्यश्च ससन्धीमं बलिं ततः ।
गृह्णद्वयं भुञ्जयुगं भक्षयद्वितयं ततः ॥१६३२॥
विसन्ध्यविघ्नमिति च कुरुयुग्ममनन्तरम् ।
पूरकादीनि पञ्चापि बीजानि तदनन्तरम् ॥१६३३॥
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते मनुरेष प्रकाशितः ।
[मातृगणबल्युत्सर्गमन्त्रः]
अथ मातृगणानां हि बलिदानमनुं शृणु ॥१६३४॥
मैधं माया रमा कामो डाकिनी नृहरिस्ततः ।
ततो नाराचनालीकौ फेत्कारी चेति वै नव ॥१६३५॥
सर्वाशब्दो मातृशब्दः पुनः सर्वा च खेचरी ।
सर्वा च भूचरी चैव सर्वा दिक्चर्यपि प्रिये ॥१६३६॥
पुनः सर्वा पदं चापि भूतप्रेतपिशाचिनी ।
सर्वा सिद्धा द्वादशैता भ्यसन्ताः परिकीर्तयेत् ॥१६३७॥

सन्धानसहिताः सर्वा इमं बलिमतः परम् ।
योगिनीनां बलिमनुं प्रवदामि तवाधुना ॥१६३८॥
[1]निवेदयामि चाभाष्य सौम्या भवतु कीर्तयेत् ।
सन्धानसहिताः सर्वा इमं बलि मतः परम् ॥१६३९॥
सन्ध्या सर्वोपद्रवांश्च ततो नाशयतेरयेत् ।
अविघ्नं कुरुतेत्युक्त्वा कूर्चास्त्रहृदयं शिरः ॥१६४०॥

[योगिनीबल्युत्सर्गविधिः]

योगिनीनां बलिमनुं प्रवदामि तवाधुना ।
प्रणवो भौवनेशी च योगिनी शाकिनी रुषः ॥१६४१॥
गुह्या सहचरीशब्दः सर्वायोगिन्यनन्तरम् ।
अयं भ्यसन्तमुद्धृत्य मध्ये सन्धानसंहितम् ॥१६४२॥
इमं बलिं समाभाष्य गृह्ण खाहि युगं युगम् ।
सर्वारिष्टं ततश्चोक्त्वा विनाशय युगं लिखेत् ॥१६४३॥
सर्वान् कामानपि प्रोच्य पूरयद्वितयं वदेत् ।
मम शत्रूनिति ततः संहरद्वितयं तथा ॥१६४४॥
निद्रा च योगिनी पूर्णा धूमोऽपि ललिता ततः ।
पूर्वोदिता सर्वशेषे परिज्ञेया षडक्षरी ॥१६४५॥

[डाकिनीबल्युत्सर्गमन्त्रः]

डाकिनीबलिदानस्य मन्त्रः सांप्रतमुच्यते ।
सारस्वतञ्च प्रासादः क्षेत्रपालस्ततः परम् ॥१६४६॥

१. इतश्चतस्रः पंक्तयः ङ पुस्तके अधिकाः ।

डाकिनी नरसिंहौ च पञ्चबीजानि वै पुरः ।
सर्वाभ्यो डाकिनीभ्योऽनु सागरो गुप्तिरेव च ॥१६४७॥
सन्तोषहायिपाकाश्च ततो ब्रूयादिमं बलिम् ।
गृह्ण खाद युगं युग्मं भुञ्ज खाहि तथैव च ॥१६४८॥
सत्त्वयोरन्तरेणेव मां द्विषन्तं ततो वदेत् ।
मारयद्वयमाभाष्य मर्दय द्वितयं ततः ॥१६४९॥
खेचरीसिद्धिमिति च देहि दापय तत्पदम् ।
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा तदनन्तरम् ॥१६५०॥
केकराक्षी कालरात्रिः कूर्चमन्त्रं नमः शिरः ।
[स्थानाधिपबल्युत्सर्गमन्त्रः]
अथ स्थानबलेर्मन्त्रं व्याहरिष्यामि शेषगम् ॥१६५१॥
तारो मैधं च माया च रमाकामवधूरुषः ।
शाकिनी डाकिनी चेति नवबीजानि वै पुरः ॥१६५२॥
अत्रत्येभ्यो नु सर्वेभ्यो देवेभ्यस्तदनन्तरम् ।
स्त्रीलिङ्गत्वेन देवेशि तान् स्त्रीनेव समुच्चरेत् ॥१६५३॥
एतत्स्थानाधिपतिभ्य इमं बलिमथोद्धरेत् ।
वदेत्सौम्या भवन्तूक्त्वा कूर्चानां त्रितयं ततः ॥१६५४॥
तथास्त्राणां त्रयं हार्दशिरोमन्त्रोन्त्यगाम्यपि ।
इत्यष्टधा बलिमनुर्मया ते प्रतिपादितः ॥१६५५॥
[शक्तिपूजोपक्रमः]
बलिदानं विधायाथ शक्तिपूजनमाचरेत् ।
[शक्तिपूजानधिकारिणः]
शैवाः स्मार्ताः याज्ञिकाश्च तां न कुर्वन्ति पार्वति ॥१६५६॥

[शक्तिपूजाधिकारिणः]

कौलानामागमज्ञानां तान्त्रिकाचारवर्तिनाम् ।
अनुकल्पप्रदातृणां मध्यस्थानां तथैव च ॥१६५७॥

देवीति बुद्धिर्योषित्सु येषामविचला तथा ।
तेषां काल्यतिभक्तानां सर्वदा निश्चितात्मनाम् ॥१६५८॥

आवश्यकी शक्तिपूजा पीठपूजावदीश्वरि ।
कालीबुद्धौ च सम्पूज्या न कामाकुलया धिया ॥१६५९॥

चतुर्थाश्रमिणो मुक्त्वा ये काल्यर्चनतत्पराः ।
कौलिका वाप्यकौला वा ये चैतन्मतवर्तिनः ॥१६६०॥

तेषां नित्या शक्तिपूजा प्राहैवं मां पुरद्विषः ।

[शक्तिपूजामाहात्म्यम्]

कृतायां शक्तिपूजायां सफलं नित्यपूजनम् ॥१६६१॥

अकृतायाममुष्यां तु निःफलं नित्यपूजनम् ।
तस्माद्यत्नेन संपूज्या शक्तिर्नित्यार्चनादनु ॥१६६२॥

देवीधियैव संपूज्या न सामान्यवधूधिया ।

[शक्तिपरिचयः]

सा शक्तिर्द्विविधा ज्ञेया स्वकीया च पराङ्गना ॥१६६३॥

[स्वकीयायाः शक्तेरप्राशस्त्यम्]

स्वजातिसंभवा या तु परिणीताऽभवत् प्रिये ।
सा स्वकीया समुदिष्टा तथा नेयं प्रशस्यते ॥१६६४॥

[परकीयाशक्तिभेदः]

परकीया पञ्चविधास्ताः क्रमेण ब्रवीम्यहम् ।
सजीवभर्तृकाऽन्योढ़ा तादृगेव मृतप्रिया ॥१६६५॥

[परकीयायाः शक्तेः प्राशस्त्यम्]

दासी वेश्या तथाऽनूढा प्रशस्ताश्चोत्तरोत्तरम् ।
अजातवत्सा युवती तास्वाद्यैव प्रशस्यते ॥१६६६॥
कदाचित् जातवत्साऽपि सा पूर्वसदृशी मता ।
अभावे पूर्वपूर्वायाः परा ग्राह्याभिसाधकैः ॥१६६७॥

[साधिकायाः कृते पुरुषस्यात्र नियतापेक्षा]

साधिकायां च कौलायां एवमेव पुमानपि ।
न साधकं विना नार्या न पुंसः [साधिका?]मृते ॥१६६८॥
मन्त्राः सिद्ध्यन्ति देवेशि कल्पकोटिशतैरपि ।

[परस्त्रीसङ्गमादेरौचित्यप्रतिपादनम्]

परस्त्रीसङ्गमो मद्योपसेवा प्राणिमारणम् ॥१६६९॥
स्वार्थं चेन्नरकायैव देवार्थं सुकृताय हि ।
को हेतुर्नैव जानामि देवीप्रीतिकरा इमे ॥१६७०॥
न पापजनकं यद्वत् यज्ञार्थं पशुघातनम् ।
न किल्विषकरस्तद्वत् परस्त्रीसङ्गमादिकः ॥१६७१॥

[परस्त्रीसङ्गमादितान्त्रिकविधेरनिन्द्यत्वसाधनम्]

इमं विधिमकुर्वाणैः यैः कैरपि वरानने ।
अवहेला न कर्तव्या न जुगुप्सा कदाचन ॥१६७२॥

न निन्दा न परीवादो न द्वेषो नैव धिक्कृतिः ।
कृते तु सर्वनाशः स्यात् मरणं रोग एव वा ॥१६७३॥
दारिद्र्यं पुत्रनाशश्च बन्धनं निगडादिभिः ।
तस्मान्निन्दा न कर्तव्या यदीच्छेदात्मनः शुभम् ॥१६७४॥
स्वभाव एव देव्यास्तु प्रीतिः शक्त्यर्चनादिभिः ।
राजाज्ञेवाप्रणोद्येयं सैव ब्रूते सनातनी ॥१६७५॥
मदनोन्मादिनी कामातुरा चापि भगप्रिया ।
सामरस्यपदं प्राप्तेत्येवंरूपा पदानि हि ॥१६७६॥
मन्त्रमध्ये वरारोहे तिष्ठन्ति कथमन्यथा ।
अत्रास्थां महतीं वध्वा देव्याज्ञासंभवां सदा ॥१६७७॥
न कौलिकाः प्रकुर्वन्ति विचारं शक्तिषु ध्रुवम् ।
स्वीयाः सुता जनीजायाः साधकेभ्यो ददत्यपि ॥१६७८॥
गृह्णन्ति स्वयमन्येषां, बीजं तत्रेश्वरीवचः ।

[स्मार्तस्यकृते शक्तिविचारः]

स्मृत्यध्वसंचरिष्णूनां योग्यायोग्यत्वमस्ति हि ॥१६७९॥
स्नुषा सपत्नीमाता च सुता च भगिनी तथा ।
गुर्वङ्गना मातुलानी पितृव्यवनिता तथा ॥१६८०॥
पितृमातृष्वसा चैव श्वश्रूरथ पितामही ।
मातामही शिष्यपत्नी दीक्षिताचार्ययोरपि ॥१६८१॥

[स्मार्तस्य कृते निन्द्याशक्तिगणनम्]

रजकी चर्मकारस्त्री कैवर्ती वाख्डी तथा ।
चाण्डाली पुक्कसी मेदी किराती यवनीषुधी ॥१६८२॥

रजस्वला गुर्विणी च तथैवान्त्यजगामिनी ।
पतिघ्नी शरणायाता भ्रूणगर्भनिपातिनी ॥१६८३॥
वृद्धा रुग्णा प्रव्रजिता याश्च निन्द्यतयोदिता ।
शक्तिकोटौ न निक्षेप्या एताः स्मृतिपथस्थितैः ॥१६८४॥

[स्मार्तस्य कृते प्रशस्तशक्तिपरिचयः]

प्रशस्ता अथ वक्ष्यामि या ग्राह्या शक्तिपूजने ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा रण्डा कुलाङ्गना ॥१६८५॥
सुवासिनी कामुकी च स्वैरिणी चाभिसारिका ।
अवीरोढा सुखी [?]चापि सैरन्ध्री दूतिका तथा ॥१६८६॥
नृपाङ्गना वारमुख्या बन्ध्या राजसुता तथा ।
पुष्पलावी कारुयोषा कुलाली सौचिकी तथा ॥१६८७॥
ग्रामीणा पामरी धूर्ता काम्बरी नापिगी [?]नटी ।
दैवज्ञवनिता चापि साधिका प्रतिवेशिनी ॥१६८८॥
स्वयं रतिं याचते या विदग्धान्तःपुरःस्थिताः ।
ईदृश्यः शक्तयः स्मार्तैरङ्गीकार्याः प्रपूजने ॥१६८९॥
ग्राह्याः पुमांसोऽपि शिवे साधिकाभिरपीदृशाः ।

[शक्तिकोटावनागताङ्गनापरिचयः]

न न्यूनाङ्ग्यो नाधिकाङ्ग्यो न स्थूला नाधिकं कृशाः॥१६९०॥
न छिन्ननासाङ्गुलिका न दीर्घा न च वामनाः ।
न मुण्डिता न कुब्जाश्च मूकान्धबधिरा न च ॥१६९१॥

न केकरा न खंजाश्च भिन्नयोनिगलत्कुचा ।
बाला पत्याच विभ्यन्त्यो न कार्याः शक्तयस्त्विमाः॥१६६२॥
वदामि योग्यास्वाधिक्य याभिस्तुष्यति कालिका ।

[उत्तमशक्तिपरिचयः]

गौराङ्गी युवती रम्या स्मेरास्या चारुविग्रहाः ॥१६६३॥
विशाललोलनयना पीनोन्नतपयोधराः ।
आमोदितप्रतीका च नितम्बाभोगभासुराः ॥१६६४॥
विशालजघनाभोगा बलित्रयविराजिता ।
सुपार्श्वा तनुमध्या च सुस्वरा कुञ्चितालका ॥१६६५॥
विचित्रवेशाभरणा विचित्राम्बरधारिणी ।
विचित्रस्रक्समाकीर्णा विचित्ररत्नदायिका ॥१६६६॥
सदा प्रसन्नवदना देव्यां भक्तिपरायणा ।
कौलिकाचरणज्ञा च साधके भक्तितत्परा ॥१६६७॥
भयहीना स्मेरमुखी सर्वदा प्रियवादिनो ।

[शक्तिपूजाप्रसङ्गे कापालिकादि तान्त्रिकमतम्]

अथ कापालिकादीनां मतं ते कथयाम्यहम् ॥१६६८॥
अन्वहं मदिरापेक्षा शक्त्यपेक्षाऽन्वहं तथा ।
आभ्यां विना न पूजैषां कदाचिदपि सिद्ध्यति ॥१६६९॥
विरूपवेशचारित्वं नरकीकशधारिता ।
सदा श्मशानवासित्वं सर्वदाऽशुचिता तथा ॥१७००॥

वेदोक्तकर्मत्यागित्वं गर्हाकृत्कार्यकारिता ।
विहाय जननीमेषां सर्वाः स्युः शक्तयः प्रिये ॥१७०१॥
तत्तत्तन्त्रेष्वमीषां हि ज्ञेयाः नानाविधाः क्रियाः ।
बहुभिः किं वचोजालैः समासात्समयं शृणु ॥१७०२॥
निर्दिश्यन्ते शक्तिपूजा कौलिकानां दिने दिने ।
प्रत्यहं च सुरादानं तत्स्वीकारोऽन्वहं तथा ॥१७०३॥
नित्यतोक्ततया देवि कुलमार्गरतेषु च ।
हेयाहेयविचारोऽपि विरलः शक्तिषु प्रिये ॥१७०४॥
अनुकल्पप्रदातृणामपि नित्यत्वमत्र हि ।
विहाय गर्हिताः शक्तीः योग्या एव हि गृह्यते ॥१७०५॥
इतरेषां शक्तिपूजा काम्या नैमित्तकी तथा ।
समाधिषूचितानां स्यादितरासां निराकृतिः ॥१७०६॥

[शक्तिपजाविधानम्]

विधानं कलयेदानीं मन्त्रानपि च पार्वति ।
स्नातां दिव्याम्बरधरां नानालङ्कारमण्डिताम् ॥१७०७॥
युवतीं पीनवक्षोजां तथा चाकृतभोजनाम् ।
हस्ते गृहीत्वा वामोरौ स्थापयेच्छक्तिमुत्तमाम् ॥१७०८॥
अशक्नुवानो वोढुं तां देव्या वामेऽथवासने ।
ऋष्यादिकं शृण्विदानीं मे तस्याः सुरवन्दिते ॥१७०९॥

[शक्तिपूजायाः ऋष्यादिनिर्देशः]

श्रीशक्तिपूजनस्यास्य गोनर्दऋषिरीरितः ।
विकृतिच्छन्द आख्यातं शक्तिरूपा पदादनु ॥१७१०॥

गुह्यकाली देवता च कामो बीजमुदाहृतम् ।
शक्तिर्वधूर्भौवनेशी कीलकं समुदाहृतम् ॥१७११॥
शिवशक्तिसामरस्यप्रकाशे विनियोगता ।
ससर्गपञ्चदीर्घाद्यैर्वधूबीजैः षडङ्गकम् ॥१७१२॥
विधायात्मनि शक्त्यङ्गन्यासं वाच्यमथाचरेत् ।
स्त्री चेच्छक्तिपदस्थाने भैरवेति पदं वदेत् ॥१७१३॥
योषिल्लिङ्गपदस्थाने पुल्लिङ्गपदकल्पना ।
गुरूपदेशतोवापि स्वबुद्धया वा सुरेश्वरि ॥१७१४॥
ऊहः सर्वत्र कर्तव्यो लिङ्गे तत्तत्पदेऽपि च ।
स नाह किन्तु गायत्र्यां सा समानोभयत्र हि ॥१७१५॥

[शक्तिन्यासस्य समन्त्रो विधिः]

न्यासोद्धारमिदानीं त्वं सावधाना निशामय ।
त्रपा कामो रमा रावो योगिनी रोषयोषितौ ॥१७१६॥
डाकिनी प्रलयो हारः फेत्कारी कर्णिकाऽपि च ।
प्रेतो नृसिंहः कुलिकं चिच्छक्तिः सर्वशेषगा ॥१७१७॥
एकैकं पुरतो दद्यात् बीजं नाम्नां सुरार्चिते ।
तान्येवादौ कौलिकी च भगमालिन्यनन्तरम् ॥१७१८॥
रतिप्रिया तथाऽनङ्गाकुला समयपालिनी ।
मदनोन्मादिनी कामावेशिनी तदनन्तरम् ॥१७१९॥
चित्तोन्माथिन्यपि ततो मोहिन्याकर्षणीति च ।
स्मरातुरानन्दरूपा हृत्प्रमोदिन्यनन्तरम् ॥१७२०॥

संतापिनी ततः संक्षोभिणी च त्रिदशार्चिते ।
सर्वशेषे परिज्ञेया सामरस्यस्वरूपिणी ॥१७२१॥
एताः षोडश वै कार्या ङेऽन्ताः पूर्वार्णसंयुताः ।
स्त्रीकर्तृकत्वे पुंल्लिङ्गा भैरवार्चनकर्मणि ॥१७२२॥
नमः शेषेषु सर्वत्र स्थानानि कलयाधुना ।
शिरः कपोलौढ[1]गलः स्कन्धौ वक्षः कुचौ तथा ॥१७२३॥
पार्श्वौ कुक्षिश्च नाभिश्च वस्तिर्वंक्षण एव च ।
उरू जानू च जंघे च पादौ योनिश्च शेषगा ॥१७२४॥
जीवनाश[न्यास ?]वदेतस्याः सामरस्यमथाचरेत् ।
एतदेव हि संप्रोक्तं शक्तिशोधनमीश्वरि ॥१७२५॥
कृत्वाग्रहस्तं तु करं दत्त्वा च हृदुरोजयोः ।
कामपीठेऽथवा देवि नाभौ मेलेयकी[मौलेयके?]मते॥१७२६॥

[शक्तिशोधनमन्त्रः]

मनुं गृणन् वक्ष्यमाणं वारैकं वा त्रिवारकम् ।
जीवन्यासाकारमिदं शक्तिशोधनमाचरेत् ॥१७२७॥
अनेन शुद्ध्यते शक्तिर्नान्यथा मन्त्रकोटिभिः ।
माया कामो वधूर्लक्ष्मीः कूर्चः प्रासाद एव च ॥१७२८॥
शाकिनी डाकिनी चापि बीजान्यष्टौ पुरः स्मरेत् ।
भोगानन्दकलाशक्तिजीवात्मपरमात्मकाः ॥१७२९॥

१–गण्डौ च ख. ग. ।

प्रतिविम्बाद्वैतसंज्ञैकात्म्यनामलयाभिधान् ।
दशकूटान् क्रमात्प्रोच्य ब्रह्म तद्विपरीतकम् ॥१७३०॥
द्वयं दशान्त उच्चार्यमेवमर्द्धार्द्धसंमितम् ।
ततो ममानुहृदये तवानुहृदयं वदेत् ॥१७३१॥
दधातु मम वाच्युक्त्वा ते वाचं समुदीरयेत् ।
ममेन्द्रियेषु तदनु प्रवदेत् कमलानने ॥१७३२॥
त इन्द्रियाणि संभाष्य मम वाचं जुषस्व च ।
ततः सिद्धिकरालीति त्वां मह्यं नियुनक्तु च ॥१७३३॥
यैव त्वं च स एवाहं य एवाहमितीरयेत् ।
सैव त्वं सन्धिना युक्तमुभौ तदनु कीर्तयेत् ॥१७३४॥
शिवशक्तिसामरस्यमापन्नौ तदनन्तरम् ।
तदैक्यमिति संकीर्त्य साधयाव इतीरयेत् ॥१७३५॥
ससन्धिस्तारहृच्छीर्षमन्त्रस्तदनु सुन्दरि ।
अयं मन्त्रः समुद्दिष्टः शक्तिशोधनकर्मणि ॥१७३६॥
अष्टोत्तरशतार्णाढ्यो न न्यूनो नापि चाधिकः ।
ध्यानं पूर्वोदितं यत्ते भगवत्या मया तव ॥१७३७॥
शक्तिं तां तादृशाकारां ध्यायेद् वीक्ष्याङ्गसंचयम् ।
नृसिंहध्यानसदृशमात्मनश्च विभावयेत् ॥१७३८॥

[शक्त्यङ्गे देव्या आवाहनम्]

तत आवाहयेद्देवीं शक्त्यङ्गे पीठसन्निभे ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण साधकोऽञ्जलिमुद्रया ॥१७३९॥

मायाकामवधूरावकमलायोगिनीरुषः ।
डाकिनी चापि फेत्कारी नवैतान्यादिगानि हि ॥१७४०॥
एह्येहि भगवत्युक्त्वा गुह्यकालि समीरयेत् ।
शक्तिपीठेऽनु सान्निध्यमावेशय समुद्धरेत् ॥१७४१॥
ततस्त्वामहमुल्लिख्य महामि परिकीर्तयेत् ।
सर्वशक्तिसमाभाष्य स्वरूपिणि ततो वदेत् ॥१७४२॥
तारं प्रतिष्ठं शीर्षं च शक्तिमूलमनुं शृणु ।
माया रावः स्मरो तारो शक्तये हृदयं ततः ॥१७४३॥
मन्त्रो नवाक्षरः प्रोक्तः शक्तिपूजनकर्मणि ।
ऋष्यादिर्नास्ति चैतस्य न छन्दोबीजशक्तयः ॥१७४४॥
किन्तु पाद्यादिसर्वोपचाराद्यर्पणहेतुकः ।
जप्तव्यो नैव चायं हि त्रिपुरघ्नवचो यथा ॥१७४५॥

[सर्वोपचारेण शक्तिपूजाभिधानम्]

सर्वोपचारानेतेन प्रदद्यात् किन्तु शक्तये ।
पाद्यदानादि नैवेद्यदानान्तं यद्यदिष्यते ॥१७४६॥

[शक्तिपूजाविधौ मौलेयेन स्वस्य मतभेदप्रदर्शनम्]

न चात्ममन्त्रो भिन्नोऽस्ति मन्मते जगदीश्वरि ।
कुर्वते यत्तु मौलेयास्तदमूलं विभाव्यताम् ॥१७४७॥
शक्तिपूजावशिष्टं यत् पुष्पस्रगनुलेपनम् ।
यदात्मने दीयते तत् सामरस्यार्चनं भवेत् ॥१७४८॥
तदमन्त्रं प्रकर्तव्यमेवमीश्वरशासनम् ।
ततो दत्वा करं शक्तियोनिपीठे जपं चरेत् ॥१७४९॥

साधकः शक्तिगायत्र्याः शतमर्द्धार्धमेव वा ।
योनिपीठजपप्रख्यो न जपः क्वापि विद्यते ॥१७५०॥
सद्यःप्रभावजननमन्त्राणां पीठ उत्तमः ।
मन्त्राणां बलहीनानां प्रयोगः क्षीणतेजसाम् ॥१७५१॥
अनुद्धृतानां शापेभ्यो न्यूनाधिक्यार्णताजुषाम् ।
गुरूदितानामपि च प्रदानेनौजसां तथा ॥१७५२॥
अज्ञातविधिपूजानामपात्रार्पणभागिनाम् ।
त्यक्तानां विस्मृतानां च तथा चैवाप्रभाविनाम् ॥१७५३॥
सन्ध्यक्षरार्थमुभयं प्रोक्तं त्रिपुरवैरिणा ।
एकं निर्वाणमन्त्रेण सम्पुटीकृत्य तज्जपः ॥१७५४॥
कौलासनेनापरं च योनिपीठे जपक्रिया ।
कौलासनं योनिपीठजपः स्त्रीभ्यामनुग्रहः ॥१७५५॥
गुरुस्त्रीशक्तितापि मिश्रीभूय जपो द्वयोः ।
अन्यैः समिन्धनं मन्त्रैर्वीर्याधिक्यकरं परम् ॥१७५६॥

[शक्तिगायत्रीकथनम्]

अथातः शक्तिगायत्रीं शृणु देवि महाफलाम् ।
कामबीजाद् भगवतीं ङेऽन्तां पुरत ईरयेत् ॥१७५७॥
विद्महे योनिमालिन्य धीमहीति ततः परम् ।
तन्नः शक्तिरि[मि]ति प्रोच्य सर्वशेषे प्रचोदयात् ॥१७५८॥
एषा हि शक्तिगायत्री सर्वागमसुगोपिता ।
एतां विना न शक्त्यर्चा न शक्त्यर्चाङ्गिको जपः ॥१७५९॥

यथाशक्ति जपित्वैनां तत्समर्प्य च शक्तये ।
वामोरावुपवेश्यैव कुर्यान्मूलजपं प्रिये ॥१७६०॥
कुलमार्गानुसारेण स्मृत्युक्तविधिनाऽपि वा ।

[जपसाधनत्रैविध्याभिधानम्]

तत्साधनं त्रिधा प्रोक्तं प्रथमा जपमालिका ॥१७६१॥
द्वितीयं मातृकावर्णास्तृतीयाङ्गुलिपर्व च ।

[जपमालाप्रभेदकथनम्]

आदौ तु जपमालायाः प्रभेदान् व्याहरामि ते ॥१७६२॥
नमेरुकम्बुस्फटिकमुक्तारजतविद्रुमम् ।
मणिरत्नं तथा पुष्पं पुत्रंजीवेकहाटकम् ॥१७६३॥
कुशग्रन्थास्थिपद्माक्षकाष्ठमृद्गोलकादिकम् ।

[कार्यविशेषे मालाविशेषोपयोगकथनम्]

तथा कार्यविशेषे च भिन्ना भिन्ना प्रकीर्तिता ॥१७६४॥
प्रतिदेवं प्रिये माला पुनरन्या निरूपिता ।
मोहने शङ्खघटिता वश्यकर्मणि मौक्तिकी ॥१७६५॥
उच्चाटनेऽक्षकाष्ठीया मारणे च रदोद्भवा ।
द्वेषे श्मशानमात्स्नीया पाद्माक्षी स्तम्भने मता ॥१७६६॥
निःश्रेयसाय रौद्राक्षी स्फाटिकी सर्वसिद्धये ।

[देवताभेदे मालाभेदकथनम्]

इदानीं देवताभेदे मालाभेदं वदाम्यहम् ॥१७६७॥

त्रिपुरायाः जपे शस्ता रक्तचन्दनदारवी ।
महाशंखोद्भवा श्रेष्ठा ज्ञेया काल्युग्रतारयोः ॥१७६८॥
सिद्धिलक्ष्म्याः शङ्खमयी मातङ्ग्याः राजती मताः ।
वैद्रुमी कुब्जिकायाश्च गणेशे चैभदन्तिका ॥१७६९॥
फलं प्रत्येकमेतेषामधुना त्वं निशामय ।

[मालाविशेषाणां फलश्रुतिः]

मणिस्फटिकरुद्राक्षाः सर्वकामसमृद्धिदा ॥१७७०॥
रत्नशंखोद्भवा वित्तं कीर्तिं भोगांश्च यच्छति ।
सम्पत्सौभग्यदा ज्ञेयाः पद्माक्षाः बुद्धिबर्धनाः ॥१७७१॥
पुत्रंजीवभवा माला पुत्रधीपशुधान्यदा ।
मौक्तिकी विजयं युद्धे तथा च महतीं श्रियम् ॥१७७२॥

[स्फटिकमालायाः माहात्म्याधिक्यकथनम्]

न सा सिद्धिर्न तद्द्रव्यं न तद्भाग्यं न तद्यशः ।
लभते यन्न रुद्राक्षस्फटिकाभ्यां वरानने ॥१७७३॥
हैमी रौप्योद्भवा वापि मनोऽभीष्टं प्रयच्छतः ।
प्राबाली वश्यवित्तौघपुष्टयायुरमृतप्रदा ॥१७७४॥
किल्विषौघक्षयकरी कुशग्रन्थिविनिर्मिता ।
अनुलोमगतैर्वर्णैः पञ्चाशद्भिर्जपोऽथवा ॥१७७५॥
प्रतिलोम्नाऽथवा कुर्यात् कामनाकार्यभेदतः ।
अष्टोत्तरशतं कुर्याच्छतमूद्ध्वार्धमेव वा ॥१७७६॥
तदशक्तावभावे वा पञ्चविंशतिरेव वा ।
अत्रापि कामनाभेदा भूयांसः सन्ति पार्वति ॥१७७७॥

सर्वाः स्युः सिद्धयः शीघ्रमष्टोत्तरशतेन हि ।
शतेन राजवश्यादि महती श्रीस्तदर्द्धतः ॥१७७८॥
सप्तविंशतिभी राज्यं कैवल्यं ह्यूनया तया ।
अभिचारः पञ्चदश्या दशभिः पापसंक्षयः ॥१७७९॥

[अङ्गुलीभिर्जपे नियमः]

अङ्गुलीभिर्जपं कुर्वन्ननेन विधिना चरेत् ।
अनामिकामध्यपर्वारभ्याधस्तस्य च क्रमात् ॥१७८०॥
समाप्तिः स्याद् वरारोहे तर्जन्या आदिपर्वणि ।
कदापि नैव गृह्येत मध्यमामध्यपर्वणी ॥१७८१॥
विपरीतक्रमणैव जपः कार्योऽत्र साधकैः ।
अङ्गुल्याग्रे न जप्तव्यं पर्वसन्धीष्वपीदृशैः ॥१७८२॥

[संख्याहीनजपस्याफलत्वप्रतिपादनम्]

गणना च प्रकर्तव्या संख्याहीनो जपोऽफलः ।

[मालाया ग्रथनभेदेन श्रेष्ठत्वकथनम्]

गुरुणा ग्रथिता श्रेष्ठा स्वयं क्लृप्ता ततोऽवरा ॥१७८३॥
शक्त्या च ग्रथिता श्रेष्ठा न शूद्रादिभिरीश्वरि ।

[मालानिर्माणविधिः]

अथास्याः शोधनं वक्ष्ये समासात्परमेश्वरि ॥१७८४॥
उपवासं हविष्यं वा तथैकं भक्ष्यमेव वा ।
विधाय पट्टकार्पासशनसूत्रं विनिर्ममेत् ॥१७८५॥
उपवस्तदिने देवि तानि सर्वाणि पूजयेत् ।
चन्दनाक्षतधूपाद्यैः कुसुमैर्बलिदीपकैः ॥१७८६॥

कर्तव्यानि समानानि न स्थूलानि कृशानि न ।
न जीर्णानि न कीटादिविद्धानि सुनवानि च ।।१७८७।।
प्रातस्तत्सूत्रमानीय कामनाकार्यभेदतः ।
श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णवर्णं च कारयेत् ।।१७८८।।
द्विगुणं त्रिगुणं वापि तच्च त्रिगुणमाचरेत् ।
सर्पाकाराथवा कार्या गोपृच्छसदृशी तथा ।।१७८९।।
मुखं मुखेन संयोज्यं पृष्ठं पृष्ठेन च क्रमात् ।
मेरुं सर्वोपरिष्टात्तु दद्यात्साधकसत्तमः ।।१७९०।।
मणीनां मध्यतश्चापि ब्रह्मग्रन्थिं प्रकल्पयेत् ।

[मालासंस्कारविधिः]

अथ सामान्यमालायाः संस्कारं प्रवदामि ते ।।१७९१।।
विशेषमस्यामन्वर्थं वक्ष्यामि तदनन्तरम् ।
जपमालां विनिर्वर्त्य तस्याः शोधनमाचरेत् ।।१७९२।।

[तान्त्रिकवैदिकभेदेन मालाशोधनस्य विधिद्वयम्]

तान्त्रिकं वैदिकं वापि सद्योजाताह्वयं मनुम् ।
पठित्वा पञ्चगव्येन स्नापयेत् मालिकां पुरः ।।१७९३।।
उच्चार्य वामदेवाख्यं निषिञ्चेच्चन्दनाम्भसा ।
अघोराख्येन मन्त्रेण धूपयेत्तदनन्तरम् ।।१७९४।।
दीपनैवेद्यादि दद्यात् उक्त्वा तत्पुरुषं मनुम् ।
ईशानमन्त्रं प्रपठेत् संस्पृश्यैकैकशो मणिम् ।।१७९५।।

एवं तु पञ्चभिर्मन्त्रै रभिमन्त्र्य वरानने ।
प्राणप्रतिष्ठामेतस्यां विश्वरूपेण चाचरेत् ॥१७६६॥
एवं संस्कृत्य मालां तां गुरुहस्ते समर्पयेत् ।
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना गृह्णीयात् तत्करात्स्वयम् ॥१७६७॥
तत्तन्मन्त्रस्य गायत्रीं पुरः पञ्च शतं जपेत् ।
ततो जपेन्मूलमन्त्रमित्येतस्य विनिश्चयः ॥१७६८॥

[मालासंस्कारविधिः]

गुह्याष्टा[म्बा]नां पृथग्रूपो मालासंस्कार उच्यते ।
मृत्युकालनवाक्षर्या क्षालनं पञ्चगव्यतः ॥१७६९॥
अम्बाहृदयमन्त्रेण चन्दनाद्यभिघर्षणम् ।
धूपदानं दीपदानं षोडश्याः षोडशार्णया ॥१८००॥
नैवेद्यदानं वाशिष्यो[वासिष्ठया ?]ब्राहम्या प्राणप्रतिष्ठितिः ।
रामाराधितया मेरुमणिस्पर्श उदाहृतः ॥१८०१॥
शतं शताक्षरीजापः शतं षट्त्रिंशदक्षरी ।
विंशतिर्भोगविद्या च सहस्रार्णं दश स्मृतम् ॥१८०२॥
सहस्रं चापि गायत्रीरीतिरेषा पृथक् स्थिता ।

[जपप्रकारः]

केवलं गुह्यकाल्यास्तु नान्यस्याः कमलानने ॥१८०३॥
अङ्गुष्ठाग्रेणाक्षमालां चालयेज्जपकर्मणि ।
मध्यमाग्रेषु संस्थाप्य न तर्जन्यां कदाचन ॥१८०४॥
द्वेषे स हि प्रशस्तः स्यान् मारणे च कनिष्ठया ।
कैवल्येऽनामिका प्रोक्ता न कल्पः पञ्चमः क्वचित् ॥१८०५॥

एनां सन्दर्शयन्मालामपवित्रो न च स्पृशेत् ।
जपादौ च जपान्ते च पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥१८०६॥

[मालाया अप्रदर्शनविधिः]

संस्कारानन्तरं चैनां गुरोरपि न दर्शयेत् ।
दर्शितां भूतकूष्माण्डाः हरन्त्येनां वरानने ॥१८०७॥
छिन्ने सूत्रे पुनः सर्वं पूर्ववत्समुपाचरेत् ।

[जपप्रकारकथनम्]

जपानामधुना भेदान् सावधाना निशामय ॥१८०८॥
वाचिको मानसश्चापि जपो हि द्विविधो मतः ।
वाचोक्तौ यो जपः प्रोक्तः श्रवणार्हः स वाचिकः ॥१८०९॥
यत्राधरोष्ठौ चलतो यो जपः स हि मानसः ।
वाचिकोऽपि द्विधा ख्यातः उच्चैरेवमुपांशुकः ॥१८१०॥
द्विभेदो मानसश्चापि वासनो हार्द एव वा ।
समुच्चरन् स्पष्टरूपमन्यश्रवणयोग्यवत् ॥१८११॥
यो जपः स शिवेनोक्तो वाचिको मध्यमो ह्यसौ ।
यत्रौष्ठचालनं किञ्चिद् बुद्धयते वा न बुद्धयते ॥१८१२॥
उपांशुः स हि विज्ञेयो वाचिकाच्च चतुर्गुणः ।
वासनो वासनायोगात् नेत्राभ्यां लक्ष्य उच्यते ॥१८१३॥
ज्ञेयः शतगुणस्तस्मादुपांशोरयमीश्वरि ।
तल्लक्षिविक्रिया यत्र न चौष्ठाधरयोस्तथा ॥१८१४॥
स जपानां श्रेष्ठतमो हार्द इत्युच्यते बुधैः ।
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषो **डामरादिषु** ॥१८१५॥

यामले चानुसन्धेया ग्रन्थभीत्या न चेरितः ।
एवं हि मालाजपयोर्ज्ञात्वा क्रममनुत्तमम् ॥१८१६॥
यथाशक्ति जपेन्मन्त्रं मालाक्षगुलिकासमम् ।
नमस्कृत्य ततो योनिमुद्रया जगदम्बिकाम् ॥१८१७॥
पुष्पाञ्जलिं प्रदायामुं जपं देव्यै समर्पयेत् ।

[जपसमर्पणमन्त्रः]

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम् ॥१८१८॥
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ।
अयं मन्त्रो निगदितो मुख्यो जपसमर्पणे ॥१८१९॥
वामोरुतस्ततः शक्तिमुत्थाप्य सुरवन्दिते ।
पठेत् स्तोत्रं भावयुक्तं नम्रीकृतशिरोधरः ॥१८२०॥

या व्याप्य शक्त्या निजया जगन्ति ।
विष्टभ्य भूतानि तथाऽखिलानि ॥
वर्वर्ति सर्वोपरि चित्प्रकाशा ।
सा गुह्यकाली परिपातु विश्वम् ॥१८२१॥
सृष्टिस्थितिप्रलयकर्तुरपि क्षणेन ।
सृष्टिस्थितिप्रलयकर्तृतया मता या ॥
वेदागमाविदिततत्त्वतनुस्वरूपा ।
सा नः सदाऽवतु जगन्त्यपि गुह्यकाली ॥१८२२॥
सौम्यस्वरूपमपहाय करालरूपं ।
या दैत्यदानववधाय बिभर्ति गुह्या ॥

सा नः सदा वसतु चेतसि वाचि काये ।
तापत्रयप्रबलपावकवारिधारा ॥१८२३॥

योगेश्वरीहरिशिवाप्लवगर्क्षमर्त्य—
तार्क्ष्यद्विपेन्द्रमकराश्वमुखाकृतीनि ॥

वक्त्राणि धारयति याऽनलचन्द्रसूर्य—
रूपेक्षणे त्रितयमण्डलभूषितानि ॥१८२४॥

या वस्वर्ककलादलाम्बुजमये पीठे परिभ्राजते ।
बिन्दुत्र्यारशरीरकोणनवकाष्टारप्रतिष्ठापिते ॥
देवेशाग्निकृतान्तनैर्ऋतजलाधीशानिलार्थेश्वरे--
शानाश्राम्बुधिवेदशूलयुगविन्मुण्डश्मशानोज्वले ॥१८२५॥

या ध्याता कपिलादिभिः कृतयुगे श्रीचण्डयोगेश्वरी ।
त्रेतायां क्षितिपैश्च सिद्धिविकरालीति प्रसिद्धाख्यया॥
विप्रैः सिद्धिकराल्यनाद्यभिधया या द्वापरे गीयते ।
सर्वैरेव जनैस्तथा कलियुगे श्रीगुह्यकालीति च ॥१८२६॥

या मूलाधारमध्ये परशिवसहिता कुण्डलिन्यादिशक्तिः ।
सूक्ष्मा भूत्वा सुषुम्णापथमनुदधती ब्रह्मरन्ध्रं प्रयाति ॥
तत्र द्राक्सामरस्यानुभवसुखपदं धारयन्त्यात्मबोध
पीयूषासारसारं क्षरति तनुमिमां प्लावयन्ती तदाद्यैः ॥१८२७॥

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्ररुद्रप्रभृतिसुरगणप्रार्थितेच्छाप्रदान--
प्रख्यातानन्तशक्तिक्रमभरितमहामण्डलस्वर्गलोकाम् ॥

मालां पाशं करोटिं नकुलमहिमिषुं फेरुमद्रिं शतघ्नीं ।
खट्वाङ्गं रत्नकुम्भं धनुरपि दधतीं गुह्यकालीं नमामि॥१८२८॥

अरूपाऽपि प्रोद्यद्घनरुचिसमाङ्गद्युतिभरा ।
निराकाराप्युच्चैर्वदनदशविद्योतिततनुः ॥
अवीराऽपि स्थाणुप्रलयसमयप्राणदयिता ।
त्रिलोकीमातेयं जयति जगदाद्याजनिहरी ॥१८२९॥

न ते रूपं शीलं न बलमहसी नाक्षिवपुषी ।
विदित्वैवं वक्तुं जननि न समर्थौ हरिहरौ ॥
कथं कारं वक्ता मृतिजननधर्मा जडमतिः ।
जनो मर्त्यो मादृक् प्रचुरवृजिनाज्ञानखचितः ॥१८३०॥

देवेशानि त्वमसि वसुधा त्वं जलं त्वं च तेजः ।
त्वं वै वायुस्त्वमसि गगनं त्वं दिशस्त्वं च कालः ॥
आत्मापि त्वं त्वमसि च मनश्चेन्द्रियाणि त्वमेव ।
प्राणास्त्वं च क्षितिधरसुते तन्न किं नासि यत्त्वम् ॥१८३१॥

निस्त्रैगुण्या विकृतिरहिता निर्विकारा निरीहा ।
नित्या शुद्धा चिदमलतनुर्निः प्रपञ्चादिशक्तिः ॥
मायातीतामृतपदमयी वेदवेदान्तवेद्या ।
कालव्यापिन्यपि परशिवावासनानन्दरूपा ॥१८३२॥

करालि करुणानिधे विकचरूपिणि भ्रामरि ।
त्रिलोकजननि क्षमाऽमृतमयाऽम्बुनिस्यन्दिनि ॥

भयानकमुखि स्फुरन्मणिभुजङ्गसंदीपित
प्रतीपनि वरे शिवे गिरिशगेहिनि त्राहि माम् ॥१८३३॥
भवानि परमे शिवे भवविमोहिके चण्डिके ।
मृडानि वितते वरे सुरभि भैरवे कालिके ॥
महेशिमहिते परे सुदति पूजिते देविके ।
वरोरु सकले खरे लयिनि वन्दिते रक्ष माम् ॥१८३४॥
उपनिषदि पुराणे न्यायमीमांसयोश्च ।
क्रमपदनिगमादौ यज्ञसांख्यागमेषु ॥
तव खलु महिमानं वक्ति देवेशि शम्भुः ।
जडमतिरहमेनं नैव वक्तुं समर्थः ॥१८३५॥
सुरनरमुनिसंघैः सेवितं पादपद्मं ।
सकलकलुषवृन्दध्वंसकं भाग्यदायि ॥
हृदयसरसि नित्यं रोहतां मामकीने ।
त्रिभुवनतलमध्ये त्वामृतेऽन्यां न जाने ॥१८३६॥
उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररूपे भगप्रिये ।
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ॥१८३७॥
अरण्यचारिणि शिवे कुलद्रव्यमयीश्वरि ।
शिवारूपधरे देवि गुह्यकालि नमोऽस्तुते ॥१८३८॥
दशवक्त्रे महाघोरे सप्तविंशतिलोचने ।
चतुः पञ्चाशद्भुजे च गुह्यकालि नमोऽस्तुते ॥१८३९॥

नमस्तुभ्यं महारावे जगत्तारिणि कालिके ।
सर्वसिद्धिप्रदे सिद्धिविकरालि नमोऽस्तुते ॥१८४०॥
मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि फेरुभैरववाहिनि ।
ज्ञानानन्दमये भीमे भयङ्करि भयापहे ॥१८४१॥
संसारतारिणि जये जयसर्वशुभङ्करि ।
विस्रस्तचिकुरे चण्डे मुण्डमालाविभूषिते ॥१८४२॥
गुह्यकालि महाचण्डयोगेश्वरि परापरे ।
चण्डकापालिनि क्रुद्धे त्राहि मां शरणागतम् ॥१८४३॥
गुह्ये किराति शवरि प्रेतकालहृदिस्थिते ।
अनुग्रहं कुरु सदा कृपया मां विलोकय ॥१८४४॥
नवपञ्चमहाचक्रनिलये फेरुरूपिणि ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमोनमः ॥१८४५॥
सिद्धितत्त्वाभिधं स्तोत्रमेतत्तव मयोदितम् ।

[सिद्धितत्त्वस्तोत्रस्य फलश्रुतिः]

जपं समर्प्य पठतः सिद्धयः पुरतः स्थिताः ॥१८४६॥
सिद्धितत्त्वं पठन् देवि साधको भक्तितत्परः ।
विद्यावान् बलवान् वाग्मी चिरंजीवी निरामयः ॥१८४७॥
धार्मिको विजयी दक्षो यशस्वी भूपवल्लभः ।
ज्ञातिश्रेष्ठः पुत्रवांश्च सर्वयोषित्प्रियः सुखी ॥१८४८॥
रूपवान् वित्तवान् धीरो विक्रमो विश्वपूजितः ।
सिद्धिभाक् सर्वविच्चैव भवत्यत्र न संशयः ॥१८४९॥

यं यं कामयते कामं यां यां सिद्धिं चिकीर्षति ।
ते सर्वे तस्य वशगाः शम्भोरिव जगत्त्रयम् ॥१८५०॥
पञ्चविंशतिभिः श्लोकैः गुह्यकालीरिता यदि ।
कृतकृत्यस्तदा जात आरिराधयिषुर्हि ताम् ॥१८५१॥
पठितव्यः प्रयत्नेन तस्मादेव स्तवोत्तमः ।
स्तवोऽयं त्रिपुरघ्नेन लोकानां हितकाम्यया ॥१८५२॥
प्रकाशितो वरारोहे तस्मात् पाठ्यः प्रयत्नतः ।
विद्यां प्राप्नोति विद्यार्थी धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥१८५३॥
मुक्तिकामस्तु लभते मुक्तिं नास्त्यत्र संशयः ।
आवश्यकमिदं स्तोत्रं गुह्यकाल्यर्पितात्मनाम् ॥१८५४॥
एतत्स्तोत्रान्विता पूजा सहस्रगुणिता भवेत् ।

[गुह्यकाल्याः सहस्रनामस्तोत्रम्]

देव्युवाच ।
यदुक्तं भवता पूर्वं प्राणेश करुणावशात् ॥१८५५॥
नाम्नां सहस्रं देव्यास्तु तदिदानीं वदप्रभो ।
श्री महाकाल उवाच ।
अतिप्रीतोऽस्मि देवेशि तवाहं वचसामुना ॥१८५६॥
सहस्रनामस्तोत्रं यत् सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।
सुगोपितं यद्यपि स्यात् कथयिष्ये तथापि ते ॥१८५७॥
देव्याः सहस्रनामाख्यं स्तोत्रं पापौघमर्दनम् ।
मह्यं पुरा भुवः कल्पे त्रिपुरघ्नेन कीर्तितम् ॥१८५८॥

आज्ञप्तश्च तथा देव्या प्रत्यक्षंगतया तया ।
त्वयैतत् प्रत्यहं पाठ्यं स्तोत्रं परमदुर्लभम् ॥१८५९॥
महापातकविध्वंसि सर्वसिद्धिविधायकम् ।
महाभाग्यप्रदं दिव्यं संग्रामे जयकारकम् ॥१८६०॥
विपक्षदर्पदलनं विपदम्भोधितारकम् ।
कृत्याभिचारशमनं महाविभवदायकम् ॥१८६१॥
मनश्चिन्तितकार्यैकसाधकं वाग्मिताकरम् ।
आयुरारोग्यजनकं बलपुष्टिप्रदं परम् ॥१८६२॥
नृपतस्करभीतिघ्नं विवादे जयवर्द्धनम् ।
परशत्रुक्षयकरं कैवल्यामृतहैतुकम् ॥१८६३॥
सिद्धिरत्नाकरं श्रेष्ठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
नातः परतरं देव्याः अस्त्यन्यत् तुष्टिदं परम् ॥१८६४॥
नाम्नां सहस्रं गुह्यायाः कथयिष्यामि ते प्रिये ।
यत्पूर्वं सर्वदेवानां मन्त्ररूपतया स्थितम् ॥१८६५॥
दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
प्राणवत् कण्ठदेशस्थं यत्स्वप्नेऽप्यपरिच्युतम् ॥१८६६॥
देवर्षीणां मुनीनां च वेदवद्रसनागतम् ।
सार्वभौममहीपालैः प्रत्यहं यच्च पठ्यते ॥१८६७॥
मया च त्रिपुरघ्नेन जप्यते यद्दिने दिने ।
यस्मात् परं नो भविता स्तोत्रं त्रिजगतीतले ॥१८६८॥

वेदवन्मन्त्रवद् यच्च शिववक्त्रविनिर्गतम् ।
यन्नान्यतन्त्रागमेषु यामले डामरे न च ॥१८६९॥
न चान्यसंहिताग्रन्थे नैव ब्रह्माण्डगोलके ।
संसारसागरं तर्तुमेतत् पोतवदिष्यते ॥१८७०॥
नानाविधमहासिद्धिकोषरूपं महोदयम् ।
या देवी सर्वदेवानां या माता जगदोकसाम् ॥१८७१॥
या सृष्टिकर्त्री देवानां विश्वाविन्त्री च या स्मृता ।
या च त्रिलोक्याः संहर्त्री या दात्री सर्वसम्पदाम् ॥१८७२॥
ब्रह्माण्डं या च विष्टभ्य तिष्ठत्यमरपूजिता ।
पुराणोपनिषद्वेद्या या चैका जगदम्बिका ॥१८७३॥
यस्याः परं नान्यदस्ति किमपीह जगत्त्रये ।
सा गुह्यास्य प्रसादेन वशीभूतेव तिष्ठति ॥१८७४॥
अत एव महत्स्तोत्रमेतज्जगति दुर्लभम् ।
पठनीयं प्रयत्नेन परं पदमभीप्सुभिः ॥१८७५॥
किमन्यैः स्तोत्रविस्तारैर्नायं चेत् पठितोऽभवत् ।
किमन्यैः स्तोत्रविस्तारैरयं चेत् पठितो भवेत् ॥१८७६॥
दुर्वाससे नारदाय कपिलायात्रये तथा ।
दक्षाय च वसिष्ठाय संवर्ताय च विष्णवे ॥१८७७॥
अन्येभ्योऽपि देवेभ्योऽवदं स्तोत्रमिदं पुरा ।
इदानीं कथयिष्यामि तव त्रिदशवन्दिते ॥१८७८॥
इदं शृणुष्व यत्नेन श्रुत्वा चैवावधारय ।
धृत्वाऽन्येभ्योऽपि देहि त्वं यान् वै कृपयसे सदा ॥१८७९॥

ओमस्य श्रीगुह्यकालीसहस्रनामस्तोत्रस्यश्रीत्रिपुरघ्न ऋषि-रनुष्टुप् छन्द एकवक्त्रादिशतवक्त्रान्ता श्री गुह्यकालीदेवता फ्रूं बीजं ख्रैं ख्रैं शक्तिः छ्रीं ख्रीं कीलकं पुरुषार्थचतुष्टयसाधन-पूर्वकश्रीचण्डयोगेश्वरीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः । ओं तत्सत् ।

श्रों फ्रें कराली चामुण्डा चण्डयोगेश्वरी शिवा ।
दुर्गा कात्यायनी सिद्धिविकराली मनोजवा ॥१८८०॥
उल्कामुखी फेरुरावा भीषणा भैरवासना ।
कपालिनी कालरात्रिर्गौरी कङ्कालधारिणी ॥१८८१॥
श्मशानवासिनी प्रेतासना रक्तोदधिप्रिया ।
योगमाता महारात्रिः पञ्चकालानलस्थिता ॥१८८२॥
रुद्राणी रौद्ररूपा च रुधिरद्वीपचारिणी ।
मुण्डमालाधरा चण्डी बलवर्वरकुन्तला ॥१८८३॥
मेधा महाडाकिनी च योगिनी योगिवन्दिता ।
कौलिनी कुरुकुल्ला च घोरा पिङ्गजटा जया ॥१८८४॥
सावित्री वेदजननी गायत्री गगनालया ।
नवपञ्चमहाचक्रनिलया दारुणस्वना ॥१८८५॥
उग्रा कपर्दिगृहिणी जगदाद्या जनाश्रया ।
कालकर्णी कुण्डलिनी भूतप्रेतगणाधिपा ॥१८८६॥
जालन्धरी मसीदेहा पूर्णानन्दपतङ्गिनी ।
पालिनी पावकाभासा प्रसन्ना परमेश्वरी ॥१८८७॥

रतिप्रिया रोगहरी नागहारा नगात्मजा ।
अव्यया वीतरागा च भवानी भूतधारिणी ॥१८८८॥
कादम्बिनी नीलदेहा काली कादम्बरीप्रिया ।
माननीया महादेवी महामण्डलवर्तिनी ॥१८८९॥
महामांसाशनोशानी चिद्रूपा वागगोचरा ।
यज्ञाम्बुजासनादेवी दर्वीकरविभूषिता ॥१८९०॥
चण्डमुण्डप्रमथनी खेचरी खेचरोदिता ।
तमालश्यामला तीव्रा तापिनी तापनाशिनी ॥१८९१॥
महामाया महादंष्ट्रा महोरगविराजिता ।
लम्बोदरी लोलजटा लक्ष्म्यालक्ष्मीप्रदायिनी ॥१८९२॥
धात्री धाराधराकारा धोरणी धावनप्रिया ।
हरजाया हराराध्या हरिवक्त्रा हरीश्वरी ॥१८९३॥
विश्वेश्वरी वज्रनखी स्वरारोहा बलप्रदा ।
घोणकी घर्घरारावा घोराघौघप्रणाशिनी ॥१८९४॥
कल्पान्तकारिणी भीमा ज्वालामालिन्यवामया[?] ।
सृष्टिः स्थितिः क्षोभणा च कराला चापराजिता ॥१८९५॥
बज्रहस्तानन्तशक्तिर्विरूपा च परापरा ।
ब्रह्माण्डमर्दिनी प्रध्वंसिनी लक्षभुजा सती ॥१८९६॥
विद्युज्जिह्वा महादंष्ट्रा छायाध्वरसुताद्यहृत् ।
महाकालाग्निमूर्तिश्च मेघनादा कटंकटा ॥१८९७॥

प्रदीप्ता विश्वरूपा च जीवदात्री जनेश्वरी ।
साक्षिणी शर्वरी शान्ता शममार्गप्रकाशिका ॥१८९८॥
क्षेत्रज्ञा क्षेपणी क्षम्याऽक्षता क्षामोदरी क्षितिः ।
अप्रमेया कुलाचारकर्त्री कौलिकपालिनी ॥१८९९॥
माननीया मनोगम्या मेनानन्दप्रदायिनी ।
सिद्धान्तखनिरध्यक्षा मुण्डिनी मण्डलप्रिया ॥१९००॥
बाला च युवती वृद्धा वयोतीता बलप्रदा ।
रत्नमालाधरा दान्ता दर्वीकरविराजिता ॥१९०१॥
धर्ममूर्तिर्ध्वान्तरुचिर्धरित्री धावनप्रिया ।
संकल्पिनी कल्पकरी कलातीता कलस्वना ॥१९०२॥
वसुन्धरा बोधदात्री वर्णिनी वानरानरा[ना?] ।
विद्या विद्यात्मिका वन्या बन्धनी बन्धनाशिनी ॥१९०३॥
गेया जटाजटरम्या जरती जाह्नवी जड़ा ।
तारिणी तीर्थरूपा च तपनीया तनूदरी ॥१९०४॥
तापत्रयहरा तापी तपस्या तापसप्रिया ।
भोगिभूष्या भोगवती भगिनी भगमालिनी ॥१९०५॥
भक्तिलभ्या भावगम्या भूतिदा भववल्लभा ।
स्वाहारूपा स्वधारूपा वषट्कारस्वरूपिणी ॥१९०६॥
हंन्ता[सा?]कृतिर्नमोरूपा यज्ञादिर्यज्ञसंभवा ।
स्फ्यसूर्पचमसाकारा स्रक्स्रुवाकृतिधारिणी ॥१९०७॥

उद्गीथहिंकारदेहा नमः स्वस्तिप्रकाशिनी ।
ऋग्यजुः सामरूपा च मन्त्रब्राह्मणरूपिणी ॥१६०८॥
सर्वशाखामयी खर्वा पीवर्युपनिषद्बुधा ।
रौद्री मृत्युञ्जयाचिन्तामणिर्वैहायसी धृतिः ॥१६०९॥
तार्तीया हंसिनी चान्द्री तारा त्रैविक्रमी स्थितिः ।
योगिनी डाकिनी धारा वैद्युती विनयप्रदा ॥१६१०॥
उपांशुर्मानसी वाच्या रोचना रुचिदायिनी ।
सत्वाकृतिस्तमोरूपा राजसी गुणवर्जिता ॥१६११॥
आदिसर्गादिकालीनभानवी नाभसी तथा ।
मूलाधारा कुण्डलिनी स्वाधिष्ठानपरायणा ॥१६१२॥
मणिपूरकवासा च विशुद्धानाहता तथा ।
आज्ञा प्रज्ञा महासंज्ञा वर्वरा व्योमचारिणी ॥१६१३॥
वृहद्रथन्तराकारा ज्येष्ठा चाथर्वणी तथा ।
प्राजापत्या महाब्राह्मी हूंहूंकारा पतङ्गिनी ॥१६१४॥
राक्षसी दानवी भूतिः पिशाची प्रत्यनीकरा ।
उदात्ताप्यनुदात्ता च स्वरिता निःस्वराप्यजा ॥१६१५॥
निष्कला पुष्कला साध्वी सा नुता खण्डरूपिणी ।
गूढा पुराणा चरमा प्राग्भवी वामनी ध्रुवा ॥१६१६॥
काकीमुखी साकला च स्थावरा जङ्गमेश्वरी ।
ईडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा ध्यानगोचरा ॥१६१७॥

सर्गा विसर्गा धमनी कम्पिनी बन्धनी हिता ।
सङ्कोचिनी भासुरा च निम्ना दृप्ता प्रकाशिनी ॥१६१८॥
प्रबुद्धा क्षेपणी क्षिप्ता पूर्णालस्या विलम्बिता ।
आवेशिनी घर्घरा च रूक्षा क्लिन्ना सरस्वती ॥१६१६॥
स्निग्धा चण्डा कुहूः पूषा वारणा च यशस्विनी ।
गान्धारी शङ्खिनी चैव हस्तिजिह्वा पयस्विनी ॥१६२०॥
विश्वोदरालम्बुषा च बिभ्रा तेजस्विनी सती ।
अव्यक्ता गालनी मन्दा मुदिता चेतनापि च ॥१६२१॥
द्रावणी चपला लम्बा भ्रामरी मधुमत्यपि ।
धर्मा रसवहा चण्डी सौवीरी कपिला तथा ॥१६२२॥
रण्डोत्तरा कर्षिणी च रेवती सुमुखी नटी ।
रजन्याप्यायनी विश्वदूता चन्द्रा कपर्दिनी ॥१६२३॥
नन्दा चन्द्रावती मैत्री विशालापि च माण्डवी ।
विचित्रा लोहिनीकल्पा सुकल्पा पूतनापि च ॥१६२४॥
धोरणी धारणी हेला धीरा वेगवती जटा ।
अग्निज्वाला च सुरभी विवर्णा कृन्तनी तथा ॥१६२५॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
तपस्विनी स्वप्नवहा संमोहा कोटरा चला ॥१६२६॥
विकल्पा लम्बिका मूला तन्द्रावत्यपि घण्टिका ।
अविग्रहा च कैवल्या तुरीया चापुनर्भवा ॥१६२७॥

विश्रान्तिश्च प्रशान्ता च योगिनिः श्रेण्यलक्षिता ।
निर्वाणा स्वस्तिका वृद्धिर्निवृत्तिश्च महोदया ॥१६२८॥
बोध्याऽविद्या च तामिस्रा वासना योगमेदिनी ।
निरञ्जना च प्रकृतिः सत्तारव्या पारमार्थिकी ॥१६२९॥
प्रतिविम्बनिराभासा सदसद्रूपधारिणी ।
उपशान्ता च चैतन्या कूटा विज्ञानमय्यपि ॥१६३०॥
शक्तिविद्या वासिता च मोदिनी मुदितानना ।
अनया प्रवहा व्याडी सर्वज्ञा शरणप्रदा ॥१६३१॥
वारुणी मार्जनीभाषा प्रतिमा बृहती खला ।
प्रतीच्छा प्रमितिः प्रीतिः कुहिका तर्पणप्रिया ॥१६३२॥
स्वस्तिका सर्वतोभद्रा गायत्री प्रणवात्मिका ।
सावित्री वेदजननी निगमाचारबोधिनी ॥१६३३॥
विकराला कराला च ज्वालाजालैकमालिनी ।
भीमा च क्षोभणानन्ता वीरा बज्रायुधा तथा ॥१६३४॥
प्रध्वंसिनी च मालङ्का विश्वमर्दिन्यवीक्षिता ।
मृत्युः सहस्रबाहुश्च घोरदंष्ट्रा वलाहकी ॥१६३५॥
पिङ्गा पिङ्गशता दीप्ता प्रचण्डा सर्वतोमुखी ।
विदारिणी विश्वरूपा विक्रान्ता भूतभावनी ॥१६३६॥
विद्राविणी मोक्षदात्री कालचक्रेश्वरी नटी ।
तप्तहाटकवर्णा च कृतान्ता भ्रान्तिभञ्जिनी ॥१६३७॥

सर्वतेजोमयी भव्या दितिशोककरी कृतिः ।
महाक्रुद्धा श्मशानस्था कपालस्रगलङ्कृता ॥१९३८॥
कालातिकाला कालान्तकरीतिः करुणानिधिः ।
महाघोरा घोरतरा संहारकरिणी तथा ॥१९३९॥
अनादिश्च महोन्मत्ता भूतधात्र्यसितेक्षणा ।
भीष्माकारा च वक्राङ्गी बहुपादैकपादिका ॥१९४०॥
कुलाङ्गना कुलाराध्या कुलमार्गरतेश्वरी ।
दिगम्बरा मुक्तकेशी बज्रमुष्टिर्निरिन्धनी ॥१९४१॥
संमोहिनी क्षोभकरी स्तम्भिनी वश्यकारिणी ।
दुर्द्धर्षा दर्पदलनी त्रैलोक्यजननी जया ॥१९४२॥
उन्मादोच्चाटनकरी कृत्या कृत्याविघातिनी ।
विरूपा कालरात्रिश्च महारात्रिर्मनोन्मनी ॥१९४३॥
महावीर्या गूढनिद्रा चण्डदोर्दण्डमण्डिता ।
निर्मला शूलिनी तन्त्रा बज्रिणी चापधारिणी ॥१९४४॥
स्थूलोदरी च कुमुदा कामुका लिङ्गधारिणी ।
धटोदरी फेरवी च प्रवीणा कालसुन्दरी ॥१९४५॥
तारावती डमरुका भानुमण्डलमालिनी ।
एकानङ्गा पिङ्गलाक्षी प्रचण्डाक्षी शुभङ्करी ॥१९४६॥
विद्युत्केशी महामारी सूची तूण्डी च जृम्भका ।
प्रस्वापिनी महातीव्रा वरणीया वरप्रदा ॥१९४७॥

चण्डचण्डा ज्वलद्देहा लम्बोदर्यग्निमर्दिनी ।
महादन्तोल्कादृगम्बा ज्वालाजालजलन्धरी ॥१६४८॥
माया कृशा प्रभा रामा महाविभवदायिनी ।
पौरन्दरी विष्णुमाया कीर्तिः पुष्टिस्तनूदरी ॥१६४९॥
योगज्ञा योगदात्री च योगिनी योगिवल्लभा ।
सहस्रशीर्षपादा च सहस्रनयनोज्वला ॥१६५०॥
पानकर्त्री पावकाभा परामृतपरायणा ।
जगद्गतिर्जगज्जेत्री जन्मकालविमोचिनी ॥१६५१॥
मूलावतंसिनी मूला मौनव्रतपराङ्मुखी ।
ललिता लोलुपा लोला लक्षणीया ललामधृक् ॥१६५२॥
मातङ्गिनी भवानी च सर्वलोकेश्वरेश्वरी ।
पार्वती शम्भुदयिता महिषासुरमर्दिनी ॥१६५३॥
चण्डमुण्डापहर्त्री च रक्तबीजनिकृन्तनी ।
निशुम्भशुम्भमथनी देवराजवरप्रदा ॥१६५४॥
कल्याणकारिणी काली कोलमांसास्रपायिनी ।
खड्गहस्ता चर्मिणी च पाशिनी शक्तिधारिणी ॥१६५५॥
खट्वाङ्गिनी मुण्डधरा भुशुण्डी धनुरन्विता ।
चक्रघण्टान्विता बालप्रेतशैलप्रधारिणी ॥१६५६॥
नरकङ्कालनकुलसर्पहस्ता समुद्गरा ।
मुरलीधारिणी बलिकुण्डिनी डमरुप्रिया ॥१६५७॥

भिन्दिपालास्त्रिणी पूज्या साध्या परिघिणी तथा ।
पट्टिशप्रासिनी रम्या शतघ्नी मुसलिन्यपि ॥१६५८॥
शिवापोतधरादण्डाङ्कुशहस्ता त्रिशूलिनी ।
रत्नकुम्भधरा दान्ता छुरिकाकुन्तदोर्युता ॥१६५९॥
कमण्डलुकरा क्षामा गृध्राढ्या पुष्पमालिनी ।
मांसखण्डकरा बीजपूरवत्यक्षरा क्षरा ॥१६६०॥
गदापरशुयष्टयङ्का मुष्टिनानलधारिणी ।
प्रभूता च पवित्रा च श्रेष्ठा पुण्यविवर्द्धनी ॥१६६१॥
प्रसन्नानन्दितमुखी विशिष्टा शिष्टपालिनी ।
कामरूपा कामगवी कमनीयकलावती ॥१६६२॥
गङ्गा कलिङ्गतनया सिप्रा गोदावरी मही ।
रेवा सरस्वती चन्द्रभागा कृष्णा दृषद्वती ॥१६६३॥
वाराणसी गयावन्ती काञ्ची मलयवासिनी ।
सर्वदेवीस्वरूपा च नानारूपधरामला ॥१६६४॥
लक्ष्मीर्गौरी महालक्ष्मी रत्न[न्न]पूर्णा कृपामयी ।
दुर्गा च विजया घोरा पद्मावत्यमरेश्वरी ॥१६६५॥
वगला राजमातङ्गी चण्डी महिषमर्दिनी ।
त्रिपुटोच्छिष्टचाण्डाली भारुण्डा भुवनेश्वरी ॥१६६६॥
राजराजेश्वरी नित्यक्लिन्ना च जयभैरवी ।
चण्डयोगेश्वरी राज्यलक्ष्मी रुद्राण्यरुन्धती ॥१६६७॥

अश्वारूढा महागुह्या यन्त्रप्रमथनी तथा ।
धनलक्ष्मीर्विश्वलक्ष्मीर्वश्यकारिण्यकल्मषा ॥१६६८॥
त्वरिता च महाचण्डभैरवी परमेश्वरी ।
त्रैलोक्यविजया ज्वालामुखी दिक्करवासिनी ॥१६६९॥
महामन्त्रेश्वरी वज्रप्रस्तारिण्यजनावती ।
चण्डकापालेश्वरी च स्वर्णकोटेश्वरी तथा ॥१६७०॥
उग्रचण्डा श्मशानोग्रचण्डा वार्तात्यजेश्वरी ।
चण्डोग्रा च प्रचण्डा च चण्डिका चण्डनायिका ॥१६७१॥
वाग्वादिनी मधुमती वारुणी तुम्बुरेश्वरी ।
वागीश्वरी च पूर्णेशी सौम्योग्रा कालभैरवी ॥१६७२॥
दिगम्बरा च धनदा कालरात्रिश्च कुब्जिका ।
किराटी शिवदूती च कालसंकर्षणी तथा ॥१६७३॥
कुक्कुटी संकटा देवी चपलभ्रमराम्बिका ।
महार्णवेश्वरी नित्या जयभङ्केश्वरी तथा ॥१६७४॥
शवरी पिङ्गला बुद्धिप्रदा संसारतारिणी ।
विज्ञा महामोहिनी च बाला त्रिपुरसुन्दरी ॥१६७५॥
उग्रतारा चैकजटा तथा नीलसरस्वती ।
त्रिकण्टकी छिन्नमस्ता बोधिसत्वा रणेश्वरी ॥१६७६॥
ब्रह्माणी वैष्णवी माहेश्वरी कौमार्यलम्बुषा ।
वाराही नारसिंही च चामुण्डेन्द्राण्योनिजा ॥१६७७॥

चण्डेश्वरी चण्डघण्टा नाकुली मृत्युहारिणी[1] ।
हंसेश्वरी मोक्षदा च शातकर्णी जलन्धरी ॥१९७८॥
स्वरकर्णी ऋक्षकर्णी सूर्पकर्णा बलाबला ।
महानीलेश्वरी जातवेतसी कोकतुण्डिका ॥१९७९॥
गुह्येश्वरी वज्रचण्डी महाविद्या च बाभ्रवी ।
शाकम्भरी दानवेशी डामरी चर्चिका तथा ॥१९८०॥
एकवीरा जयन्ती च एकानंशा पताकिनी ।
नीललोहितरूपा च ब्रह्मवादिन्ययन्त्रिता ॥१९८१॥
त्रिकालवेदिनी नीलकोरङ्गी रक्तदन्तिका ।
भूतभैरव्यनालम्बा कामाख्या कुलकुट्टनी ॥१९८२॥
क्षेमङ्करी विश्वरूपा मायूर्यावेशिनी तथा ।
कामाङ्कुशा कालचण्डी भीमादेव्यर्धमस्तका ॥१९८३॥
धूमावती योगनिद्रा ब्रह्मविष्णुनिकृन्तनी ।
चण्डोग्रकापालिनी च बोधिका हाटकेश्वरी ॥१९८४॥
महामङ्गलचण्डी च तोमरा चण्डखेचरी ।
विशाला शक्तिसौपर्णी फेरुचण्डी मदोद्धता ॥१९८५॥
कापालिका चंचरीका महाकामध्रुवापि च ।
विक्षेपणी भूततुण्डी मानस्तोका सुदामिनी ॥१९८६॥

१–इन्द्राणी वज्रवाराही फेत्कारी तुम्बुरेश्वरी ।
हयग्रीवा हस्तितुण्डा नाकुली मृत्युहारिणी ॥ इत्यधिकं ख. ग. पुस्तकयोः ।

निर्मूलिनी शाङ्कविणी सद्योजाता मदोत्कटा ।
वामदेवी महाघोरा महातत्पुरुषी तथा ॥१६८७॥
ईशानी शाङ्करी भर्गी महादेवी कपर्दिनी ।
त्र्यम्बकी व्योमकेशी च मारी पाशुपती तथा ॥१६८८॥
जयकाली धूमकाली ज्वालाकाल्युग्रकालिका ।
धनकाली घोरनादकाली कल्पान्तकालिका ॥१६८९॥
वेतालकाली कंकालकाली श्रीनग्नकालिका ।
रौद्रकाली घोरघोरतरकाली तथैव च ॥१६९०॥
ततो दुर्जयकाली च महामन्थानकालिका ।
आज्ञाकाली च संहारकाली संग्रामकालिका ॥१६९१॥
कृतान्तकाली तदनु तिग्मकाली ततः परम् ।
ततो महारात्रिकाली महारुधिरकालिका ॥१६९२॥
शवकाली भीमकाली चण्डकाली तथैव च ।
सन्त्रासकाली च ततः श्रीभयङ्करकालिका ॥१६९३॥
विकरालकाली श्रीघोरकाली विकटकालिका ।
करालकाली तदनु भोगकाली ततः परम् ॥१६९४॥
विभूतिकाली श्रीकालकाली दक्षिणकालिका ।
विद्याकाली बज्रकाली महाकाली भवेत्ततः ॥१६९५॥
ततः कामकलाकाली भद्रकाली तथैव च ।
श्मशानकालिकोन्मत्तकालिका मुण्डकालिका ॥१६९६॥
कुलकाली नादकाली सिद्धिकाली ततः परम् ।
उदारकाली सन्तापकाली चञ्चलकालिका ॥१६९७॥

डामरी कालिका भावकाली कुणपकालिका ।
कपालकाली च दिगम्बरकाली तथैव च ॥१९९८॥
उद्दामकाली प्रपंचकाली विजयकालिका ।
क्रतुकाली योगकाली तपःकाली तथैव च ॥१९९९॥
आनन्दकाली च ततः प्रभाकाली ततः परम् ।
सूर्यकाली चन्द्रकाली कौमुदीकालिका ततः ॥२०००॥
स्फुलिङ्गकाल्यग्निकाली वीरकाली तथैव च ।
रणकाली हूंहूंकारनादकाली ततः परम् ॥२००१॥
जयकाली विघ्नकाली महामार्तण्डकालिका ।
चिताकाली भस्मकाली ज्वलदङ्गारकालिका ॥२००२॥
पिशाचकाली तदनु ततो लोहितकालिका ।
खर[1]काली नागकाली ततो राक्षसकालिका ॥२००३॥
महागगनकाली च विश्वकाली भवेदनु ।
मायाकाली मोहकाली ततो जङ्गमकालिका ॥२००४॥
पुनः स्थावरकाली च ततो ब्रह्माण्डकालिका ।
सृष्टिकाली स्थितिकाली पुनः संहारकालिका ॥२००५॥
अनाख्याकालिका चापि भासाकाली ततोऽप्यनु ।
व्योमकाली पीठकाली शक्तिकाली तथैव च ॥२००६॥
ऊर्ध्वकाली अधःकाली तथा चोत्तरकालिका ।
तथा समयकाली च कौलिकक्रमकालिका ॥२००७॥

१–खग ख. ग ।

ज्ञानविज्ञानकाली च चित्सत्ताकालिकापि च ।
अद्वैतकाली परमानन्दकाली तथैव च ॥२००८॥
वासनाकालिका योगभूमिकाली ततः परम् ।
उपाधिकाली च महोदयकाली ततोऽप्यनु ॥२००९॥
निवृत्तिकाली चैतन्यकाली वैराग्यकालिका ।
समाधिकाली प्रकृतिकाली प्रत्ययकालिका ॥२०१०॥
सत्ताकाली च परमार्थकाली नित्यकालिका ।
जीवात्मकाली परमात्मकाली बन्धकालिका ॥२०११॥
आभासकालिका सूक्ष्मकालिका शेषकालिका ।
लयकाली साक्षिकाली ततश्च स्मृतिकालिका ॥२०१२॥
पृथिवीकालिका वापि एककाली ततः परम् ।
कैवल्यकाली सायुज्यकाली च ब्रह्मकालिका ॥२०१३॥
ततश्च पुनरावृत्तिकाली याऽमृतकालिका ।
मोक्षकाली च विज्ञानमयकाली ततः परम् ॥२०१४॥
प्रतिबिम्बकालिका चापि एककाली[1] ततः परम् ।
एकात्म्यकालिकानन्दमयकाली तथैव च ॥२०१५॥
सर्वशेषे परिज्ञेया निर्वाणमयकालिका ।
इति नाम्नां सहस्रं ते प्रोक्तमेकाधिकं प्रिये ॥२०१६॥

१—पिण्डकाली क ।

पठतः स्तोत्रमेतद्धि सर्वं करतले स्थितम् ।
[सहस्रनाम्नः स्तोत्रस्य फलश्रुतिः]
नैतेन सदृशं स्तोत्रं भूतं वापि भविष्यति ॥२०१७॥
यः पठेत् प्रत्यहमदस्तस्य पुण्यफलं श्टृणु ।
पापानि विलयं यान्ति मन्दराद्रिनिभान्यपि ॥२०१८॥
उपद्रवाः विनश्यन्ति रोगाग्निनृपचौरजाः ।
आपदश्च विलीयन्ते ग्रहपीडाः स्पृशन्ति न ॥२०१९॥
दारिद्रय् नाभिभवति शोको नैव प्रबाधते ।
नाशं गच्छन्ति रिपवः क्षीयन्ते विघ्नकोटयः ॥२०२०॥
उपसर्गाः पलायन्ते बाधन्ते न विषाण्यपि ।
नाकालमृत्युर्भवति न जाड्यं नैव मूकता ॥२०२१॥
इन्द्रियाणां न दौर्बल्यं विषादो नैव जायते ।
अथादौ नास्य हानिः स्यात् न कुत्रापि पराभवः ॥२०२२॥
यान् यान् मनोरथानिच्छेत् तांस्तान् साधयति द्रुतम् ।
सहस्रनामपूजान्ते यः पठेद् भक्तिभावितः ॥२०२३॥
पात्रं स सर्वसिद्धीनां भवेत्संवत्सरादनु ।
विद्यावान् बलवान् वाग्मी रूपवान् रूपवल्लभः ॥२०२४॥
अधृष्यः सर्वसत्वानां सर्वदा जयवान् रणे ।
कामिनीनां प्रियो नित्यं मित्राणां प्राणसन्निभः ॥२०२५॥
रिपूणामशनिः साक्षाद्दाता भोक्ता प्रियंवदः ।
आकरः स हि भाग्यानां रत्नानामिव सागरः ॥२०२६॥

मन्त्ररूपमिदं ज्ञेयं स्तोत्रं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
एतस्य बहवः सन्ति प्रयोगाः सिद्धिदायिनः ॥२०२७॥
तान् विधाय सुरेशानि ततः सिद्धीः परीक्षयेत् ।
ताररावौ पुरा दत्त्वा नाम चैकैकमन्तरा ॥२०२८॥
तच्च ङेऽन्तं विनिर्दिश्य शेषे हार्दमनुं न्यसेत् ।
उपरागे भास्करस्येन्दोर्वाप्यथान्यपर्वणि ॥२०२९॥
मालतीकुसुमैर्विल्वपत्रैर्वा पायसेन वा ।
मधूक्षितद्राक्षया वा पक्वमोचाफलेन वा ॥२०३०॥
प्रत्येकं जुहुयात् नाम पूर्वप्रोक्तक्रमेण हि ।
एवं त्रिवारं निष्पाद्य ततः स्तोत्रं परीक्षयेत् ॥२०३१॥
यावत्यः सिद्धयः सन्ति कथिता यामलादिषु ।
भवन्त्येते न तावन्त्यो दृढविश्वासशालिनाम् ॥२०३२॥

[एतत्स्तोत्रस्य प्रयोगविधिवर्णनम्]

परचक्रे समायाते मुक्तकेशो दिगम्बरः ।
रात्रौ तदाशाभिमुखः पंचविंशतिधा पठेत् ॥२०३३॥
परचक्रं सदा घोरं स्वयमेव पलायते ।
महारोगोपशमने त्रिंशद्वारमुदीरयेत् ॥२०३४॥
विवादे राजजनितोपद्रवे दशधा जपेत् ।
महादुर्भिक्षपीडासु महामारीभयेषु च ॥२०३५॥
षष्टिवारं स्तोत्रमिदं पठन्नाशयति द्रुतम् ।
भूतप्रेतपिशाचादि कृताभिभवकर्मणि ॥२०३६॥

प्रजपेत् पञ्च दशधा क्षिप्रं तदभिधीयते ।
तथा निगडबद्धानां मोचने पञ्चधा जपेत् ॥२०३७॥
बध्यानां प्राणरक्षार्थं शतवारमुदीरयेत् ।
दुःस्वप्नदर्शने वारत्रयं स्तोत्रमिदं पठेत् ॥२०३८॥
एवं विज्ञाय देवेशि महिमानममुष्य हि ।
यस्मिन् कस्मिन्नपि प्राप्ते संकटे योजयेदिदम् ॥२०३९॥
शमयित्वा तु तत्सर्वं शुभमुत्पादयत्यपि ।
रणे विवादे कलहे भूतावेशे महाभये ॥२०४०॥
उत्पातराजपीडायां बन्धुविच्छेद एव वा ।
सर्पाग्निदस्युनृपतिशत्रुरोगभये तथा ॥२०४१॥
जप्यमेतन्महास्तोत्रं समस्तं नाशमिच्छता ।
ध्यात्वा देवीं गुह्यकालीं नग्नां शक्तिं विधाय च ॥२०४२॥
तद्योनौ यन्त्रमालिख्य त्रिकोणं बिन्दुमत् प्रिये ।
पूर्वोदितक्रमेणैव मन्त्रमुच्चार्य साधकः ॥२०४३॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्नित्यं प्रत्येकं परिपूजयेत् ।
बलिं च प्रत्यहं दद्यात् चतुर्विंशतिवासरान् ॥२०४४॥
स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रं सिद्ध्यन्त्येतावताप्यदः ।
स्तम्भने मोहने चैव वशीकरण एव च ॥२०४५॥
उच्चाटने मारणे च तथा द्वेषाभिचारयोः ।
गुटिकाधातुवादादियक्षिणीपादुकादिषु ॥२०४६॥

क्रपाणाञ्जनवेतालान्यदेहादिप्रवेशने ।
प्रयुञ्ज्यादिदमीशानि ततः सर्वं प्रसिद्धयति ॥२०४७॥
सर्वे मनोरथास्तस्य वशीभूता करे स्थिताः ।
आरोग्यं विजयं सौख्यं विभूतिमतुलामपि ॥२०४८॥
त्रिविधोत्पातशान्तिञ्च शत्रुनाशं पदे पदे ।
ददाति पठितं स्तोत्रमिदं सत्यं सुरेश्वरि ॥२०४९॥
स्तोत्राण्यन्यानि भूयांसि गुह्यायाः सन्ति पार्वति ।
तानि नैतस्य तुल्यानि ज्ञातव्यानि सुनिश्चितम् ॥२०५०॥
इदमेव तस्य तुल्यं सत्यं सत्यं मयोदितम् ।
नाम्नां सहस्रं यद्येतत् पठितुं नालमन्वहम् ॥२०५१॥

[सहस्रनाम्नः पाठाशक्तौ वक्ष्यमाणपाठस्य निदेशः]

तदैतानि पठेन्नित्यं नामानि स्तोत्रपाठकः ।
चण्डयोगेश्वरी चण्डी चण्डकापालिनी शिवा ॥२०५२॥
चामुण्डा चण्डिका सिद्धिकराली मुण्डमालिनी ।
कालचक्रेश्वरी फेरुहस्ता घोराट्टहासिनी ॥२०५३॥
डामरी चर्चिका सिद्धिविकराली भगप्रिया ।
उल्कामुखी ऋक्षकर्णी बलप्रमथिनी परा ॥२०५४॥
महामाया योगनिद्रा त्रैलोक्यजननीश्वरी ।
कात्यायनी घोररूपा जयन्ती सर्वमङ्गला ॥२०५५॥
कामातुरा मदोन्मत्ता देववेवीवरप्रदा ।
मातङ्गी कुब्जिका रौद्री रुद्राणी जगदम्बिका ॥२०५६॥

चिदानन्दमयी मेधा ब्रह्मरूपा जगन्मयी ।
संहारिणी वेदमाता सिद्धिदात्री बलाहका ॥२०५७॥
वारुणी जगतामाद्या कलातीता चिदात्मिका ।
नामान्येतानि पठता सर्वं तत् परिपठ्यते ॥२०५८॥
इत्येतत् कथितं नाम्नां सहस्रं तव पार्वति ।
उदीरितं फलं चास्य पठनाद् यत् प्रजायते ॥२०५९॥
निःशेषमवधार्य त्वं यथेच्छसि तथा कुरु ।
पठनीयं न च स्त्रीभिरेतत् स्तोत्रं कदाचन ॥२०६०॥

[गद्यसञ्जीवनस्तोत्रम्]

महाकाल उवाच

इदं स्तोत्रं पुरा देव्या त्रिपुरघ्नाय कीर्तितम् ।
त्रिपुरघ्नोऽपि मां प्रादादुपदिश्य मनुं प्रिये ॥२०६१॥
गद्याकारं च स विभुः स्तोत्रं तस्यै चकार ह ।
ततः प्रभृति गद्यं तत् जीवन्यासाभिधं मतम् ॥२०६२॥
नाम्नां सहस्रं पठता पाठ्यं तदपि पार्वति ।
एतस्याः कीर्तनाद्देवि तस्यापि न भवेत् फलम् ॥२०६३॥
आख्यातव्यमतो यत्नादेतत् गद्यमपि प्रिये ।
तस्य स्तोत्रस्य हि यतो जीवन्यासोऽयमीरितः ॥२०६४॥

त्रिपुरघ्न उवाच

ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं ह्रूं स्त्रीं श्रीं क्लीं ख्फ्रें नमो भगवत्यै गुह्यकाल्यै जय जय जय महाचण्डयोगेश्वरि चण्डकापालिनि सिद्धि-

करालि विकरालि कालिकापालिनि[१] त्रिजगतीपालिनि सृष्टि-स्थितिसंहारानाख्याभासाभिधपञ्चरूपधारिणि ब्रह्मविष्णुरुद्रा-वतारिणि प्रलयकारिणि महामारीमारिणि महाघोरतरपञ्च-कालानलवासिनि अट्टाट्टहासिनि ब्रह्मविद्याप्रकाशिनि नवपञ्च-चक्रलयिनि महाभीषणभुजङ्गबलयिनि त्रिभुवनजयिनि अध्यासित-श्मशानज्वालजाले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले परेतसुरासुरनिकरकीकश-रचितग्रैवेयकभाले प्रविस्रस्तमहापिङ्गलजटाभारे मृतब्रह्मकपालहारे त्रिभुवनसारे प्रदीपकेशरि गोमायुप्लवगसिंहभल्लूकमनुजसुपर्ण-मातङ्गमकरतुरगाननाकारदशवदने कटकटायमानशितदीर्घवदने कृतदितिजदनुजकदने सप्तविंशतिलोचने महाविततसंहारे पाश-प्रमोचने कृतपरमसदाशिवमनःप्रोचने शोणितोदशायिनि हाला-पायिनि महामायिनि रुधिरार्णवे द्वीपकृतावासे विहितपरमसदाशिव-विलासे जयजनकमहादारुणहासे चतुर्वेद्य[द?]वेद्यानुभावे अध्या-सितमहादावे घोरतररावे प्रज्वलत्पावकशिखान्तश्चारिणि महादुःखपापौघहारिणि भवभयतारिणि वृहल्लम्बमानोदरि ताप-त्रयहरि विश्वेश्वरि नवकोटिकुलाकुलचक्रप्रवर्तिनि निखिलरिपु-कुलकर्तिनि महप्रलयकालनर्तिनि चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डोत्पत्ति-प्रतिपालसंहारशालिनि ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रमुण्डमालिनि महाचर्चरीकरता-लिनि परापरसामरस्यरसमोहिनि भक्तजनमनोरथदोहिनि कालिकाकुलसमयसंदोहिनि वामकर्कशदोर्दण्डविधृतरक्तमाला-कपालचर्मपाशशक्तिखट्वाङ्गमुण्डभुशुण्डीचापचक्रघण्टावाणप्रेत -

१—मुण्डमालिनि ख ग पुस्तकयोरधिकपाठः ।

शिखरिणि मनुजकंकालबभ्रु दर्वीकरोन्मादमुरलीमुद्गरवह्निकुण्ड-डमरुपरिघभिन्दिपालमुशलपट्टिशप्राशशतघ्नीशिवापोते दक्षिणभुजावलम्बितरत्नमालाकर्तृकाकपाणतर्जनीसृणिदण्डे रत्नकुम्भत्रिशूल-पञ्चपाशुपतबाणकुन्तपारिजातछुरिकातोमरकुसुममालाड़िण्डिमगृध्र-कमण्डलुपललखण्डश्रुवबीजपूरसूचीपरशुगदायष्टिमुष्टिकुणपलालने नरमुण्डनक्षत्रमालालङ्कृते चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मे दिगम्बरि सकलमन्त्रयन्त्रतन्त्राधिदैवते गुह्यातिगुह्यपरमशक्ति-तत्त्वावतारे अष्टनागराजभूषितसमस्तदोर्मण्डले वागगोचरे प्रपंचातीतनिष्कलतुरीयाकारे महाखेचरीसिद्धिदायिनि त्रिलोकी-ग्रासिनि वेदोपवेदाष्टदिक्पालपञ्चप्रेतमयसिंहासनाधिरूढ़े नव-कोटिमालामन्त्रमयकलेवरे महाविकरालतरे महाप्रलयकाल-प्रकटिततमोगुणे परसदाशिवसङ्क्रामितनिजवैभवे समून्मूलितप्रणत नानाभवे ब्रह्मरन्ध्रविनिविष्टनिजकान्तसामरस्यसिन्धुमज्जनो-न्मज्जनप्रिये वीरघण्टाकिङ्किणीडमरुनिनादिते अपरिमिते बलपराक्रमे शुद्धविद्यासंप्रदायसंसिद्ध शुद्धचैतन्यस्वरूपे प्रकृत्यपर-शिवनिर्वाणसाक्षिणि चण्डातिचण्डकाण्डखण्डितासुरसमूहे भगमालिनि भगप्रिये भगातुरे भगाङ्किते भगरूपिणि भगलिङ्ग-द्राविणि कालचक्रनरसिंहाकारधारिपरममहारुद्रसुरतरसलोलुपे महापिङ्गलकेशि व्योमकेशि नियुतवक्त्रकरचरणे त्रिलोकीशरणे देह-प्रभाजितमेघजाले त्रयस्त्रिंशत्कोटिमहादिव्यास्त्रसन्धानकारिणि महाशङ्खसमाकुले खर्परविह[स्र]स्तहस्ते विद्युत्कोटिदुर्निरीक्ष्ये शव-मांसवसाकवलिनि वमदग्निमुखे फेरुकोटिपरिवृते नृत्यनिह्नितपादा-

घातपरिवर्तितभूवलयधरेण भग्नीकृतकूर्मशेषनाग-
भोगे मांसशोणितभोजिनि कुरुकुल्ले कृष्णतुण्डि रक्तमुखि
चण्डे शवरि पीवरे रक्षिके यमघण्टे चर्चिके सकलमहोपद्रवप्रभ-
ञ्जिनि सकलजनमनोरञ्जिनि महाभिचारकृत्यागञ्जिनि भक्तजन-
हृदयाधिनिर्दलिनि कोटिप्रचण्डदोर्वलिनि कैवल्यनिर्वाणनलिनि
गुह्यकालि अरूपे विरूपे विश्वरूपे सिद्धिविद्ये महाविद्ये अजिते
अलक्षिते अमिते अद्वैते अपराजिते अप्रतिहते अगोचरे अव्यक्ते
भद्रे सुभद्रे मातङ्गि किराति चाण्डालि द्राविणि भ्रामरि भ्रमरि
उल्कापुञ्जिनि वेतण्डभण्डिनि प्रलयताण्डवमण्डिनि इन्द्रोपेन्द्रजननि
मृत्युञ्जयगृहिणि सावित्रि गायत्रि महित्रि सवित्रि सरस्वति
मेधे लक्ष्मीविभूतिप्रदे कुमारियुवतिवृद्धे सन्ध्ये महारात्रि मायूरि
कुक्कुटि शान्तिकरि पुष्टिवर्द्धनि गङ्गे यमुने गोदावरि नर्मदे
सदाशिवसहधर्मचारिणि महानिरयतारिणि कौलाचारव्रतिनि
कौलाचारकुट्टिनि कुलधर्मरक्षिके अबीजे नानाबीजे जगद्बीजे
बीजार्णवे अमूर्ते विमूर्ते नानामूर्ते मूर्त्यतीते सकलमूर्तिधरे ब्रह्माण्डे-
श्वरि ब्रह्माण्डकलेवरे कोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि सर्वेश्वरि
सर्वेश्वरैकगम्ये सर्वैश्वर्यदायिनि सर्वसर्वेश्वरि प्रसीद
प्रसीद प्रसीद फ्रें ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें हूं फट् हूं फट् हूं फट् नमः
स्वाहा ओं ।

इति ते कथितं गद्यं त्रिपुरघ्नमुखोद्गतम् ।

पूर्वस्तवस्य ज्ञातव्यमिदं प्राणसमं प्रिये ॥२०६५॥

तत्पाठानन्तरं पाठ्यमेतद् यत्नेन पार्वति ।
तदैव लभते तस्य फलं झटिति नान्यथा ॥२०६६॥
गद्यस्योत्कीर्तनाद्देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
सर्वांश्च कामानाप्नोति सर्वाः सिद्धीश्च बिन्दति ॥२०६७॥
मङ्गलानि च सर्वाणि लभते पाठमात्रतः ।
जगद्वशयति क्षिप्रं मोहयत्यपि पार्थिवान् ॥२०६८॥
यान् यान् कामानभिध्यायन् पठत्युभयमीश्वरि ।
करामलकवत्तं तं कुरुते नात्र संशयः ॥२०६९॥
चराचरमिदं विश्वं यत्किञ्चित् परिदृश्यते ।
नाकलोके च याः ख्याताः समस्ता देवयोनयः ॥२०७०॥
पाताले सन्ति यावत्यो नागसर्पादिसृष्टयः ।
अधीश्वरी समस्तानां गुह्यकाली प्रकीर्तिता ॥२०७१॥
सा देव्येतत्पाठकस्य वशीभूतेव तिष्ठति ।
इतः परं को महिमा किं फलं चास्य वर्ण्यताम् ॥२०७२॥
पठितव्यमवश्यं ते पाठनीयाश्च बान्धवाः ।
भक्तेभ्यश्च प्रदातव्यमावयोः सुरवन्दिते ॥२०७३॥
गोपनीयं नन्दिकेभ्यः सत्यं सत्यं वचो मम ।

[विश्वमङ्गलकवचम्]

देव्युवाच

त्रिपुरघ्नेन यत्तुभ्यमुपदिष्टं पुरा प्रभो ॥२०७४॥

त्वया दुर्वाससे चापि तेनापि भरताय च ।
गुह्यातिगुह्यं कवचं नाम्ना यद्विश्वमङ्गलम् ॥२०७५॥
तन्मामुपदिशेदानीं नाथ त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
विश्वमङ्गलतुल्यं हि कवचं न भविष्यति ॥२०७६॥
यदारभ्य त्वया प्रोक्तं तव वद्ध्येव मे मनः ।
समुत्सुकं तच्छ्रवणेऽप्युपदेशेऽपि सत्वरम् ॥२०७७॥
प्राणेश्वर महाकाल न चिरायितुमर्हसि ॥

महाकाल उवाच

साधु धन्यासि देवेशि साधु साधु पुनः पुनः ॥२०७८॥
यत्ते मनो निविशते कवचे विश्वमङ्गले ।
यदवोचमहं पूर्वं त्वयि स्निग्धेन चेतसा ॥२०७९॥
विश्वमङ्गलतुल्यं हि कवचं न भविष्यति ।
तत्सत्यं नात्र सन्देहः कर्तव्यः कमलानने ॥२०८०॥
एकतो मनवः सर्वे कवचं चैतदेकतः ।
तुलया विधृतं पूर्वमिदं तत्रातिरिच्यते ॥२०८१॥
कवचानि तु भूयांसि गुह्यायाः सन्ति पार्वति ।
तानि नैतस्य तुल्यानि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥२०८२॥
पठनीयं प्रयत्नेन धारणीयं स्वविग्रहे ।
गोपनीयं सुतेभ्योऽपि न दातव्यं कथञ्चन ॥२०८३॥
नैकोऽपि मन्त्रो येषां स्यादुपदिष्टो वरानने ।
तेन नेदं पाठ्यमिति त्रिपुरघ्नानुशासनम् ॥२०८४॥

अतस्तदाज्ञामुल्लङ्घ्य यः पठेत् सिद्धिवाञ्छया ।
स आशु निधनं याति गुह्यकालीप्रकोपतः ॥२०८५॥
सावधाना शृण्विदानीं कवचं विश्वमङ्गलम् ।

ओं अस्य श्रीविश्वमङ्गलनाम्नो गुह्यकालीमहावज्रकवचस्य संवर्तऋषिरनुष्टुप्छन्द एकवक्त्रादिशतवक्त्रान्ता गुह्यकाली देवता फ्रें बीजं ख्फ्रें शक्तिः छ्रीं कीलकं सर्वाभीष्टसिद्धिपूर्वकात्मरक्षणे जपे विनियोगः ।

ओं फ्रें पातु शिरः सिद्धिकराली कालिका मम ।
ह्लीं छ्रीं ललाटं मे सिद्धिविकरालि सदावतु ॥२०८६॥
श्रीं क्लीं मुखं चण्डयोगेश्वरी रक्षतु सर्वदा ।
हूं स्त्रीं कर्णौ वज्रकापालिनी मे कालिकाऽवतु ॥२०८७॥
ऐं क्रौं हनू कालसंकर्षणा मे पातु कालिका ।
क्रीं क्रौं भ्रुवावुग्रचण्डा कालिका मे सदावतु ॥२०८८॥
हां क्षौं नेत्रे सिद्धिलक्ष्मीरवतु प्रत्यहं मम ।
हूं ह्रौं नासां चण्डकापालिनी मे सर्वदावतु ॥२०८९॥
आं ईं ओष्ठाधरौ पातु सदा समयकुब्जिका ।
ग्लूं ग्लौं दन्तान् राजराजेश्वरी मे रक्षतात् सदा ॥२०९०॥
जूं सः सदा मे रसनां पातु श्रीजयभैरवी ।
स्फ्रें स्फ्रें पातु स्वर्णकूटेश्वरी मे चिबुकं सदा ॥२०९१॥
ब्लूं ब्लौं कण्ठं रक्षतु मे सर्वदा तुम्बुरेश्वरी ।
क्ष्रूं क्ष्रौं मे राजमातङ्गी स्कन्धौ रक्षतु सर्वदा ॥२०९२॥

फ्रों फ्रौं भुजौ वज्रचण्डेश्वरी रक्षतु मे सदा ।
स्त्रैं स्त्रौं वक्षःस्थलं पातु जयभङ्केश्वरी मम ॥२०९३॥
फिं फां करौ रक्षतु मे शिवदूती च सर्वदा ।
छ्रैं छ्रौं मे जठरं पातु फेत्कारी घोरराविणी ॥२०९४॥
स्त्रैं स्त्रौं गुह्येश्वरी नाभिं मम रक्षतु सर्वदा ।
क्षुं क्षौं पार्श्वौं सदा पातु बाभ्रवी घोररूपिणी ॥२०९५॥
ग्रूं ग्रौं कुलेश्वरी पातु मम पृष्ठं च सर्वदा ।
क्लूं क्लौं कटिं रक्षतु मे भीमादेवी भयानका ॥२०९६॥
हैं हौं मे रक्षतादूरू सर्वदा चण्डखेचरी ।
स्फ्रों स्फ्रौं मे जानुनी पातु कोरङ्गी भीषणानना ॥२०९७॥
त्रीं थ्रीं जङ्घायुगं पातु तामसी सर्वदा मम ।
ज्रैं ज्रौं पादौ महाविद्या सर्वदा मम रक्षतु ॥२०९८॥
ड्रीं ठ्रीं वागीश्वरी सर्वान् सन्धीन् देहस्य मेऽवतु ।
ख्रैं ख्रौं शरीरधातून्मे कामाख्या सर्वदावतु ॥२०९९॥
ब्रीं ब्रूं कात्यायनी पातु दशवायूंस्तनूद्भवान् ।
ज्लूं ज्लौं पातु महालक्ष्मीः खान्येकादश सर्वदा ॥२१००॥
ऐं श्रौं अनूक्तं यत्स्थानं शरीरेऽन्तर्बहिश्च मे ।
तत्सर्वं सर्वदा पातु हरसिद्धा हरप्रिया ॥२१०१॥
फ्रें छ्रीं ह्लीं स्त्रीं हूं शरीरसकलं सर्वदा मम ।
गुह्यकाली दिवारात्रौ सन्ध्यासु परिरक्षतु ॥२१०२॥

इति ते कवचं प्रोक्तं नाम्ना च विश्वमङ्गलम् ।
सर्वेभ्यः कवचेभ्यस्तु श्रेष्ठं सारतरं परम् ॥२१०३॥
इदं पठित्वा स्वं देहं भस्मनैवावगुण्ठ्य च ।
तत्तत्स्थानेषु विन्यस्य वद्ध्वादः कवचं दृढम् ॥२१०४॥
दशवारान् मनुं जप्त्वा यत्र कुत्रापि गच्छतु ।
समरे निपतच्छस्त्रेऽरण्ये स्वापदसङ्कुले ॥२१०५॥
श्मशाने प्रेतभूताढ्यकान्तारे दस्युसङ्कुले ।
राजद्वारे सपिशुने सिन्धौ वातोर्मिचञ्चले ॥२१०६॥
गिरौ दावाग्निसंदीप्ते गह्वरे सर्पवेष्टिते ।
तस्य भीतिर्न कुत्रापि चरतः पृथिवीमिमाम् ॥२१०७॥
न च व्याधिभयं तस्य नैव तस्करजं भयम् ।
भीतिश्च ग्रहजा नास्य विषजं च भयं नहि ॥२१०८॥
नाग्न्युत्पातो नैव भूतप्रेतजः संकटस्तथा ।
विद्युद्वर्षोपलभयं न कदापि प्रबाधते ॥२१०९॥
न दुर्भिक्षभयं चास्य न च मारिभयं तथा ।
कृत्याभिचारजा दोषाः स्पृशन्त्येनं कदापि न ॥२११०॥
सहस्रं जपतश्चास्य पुरश्चरणमुच्यते ।
तत्कृत्वा तु प्रयुञ्जीत सर्वस्मिन्नपि कर्मणि ॥२१११॥
वश्यकार्ये मोहने च मारणोच्चाटने तथा ।
स्तंभने च तथा द्वेषे तथा कृत्याभिचारयोः ॥२११२॥

दुर्गभंगे तथा युद्धे परचक्रनिवारणे ।
एतत्प्रयोगात् सर्वाणि कार्याणि परिसाधयेत् ॥२११३॥
भूतावेशं नाशयति विवादे जयति द्विषः ।
संकटं तरति क्षिप्रं कलहे जयमाप्नुयात् ॥२११४॥
यदीच्छेत् महतीं लक्ष्मीं तनयानायुरेव च ।
विद्यां कान्ति तथौन्नत्यं यश आरोग्यमेव च ॥२११५॥
भोगान् सौख्यं विघ्नहानिमनालस्यं महोदयम् ।
अधीहि कवचं नित्यममुनामुञ्च च प्रिये ॥२११६॥
कवचेनामुना सर्वं संसाधयति साधकः ।
यद्यद् ध्यायति चित्तेन सिद्धं तत्तत्पुरः स्थितम् ॥२११७॥
दुर्घटं घटयत्येतत् कवचं विश्वमङ्गलम् ।
विश्वस्य मङ्गलं यस्मादतो वै विश्वमङ्गलम् ॥२११८॥
सान्निध्यकारकं गुह्यकाल्या एतत् प्रकीर्तितम् ।
लिखितं चेद् गृहे तिष्ठेत् तथापि फलमश्नुते ॥२११९॥
यदीच्छसि सुरेशानि सर्वत्र जयमङ्गलम् ।
पठ बन्धून् पाठयस्व कवचं विश्वमङ्गलम् ॥२१२०॥
संप्राप्स्यसि परां सिद्धिं गुह्यायां भक्तिमेव च ।
त्रिसन्ध्यं पठनाद्देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१२१॥
यस्मै कस्मैचिदप्येतन्न दद्याद्वै जिजीविषुः ।
दत्त्वा मरणमाप्नोति ससुतज्ञातिबान्धवः ॥२१२२॥

शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय हिताय च ।
विधिपूर्वं प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ॥२१२३॥
षडाम्नायस्थिता देव्यः सर्वा अत्र प्रतिष्ठिताः ।
अतः सर्वात्मना गोप्यं सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥२१२४॥
यस्मिन् कस्मिन्नपि मनावुपदेशो यदि प्रिये ।
तदैवात्राधिकारः स्यात् कवचे विश्वमङ्गले ॥२१२५॥
गुह्यकाल्यां सदा भक्तिः षोडशाक्षरिको जपः ।
इदं च कवचं देवि त्रय्येषा कथिता मया ॥२१२६॥
अभ्यस्यन्तस्त्रयीमेतां चतुर्वर्णा द्विजातयः ।
भुक्त्वा भोगानघं हत्वा देहान्ते मोक्षमाप्नुयात् ॥२१२७॥

इति महाकालसंहितायां विश्वमङ्गलकवचान्तं
पूजा-पद्धतिप्रभृतिकथनं नाम
दशमः पटलः ।

——

एकादशतमः पटलः

महाकाल उवाच

एवं कवचपाठान्तं स्तोत्रपाठं समाप्य हि ।
बलिं च वैश्वदेवं च स्मृतिवत् साधकश्चरेत् ।।१।।
रीत्या[1] तन्त्रोक्तया देवि मन्त्रैस्तन्त्रोदितैरपि ।
बलेरनल[2] आधार इतरस्य क्षितिस्तथा ।।२।।
पूर्वस्य तदभावेऽपि जलं भूरुत्तरस्य हि ।

[बलिद्रव्यनिर्णयः]

द्रव्यं वैखानसानां तु शालयस्तण्डुला यवाः ।।३।।
गृहिणामोदनाः स्विन्नमाषास्तिलजमोदकाः ।
कौलिकानां तु पललं सुराक्तं प्रथमं मतम् ।।४।।
मध्वक्ताः दग्धमीनाश्च द्वितीयं समुदाहृतम् ।
द्वयोरभावे वटिका गुडानां परिकीर्तिता ।।५।।
न जलाग्निधरित्रीणां शुद्धिरत्र विधीयते ।
अथाद्यस्य मनून् वक्ष्ये समुद्धरणपूर्वकम् ।।६।।

[बलेराहुतिमन्त्रः]

प्रत्येकं तमुदीर्यैव तत्तद्द्रव्यं विगृह्य च ।
क्रमेण जुहुयादग्नौ जले वा तदभावतः ।।७।।

१—नीत्या घ । २—वलय ख ग घ ।

योगिनी शाकिनी चैव काकिनी डाकिनी तथा ।
हाकिनी भैरवी चापि चामुण्डा पूतना तथा ॥८॥
माता च यातुधानी च यक्षिणी खेचरी ततः ।
पिशाचिनी भूतिनी च सिद्धाश्चाप्सरसोऽपि च ॥९॥
भारुण्डा चापि कूष्माण्डी घोणकी शक्तिरेव च ।
एता विंशतिरुद्दिष्टाः सदा देव्यनुगाः प्रिये ॥१०॥
तत्तद्बीजं पुरोभूतं तदन्वेताभ्य सन्निमाः [?]
शिरोमन्त्रोऽन्तिमे चापि बलेर्मन्त्राः मयेरिताः ॥११॥

[बलिपात्रनिर्णयः]

वैश्वदेवाग्रतः पात्रे तैजसे मार्तिकेऽपि च ।
द्वयोरभावे पत्राणां पुटके वा विधीयते ॥१२॥

[बलिवैश्वदेवघटकवैश्वदेवपदार्थनिर्वचनम्]

वैश्वदेवक्रममतः शृणु देवि समाहिता ।
वैश्वदेव इतीयं या संज्ञा प्रासिद्धचमागता ॥१३॥
सा न श्राद्धाद्यधिष्ठात्री देवता परिकीर्त्यते ।
विश्वं समस्तमुद्दिष्टं देवा चैतादृशा इह ॥१४॥
पूज्यन्तेऽतः कारणाद्धि वैश्वदेवो निगद्यते ।

[मण्डलप्रकारपरिचयः]

इदानीं मण्डलश्चास्य भूमौ यादृगपेक्षितः ॥१५॥
स पुरो बध्यतां देवि ततो मन्त्रक्रमावपि ।
सामान्यार्घं स्थापितं यत् पूजायां कालिकापुरः ॥१६॥
तदेवात्राग्रतः कृत्वा वैश्वदेवं समाचरेत् ।
द्वात्रिंशदङ्गुलमितो गर्भो यत्राभिजायते ॥१७॥

एतादृशो मण्डलस्तु चक्राकारः सुवर्तुलः ।
दक्षहस्तानामिकया कुर्यादर्घ्यस्थवारिणा ॥१८॥
तन्मण्डलं द्विरावृत्त्या कार्यं त्रिदशवन्दिते ।
तथा दिग्विदिशोर्द्वे द्वे रेखे कार्ये क्रमेण हि ॥१९॥
ते मण्डलं विनिर्भिद्य किञ्चिदूद्ध्वंगते तथा ।
चन्द्ररेखाप्रकारेण कार्ये ते चावगुण्ठिते ॥२०॥
एवं गृहाणि रेखाश्च जायन्ते षोडशैव हि ।
सर्वत्रानामिकाङ्गुष्ठजलेन स्पर्शमाचरेत् ॥२१॥
द्वयोरधस्ताद्गृहयोः प्रत्येकं चाष्ट संस्पृशेत् ।
एवमष्टस्वपि पुनरारम्भस्तु तयोरधः ॥२२॥
सर्वादिस्थितयोर्गेहयुगयोर्मध्यमध्यतः ।
मध्यमण्डलमागत्य सर्वेषामवसानिका ॥२३॥

[बल्युत्सर्गविधिः]

तदधस्तात् संस्थितयोश्चक्रमध्यगयोरपि ।
युगं युगं स्पृशेद् देवि तयोरेकमधः स्थितम् ॥२४॥
सर्वमध्ये स्पृशेदेकं देव्यष्टपथगं स्थलम् ।
एवं समभिजायन्त एकविंशोत्तरं शतम् ॥२५॥
तत्तन्मन्त्रं समुच्चार्यं तत्तद्द्रव्यं प्रगृह्य च ।
तं तं देवमभिध्यायेत्[2] तत्तत्स्थाने बलिं न्यसेत् ॥२६॥

१—अस्मादारभ्य 'मूलभूतस्य संतोषः' पर्यन्तं घ पुस्तके पाठो नास्ति ।
२—ध्याय ख ग ङ ।

बलिं दत्वा ततोऽर्घस्थवारिणानामिकाजुषा ।
अविहाय क्रमं सेकं[?] सर्वत्रैव समाचरेत् ॥२७॥

[बल्युत्सर्गमन्त्रः]

आदौ तारो हृदन्ते च देवानां नाममध्यतः ।
तच्चतुर्थीविभक्त्यन्तं कार्यं सर्वत्र पार्वति ॥२८॥
तत्रैकत्वं बहुत्वं च वक्ष्ये नामग्रहादनु ।
यत्तदभिमुखा देवा देवाभिमुखतो दश ॥२९॥

एवं ज्ञात्वा बलिर्देयस्तत्र दिक्षु विदिक्ष्वपि ।
इन्द्रश्च वरुणश्चापि कुवेरोऽपि यमादनु ॥३०॥
अग्निर्निर्ऋतवायू च शेष ईशाननामकः ।
प्राच्यादिहरितो ज्ञेया बलियागार्चनादिषु ॥३१॥
एतानेकवचोरूपान् स्थानेष्वेषां प्रपूजयेत्

क्षेत्रपालः पुरो विघ्नविनायक इतः परम् ॥॥३२॥
तृतीयो भैरवः प्रोक्तस्ततो वटुकनाथयुक्

भूतः पिशाचो रक्षश्च यक्षश्चेति क्रमाद्दिशेत् ॥३३॥ [?]
पौलस्त्यबल्यधोभागे बहुत्ववचनैर्युताः ।

महामाया कालरात्रिरग्निजिह्वा प्रभञ्जना ॥॥३४॥
संहारिणी ततो जालन्धरी लम्बोदरी तथा

फेरुराविण्यपि ततः सर्वशेषे मयेरिता । ॥३५॥
प्राच्यां दिशि समभ्यर्च्यासनीरवलिदानतः [?]
अथापराजिता लक्ष्मीः शान्ता गौरी तथैव च ॥३६॥

श्रद्धा च विजया सर्वमङ्गला मेधयान्विता ।
प्रतीच्यामुदिता एता बलिदानाय पार्वति ॥३७॥
कुम्भोदरी डमरुका विरूपोल्कामुखी तथा ।
पूतना खरकर्णी च विकराली कपालिनी ॥३८॥
दक्षिणस्यामिमाः पूज्याः सतोयैर्बलिभिः प्रिये ।
गायत्री चापि सावित्री सरस्वत्यप्यतः शिवा ॥३९॥
जया पद्मा बला भद्रा उदीच्यामीरिता इमाः ।
रौद्रा कात्यायनी दुर्गा चण्डकोपा च शूलिनी ॥४०॥
भीमा च कालिकाग्नेय्यां विदिश्येता मयोदिताः ।
प्रदीप्ता मेघनादा च क्षोभणा तामसी तथा ॥४१॥
जयन्ती विश्वरूपा च कराला तदनन्तरम् ।
विकराली च चरमे वायव्यां विदिशीरिताः ॥४२॥
ब्रह्माणी वैष्णवी माहेश्वरी कौमार्यनन्तरम्[1] ।
चण्डेश्वरी[2] च मातङ्गी ततोऽनु भुवनेश्वरी ॥४३॥
कुब्जिका सिद्धिलक्ष्मीश्च तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
हरसिद्धा च फेत्कारिण्यैशान्यां विदिशीरिताः ॥४४॥
चतुःषष्टिरिमा देव्यः स्युरेकवचनान्विताः ।
वाराही नारसिंहैन्द्री शिवदूती तथैव च ॥४५॥

१—माहेश्वरी च कौमारी ब्रह्माणी वैष्णवी तथा ख ।

२—इतः पंक्तिचतुष्टयं क पुस्तके नास्ति ।

अमूर्विदिशि नैरृत्यां बलिदानाय कीर्तिताः ।
प्राच्या दिशस्तथाग्नेय्या विदिशो मध्य एव हि ॥४६॥
द्वौ द्वौ प्रपूजनीयौ हि तद्रीतिमवधारय ।
प्राची ततोन्ववाचीति प्रतीची तदनन्तरम् ॥४७॥
उदीची च चतस्रोऽमूर्हरितोऽभिहिताः क्रमात् ।
आग्नेयी नैरृती चापि वायव्यैशान्यपि प्रिये ॥४८॥
विदिशोऽमूश्चतस्रश्च कीर्त्यन्तैतत्तदाह्वया ।
सूर्यः शुक्रस्तथाङ्गारो राहुः शनिरतः परम् ॥४९॥
सोमस्ततोऽनु च बुधः सर्वशेषे वृहस्पतिः ।
एते तत्तद्दिग्विदिशोः क्रमेणाधीश्वराः मताः ॥५०॥
पदं दिग्विदिशोस्तत्तत् सा सा दिग्विदिगेव च ।
तदधीशपदं चापि चतुर्थ्येकवचोऽन्वितम् ॥५१॥
कृत्वा तत्तत्स्थले पूज्या बलिदानेन पार्वति ।
पृथग् वाक्यं प्रकर्तव्यं देवि दिग्दिगधीशयोः ॥५२॥
पदद्वयं पूर्ववाक्ये मध्ये तारहृदोः स्थितम् ।
शेषवाक्ये पदं चैकं पूर्वमेवोदितं स्थलम् ॥५३॥
चक्रारमध्ये तदनु द्वौ द्वौ देवौ प्रपूजयेत् ।
ब्रह्मविष्णू तू पूर्वस्यामेतेनैव क्रमेण हि ॥५४॥
पूज्यौ दिग्विदिशोर्देवि नामान्याकलयाधुना ।
कालाकाशौ रुद्रमृत्यू षडेकवचनान्विताः ॥५५॥

वक्ष्यमाणा दश पूनर्बहुत्वेन व्यवस्थिताः ।
द्विषष्टिमासानु पुत्रपौत्रादिसन्तति ॥५६।
मृत्युर्विलयतां क्षिप्रं वाञ्छितं सिद्धिमेतु मे ।
युद्धे जयो मे [भवतु ?] कुर्याद् मूर्ध्न्यभिषेचनम् ॥५७॥
कुशैर्वा कुसुमैर्वापि कराङ्गुलिभिरेव च ।
युगानि वेदाः क्रतवः पर्जन्या निधयस्तथा ॥५८॥
वनस्पतय औषध्यो नक्षत्राणि ततः परम् ।
यज्ञाश्च पितरश्चेति द्वौ द्वावष्टसु कीर्तितौ ॥५९॥
द्वयोरधस्तादेकैकं चक्रमध्ये पुनर्न्यसेत् ।
समुद्राः पर्वताश्चैव नागा ऋषय एव च ॥६०॥
छन्दांस्यब्दास्तथा द्वीपास्तीर्थानि तदनन्तरम् ।
बहुत्ववचनेनैव चतुर्थ्या परिकीर्तिताः ॥६१॥
अथावधेहि देवेशि सर्वमध्यगतं बलिम् ।
गृहीत्वा दक्षहस्तेन बालेयं द्रव्यमुत्तमम् ॥६२॥
वक्ष्यमाणान् मनूनेतानुच्चरेत् साधकः शनैः ।

[सर्वमध्यगतबल्युत्सर्गमन्त्रः]

सुरासुरा नरा नागाः पितरश्चाप्सरोगणाः ॥६३॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च यक्षा रक्षोगणास्तथा ।
विश्वेदेवास्तथा साध्याः सिद्धाः वसव एव च ॥६४॥
आदित्याश्च तथा रुद्रा मरुतो मनवो ग्रहाः ।
वृक्षाः पशव औषध्यः पक्षिणो वारिभूचराः ॥६५॥

पङ्गवोऽन्धाश्च कुब्जाश्च वामनाः क्षुत्प्रपीडिताः ।
मूका महारोगवन्तस्तिर्यग्योनिगतास्तथा ॥६६॥
शृङ्गिणो दंष्ट्रिणश्चापि दंशकीटपिपीलकाः ।
स्वकर्मभोगतो ये च नानायोनिसमुद्भवाः ॥६७॥
ये चारण्योद्भवाः सत्त्वास्तथा निरयगामिनः ।
जाताश्च जायमानाश्च भुञ्जाना ये च यातनाः ॥६८॥
येषामुपायो नास्त्येव क्षुधातृष्णानिवृत्तये ।
प्राणिनो ये गर्भगता वेदनापरिपीड़िताः ॥६९॥
जङ्गमाः स्थावरा ये च प्राणिनोऽप्राणिनोऽपि च ।
चराचरं त्रिभुवनं कीर्तितं यन्न कीर्तितम् ॥७०॥
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वेभ्यः क्षुन्निवृत्तये ।
एतन्मन्त्रान् समुच्चार्य सर्वमध्ये बलिं न्यसेत् ॥७१॥

[आत्माभिषेकविधिः]

ततोऽर्घ्यमध्यसंस्थेन जलेन स्वस्य मूर्धनि ।
अभिषेकं चरेद्देवि मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥७२॥

[आत्माभिषेकमन्त्रः]

ओं संपदः सन्तु मम विपदो यान्तु च क्षयम् ।
प्रसन्ना कालिकाभूयान्नश्यन्तु व्याधयोऽखिलाः ॥७३॥
पापानि नाशमायान्तु सह शत्रुगणैर्मम ।
विघ्नाः विनश्यन्त्वखिलाः मोदन्तां मित्रबान्धवाः ॥७४॥

शश्वद् विवृद्धिमायातु पुत्रपौत्रादिसन्ततिः ।
मृत्युर्विलीयतां क्षिप्रं वाञ्छितं सिद्धिमेतु मे । ॥७५॥
युद्धे जयो मे भवतु विवादे कलहे तथा ।
भक्तिः सदा मे भवतु गुह्यकालीपदद्वये ॥७६॥
चतुर्भिरेतैः पद्यैस्तु कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् ।
कुशैर्वा कुसुमैर्वाऽपि कराङ्गुलिभिरेव वा ॥७७॥
इति ते कथितो देवि वैश्वदेवो बलिस्तव ।

[बलिवैश्वदेवविधेर्नित्यकृत्यता]

कार्योऽयं प्रत्यहं भक्त्या कालिकातुष्टिमिच्छता ॥७८॥
करणात् फलबाहुल्यं भवेदकरणाद् भयम् ।
ज्ञात्वेत्थमस्य नित्यत्वं कर्तव्यं साधकैः सदा ॥७९॥

[बलिवैश्वदेवस्यावश्यकता]

पात्राणां शुद्धिरेतेन सुराया मीनमांसयोः ।
देहस्य शक्तेर्देव्याश्च सिद्धान्नस्याखिलस्य च ॥८०॥
अकृत्वेमं वैश्वदेवं श्रीपात्रं स्वीकरोति यः ।
भुङ्क्ते स केवलं मद्यं दुर्गन्धपूयशोणितम् ॥८१॥
नीचो मद्यं यथा भुङ्क्ते मांसं चोदरपूर्तये ।
अवैश्वदेवोऽपि तथा साधकोऽस्ति सुरामिषे ॥८२॥

[बलिवैश्वदेवस्य निदर्शनम्]

अन्यन्निदर्शनं तेऽहं कथयामि वरानने ।
भूपालो हि यथा [1]भृत्यान् सर्वान् दत्वा ततः स्वयम्॥८३॥

१—इत आरभ्य ८० तमश्लोकस्य तृतीय चरणं यावत् ख.ग पुस्तकयोर्नास्ति ।

अदनीयं समश्नाति दत्ते वाश्वासनादनु[1] ।
तथा त्रैलोक्यभरणकारिणी गुह्यकालिका ॥८४॥
चराचरेभ्यो विश्वेभ्योऽदत्वैव कथमीश्वरि ।
ग्रहीष्यति स्वयं पूजां वैश्वदेवो ह्यतः स्मृतः ॥८५॥
अत एवाखिलं विश्वं पूज्यतेऽत्र शुचिस्मिते ।
समाप्येत्थं वैश्वदेवं सशान्तिकमितः परम् ॥८६॥

[पात्रतर्पणक्रमविषये तान्त्रिकमतभेदनिरूपणम्]

षड्भिः पात्रस्थितैर्द्रव्यैः सर्वानेव प्रतर्पयेत् ।
भूयांसोऽत्र विकल्पास्तत्तत्पात्राध्वचारिणाम्॥८७॥
सृष्टिक्रमेण मौलेया स्थित्या कापालिकादयः ।
संहारक्रमतः कुर्युर्मदीयमतवर्तिनः ॥८८॥
भूयस्यो युक्तयः सन्ति मतभेदेन वादिनाम् ।
मूलभूतस्य सन्तोषः प्रथमं हि विधीयते ॥८९॥
सन्तोषणीयास्तदनु[2] परिवारगणाः पृथक् ।
एवं युक्ति विवृण्वानाः श्रीपात्रादिं प्रकुर्वते ॥९०॥
परिवारगणो ह्यादौ कर्तव्यः स्ववशस्थितः ।
मूलभूतस्ततस्तोष्यः इति रीतिर्व्यवस्थिता ॥९१॥
व्याचक्षाणा इमां रीतिं भोगादिं विदधत्वतः ।
[?] त्वा स्थानादौ ततो मूलं तत्पश्चादनुजीविनः ॥९२॥

१—दत्वैमं कथमीश्वरि ख, ग ।
२—सं—यतीथामथनु ख ।

सन्तोषणीया इत्यूचुर्देवि कापालिकादयः ।
मनः प्रवृत्तो यो यस्य स तस्याज्ञां करोति हि ॥॥९३॥
विन्द्वर्चनादनु यथा नान्या पूजा प्रवर्त्तते ।
[पात्रतर्पणविषये स्वमतस्थापनम्]
श्रीपात्रतर्पणस्यान्ते नान्येषां तर्पणं चरेत् ॥९४॥
मतं मदीयं कथितं सकलं परमेश्वरि ।
[पात्रतर्पणाधारनिर्णयः]
रीतिमन्यां शृणु पुनस्तत् किमाधारकं भवेत् ॥९५॥
प्रतिमायन्त्रयोः केचिद् वदन्ति खलु तर्पणम् ।
केचिद् भूमौ प्रकुर्वन्ति केचिदग्नौ जलेऽपि वा ॥९६॥
अविदित्वैव सिद्धान्तं भ्रमात्सर्वे प्रकुर्वते ।
सर्वत्र युक्ति क्रमतः कथयाम्यवधारय ॥९७॥
उच्छिष्टं दासदासीनां प्रभोरङ्गेषु दीयते ।
नैतत्तुल्यं हि वृजिनः कारकं किञ्चिदस्ति वै ॥९८॥
श्रीपात्रात्तर्पणं यत्तु तद्देव्यङ्गे प्रदीयते ।
नान्यत्पात्रस्थितं दद्यादेवं देव्यनुशासनम् ।९९॥
राक्षसेभ्यः पिशाचेभ्यः कूष्माण्डेभ्यः प्रदीयते ।
भूमौ तदशनं जातहारिणीभ्यस्तथैव च ॥१००॥
अग्निपक्षः समीचीनः प्रायशः सुरवन्दिते ।
यतोऽग्निः सर्वदेवानां मुखमित्यभिधीयते ॥१०१॥
वेताललम्बोदरयोः किन्तु तत्र न तर्पणम् ।
यतोऽमू किल भालूकमतङ्गजमुखौ मतौ ॥१०२॥

विभ्यतस्तौ तु दह्नादिति पौरातनी स्थितिः ।
जले ये कुर्वते देवि तर्पणं कौलिकद्रवैः ।१०३।।
तेऽशुद्धमेव कुर्वन्ति तत्त्वातत्त्वाविवेकिनः ।
तर्पणं होमरूपं स्यात् छुङ्मुद्रा [?] तार्पणी मता ।।।१०४।।
हविरुक्तं कुलद्रव्यं साधकश्चेष्टिकारकः ।
समस्तास्तान्त्रिका मन्त्रा ऋग्यजूरूपधारिणः ।।१०५।।
एवं प्रसिद्धं देवेशि त्रिपुरघ्नानुशासनम् ।
कथं जले भवेद्धोमस्त्वयैवैतद् विचार्यताम् ।।१०६।।

[तर्पणीयाधारविषये स्वमतस्थापनम्]

मामकीनमथो पक्षमवधारय युक्तितः ।
उपदिष्टोऽस्मि रुद्रेण पुरैवैतत् प्रसङ्गतः ।।१०७।।
त्रिकोणं मण्डलं कुर्यादादावेवाम्बुना क्षितौ ।
वर्तुलं तद्बहिः कुर्यादर्धचन्द्रं च तद्बहिः ।।१०८।।
अर्धचन्द्रोपरिष्टात् स्यादमाबीजं चतुर्दिशि ।
दक्षिणाग्नेः पूर्वकोणं गार्हपत्यस्य नैर्ऋतम् ।।१०९।।
तथा चाहवनीयस्य वायव्यं परिकीर्तितम् ।
कुण्डत्रयमिदं प्रोक्तमत्रामत्रं स्थितं हि यत् ।।११०।।
तत्रैतदुच्यते विज्ञैस्तत्तत्तर्पणकर्मणि ।
नेदं हि यन्त्रप्रतिमे न भूम्यग्निजलानि च ।।१११।।
नात्र दोषलवोऽप्यस्ति सार्वसैद्धान्तिकोऽह्यसौ ।
तदमत्रं तैजसं वा पात्रिकं मार्तिकं तथा ।।११२।।

शैलेयं वा दरीयं वा सर्वाभावे तदैधसम् ।
यदीयं वा तदीयं वा तद्भवत्वमलानने ॥११३॥
अग्निरूपं समुद्दिष्टमित्येतस्य निदर्शनम् ।

[तर्पणप्रकारकथनम्]

एतत्प्रकारमधुना मत्तः कलय सादरा ॥॥११४॥
विधाय मण्डलं पूर्वोक्तरीत्या पात्रमेव वा

[तार्पणीमुद्रापरिचयः]

वामहस्तानामिकयाङ्गुष्ठं समभियोजयेत् । ॥११५॥
इयं हि तार्पणी मुद्रा शुश्रूषा परिकीर्तिता
एतया मुद्रया देवि संहारक्रमतोऽखिलान् ॥॥११६॥
पात्रात्तद्द्रव्यमादाय तर्पयेदुदितक्रमैः

[तर्पणस्य समन्त्रो विधिः]

सप्तैतांस्तर्पयेद्देवि तत्रादौ भोगपात्रतः । ॥११७॥
गणेशानथ वेतालान् सिद्धांस्तदनु योगिनीः
डाकिनीर्भैरवीश्चापि चामुण्डाश्चेति सप्त ताः ॥॥११८॥
तत्तद्बीजं पुरोधाय द्वितीयायाः बहुत्वतः
तत्तन्नाम समुच्चार्य तर्पयामि हृदन्तिमे ॥॥११९॥
अङ्गुष्ठस्यानामिकायामथौ यावत् प्रतिभ्यतः [?]
तावन्निवेशनीया हि मुद्रां वै कौलिकद्रवे । ॥१२०॥

[वीरपात्रस्य मुद्राष्टक परिचयः]

अथ पात्राद्वीरनाम्नो मुद्रा अष्टौ प्रतर्पयेत्
मन्त्रः कलासिद्धिमात्रामायाचक्रकुलानि हि ॥॥१२१॥

गुह्यं चेत्यष्ट विख्यातं मुद्रावृन्दं वरानने

[वीरपात्रतर्पणमन्त्रः]

तारात्तत्तन्नामपुरोऽमन्तं मुद्रापदं ततः ॥१२२॥
पूर्वोक्ते द्वे पदे शेषे वीरपात्रक्रियास्त्विमाः ।

[कुलपात्रतर्पणविधिः]

कुलपात्रात्तृतीया तु तर्पयेत् क्षेत्रपालकान् ॥१२३॥
आदौ तु हेतुकः प्रोक्तस्त्रिपुरान्तक इत्यतः
वेतालोन्नस्य हुताशजिह्वस्तदनन्तरम् । [?] ॥१२४॥
महाकालः कपाली च एकपादस्ततः परम् ।
भीषणश्चाष्ट ते प्रोक्ताः क्षेत्रपालाः वरानने ॥१२५॥
क्षेत्रपालाः द्वयं बीजं पुरस्तात् समुदाहरेत् ।
ततस्तत्तन्नाम वदेत् क्षेत्रपालपदं ततः ॥१२६॥
विगृह्य द्वयमेवाथ तममन्तमुदीरयेत् ।
चिरन्तनीयं चरमे पदयुग्मं विभावयेत् ॥१२७॥
अथ पात्रे चतुर्थे तु तर्पयेत् षोडशैव हि ।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुष्पदम् ॥१२८॥
नञ्पूर्वमेतदेवात्र पुनश्चत्वारि कीर्तयेत्
माया त अष्टपद्व्यास्तु वक्ष्यमाणस्य पार्वति [?] ॥१२९॥
आनन्दनाथशब्दस्य विग्रहोऽमन्त उच्यते ।
सर्वत्रैव समाज्ञेया चरमीया पदद्वयी ॥१३०॥

[गुरुपंक्तिपूजाक्रमः]

एतस्मादेव पात्रात्तु गुरूणां पंक्तिमर्चयेत् ।
चैतन्यं पुरतो दत्वा शेषे तां च पदद्वयीम् ॥१३१॥

१—इतः परं अष्टौ पंक्तयः घ पुस्तके न सन्ति ।

मध्येऽमन्तं गुरुपदं सर्वाद्यं परिकीर्तयेत् ।
ततः पदेभ्यः सप्तेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्य ईश्वरि ॥१३२॥
गुरुशब्दं तदाकारं समभिव्याहरेत् प्रिये ।
परमः परमेष्ठी च परापर इतः परम् ॥१३३॥
परमात् परमेष्ठी च परमाच्च परापरः ।
परमेष्ठिनश्च परमः परमश्च परापरात् ॥१३४॥
शक्तिपात्रात् ततः कुर्याच्छक्तीनामपि तर्पणम् ।
तद्बीजं पुरतो दत्वा पृथङ्नामानि तत्परम् ॥१३५॥
तैर्नामभिः शक्तिपदस्यापि विग्रह इष्यते ।
श्रीपादुकां तर्पयामि नमोऽन्ते च व्यवस्थितम् ॥१३६॥
नामान्यादिर्विश्वगुप्तभावकामाः क्रमेण हि ।
मोहो हर्षस्तथा प्राण इत्यष्टौ परिकीर्तिताः ॥१३७॥
श्रीपात्रस्याथ षष्ठस्य कर्तव्यमवधारय ।
या पूर्वमुदिता चक्रपूजा तव सुरेश्वरि ॥१३८॥
साद्य त्रिबीजरहिता शाकिन्याद्या तु केवलम् ।
तुर्यां विभक्तिं सन्त्यज्य द्वितीयामुभयोर्न्यसेत्[१] ॥१३९॥
पूर्ववत् सर्वशेषस्थं पदयुग्मं विभावयेत् ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारानाख्याभासा पदादनु ॥१४०॥
काली शेषपदद्वन्द्वं रावादिश्चापि पूर्ववत् ।
एवं हि पञ्चदशभिर्मन्त्रैस्तर्पणमाचरेत् ॥१४१॥

१—र्वदेत् ख ग ङ ।

सर्वशेषे मूलमन्त्रं समुच्चार्य शुचिस्मिते ।
साङ्गां सवाहनामुक्त्वा सायुधां परिकीर्तयेत् ॥१४२॥
पुनः सपरिवारांश्च गुह्यकालीं ततः परम् ।
तर्पयामि नमोऽन्ते चेत्येवं षोडशजल्पिताः ॥१४३॥

[कापालिकादितान्त्रिकमतेन प्रकारान्तरेण मूलपात्रतर्पणस्य समन्त्रो विधिः]

भाण्डिकेराश्च मौलेयाः देवि कापालिकास्तथा ।
पुनरन्यन्मूलपात्रात्तर्पणं विदधत्यपि ॥१४४॥
प्रथमं प्रणवं दत्वा तर्पयामि नमोऽन्तिमे ।
आत्मा ततोऽनु जीवात्मा परमात्मा तथैव च ॥१४५॥
देहः कुलं च ज्ञानं च मनोबुद्धिरहङ्कृतिः ।
प्रकृतिर्विकृतिश्चापि विद्या सूक्ष्मं च वासना ॥१४६॥
कैवल्यमन्तरात्मा च षोडशैवमुदीरिता ।
आवश्यकं तत्त्वपदमेषामनु सविग्रहम् ॥१४७॥
इत्येकः क्रम उद्दिष्टो मतान्तरकृतात्मनाम् ।

[अत्रैव मतान्तरस्य प्रदर्शनम्]

पुनर्मतान्तरं वक्ष्ये नानागमविदां प्रिये ॥१४८॥
आदौ पृथिव्यप्तेजांसि वाय्वाकाशौ ततः परम् ।
मात्रापूर्वं गन्धरसरूपस्पर्शाश्च शब्दवत् ॥१४९॥
घ्राणं च रसना चक्षुस्त्वक्श्रोत्रं तदनन्तरम् ।
प्रकृतिश्च महांश्चैव ततोऽहङ्कार उच्यते ॥१५०॥
मनोबुद्धिरविद्या च ततोऽद्वैतमुपाधियुक् ।
प्रमाणप्रत्ययप्रज्ञा बिम्बं च प्रतिबिम्बवत् ॥१५१॥

निमित्ताभाससत्ताश्च परमार्थलयाशयाः ।
चैतन्यमथ कैवल्यं षट्त्रिंशदिति कीर्तिताः ॥१५२॥
पूर्ववत् प्रणवाद्यं हि तर्पयामि हृदन्तिमे ।
मध्येऽमीभ्यः पदेभ्यस्तु तत्त्वमित्यभिनिर्दिशेत् ॥१५३॥
एवं नानाप्रकारेण साधकाः कुर्वते क्रियाम् ।

[अत्र स्वमतस्थापनम्]

अथ येन प्रकारेण स्वीकुर्युः पात्रमुत्तमम् ॥१५४॥
तत्तेऽहं व्याहरिष्यामि यथा रुद्रेण भाषितम् ।

[पात्रसंस्कारस्य समन्त्रो विधिः]

गृहीत्वाञ्जलिना पात्रं भूमौ संस्थापयेत् पुरः ॥१५५॥
प्राणायामं विधायानु तत्तन्मन्त्रं षडङ्गकम् ।
कुर्वीत भक्तिभावेन शक्त्या ऋष्यादिकं तथा ॥१५६॥
तत आघ्राय तत्पात्रं वामहस्ते निवेशयेत् ।
तन्मध्ये निक्षिपेन्मांसखण्डं दक्षकरेण तु ॥१५७॥
तेनैव पाणिनाच्छाद्य मन्त्रमेनमुदीरयेत् ।
ओं न त्वं सुरा किन्तु सुधा न नरोऽहं सुरः परम्[1] ॥१५८॥
नेदं पापं किन्तु पुण्यमित्येवं मे विनिश्चयः ।
शुक्रशापविनिर्मुक्ते त्वं देव्यास्वादिता सुरे ॥१५९॥
गृह्णतस्त्वां तदुच्छिष्टां नैनो मे जायतेऽण्वपि ।
ततः पुनर्वक्ष्यमाणं तान्त्रिकं मन्त्रमुच्चरन् ॥१६०॥

१—परः स्वयम् घ ।

करांभ्यां पात्रमुत्तोल्य स्पर्शयेत् स्वस्य मूर्धनि ।
तारमैंधसुधारावयोगिनीह्लीवधूस्मरः ॥१६१॥
सुधे देवि समाभाष्य गन्धान् द्विः संहरोच्चरेत् ।
विकारान्नाशय द्वन्द्वं ज्ञानं द्विश्च प्रकाशय ॥१६२॥
कूर्चास्त्रशिरसामुक्तिः सर्वशेषे प्रकीर्तिता ।
ततः पुनर्वामकरे संस्थाप्य तदमत्रकम् ॥१६३॥
निमील्य चक्षुषी ध्यायेदेतद्रूपेण कालिकाम् ।
ममान्तर्हृदयाम्भोजप्रविष्टां सिद्धिदायिनीम् ॥१६४॥
स्थापयित्वा पुनर्दक्षे वामानामिकया प्रिये ।
मूलमन्त्रं पठन् कुर्यात् ललाटे बिन्दुचित्रकम् ॥१६५॥
पुनर्वामे परिस्थाप्य तत्स्थं द्रव्यं विगृह्य च ।
पञ्च प्राणाहुतीर्दद्यात्[1] कर्षन्मांसलवं रदैः ॥१६६॥
आदौ तारः शिरः शेषे मध्ये तुर्यविभक्तिगान् ।
प्राणापानसमानोदानव्यानानेकरूपिणः ॥१६७॥
मन्त्रं पठन् वक्ष्यमाणं निःशब्दं तत् पिबेद् द्रवम् ।
इदं पवित्रममृतं पिबामि भवभेषजम् ॥१६८॥
पशुपाशसमुच्छेदकारणं भैरवोदितम् ।
अन्यं मन्त्रं पठन्त्यत्र मौलेया जगदीश्वरि ॥१६९॥
धर्माधर्महविर्दीप्त आत्मग्नौ मनसा स्रुवा ।
सुषुम्णा वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहम् ॥१७०॥

१—कुर्यात् घ ।

[अत्र कापालिकस्य मन्त्रान्तरनिवेशः]

कापालिकानां मन्त्रोऽन्यस्तमपि व्याहरामि ते ।
हृदम्भोजगतां देवीं स्नापयामि सुधारसैः ॥१७१॥
तेनायं भवबन्धो मे विनाशमुपगच्छतु ।
एवं मन्त्रत्रयं प्रोक्तं पात्रस्वीकारकर्मणि ॥१७२॥
ततः पात्रगतं हालाबिन्दुं भूमौ प्रपातयेत्।
उच्छिष्टभैरवायामुं दद्यान्मन्त्रममुं पठन् ॥१७३॥
मैधमायारमाबीजमेह्येह्युच्छिष्ट भैरव ।
विसन्धिं च बलिं गृह्ण युग्मं स्वाहा च पश्चिमे ॥१७४॥
निघृष्य तद्भूमितले पूर्ववच्चित्रकं चरेत् ।
येऽन्येऽपि पात्रं स्वीकुर्युस्तेषामप्येष हि क्रमः ॥१७५॥
एषा पात्रक्रिया तुभ्यं विशेषेणोपवर्णिता ।

[देयपात्राधिकारिनिर्णयः]

इदानीं शृणु देवेशि यस्मै यद्यत् प्रदीयते ॥१७६॥
गुरवे गुरुपात्रं तु शक्तिपात्रं च शक्तये ।
कुलपात्रं कौलिकेभ्यो दत्वा बन्धुभ्य एव च ॥१७७॥
स्वयं समुपयुञ्जीत त्रीणि पात्राणि साधकः ।
श्रीवीरभोगसंज्ञानि गृह्णीयात् क्रमशः स्वयम् ॥१७८॥
कुलकुम्भावशिष्टं हि स्वीकुर्युः सर्व एव ते ।
यच्चान्यदपि नैवेद्यमुपहारतयार्पितम् ॥१७९॥

[नैवेद्योपयोगविषये निर्णयकथनम्]

मध्वादिमीनमांसान्तं फलाद्यन्तरमीश्वरि

सर्वं एवोपयुञ्जीरन् मिलिताः सर्वमेव तत् ॥१८०॥
निर्माल्यभूतं यद्देव्याः पुष्पस्रगनुलेपनम् ।
विभज्य तत्प्रदातव्यं शक्तिभ्यः कौलिकाय च ॥१८१॥

[अर्घ्यपात्रस्थ जलाभिषेकविधिस्तन्माहात्म्यं च]

स्थापितो यो विशेषोऽर्घो यत्रार्चा भूयसीरिता ।
तज्जलेनाभिषिञ्चेत कौलान् बन्धून् स्वमङ्गनाः[1] ॥१८२॥
देवपूजावशिष्टं यच्छंखमध्यगतं जलम् ।
तदङ्गलग्नं सर्वेषां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१८३॥
कुशैः दूर्वाङ्कुरैः पुष्पैर्दलैरङ्गलिभिस्तथा ।
तज्जलेन वपुः सिञ्चेत् शान्तिकं समुदीरयेत् ॥१८४॥

[शान्तिपाठः]

कालि कालि महाकालि कालिके पापहारिणि ।
धर्ममोक्षप्रदे देवि गुह्यकालि नमोऽस्तुते ॥१८५॥
संग्रामे विजयं देहि धनं देहि सदा गृहे ।
धर्मकामार्थसम्पत्तिं देहि कालि नमोऽस्तुते ॥१८६॥
उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररावे भगप्रिये ।
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ॥१८७॥
अरण्यचारिणि शिवे कुलद्रव्यमयीश्वरि ।
प्रसन्ना भव देवेशि भक्तस्य मम कालिके ॥१८८॥
शुभानि सन्तु कौलानां नश्यन्तु द्वेषकारकाः[2] ।

१—सुमङ्गलान् ख ग घ ।
२—द्वेषका नरा ख ग घ ।

निन्दाकराः क्षयं यान्तु ये च हास्यं प्रकुर्वते ।
कौलिकान् कुलमार्गं च कुलद्रव्यं कुलाङ्गनाः ॥१८८॥
ये द्विषन्ति जुगुप्सन्ते ये निन्दन्ति हसन्ति ये ।
येऽसूयन्ते च शङ्कन्ते मिथ्येति प्रवदन्ति ये ॥१८९॥
ते डाकिनीमुखे यान्तु सदारसुतबान्धवाः ।
पिब त्वं शोणितं तस्य चामुण्डा मांसमत्तु च ॥१९०॥
अस्थीनि चर्वयन्त्वस्य योगिनीभैरवीगणाः ।
यानिन्दागमतन्त्रादौ या शक्तिषु कुलेषु या ॥१९१॥
कुलमार्गेषु या निन्दा सा निन्दा तव कालिके ।
त्वन्निन्दाकारिणां शास्त्री त्वमेव परमेश्वरि ॥१९२॥
न वेदं न तपो दानं नोपवासादिकं व्रतम् ।
चान्द्रायणादि कृच्छ्रं च न किञ्चिन्मानयाम्यहम् ॥१९३॥
किन्तु त्वच्चरणाम्भोजसेवां जाने शिवाज्ञया ।
त्वदर्चां कुर्वतो देवि निन्दापि सफला मम ॥१९४॥
राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा ।
तस्य प्रभुत्वं सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि ॥१९५॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं मम ।
यस्य त्वच्चरणद्वन्द्वे मनो निविशते सदा ॥१९६॥
दैत्याः विनाशमायान्तु क्षयं यान्तु च दानवाः ।
नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा असुरास्तथा ॥१९७॥

पिशाचभूतवेतालाः क्षेत्रपाला विनायकाः ।
गुह्यकाः घोणकाश्चैव विलीयन्तां सहस्रधा ॥१६८॥
भारुण्डा जम्भकाः स्कान्दाः प्रमथाः पितरस्तथा ।
योगिन्यो मातरश्चापि डाकिन्यः पूतनास्तथा ॥१६६॥
भस्मीभवन्तु सपदि त्वत् प्रसादात् सुरेश्वरि ।
दिवाचरा रात्रिचरा ये च संध्याचरा अपि ॥२००॥
[1]द्वेष्टारो ये जलचरा गुहाबिलचरा अपि ।
शाखाचरा वनचराः कन्दराशैलचारिणः ॥२०१॥
स्मरणादेव ते सर्वे खण्डखण्डा भवन्तु ते ।
सर्पा नागा यातुधाना दस्युमायाविनस्तथा ॥२०२॥
हिंसका विद्विषो निन्दाकरा ये कुलदूषकाः ।
मारणोच्चाटनोन्मूलद्वेषमोहनकारकाः ॥२०३॥
कृत्याभिचारकर्तारः कौलविश्वासघातकाः ।
त्वत्प्रसादाज्जगद्धात्रि निधनं यान्तु तेऽखिलाः ॥२०४॥
नवग्रहाः सतिथयो नक्षत्राणि च राशयः ।
संक्रान्तयोऽब्दा मासाश्च ऋतवो द्वे तथायने ॥२०५॥
कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रयस्तथा ।
मन्वन्तराणि कल्पाश्च युगानि युगसन्धयः ॥२०६॥
निर्घातोल्कापातवज्रवर्षवाताभ्रविद्युतः ।
स्तनितेन्द्रधनुर्भूमिकम्पोत्पाताशनिस्वनाः ॥२०७॥

१—इयं पंक्तिः घ पुस्तके नास्ति ।

[1]देवलोकाः लोकपालाः पितरो वह्नयस्तथा ।
अध्वरा निधयो वेदाः पुराणागमसंहिता ॥२०८॥
एते मया कीर्तिता ये ये चान्ये नानुकीर्तिताः ।
आज्ञया गुह्यकाल्यास्ते मम कुर्वन्तु मङ्गलम् ॥२०९॥
भवन्तु सर्वदा सौम्याः सर्वकालं सुखावहाः ।
आरोग्यं सर्वदा मेऽस्तु युद्धे चैवापराजयः ॥२१०॥
दुःखहानिः सदैवास्तां विघ्ननाशः पदे पदे ।
अकालमृत्युदारिद्र्यं बन्धनं नृपतेर्भयम् ॥२११॥
गुह्यकाल्याः प्रसादेन न कदापि भवेन्मम ।
सन्त्विन्द्रियाणि सुस्थानि शान्तिः कुशलमस्तु मे ॥२१२॥
वाञ्छाप्तिर्मनसः सौख्यं[2] कल्याणं सुप्रजास्तथा ।
बलं वित्तं यशः कान्तिर्वृद्धिर्विद्या महोदयः ॥२१३॥
दीर्घायुरप्रधृष्यत्वं वीर्यं सामर्थ्यमेव च ।
विनाशो द्वेषकर्तॄणां कौलिकानां महोन्नतिः ॥२१४॥
जायतां शान्तिपाठेन कुलवर्त्म धृतात्मनाम् ।
दुर्गोत्तारिणि दुर्गे त्वं सर्वाशुभनिसूदनि ॥२१५॥
विपत्तिनाशिनि शिवे त्राहि मां शरणागतम् ।
आयुर्ददातु मे काली पुत्रान् यच्छतु कालिका ॥२१६॥
धनं सिद्धिकराली मे गुह्यकाली सदावतु ।
शिरो मे चण्डिका पातु कण्ठं पातु महेश्वरि ॥२१७॥

१—देवसङ्घाः ख. ग. ङ ।
२—सिद्धिः ख. ग. ।

हृदयं पातु चामुण्डा सर्वतः पातु कालिका ।
आन्ध्यं कुष्ठं च दारिद्र्यं रोगं शोकं च दारुणम् ॥२१८॥
बन्धुस्वजनवैराग्यं दुर्गे त्वं हर दुर्गतिम् ।
राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा ॥२१९॥

प्रभुत्वं तस्य सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि ।
एष ते कथितो देवि शान्तिपाठो महाफलः ॥२२०॥
स्वीकारादनु पात्राणां पठेयुः सर्व एव हि ।
अशक्नुवानो निःशेषं पठितुं शान्तिकक्रमम् ॥२२१॥

पुरुषो वाप्यथवा नारी द्वित्रान् श्लोकानुदीरयेत् ।
शान्तिपाठानध्ययनाद् वृथापाठीति कथ्यते ॥२२२॥

[शावरोत्सवपरिचयः]

शक्तीनामिच्छयास्यानु कुर्युः केलिकलारसम् ।
शावरोत्सवमित्याहुरेतन्नाम मनीषिणः ॥२२३॥

अयं हि जगदम्बायाः ज्ञेयः प्रीतिकरो महान् ।
[1]अतोऽवश्यं विधातव्यः सकलं फलमिच्छता ॥२२४॥

[कुम्भसम्भारक्रियाचर्चा]

अस्मिन्नेव ह्यवसरे कुम्भसंभारनामिकाम् ।
भाण्डिकेराः प्रकुर्वन्ति देवीप्रीतिकरीं क्रियाम् ॥२२५॥

प्रायोगिकप्रकरणे प्रवक्ष्ये ते तदप्यहम् ।
निर्गत्य पूजागृहतो विहरेत् स्वेच्छया ततः ॥२२६॥

१—अस्मादारभ्य पंक्तित्रयं घ पुस्तके नास्ति ।

[भोजनकालिककर्त्तव्यनिर्देशः]

शृणु भोजनकालीयं कर्तव्यमधुना प्रिये ।
भुञ्जीत प्राच्यभिमुखश्चिरकालं जिजीविषुः ॥२२७॥
याम्यदिग्वदनो देवि यशः कामः समश्नुते ।
पश्चिमाभिमुखो भुँक्ते ईहमानोऽधिकां श्रियम् ॥२२८॥
सिद्धिमुक्ती ह्यभिलषद् भक्षयेदुत्तरामुखः ।
एवं स्थिते धर्मपथे विशेषाच्छक्त्युपासकः ॥२२९॥
सदोत्तराशाभिमुखोऽन्नमद्यात् सन्ध्ययोर्द्वयोः ।
बलिदानं तत्र हेतुरित्याह भगवांच्छिवः ॥२३०॥
येन केनाप्यासनेन यस्मिन् कस्मिस्तथासने ।
उपविश्यान्नमश्नीयात् न तु भूमौ कदाचन ॥२३१॥
आदावाचमनं कृत्वा दक्षे संस्थाप्य चोदकम् ।
वाम आचमनीयामत्रमत्र निदधीत वै ॥२३२॥
रात्रौ पुरः प्रदीपं च दिवाग्निं च सुरेश्वरि ।
तेनास्य जाठरो वह्निर्नित्यसिद्धो भवत्यहो ॥२३३॥
भूतप्रेतपिशाचानां सान्निध्यं न च जायते ।
रक्षांसि नावलुम्पन्ति तदन्नं तद्हविस्तथा ॥२३४॥
नैऋत्याग्रां मारुतान्तां रेखामुदकधारया ।
रोषरावास्त्रमुच्चार्य कुर्याद्दक्षिणपाणिना ॥२३५॥
वायव्याग्रां तथैशानावसानां तदनन्तरम् ।

ऐशानकोणादारभ्याग्नेयान्तां तदनन्तरम्[१] ।
आग्नेयाग्रां नैऋत्यन्तां सर्वशेषे विभावयेत् ॥२३६॥
मण्डलं मध्यविन्द्वाद्यं रक्षःकोणे बहिर्लिखेत् ।
वज्रं वायव्यकोणे च चन्द्ररेखां सबिन्दुकाम् ॥२३७॥
ईशानकोणे विलिखेदंकुशं बह्निकोणगम् ।
अवाच्युदीच्यगां रेखा मध्ये कुर्यात् ततः परम् ॥२३८॥
प्रतीचोप्राच्यनुगतां पुनस्तदुपरि न्यसेत् ।
रेखाग्रं चन्द्ररेखाभिः सबिन्दुभिरुपस्पृशेत् ॥२३९॥
निर्मिते मण्डले वारिधारयैवं वरानने ।
स्वयं वान्योऽथवा तत्र न्यसेद् भोजनभाजनम् ॥२४०॥
तदुपस्करवस्तूनि यावन्ति रचितानि हि ।
पृथक् पृथक्तया तत्र विन्यसेद् भाजनाग्रतः ॥२४१॥
ततो दक्षिणहस्तेन तदन्नं वारिणोक्षितम् ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रणमेदिष्टरूपि हि ॥२४२॥
हविराक्तं विधायादौ तेमनालोडितं ततः ।
गृहीत्वा दक्षहस्तेन किञ्चिदन्नं जलान्वितम् ॥२४३॥
घनबीजं समुच्चार्य पर्जन्यं च भ्यसन्तिमम् ।
नमस्तस्यानु नैऋत्यकोणे पूर्वोदिते न्यसेत् ॥२४४॥
तारात् प्रजापतिभ्योऽनु हृदुच्चार्यानिलाह्वये ।
दद्यादन्नं तोययुतं तत ऐशानमण्डले ॥२४५॥

१—इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति ।

क्षुद्भ्यो नमस्तस्य बीजं पुर उक्त्वा बलिं न्यसेत् ।
तद्वत् तृड्भ्यो नमः प्रोच्य तद्बीजाद्यं सुरार्चिते ॥२४६॥
दद्यात् सृण्युपरिष्टात्तु सतोयान्नं च साधकः ।
ततः स्वदक्षे पूर्वस्यां कुर्याद् वर्तुलमण्डलम् ॥२४७॥
आरभ्य पूर्वहरितो यावत् स्यात् विदिगीश्वरि ।
तावद् दद्यात् सतोयान्नं पठन् मन्त्रं पृथक् पृथक् ॥२४८॥
चैतन्यं प्रणवो माया पाशः कामश्च शाकिनी ।
योगिनी कमला चेति बीजान्यष्टौ पृथक् पृथक् ॥२४९॥
पुष्टिः कान्तिर्बलं बुद्धिः वीर्यं ज्ञानं तथैव च ।
वृद्धिः सिद्धिरिति ह्यष्टौ भिन्नभिन्नपदानि हि ॥२५०॥
दायै नमश्च सर्वेभ्यः क्रमेण परिकीर्तयेत् ।
एतास्तु कालिकादेव्याः शक्तिरूपास्तु मूर्तयः ॥२५१॥
परिवारतया ख्याता अन्नाधिष्ठात्र्य ईरिताः ।
एतास्तत्तत्प्रदायिन्यः स्युरन्नेन प्रपूजिताः ॥२५२॥
ततो भोजनपात्राग्रे वितस्तिमित ईश्वरि ।
षण्मण्डलानि कुर्वीत वारिणांचुल्लकानि हि ॥२५३॥
तेषामधस्तात् क्रमतो बिन्दूंस्तावत आचरेत् ।
यावद् हस्तेनोत्पतति पिण्डीकर्तुं च शक्यते ॥२५४॥
तावत् तत्र पुरोऽङ्गं दत्वा वारिणि तत उत्सृजेत् ।
अधोऽङ्गबिन्दूपरि तु तदष्टमलवत्ततः ॥२५५॥

[भोजनोत्सर्गस्य द्वादश मन्त्राभिधानम्]

अतः परं क्रमेणैव मन्त्रान् द्वादश तान्त्रिकान् ।
वक्ष्यमाणान् मया देवि सावधाना निशामय ॥२५६॥
तारो माया च रावश्च कूर्चकुण्डे सकर्णिके ।
सुरसश्चापि फेत्कारी घटी चेति नवैव हि ॥२५७॥
वीजानि पुरतो दत्वा संहारादित्रिकूटकम् ।
एह्येहि संभाष्य ततो भगवत्यपि कीर्तयेत् ॥२५८॥
गुह्यकाली ततः प्रोच्य सर्वाप्यायनकारिणि ।
इदमन्नं विसन्ध्युक्त्वा गृह्ण खाहि युगं युगम् ॥२५९॥
वलबुद्धिमेधेन्द्रियाणि ततोऽनन्तरमीरयेत् ।
मयि धेहि द्वयं चापि सर्वान्तिर्यामिनीति च ॥२६०॥
ततः सर्वमिदं ते च स्वदतां तदनन्तरम् ।
प्रसीदद्वितयस्यानु रोषास्त्रे शिर एव च ॥२६१॥
मन्त्रेणानेन देव्यै तु बल्यन्नं विनिवेदयेत् ।
अन्नपिण्डं पुनश्चान्यत् संपरिस्थाप्य मण्डले ॥२६२॥
उदीर्यमाणमनुना समुत्सृज्य निवेदयेत् ।
सारस्वतरमाकामप्रासादांकुशकालिकाः ॥२६३॥
डाकिनीप्रेतभैरव्यः पुरो बीजानि वै नव ।
कूटत्रयं च तदनु पैशाचखेचरीकुलम् ॥२६४॥
योगिनीडाकिनीभ्यो न इममन्नबलिं वदेत् ।
निवेदयामि च ततः सौम्या उक्ता भवन्तु च ॥२६५॥

सिद्धिं ददत्वनु मयि कृपां दधतु कीर्तयेत् ।
प्रभञ्जनादिबीजालीं ततः सप्त समुल्लिखेत् ॥२६६॥
अडाकिनीं महारात्रिं रोषमस्त्रत्रयं शिरः ।
इदानीमवधेहि त्वं विनायकबलिं शुभम् ॥२६७॥
पूर्ववन्मण्डले दत्वा बल्यन्नं तेमनैर्युतम् ।
जल्पिष्यमाणमन्त्रेण गणाधिपतयेऽर्पयेत् ॥२६८॥
वेदादिपाशगरुडयोगिनीचण्डदक्षिणाः
बलिः पद्मश्च तन्द्रा च कूटाः सिद्धौग्रभावनाः ॥२६९॥
महागणाधिपतये विघ्नराजाय चेत्यपि ।
इमं सोपस्करबलिं ददे गृहणयुगं ततः ॥२७०॥
भक्षयद्वितयं चापि सर्वान् विघ्नानितः परम् ।
विनाशयद्वयं चानु ममारिष्टं दहद्वयम् ॥२७१॥
बीजमाप्सरसं चैव मात्सर्यं वैश्वदेवकम् ।
ऋषभं च प्रयाजं च पञ्चैतानीरयेत् क्रमात् ॥२७२॥
अस्त्रत्रयानु स्वाहा च तार्तीयो मनुरीरितः ।
तुर्यं वटुकनाथस्य मन्त्रमाकर्णय प्रिये ॥२७३॥
पुरोक्तवत् पिण्डितान्नं मण्डले विनिधाय हि ।
समुच्चरन् इमं मन्त्रं वटुकाय समर्पयेत्[1] ॥२७४॥
तारचैतन्यपाशह्री भारुण्डाकूर्चकाकिनीः ।
कालादित्यौ नवैतानि बीजानि प्रोच्चरेत् पुनः ॥२७५॥

१—निवेदयेत् घ. ।

रौद्रानन्ताचलाख्यातान् कूटांस्त्रींस्तदनन्तरम् ।
एह्येहि तदनु प्रोच्य महावटुकनाथ च ॥२७६॥
इमं बलिं गृहाणानु सर्वसिद्धिं ददद्वयम् ।
मम शत्रून् नाशय द्विर्दह द्विर्मारयद्वयम् ॥२७७॥
सर्वैश्वर्यं देहियुग्मं दापयद्वितयं तथा ।
ससौरंगं चर्पटादिचतुष्कं तदनन्तरम् ॥२७८॥
रोषास्त्रयोस्त्रिस्त्रिरुक्त्वा सर्वशेषे शिरो वदेत् ।
अधुना क्षेत्रपालस्य शृण्वन्नबलिमुत्तमम् ॥२७९॥
पुरोवत् सकलं दत्वा मन्त्रमेनं समुच्चरेत् ।
चैतन्यमायाकमला जम्भसानू समेखलौ ॥२८०॥
ताटङ्कमन्दस्वार्णाश्च बीजानि पुरतो नव ।
कूटत्रयं ततो ब्रूयान्मायामन्दारगह्वरम् ॥२८१॥
हेतुकादिपदं प्रोच्य भीषणान्तेभ्य इत्यपि ।
सर्वेभ्य क्षेत्रपालेभ्यः इमं बलिमितीरयेत् ॥२८२॥
ददे सौम्या भवन्तूक्त्वा मम सिद्धिं समुल्लिखेत् ।
प्रयच्छन्तु ततः शत्रून्नाशयन्तु च कीर्तयेत् ॥२८३॥
हूं फट् स्वाहा भवे शेष इत्युक्त्वा वारिणोत्सृजेत् ।
अथ षष्ठबलेर्मन्त्रं कथयामि शुचिस्मिते ॥२८४॥
दीयते परिवारेभ्यो यमुच्चार्य फलार्थिभिः ।
चैतन्यतारकमलापाशरोषवधूस्मराः ॥२८५॥
ततः प्रासादशाकिन्यौ पुरो बीजानि वै नव ।
भगमालिकलामालिवेदवत्यस्ततः परम् ॥२८६॥

रत्नकुम्भः पुष्पमाला चूडाकूटं ततः परम् ।
एकावलीं ततो वज्रकवचं ब्रह्मखर्परम् ॥२८७॥
जगदावृत्तिबीजं च दशमं परिकीर्तितम् ।
महाकल्पस्थायिनामज्ञेयमेकादशैव हि ॥२८८॥
[1]पारिजाताह्वयं कूटं तद्द्वादशतमं भवेत् ।
एकविंशतिरेवं स्यात् संख्या वै बीजकूटयोः ॥२८९॥
गुह्यकालीसहचरं यावदेकपदादनु ।
परिवारपदं चापि द्वयमेव भ्यसन्तिमम् ॥२९०॥
ततः सन्धानसहितमिममन्नं बलिं वदेत् ।
गृह्णद्वयं भक्षयद्विः खाहि द्वितयमेव च ॥२९१॥
उक्त्वा कृत्याभिचारांश्च दहद्विर्नाशयद्वयम् ।
सर्वसम्पदमाभाष्य दद देहि द्वयं द्वयम् ॥२९२॥
शत्रून् द्विः संहरोच्चार्य शेषे कूर्चास्त्रकानि च ।
बलिमन्त्राः षडेवं ते कथिता जगदीश्वरि ॥२९३॥
ऊर्ध्वस्थमण्डलेष्वेतैरुत्सृजेत् साधको बलीन् ।
एषामधस्ताद् ये प्रोक्ता बिन्दवः षड्पुरा मया ॥२९४॥
तद्देवास्तस्य मन्त्राश्च कथयाम्यधुना तव ।
जातवेदा वाडवश्च शन्यगस्त्यौ ततः परम् ॥२९५॥
कालाग्निरुद्रस्तदनु पञ्चमः परिकीर्तितः ।
कल्पान्तकाली षष्ठी तु विज्ञेया तदनन्तरम् ॥२९६॥

१—अस्मादारभ्य घ पुस्तके चतस्रः पंक्तयो न सन्ति ।

तुर्यैक्ये षडिमे शब्दाः कर्तव्याः सुरवन्दिते ।
निधेयः क्रमशः किन्तु वेदादिहृदयान्तरे ॥२९७॥

एतैर्मनुभिरुत्सृज्य तत्तद्देवेभ्य ओदनम् ।
मूलदेव्यै सर्वमनुमुत्सृजेत्तदनन्तरम् ॥२९८॥

उक्तं मन्त्रद्वयं तत्र वैदिकं तान्त्रिकं तथा ।
दद्यादुभयमुच्चार्य क्रम एष शिवोदितः ॥२९९॥

तत्रादौ वैदिकं वच्मि वक्ष्ये तदनु तान्त्रिकम् ।
इदमन्नं प्राणतनुधारणकारणं सदा ॥३००॥

यथाविभवसम्भारसम्भावितमुरीकुरु ।
त्वमेवान्नं त्वमेवात्री त्वं दात्री च ग्रहीत्र्यपि ॥३०१॥

त्वं भोक्त्री च जवित्री च संहर्त्र्यपि जनित्र्यपि ।
कल्पान्तकालनर्तव्यमहासंहारमूर्तये ॥३०२॥

त्रिलोकीग्रासकारिण्यै किमन्नवन्ते प्रदीयते ।
तथापि भक्तिभावेन यत्ते देवि निवेदितम् ॥३०३॥

तदन्नं मयि वात्सल्यात् सादरा भुङ्क्ष्व कालिके ।
निवेद्यानेन मन्त्रेण तान्त्रिकं समुदीरयेत् ॥३०४॥

तारो मैधश्च माया च प्रासादा सैव योगिनी ।
प्रेतः परा डाकिनी च फेत्कारी हारकर्णिके ॥३०५॥

संहारादित्रयं भोगकूटाद्यं तदनन्तरम् ।
पदं सिद्धिकरालीति सिद्धितो बिकरालि च ॥३०६॥

भगवत्यथ संकीर्त्य गुह्यकालि ततो वदेत् ।
इदमन्नं विसन्ध्युक्त्वा भुञ्ज खाहि युगं युगम् ॥३०७॥
भक्षयद्वितयं चापि मां रक्ष युगलं ततः ।
लज्जा महाचण्डयोगेश्वरीति तदनन्तरम् ॥३०८॥
वज्रकापालिनि ततः खेचरीचक्र[1]नायिके ।
हसद्वयं बल्लयुगं यष्टिः डिण्डिमदारुणाः ॥३०९॥
रोषस्यास्त्रस्य च त्रिस्त्रिः स्वाहाशेषे व्यवस्थितम् ।
पठित्वेमं मनुं सर्वे क्षिपेदम्बूनि मूर्धनि ॥३१०॥
निमील्य नयने तिष्ठेत् क्षणं तदनु पार्वति ।
आपोशानं ततः कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥३११॥
इदमन्नं हव्यशेषं देव्युच्छिष्टं रसान्वितम् ।
[2]अश्नामि स्वर्गकैवल्यधर्मकामार्थसिद्धये ॥३१२॥
इत्युच्चार्य मनुं नम्रशिरा वामकनिष्ठया ।
गण्डूषं ब्राह्मतीर्थेन स्पृशन् स्थालीं चरेद् बुधः ॥३१३॥
ततो दक्षकराङ्गुष्ठानामिके योचिते चरन् ।
हविराक्तं स्तोकमन्नं गृहीत्वा वदने क्षिपेत् ॥३१४॥
प्राणाहुतीभिर्जुहुयादन्याभिरपि पार्वति ।
नानामतीयान्नप्रीतिं कथयाम्यवधारय ॥३१५॥
तारान्गिजाययोर्मध्ये विभक्त्या तुर्ययान्विताः ।
क्रमेण वायवः पञ्च तेषां नामानि वै शृणु ॥३१६॥

१—०क्रमं ख. ग. घ. । २—अस्मादारभ्य पंक्तिचतुष्टयं घ पुस्तके नास्ति ।
३—न्यसेत् ख. ग. घ. ङ. ।

प्राणापानसमानोदानव्यानाः परमेश्वरि ।
रीत्यानया भाण्डिकेराः जुह्वत्यन्यानपि प्रिये ॥३१७॥
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
एतस्मादधिकं किञ्चित् कुर्युः कापालिकाः क्रमम् ॥३१८॥
युक्तियुक्तं तमपि ते कथयामि वरानने ।
तयोरेवान्तरे शब्दौ द्वौ द्वौ भ्यामन्तिमे सदा ॥३१९॥
कृत्वा विग्रहितौ पूर्वोक्तरीत्या जुहुयाच्छनैः ।
क्षुत्तृषौ च समालस्यं निद्रातन्द्रे तथैव च ॥३२०॥
कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमानौ ततः परम् ।
रोगशोकौ जन्ममृत्यू धर्माधर्मौ कृताकृते ॥३२१॥
पुण्यपापे दिवारात्री ज्ञानाज्ञाने शुभाशुभे ।
जाग्रत्स्वप्नौ खलु सुषुप्तितुरीये ततोऽनु च ॥३२२॥
भावाभावौ स्वर्गमर्त्यौ ततः सत्यानृते प्रिये ।
तस्यानु प्रकृतिपुरुषौ तन्मात्रेन्द्रिय इत्यपि ॥३२३॥
जीवात्मपरमात्मानौ बन्धमोक्षौ तथैव च ।
.... सुरीये च ततोऽनु च ॥३२४॥
चतुर्विंशतमौ विम्बप्रतिबिम्बौ वरानने ।
सर्वशेषे परिज्ञेये शिवशक्ती च साधकैः ॥३२५॥
पञ्चविंशातिसंख्याकमेतत्तत्त्वमुदीरितम् ।
तत्त्वाहुतिरियं प्रोक्ता **यामलादिषु** शम्भुना ॥३२६॥
अनित्यत्वेन वेदाध्वचारिणां सम्मता त्वियम् ।
कौलाचारवतां किन्तु नित्यत्वेन प्रकीर्तिता ॥३२७॥

पञ्चविंशाहुतिः श्रेष्ठा दशमध्याधमा ततः ।
एवं तिष्ठति सिद्धान्ते प्राणाहुत्या मतान्तरे ॥३२८॥
यावद् यस्य भवेच्छक्यं तावत्तेन विधीयते ।
यावत् प्राणाहुतीः कुर्यात् तावत् भोजनभाजने ॥३२९॥
कनिष्ठा तिष्ठति तथा मौनं चापि विधीयते ।
ततस्तदन्नं भुञ्जीत यद्देव्यै विनिवेदितम् ॥३३०॥
न हसन् ग्रासमश्नीयात् नातिरिक्तं न वायमन् ।
तमशब्दं पिबेत्तोयं नाधिकं भोजनान्तरे ॥३३१॥
न्यूनाधिक्ये रसानां हि न निन्द्यात् किं च पूजयेत् ।
नैवेद्यसम्भृतौ देव्यै यद्यद्द्रव्यं निवेदितम् ३३२॥
महाप्रसादभूतं तत् सर्वं भुञ्जीत तत्क्षणे ।
नैकाक्यद्यात् साधकस्तु कौलान् बालांश्च बान्धवान् ॥३३३॥
सहोपवेशयेत् तत्र यत्र भुङ्क्ते स्वयं रहः ।
एषामभावे कौलिक्यो भवेयुः स्थापिता अपि ॥३३४॥
भागत्रयं पूरयीत जठरस्य शनैः शनैः ।
एको भागोऽवशेषः स्यात् संचारायानिलाम्बुनोः ॥३३५॥
तिक्ताद्यमम्लमध्यं मधुरान्तञ्च भोजनम् ।
आयुर्वेदादिषु प्रोक्तमात्रेयादिमहर्षिभिः ॥३३६॥
एवं निर्वर्त्य सकलं भोजनं साधकः स्वयम् ।
उत्क्षिप्य भोजनामत्रमन्यत्र स्थापयेच्छनैः ३३७॥
अवशिष्टं किञ्चिदन्नंयमवश्यं भाजने न्यसेत् ।
तदन्नं पिण्डितं कृत्वा सकलं दक्षपाणिना ॥३३८॥

स्थाल्यधो बलिमादध्यात् उभयत्र वरानने ।
उच्छिष्टभैरवायादौ पश्चिमायां दिशि न्यसेत् ॥३३९॥

तथैवोच्छिष्टचाण्डालिन्यै पूर्वस्यामपि क्रमात् ।
एतयोर्मन्त्रयुगलमिदानीमवधारय ॥३४०॥

मैधं माया योगिनी च रावरामास्मराश्च रुट् ।
कुण्यापो दोमुत्तला[?] च बीजान्येतानि वै दश ॥३४१॥

उच्छिष्टभैरवायोक्त्वा तथोच्छिष्टबलिं वदेत् ।
गृह्णद्वयं भुञ्जयुग्मं हूं फट् स्वाहा च पश्चिमे ॥३४२॥

अथापरं शृणु मनुं पूर्वस्यां येन दीयते ।
मैधं पाशः स्मरो रावः कूर्चः क्षेत्रपडाकिनीः ॥३४३॥

पूतनाशक्तिलिङ्गाश्च वारी चेति दशोद्धरेत् ।
एह्येह्युच्छिष्टचाण्डालि मनूक्तं सन्धिवर्जितम् ॥३४४॥

विरूपवेश उद्धृत्य सुमुख्युक्त्वा पिशाचिनि ।
इममुच्छिष्ट संभाष्य बलिं गृह्णयुगं ततः ॥३४५॥

खादद्वितयमस्यानु मुद्रां खेचर्यनन्तरम् ।
युगं प्रकटय प्रोच्य संध्यूनमभिचारिणाम् ॥३४६॥

सामर्थ्यं देहि युग्मं च पिशाचिन्यास्त्रयं ततः ।
अत्रापि चरमे ज्ञेया पूर्ववच्चतुरक्षरी ॥३४७॥

एवं मनुभ्यामेताभ्यां दत्वा बलियुगं प्रिये ।
तत्रैवाचमनं कुर्यात् षडङ्गं तदनन्तरम् ॥३४८॥

प्रसादभूतं देव्या यत्ताम्बूलाद्यास्यवासनम् ।
तद् गृहीत्वा वरारोहे स्वेच्छया विहरेत् ततः ॥३४६॥

[सायन्तनकृत्यनिर्देशः]

अथ सायन्तनभवं कृत्यं समवधारय ।
मध्याह्नकालवत् सन्ध्यां वैदिकीं समुपास्य हि ॥३५०॥
तान्त्रिकीमाचरेद्देवि त्रिवर्णस्थो न चेतरः ।
तुर्यस्तु तान्त्रिकीमेव लोभादप्यबलाजनः ॥३५१॥
अस्तंगमनवेलायां मार्तण्डस्य निशासु च ।
कृतशौचस्तथाचान्तः पुनः पूजालयं विशेत् ॥३५२॥
पुष्पस्रग्धूपनैवेद्यबलिदीपादिसंभृतिम् ।
पूजाकालीनतत्कुर्यात् सायन्तनसमर्चने ॥३५३॥
आरात्रिकविभवतो दीपवृक्षानपि प्रिये ।
क्षणं निमील्य नयने ध्यानं पूर्वोक्तवच्चरेत् ॥३५४॥

[सान्निध्यकरणाय श्लोकयुगपाठविधिः]

ततो बद्धाञ्जलिः पद्ययुगलं समुदीरयेत् ।
योगिन्यो मातरः सिद्धाः क्षेत्रपाला विनायकाः ॥३५५॥
तथा वटुकनाथाश्च चामुण्डाभैरवीगणाः ।
वेतालभूतकूष्माण्डा ये चान्ये कालिकानुगाः ॥३५६॥
इह कुर्वन्तु सान्निध्यं कुर्वेऽहं नैशिकार्चनम् ।
पठित्वेत्थं ततः कुर्यादृष्यादिं[1] द्विषडङ्गकम् ॥३५७॥

१—इतश्चरणद्वयं ख पुस्तके नास्ति ।

वक्त्रन्यासं ततः कुर्यादावश्यकतया प्रिये ।
अन्यानपि स्वेच्छयैव यावच्छक्यान् समाचरेत् ॥३५८॥

वक्त्रन्यासस्य नित्यत्वमितरेषां च काम्यता ।
इत्थं न्यासादिकं कृत्वा स्वेच्छया सुरवन्दिते ॥३५९॥
बद्धाञ्जलिः पुनरपि श्लोकमेकं समुच्चरेत् ।
हे गुह्यकालि जगदीश्वरि विश्वमात-
श्चैतन्यरूपिणि सदाशिवजीवतुल्ये ।
दैनन्दिनप्रचितपापचयापहत्यै
सायन्तनं स्मरणमेव करोमि तेऽहम् ॥३६०॥
पठित्वेमं ततः पुष्पं गृहीत्वाञ्जलिना प्रिये ।
त्रिखण्डामुद्रया चापि ध्यानं मीलितदृक् चरेत् ॥३६१॥
पूर्वस्तोत्रोक्तपद्याभ्यां न तु ध्यायेदितिक्रमैः ।
या वस्वर्ककलेत्येकं ब्रह्मेन्द्रेति द्वितीयकम् ॥३६२॥
शक्तौ पूर्वोक्तवत् कुर्यादावाहनपुरःसरान् ।

[सायमपि षोडशोपचारविधानम्]

उपचारान् षोडशापि मन्त्रैरेव पुरोदितैः ॥३६३॥
अशक्तौ कुसुमैः स्रग्भिर्धूपदीपैररात्रिकैः ।
नैवेद्यैर्बलिभिः स्तोत्रैः पाठैरपि जपैस्तथा ॥३६४॥
सर्वत्र पूजाकालीना मन्त्रा एव प्रकीर्तिताः ।
किन्तु पीठार्चने भिन्नः क्रम उक्तः पुरारिणा ॥३६५॥

तत्तेऽहं संप्रक्ष्यामि दत्तचित्तावधारय ।
ताराद् रावं पुरो दत्वा शेषे नम इतीरयेत् ॥३६६॥
मध्ये शब्दाच्चतुर्थ्यन्ता बहुत्वे चैक्यमेव च ।
उल्लेखक्रमतो बोध्याः किमाधिक्येन पार्वति ॥३६७॥
योगिन्यश्चापि डाकिन्यः सिद्धा मातर एव च ।
विनायकाः क्षेत्रपालाः दैत्यास्तदनु दानवाः ॥३६८॥
असुरा यातुधानाश्च यक्षिण्योऽप्सरसस्तथा ।
ततो वटुकनाथाश्च भूता भैरव्य एव च ॥३६९॥
चामुण्डा अथ वेतालाः कूष्माण्डाः किन्नरास्तथा ।
गुह्यकाश्च तथा प्रेतास्ततोऽनु ब्रह्मराक्षसाः ॥३७०॥
गन्धर्वाश्च पिशाचाश्च चतुर्विंशतिरीरिताः ।
पीठाधस्तादिमे पूज्याः कुसुमैरथवाक्षतैः ॥३७१॥
पूर्वादिभ्यो हरिद्भ्यस्तु त्रिवारं क्रमशः प्रिये ।
एताः सम्पूजिता रात्रौ दद्युः पीडां न काञ्चन ॥३७२॥
न दर्शयेयुः दुःस्वप्नं सुखनिद्रां ददत्यपि ।
देव्यास्ततः पीठगतान् सर्वानेव प्रपूजयेत् ॥३७३॥
गणरूपान्नपूजावद्भिन्नरूपतयार्चयेत् ।
आचतुर्विंशतिदलाम्भोजं त्रिदशवन्दिते ॥३७४॥
प्रत्येकन्तु तदारभ्य शास्त्रस्यैवं विनिश्चयः ।
सर्वत्र तारहृदये पूर्वपश्चिमयोर्मते ॥३७५॥

रक्तार्णवास्ततो रक्तद्वीपा रक्तानु बालुकाः ।
चामुण्डा भैरवाभैरवीप्रकारास्ततः परम् ॥३७६॥
महाश्मशनानि ततो मुण्डमालास्ततोऽप्यनु ।
कल्पवृक्षा रत्नवेद्यो रत्नसिंहासनानि च ॥३७७॥
आयुर्वेदी युगं वेदा दिक्पालास्तदनन्तरम्
पञ्चप्रेता अष्टभैरवाष्टशक्तिसविग्रहाः ॥३७८॥
ततः षोडशयज्ञाश्च पुनरष्टशिवा अपि ।
ततो धर्माद्यष्टदलपद्मं कामादिकेशरम् ॥३७९॥
द्वात्रिंशद्देव्य इति च महभैरव एव च ।
पुनः परमशब्दानु सदाशिव इति प्रिये ॥३८०॥
चतुर्विंशतिसंख्याका मध्ये तुर्यविभक्तिभिः ।
योजनीया बहुत्वैक्ये रीत्या पूर्वोक्तयैव हि ॥३८१॥
षड्त्रिंशच्च दलाम्भोजे न चतुर्विंशतिस्तथा ।
षोडशार्णमनोः पीठे यद्यपि प्राणवल्लभे ॥३८२॥
तथापि संकल्प्य हृदा तस्मिन्नेव प्रपूजयेत् ।
न षोडशद्वादशाख्ये यत्र वा भवतः प्रिये ॥३८३॥
वसुच्छदे केवलेऽपि चतुर्णामपि कल्पना ।
तत्रापि महतः कार्योऽनुबन्धः पीठपूजने ॥३८४॥
न तत्र कल्पना कार्या यत्र स्याद् विद्यमानता ।
वेदितव्यं तुरीयाया निर्वाणस्यापि मण्डले ॥३८५॥

मनूद्धारमथो वच्मि देवि देव्यभिधान्वितम् ।
अन्तरं रावत्तर्जन्योस्तुर्यैक्येन प्रपूरयेत् ॥३८६॥

षष्टि ताः कथयाम्यंशो बुद्ध्या संबुध्यतां त्वया ।
करालो क्षोभणानन्ता विरूपाऽप्यपरा परा ॥३८७॥

भद्रोग्रा मेघनादा च विकटा पिङ्गला तथा ।
भ्रामिका विश्वरूपा च प्रदीप्ता कालमर्दिनी ॥३८८॥

प्रमोदिन्यथ हुङ्कारनादिनी वज्रदन्त्यपि ।
कोकामुख्यर्क्षकर्णी च विदारी फेरुतुण्डिनी ॥३८९॥

विद्युज्जिह्वा महाग्रासा वातवेगा तनूदरी ।
जम्बुकी मोहिनी चापि द्राविण्याकर्षिणी तथा ॥३९०॥

काकाङ्गी लेलिहाना च कुक्कुटी भोगवत्यपि ।
मायामयी पिङ्गकेशी चपला रक्तपायिनी ॥३९१॥

वर्वरा कौणपचरी बहुपादा दिगम्बरी ।
लाङ्गूलिनी सूर्यजिह्वा श्यामा कुणपकुण्डला ॥३९२॥

उन्मादिनी पिङ्गलाक्षी दीर्घजिह्वा पिशाचनी ।
प्रस्वापिनी चण्डघण्टा शवासिन्यञ्जनप्रभा ॥३९३॥

जालन्धरी शाम्बरी च गजवक्त्राट्टहासिनी ।
कटङ्कटा महाघोरा सर्वशेषे मनोन्मनी ॥३९४॥

षोडशद्वादशाष्टाङ्गदलाम्बुजसमर्हणम् ।
प्रवक्ष्यमाणमधुना समाकलय भामिनि ॥३९५॥

पूर्वोक्तयोर्मन्त्रयोस्तु शेषे हृदयमिष्यते ।
आदिभूतस्यादिभूतो वेदादिरपि पार्वति ॥३९६॥

अथ क्रमेण षट्त्रिंशन्नामानि ब्रुवतः शृणु ।
महारात्रिः कालरात्रिः विरूपा तदनन्तरम् ॥३९७॥

महोत्सवा गुह्यनिद्रा वज्रिणी विमला तथा ।
अष्टमी परिविज्ञेया कौलिनी जगदीश्वरि ॥३९८॥

कुम्भोदरी डमरुका भीमदंष्ट्रा ततः परम् ।
तारावती भानुमती ज्वालिनी च चतुर्दशी ॥३९९॥

एकानंशा पञ्चदशी षोडशच्छदपूजने ।
कबन्धकन्धरा चैव जया च विजया ततः ॥४००॥

प्रभाऽथ सुप्रभा चापि माया चैवाजिता ततः ।
ततोऽपराजिता श्रद्धा मेधा दीप्ता क्रियापि च ॥४०१॥

भद्रा चाष्टदलाम्भोजार्चनं कलय पार्वति ।
आदौ भगवती ज्ञेया भगमालिन्यनन्तरम् ॥४०२॥

भगप्रिया चापि भगातुरा चापि भगाङ्कुशा ।
षष्ठी तथा सप्तमी च भगकामा भगाकुला ॥४०३॥

भगलिङ्गद्राविणी चेत्यष्टौ संपरिकीर्तिताः ।
वृत्तं महाचण्डतरवज्रकापालिनी प्रिये ॥४०४॥

अथाष्टारगता देवीः कीर्त्यमाना निशामय ।
श्मशानवासिन्याद्योक्ता हूंहूंकारविनादिनी ॥४०५॥

प्रचण्डा प्रेतमालिन्यनु महाभीषणापि च ।
कृतान्तकाला तदनु भवेच्चर्माम्बरा परा ॥४०६॥
सर्वशेषे च विज्ञेया देवता फेरुमालिनी ।
पुनर्वृत्ते महाचण्डयोगेश्वर्यभिधीयते ॥४०७॥
नवारगामिनोर्वक्ष्य इदानीं परमेश्वरीः ।
आदिभूता परिज्ञेया सर्वासां भुवनेश्वरी ॥४०८॥
राजराजेश्वरी पश्चात् कात्यायन्युच्यते बुधैः ।
चतुर्थी शिवदूती च ततो महिषमर्दिनी ॥४०९॥
उग्रतारा ततो ज्ञेया हरसिद्धा ततः परम् ॥४१०॥
अथ पञ्चारगा वक्ष्ये देवताः सुरवन्दिते ।
सृष्टिकाली स्थितिकाली पुनः संहारकाल्यपि ॥४११॥
अनाख्याकाल्यपि ततो भासाकाली च शेषगा ।
अथ त्रिकोणाधिष्ठात्री देवीस्त्वामुपवर्णये ॥४१२॥
कप्यृक्षनरवक्त्राणां या अधिष्ठात्र्य ईरिताः ।
वक्त्रन्यासेऽथवार्चायां ताः क्रमेण नियोजयेत् ॥४१३॥
अथ बिन्दौ समभ्यर्च्याः प्रवक्ष्यामि चिदात्मिका ।
तथा कैवल्यात्मिका च निर्वाणात्मिकयान्विता ॥४१४॥
[1]इत्येवं संहिताप्रोक्तं ज्ञेयं नैशं ततोऽर्चनम् ।

[निशार्चायां तान्त्रिकान्तरकृत्यनिर्देशः]

कुर्वन्ति किञ्चिदधिकमन्यतन्त्राध्वचारिणः ॥४१५॥

१—इत अतस्त्रः पंक्तयः ख. ग. पुस्तकयोर्न सन्ति ।

षट्त्रिंशद्दलाम्भोजार्चा पूर्वे कमलानने ।
पूजयन्त्यधिकान् कांश्चित् देवान् देवीरथापि च ॥४१६॥
पूर्ववद्गणरूपास्तु न पृथग्रूपताजुषः ।
पूर्वोक्तेन क्रमेणैव तेषां मन्त्रा अपि प्रिये ॥४१७॥
गणेशान् क्षेत्रपालांश्च ग्रहान् रुद्रांस्ततोऽप्यनु ।
आदित्यानथ साध्यांश्च सिद्धौघांस्तदनन्तरम् ॥४१८॥
यथैवात्राधिकाचारान् भाण्डिकेराः प्रकुर्वते ।
तथा बिन्दावपि शिवे देवेशीः परमाः क्रमात् ॥४१९॥
तामेवात्रापि जानीहि रीतिं प्रथमकीर्तिताम् ।
आदौ तु राजमातङ्गी पद्मावत्यथ शूलिनी ॥४२०॥
उग्रचण्डा च धनदा बाला त्रिपुरसुन्दरी ।
उग्रतारा च फेत्कारी त्वरिता चण्डवारुणी ॥४२१॥
अश्वारूढा भोगवती कुब्जिका मृत्युहारिणी ।
पिङ्गला हरसिद्धा च कालसंकर्षिणी तथा ॥४२२॥
सिद्धिलक्ष्मीश्छिन्नमस्ते वगला शवरेश्वरी ।
धूमावती महामारी कोरङ्गी बाभ्रवी तथा ॥४२३॥
भीमादेवी रक्तदन्ती कामाख्या विश्वरूपिणी ।
अभया तामसी शक्तिसौपर्णी चण्डखेचरी ॥४२४॥
भ्रामरी डामरी चेति षड्त्रिंशदिति कीर्तिताः ।
बिन्दौ प्रत्येकशः प्रोक्तरीत्या मन्त्रजुषार्चयेत् ॥४२५॥

धूपदीपादिनैवेद्यं यथा शक्त्युपपादितम् ।
देव्यै निवेदयेत् सर्वमस्मिन्नेव क्षणे प्रिये ॥४२६॥
बलिं दत्वा प्रयच्छेत कर्पूरारात्रिकं शुभम् ।
निवेदयेत् ततो हालां वासितां कुसुमादिभिः ॥४२७॥
अनन्तरं च ताम्बूलं मूलमन्त्रं ततो जपेत् ।
शतं पञ्चशतं वापि सहस्रं वापि शक्तितः ॥४२८॥
जपं समर्प्य च पठेत् कवचं स्तोत्रमेव च ।
संबीजयन् क्षणे तस्मिंश्चामरेण शनैः शनैः ॥४२९॥
दण्डवत् प्रणमेच्चापि कुर्याच्चापि प्रदक्षिणम् ।
काकूक्तिभिः प्रार्थयीत स्वस्याभीष्टानि साधकः ॥४३०॥
यदि चेद् भवतो देवि प्रतिमा यन्त्रमेव च ।
कल्पयित्वा तदा तल्पं मृद्वास्तरणसंवृतम् ॥४३१॥
स्थापयित्वोपधानं च शाययेत्तत्र कालिकाम् ।
नैशार्चनोपक्लृप्तानि स्युर्नैवेद्यानि यानि हि ॥४३२॥
अवश्यं तानि भुञ्जीत शक्तिभिः साधकैः सह ।
गीतवाद्यादिनृत्यान्तं यथाशक्ति ततश्चरेत् ॥४३३॥
सायन्तनीनमशनं कुर्यात् पूर्वोक्तवत् ततः ।
स्वयं शयीत तदनु सह त्वभीष्टया स्त्रिया ॥४३४॥
प्राक्शिरा वा दक्षशिरा नोदङ्पश्चिममस्तकः ।
कृतशौचः करपदोराचान्तः सुसमाहितः ॥४३५॥
दीपे ज्वलति न ध्वान्ते नाकृतावनवासनः ।
न च स्तिमितपत्पाणिर्न नग्नो न च कञ्चुकी ॥४३६॥

पठन् दुःस्वप्ननाशाय वक्ष्यमाणान् मनून् प्रिये ।

[दुःस्वप्ननाशाय मन्त्रपाठः]

जगन्मातर्महामाये कालिके कालनाशिनि ॥४३७॥

दुःस्वप्नं हर रुद्राणि त्वद्भक्तं पाहि मां सदा ।

भूतप्रेतपिशाचाद्या ये भीमा देवयोनयः ॥४३८॥

रक्षोदानवदैत्याश्च ये निद्राभंगकारिणः[1] ।

दुःखाप्तिकाश्च ये दोषाः मम हिंसाकराश्च ये ॥४३९॥

ते त्वत्स्मरणाद्दम्भोलिनिहता यान्तु संक्षयम् ।

ये दंदशूका विलगा वृश्चिकाः शूकयोनयः ॥४४०॥

येषां विषं बाधतेऽङ्गं ये च शृङ्गविषास्तथा ।

विषपुच्छाश्च ये कीटाः ये चोद्वेगप्रदायिनः ॥४४१॥

श्रुत्वा ते कालिकानाम विद्रवन्तु दिशो दश ।

काली कराली चामुण्डा छिन्नमस्ता च भैरवी ॥४४२॥

हरसिद्धा सिद्धिलक्ष्मीर्डामरी बाभ्रवी तथा ।

महामारी तामसी च मातङ्गी शबरेश्वरी ॥४४३॥

चर्चिका शिवदूती च तथा महिषमर्दिनी ।

उग्रचण्डा कुब्जिका च फेत्कारी गुह्यकाल्यपि ॥४४४॥

एतास्ते मूर्तयो घोरा याश्च सौम्याः सुरेश्वरि ।

ता मां शयानं रक्षन्तु दुःस्वप्नं नाशयन्तु च ॥४४५॥

चक्रचापासिशूलर्ष्टिगदापरिघतोमराः ।

बज्रमुद्गरकुन्तेषुभुशुण्डीप्राशपट्टिशाः ॥४४६॥

१—भङ्गकारकाः ख. ग. घ. ङ ।

यान्यन्यानि च देवेशि करयोर्विधृतानि ते ।
अस्त्राणि तानि रक्षन्तु स्वपन्तं मां महेश्वरि ॥४४७॥
त्वदाज्ञया नारसिंही पूर्वस्यां दिशि पातु माम् ।
वाराही पश्चिमायां च दक्षिणस्यां च कालिका ॥४४८॥
उत्तरस्यां च चामुण्डा महाघोरतराऽवतु ।
ऊर्ध्वं तथाधो दिग्विदिशोस्त्वं सर्वत्रैव पाहि माम् ॥४४९॥
शक्तयो याश्च ते देवि परिवारगणाश्च ये ।
सर्वत्र सर्वदा पातु मां त्वच्चरणसेवकम् ॥४५०॥
त्वदाज्ञयैव देवेशि नानारूपधरावुभौ ।
देवौ मामवतां विष्णुरुद्रौ सर्वसुरेश्वरौ ॥४५१॥
वाराहो नरसिंहश्च वामनोऽनन्त एव च ।
त्रिविक्रमो हयग्रीवः षडिमे पान्तु मां सदा ॥४५२॥
मृत्युञ्जयो नीलकण्ठो दक्षयज्ञविघातकः ।
त्रिपुरघ्नो हरिश्मश्रुः पिनाकी नीललोहितः ॥[?]४५३॥
प्रमथेशः कृत्तिवासा विरूपाक्षो महेश्वरः ।
एकादशैते मां पान्तु रुद्रा रौद्रतनूधराः ॥४५४॥
सदा मामकुतोभीतिं कुरु त्वं गुह्यकालिके ।
एवमष्टादशश्लोकैः रक्षां कृत्वात्मनः प्रिये ॥४५५॥
शयीत चिन्तयन् कालीं निर्विशङ्केन चेतसा ।
सर्वां निशामयोगज्ञो गमयित्वैव निद्रया ॥४५६॥
उत्तिष्ठेतोषसि पुनः प्रातः कृत्यचिकीर्षया ।

[योगविधिप्रक्रमः]

देव्युवाच

अयोगज्ञ इति प्रोक्तं यत्त्वया प्राणवल्लभ ॥४५७॥

अत्र मे संशयो जातस्तेन पृच्छाम्यजानती ।
योगज्ञानक्रिया काचित् प्रायशोऽन्यापि तिष्ठति[१] ॥४५८॥

समुत्थाय निशीथे तां कुर्वते योगिनोऽन्वहम् ।
अर्द्धरात्रे प्रकर्तव्यं योगिभिर्यत् सुरेश्वर ॥४५९॥

तदिदानीं वद प्रभो श्रोतुं कौतूहलं मम ।

महाकाल उवाच

साधु धन्यासि देवेशि विज्ञा चासि न संशयः ॥४६०॥

या त्वं सुश्रूषसे योगविधिं मत्तो विशेषतः ।
अप्यन्यस्मै पृच्छतेऽहमवोचं गौतमर्षये ॥४६१॥

तुभ्यं[२] कथं न वक्ष्यामि यतोऽसि प्राणवल्लभा ।
देवि कापालिकाः कौलाः भाण्डिकेराः दिगम्बराः ॥४६२॥

मौलेया भैरवाध्वन्या वामाचारकराश्च ये ।
तेषां नित्यार्चने बुद्धिरैहिकार्थधृतात्मनाम् ॥४६३॥

देव्यै दत्वा सुरां मांसं स्वयं समुपभुज्य च ।
रममाणाः सह स्त्रीभिः स्वच्छन्दाचारचारिणः ॥४६४॥

१—एतदनन्तरं घ पुस्तके 'जरायुजा' पर्यन्तः पाठो नास्ति ।

२—गुह्यं घ ।

साधयन्त्यैहिकानर्थान् सिद्धीरपि च काश्चन ।
श्रुत्युक्तपथसंचारा गृहस्था अपि तादृशाः ॥४६५॥
आनुकल्पेन विधिना यजन्तः परमेश्वरीम् ।
कामयाना ऐहिकार्थान् कुर्वते नामृते रतिम् ॥४६६॥
एतौ सिद्धीरीहमानौ पूजां नैव प्रशंसतः ।

[योगमाहात्म्यकथनम्]

ये कैवल्ये कृतात्मानो विरक्ताः शुद्धबुद्धयः ॥४६७॥
ये सिद्धीरैहिकफलं तृणवद् गणयन्ति[1] च ।
येषां स्वर्गोऽपि देवेशि कटुतुम्बीफलाकृतिः ॥४६८॥
ते योगमेवाभ्यसन्ति नार्चाध्यानबलिस्तवान् ।
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा ये तेषां च कुलोद्भवाः ॥४६९॥
ब्रह्मर्षयस्तपोनिष्ठाः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।
स्वाध्यायवन्तो मौनस्था अदारा अपरिग्रहाः ॥४७०॥
तेऽन्यान् प्रकारान् संत्यज्य योगाभ्यासं प्रचक्रिरे ।
योगेन भवबन्धोऽयं विनाशमुपगच्छति ॥४७१॥
कर्माणि क्षयमायान्ति पूर्वजन्मकृतान्यपि ।
ज्ञानं प्रकाशतेऽत्यर्थं शुद्धं यद्दोषवर्जितम् ॥४७२॥
ज्ञानयोगबलादेव भवेन्मुक्तिर्न चान्यथा ।
फलमुक्तं मुख्यमस्य वक्ष्ये गौणमतः परम् ॥४७३॥
जायते दूरदर्शित्वं दूरश्रोतृत्वमेव च ।
आरोग्यं देहसौगन्ध्यं चिरजीवित्वमेव च ॥४७४॥

१—मानयन्ति घ. ।

सर्वज्ञत्वं खेचरत्वं कामरूपित्वमेव च ।
अणुत्वं च महत्त्वं च शरीरस्य निजेच्छया ॥४७५॥
गुटिकाधातुवादादियक्षिण्यञ्जनपादुकाः ।
स्वर्नागलोकगमनं स्वेच्छाचारित्वमेव च ॥४७६॥
सिद्धयोगस्य जायन्ते तथा चाकल्पजीविता ।

[योगप्रकाराणामभ्यासविधेश्च निर्देशः]

वक्ष्येऽधुना तत्प्रकारानभ्यासविधिमेव च ॥४७७॥
तत्रादौ वच्मि शारीरीं स्थितिं त्रिदशवन्दिते ।
अस्ति ब्रह्मचिदानन्दं स्वयंज्योतिर्निरञ्जनम् ॥४७८॥
ईश्वरं लिङ्गमित्युक्तमद्वितीयमजं विभुम् ।
निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरमनीश्वरम् ॥४७९॥
निर्लेपं निर्मलं शुद्धं कूटस्थमविनाशि च ।
सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः ॥४८०॥
अनाद्यविद्योपहता यथाग्नेर्विस्फुलिङ्गकाः ।
दार्वाद्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः ॥४८१॥
सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर्नियन्त्रिताः ।
तत्तज्जातियुतं देहमायुर्भोगं च कर्मजम् ॥४८२॥
प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते तेषामस्त्यपरं पुन. ।
सूक्ष्मं लिङ्गं शरीरं तदामोक्षादक्षयं मतम् ॥४८३॥
सूक्ष्मभूतेन्द्रियप्राणावस्थान्यकमिदं वपुः ।
जीवानामुपभोगाय जगदेतत् सृजत्यजः ॥४८४॥

स आत्मा परमात्मा च कल्पान्ते संहरत्यदः ।
तदेतत् सृष्टिसंहारौ प्रवाहानादिसंमतौ ॥४८५॥
ते जीवा नात्मनो भिन्ना भिन्नं नैवात्मनो जगत् ।
शक्त्यासृजन्न भिन्नोऽसौ सुवर्णं कुण्डलादिव ॥४८६॥
सृजत्यविद्ययेत्यन्ये यथा रज्जुर्भुजङ्गमम् ।

[सृष्टिप्रक्रियाभिधानम्]

भवेदात्मन आकाशस्ततो वायुस्ततोऽनलः ॥४८७॥
अनलाज्जलमेतस्मात् पृथिवी समजायत ।
महाभूतान्यमून्येषां समाजो ब्रह्मणस्तनुः ॥४८८॥
ब्रह्म ब्रह्माणमसृजत् तस्मै वेदान् प्रदाय च ।
भौतिकानेव भूतैस्तैः सर्ज्जयामास तेन सः ॥४८९॥
तदाज्ञयाऽसृजद् ब्रह्मा मनसैव प्रजापतीन् ।
तेभ्यस्तु चेतसो सृष्टिः शरीराणां निरूप्यते ॥४९०॥
जरायुजा अण्डजाश्च स्वेदजा उद्भिजास्तथा ।
देवि स्युश्चेतनावन्तश्चतुर्धा न तु पञ्चधा ॥४९१॥
मनुष्याद्याश्च पश्वन्ताः सर्वे ज्ञेया जरायुजाः ।
खगाद्या जलजान्ताश्च विज्ञेया अण्डजा इमे ॥४९२॥
स्वेदजाः परिविज्ञेया मक्षिकामशकादयः ।
तरुगुल्मलतौषध्य उद्भिदाः परिकीर्तिताः ॥४९३॥
तत्र योगोपयोगित्वान् मानुषं देहमुच्यते ।
क्षेत्रज्ञ आयादाकाशमाकाशाद् वायुमागतः ॥४९४॥

वायोर्धूमं ततश्चाभ्रमभ्रान्मेघेऽवतिष्ठते ।
आहुत्याप्यायितो भानुस्तपे पिबति भूरसान् ॥४६५॥
पुनस्तानेव किरणरूपे धत्ते बलाहकः ।
यदा वर्षति वर्षेण सह जीवस्तदा भुवः ॥४६६॥
वनस्पत्योषधीर्जाताः संक्रामत्यविलक्षितः ।

[गर्भप्रक्रियावर्णनम्]

ताभ्योऽन्नं तत्पुनर्जग्धं पुरुषे शुक्रतां गतम् ॥४६७॥
शुद्धार्तवाया योषाया निषिक्तं स्मरमन्दिरे ।
कदाचिद्दैववशतो गर्भाशयगतं भवेत् ॥४६८॥
जीवकर्मप्रेरितं तद्गर्भमारभते तथा ।
द्रवत्वं प्रथमे मासे कललाख्यं प्रजायते ॥४६९॥
द्वितीये सुघनः पिण्डः पेशी कललमर्बुदम् ।
पुंस्त्रीनपुंसकानां स्युः प्रागवस्थाक्रमादिमाः ॥५००॥
तृतीये त्वङ्कुराः पञ्च कराङ्घ्रिशिरसां मताः ।
अङ्गप्रत्यङ्गभावाश्च सूक्ष्माः स्युर्युगपत्तदा ॥५०१॥
विहाय श्मश्रुदन्तादीन् जन्मानन्तरसंभवान् ।
एषा प्रकृतिरस्यानु विकृतिर्बहुलाल्पता ॥५०२॥
चतुर्थी व्यक्तता तेषां भावानामपि जायते ।
पुंसां शौर्यादयो ज्ञेया भीरुत्वाद्याश्च योषिताम् ॥५०३॥
नपुंसकानां संकीर्णा भवन्तीति विनिश्चयः ।
मातृजं चास्य हृदयं विषयानभिकाङ्क्षति ॥५०४॥

अतो मातुर्मनोऽभीष्टं कुर्याद्गर्भसमृद्धये ।
तां च द्विहृदयां नारीमाहुर्दोहदिनीं बुधाः ॥५०५॥
अदानाद्दोहदादीनां गर्भस्य व्यङ्गतादयः ।
मातुर्यद्विषयालाभस्तदार्तो जायते सुतः ॥५०६॥
[1]गर्भः स्यादर्थवान् भोगी दोहदाद्राजदर्शने ।
अलङ्कारे सुललितो धर्मिष्ठस्तापसाश्रमे ॥५०७॥
देवतादर्शने भक्तो भीतो भुजगदर्शने ।
गोदर्शने तु निद्रालुर्बली गोमांसभक्षणे ॥५०८॥
माहिषे तु सुरक्ताक्षो लोमशो जायते सुतः ।
काम्याजे चाटके चापि ह्यारिणे वनपर्य्यटः ॥५०९॥
तत्तद्रोगयुतो भूयात् तत्तद्रोगयुतेक्षणे ।
तत्तद्गुणयुतश्चापि तत्तद्गुणिनि भाषणे ॥५१०॥
प्रबुद्धः पञ्चमे चित्तं मांसशोणितपुष्टता ।
षष्ठेऽस्थिस्नायुकटचन्त्रकेशरोमविविक्तता ॥५११॥
[2]बलवर्णौ चोपचितौ सप्तमे त्वङ्गपूर्णता ।
अधोमुखः स्वहस्ताभ्यां श्रोत्ररन्ध्रे पिधाय सः ॥५१२॥
उद्विग्नो गर्भसंवासादास्ते तत्र रुजान्वितः ।
स्मरन् पूर्वानुभूतान् स नानाजातीश्च यातनाः ॥५१३॥
मोक्षोपायमभिध्यायन् वर्ततेऽभ्यासतत्परः ।
जायते जीवसंयुक्तश्चेष्टादृष्टिविकारवान् ॥५१४॥

१—इतः पञ्च पंक्तयः ख पुस्तके न सन्ति ।
२—बलाबलौ घ ।

अष्टमे तु श्रुती स्यातामोजश्चैतन्यहृद्धरम् ।
शुद्धमापीतरक्तं च निमित्तं जीविते मतम् ।।५१५।।
पुनरम्बा[1] पुनर्गर्भः चञ्चलं तत्प्रधावति ।
अतो जातोऽष्टमे मासे न जीवत्योजसोज्झितः ।।५१६।।
कञ्चित् कालमवस्थानं संस्कारात् खण्डिताङ्गवत् ।
अङ्गप्रत्यङ्गसंपूर्णो मातुर्नाड्या रसं पिबन् ।।५१७।।
वर्द्धते स हि तत्रैव पश्यन् विच्युत्यनेहसम् [?]
पितूरेतोऽतिरिक्तत्वात् पुरुषाः संभवन्ति हि ।।५१८।।
[2]मातुस्तदाधिक्यवशात् स्त्रिय एव भवन्ति हि ।
उभयोस्तुल्यबीजत्वे जायन्ते हि नपुंसकाः ।।५१९।।
अन्धाः कुब्जाश्च खञ्जाश्च वामनाः केकराः कृशाः ।
हीनाङ्गा अतिरिक्ताङ्गाः जायन्ते स्वस्वकर्मभिः ।।५२०।।
निरीक्ष्य यातनाः स्वस्य तच्च योनिप्रपीडनम् ।
गर्हयन्नात्मनात्मानं निर्विण्णश्चिन्तयत्यदः ।।५२१।।
अस्मिन् संसारगहने तत्तत्कर्मसमाकुले ।
पुण्यपापाङ्कुरेऽमाने निरयावटपूरिते ।।५२२।।
रोगशोकादिविविधहिंस्रजन्तुभिरावृते ।
कामक्रोधादिपतगध्वनिसंपूरितान्तरे ।।५२३।।
हाहा पतितवानस्मि किं कुर्यामत्र वर्तयन् ।
नानायोनिसहस्राणि दृष्टान्येव ततो मया ।।५२४।।

१—मातरं ख, ग, घ
२—इयं पंक्तिः घ पुस्तके नास्ति ।

आहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः ।
जातस्यापि मृतस्यापि जन्म मृत्युः पुनः पुनः ॥५२५॥
अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ।
यदि योनिं प्रमुञ्चामि योगाभ्यासं समाश्रये ॥५२६॥
ज्ञानं वासं सूतिवनप्लोषमूलैककारणम् ।
अशुभक्षयकर्तारं कैवल्यामृतदायिनम् ॥५२७॥
यदि योनिं प्रमुञ्चामि प्रपत्स्ये तं महेश्वरम् ।
यथा न जायेत मम दुःखं वै गर्भवासजम् ॥५२८॥
यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्
एकाकी तेन मुह्यामि गतास्ते फलभोगिनः ॥५२९॥
इन्द्रदेहादिविटकीटनवोऽनुभवं गता ।
पिता पितामहो ह्यासं भूयसां प्राणिधारिणाम् ॥५३०॥
पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रश्च तथा संसारकानने ।
गर्भस्थितस्य मे वारंवारमेतादृशी मतिः ॥५३१॥
निष्क्रान्तस्य तथापैति जायते ज्ञानमच्युत ।
पर्यायेऽस्मिन् विनिष्क्रान्तो योनिवासात् कथंचन ॥५३२॥
तमुपायं करिष्यामि नायं येन पुनर्भवेत् ।
संसारगहनच्छेत्ता महायोगपरश्वधः ॥५३३॥
अथवा ज्ञानदहनः समूलोषकरः सदा ।
आयातोऽहं नरकतो तत्र यास्यामि वै पुनः ॥५३४॥

एवं भूतस्य निस्तारः कथं मम भविष्यति ।
एवं विचिन्तयन्नास्ते दिवारात्रिमतन्द्रितः ॥५३५॥
यावद्गर्भं परित्यज्य भूमौ पतति बालकः ।
समयः प्रसवस्याथ मासेषु नवमादिषु ॥५३६॥
मातूरसवहां नाडीमनुबद्धः पराभिधाम् ।
नाभिस्थनाडीं गर्भस्थमात्राहाररसावहाम् ॥५३७॥
कृताञ्जलिर्ललाटेऽसौ मातृपृष्ठमभिस्थितः ।
अध्यास्ते संकुचद्गात्रो गर्भे दक्षिणपार्श्वतः ॥५३८॥
वामपार्श्वाश्रिता नारी क्लीबं मध्याश्रितं मतम् ।
क्रियतेऽधः शिराः सूतिमारुतैः प्रबलैस्ततः ॥५३९॥
निःसार्यंति रुजद्गात्रो यन्त्रछिद्रेण बालकः ।
जातमात्रस्य तस्याथ सा बुद्धिरपनश्यति ॥५४०॥
या पूर्वं गर्भसंस्थस्य मोक्षोपायं प्रति स्थिता ।
रोदनं कुर्वतोऽस्यैव प्रवृत्तिः स्तन्यगोचरा ॥५४१॥
प्राग्जन्मबोधसंस्कारादिति जीवस्य नित्यता ।

[शरीरविज्ञानवर्णनम्]

भावाः षड्विधास्तस्य मातृजाः पितृजास्तथा ॥५४२॥
रसजा आत्मजाः सत्त्वसम्भवाः सात्म्यजास्तथा ।
मृदवः शोणितं मेदो मज्जा प्लीहा यकृद् गुदम् ॥५४३॥
हृन्नाभीत्येवमाद्यास्तु भावाः मातृभवा मताः ।
श्मश्रुलोमकचाः स्नायुशिरोधमनयो नखाः ॥५४४॥

दशनाः शुक्रमित्यादिस्थिराः पितृसमुद्भवाः ।
शरीरोपचयो वर्णो वृद्धिस्तृप्तिर्बलं स्थितिः ॥५४५॥
अलोलुपत्वमुत्साहः इत्यादीन् रसजान् विदुः ।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं धर्माधर्मौ च भावना ॥५४६॥
प्रयत्नो ज्ञानमायुश्चेन्द्रियाणीत्यात्मजा मताः ।
ज्ञानेन्द्रियाणि श्रवणं स्पर्शनं दर्शनं तथा ॥५४७॥
रसनं घ्राणमित्याहुः पञ्च तेषां तु गोचराः ।
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्ध इति क्रमात् ॥५४८॥
वाक्कराङ्घ्रिगुदोपस्थान्याहुः कर्मेन्द्रियाणि तु ।
वचनादानगमनविसर्गरतयः क्रमात् ॥५४९॥
क्रियास्तेषां मनोबुद्धी इत्यन्तःकरणद्वयम्
सुखं दुःखं च विषयो विज्ञेया मनसः क्रिया ॥५५०॥
स्मृतिभीतिविकल्पाद्याः बुद्धेर्व्यवसितिर्मता ।
ब्रह्मयोनीनीन्द्रियाणि भौतिकान्यपरे जगुः ॥५५१॥
सत्त्वाख्यमन्तःकरणं गुणभेदात्त्रिधा मतम् ।
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः सत्त्वात्तु सात्त्विकाः ॥५५२॥
आस्तिक्यशुक्लधर्मैकरुचिप्रभृतयो मताः ।
सत्त्वात्तु राजसाद्भावाः[1] कामक्रोधमदादयः ॥५५३॥
निद्रालस्यप्रमादादिवञ्चनाद्याश्च तामसात् ।
प्रसन्नेन्द्रियतारोग्यानालस्याद्याश्च सात्म्यजाः ॥५५४॥

१–रजोगुणसमुद्भूताः ख० ग० घ० ।

पञ्चभूतात्मकास्तस्मादादातुं तद्गुणानिमान् ।
शब्दं श्रोतुं सुषिरतां वैरिक्तं सूक्ष्मतोद्धृता ॥५५५॥

विलं च गगनाद्वायोः स्पर्शश्च स्पर्शनेन्द्रिये ।
उत्क्षेपणं चापक्षेपाकुञ्चने गमनं तथा ॥५५६॥

प्रसारणमितीमानि पञ्च कर्माणि संजगुः ।
प्राणापानौ तथा व्यानसमानोदानसंज्ञकान् ॥५५७॥

नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
दशेति [1]वायुविकृतीस्तथा गृह्णाति लाघवम् ॥५५८॥

तेषां [2]मुख्यतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः ।
चरन्नास्ये नासिकायां नाभौ हृदयपङ्कजे ॥५५९॥

शब्दोच्चारणनिश्वासोच्छ्वासकासादिकारणम् ।
अपानस्तु गुदे वायुः कटीजंघोदरेषु च ॥५६०॥

नाभिकन्दे वंक्षणयोरूरुजानुषु तिष्ठति ।
अस्य मूत्रपुरीषादिसर्गः कर्म प्रकीर्तितम् ॥५६१॥

व्यानोऽक्षिश्रोत्रगुल्फेषु कट्यां घ्राणे च तिष्ठति ।
प्राणापानधृतित्यागग्रहणाद्यस्य कर्म हि ॥५६२॥

समानो व्याप्य निखिलं शरीरं वह्निना सह ।
द्विसप्ततिसहस्रेषु नाडीरन्ध्रेषु सञ्चरन् ॥५६३॥

१-.प्राण. क. । २-पुण्यतमः ङ।

भुक्तपीतरसान् सम्यगानयन् देहपुष्टिकृत् ।
उदानः पादयोरास्ते हस्तयोरङ्गसन्धिषु ॥५६४॥
कर्मस्थदेहोन्नयनोत्क्रमणादि प्रकीर्तितम् ।
[1]प्राणादिवायुमाश्रित्य पञ्च नागादयःस्थिताः ॥५६५॥
अङ्गारादिनिमेष्यान्तं क्षुधाप्रभृति च क्रमात् ।
तन्द्राप्रभृति दोषादि तेषां कर्म प्रकीर्तितम् ॥५६६॥
कर्मस्थदेहोन्नयनोत्क्रमणादि प्रकीर्तितम् ।
अग्नेस्तु लोचनं रूपं पित्तं पाकप्रकाशताम् ॥५६७॥
अमर्षं तैक्ष्ण्यमूष्माणं तेज ओजश्च शूरताम् ।
मेधावित्त्वं तथादत्ते जलात्तु रसनं रसम् ॥५६८॥
शैत्ये स्नेहं द्रवं स्वेदं मूत्रादिमृदुतामपि ।
भूमेर्घ्राणेन्द्रियं गन्धः स्थैर्यधैर्ये च गौरवम् ॥५६९॥
श्मश्रुकेशनखदन्तानस्थ्याद्यन्यच्च कर्कशम् ।
वातादिधातुप्रकृति व्योमादिप्रकृतिस्तथा ॥५७०॥
सप्तधा सन्धिकायश्च ब्रह्मेन्द्रियमविग्रहः ।
वारुणञ्चाथ कौबेर आर्षो गान्धर्वविग्रहः ॥५७१॥
राजसः षड्विधो यश्च पैशाचो राक्षसस्तथा ।
आसुरः शाकुनः शार्य्यः प्रेतदेहस्तथा परः ॥५७२॥
तामसस्त्रिविधो यश्च पशुमत्स्यांघ्रिपाकृतिः ।
तेषां लक्ष्माणि न ब्रूमो ग्रन्थविस्तरकारणात् ॥५७३॥

१—इतः पंक्तित्रयं केवलं घ पुस्तके ।

पित्तस्याहुः षडङ्गानि शिरः पादौ करौ तथा ।
मध्यं चेत्यथ वक्ष्यन्ते प्रत्यङ्गान्यखिलान्यपि ॥५७४॥
त्वचः सप्तफलाः सप्तस्नायुश्लेष्मजरायुजाः ।
छन्नाः कोषाग्निभिः पक्वास्ते धातूनन्तरान्तरा ॥५७५॥
सीमभूताश्च धातूनां काष्ठसारोपमागताः ।
आद्यानां सप्तधा तेषां शिराद्यनलयस्तथा ॥५७६॥
स्नायुस्रोतांसि रोहन्ति पङ्के पङ्कजकन्दवत् ।
असृङ्मेदःश्लेष्मशकृत्पित्तशुक्रधराः पराः ॥५७७॥
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।
सप्त स्युस्तत्र चोक्ता त्वग्रक्तं जाठरवह्निना ॥५७८॥
पक्वाद् भवेदन्नरसादेवं रक्तादिभिस्तथा ।
स्वस्वकोषाग्निना पक्वैर्जन्यन्ते धातवः क्रमात् ॥५७९॥
रक्तश्लेष्मामपित्तानां पक्वस्य मरुतस्तथा ।
मूत्रस्य चाशयाः सप्तक्रमादाशयसंज्ञकाः ॥५८०॥
गर्भाशयाष्टमं स्त्रीणां पित्तपक्वाशयान्तरे ।
प्रसन्नाभ्यां कफासृग्भ्यां हृदयं पङ्कजाकृतिः ॥५८१॥
शुषिरं स्यादधो वक्त्रं यकृत्प्लीहान्तरं स्थितम् ।
एतच्च चेतनास्थानं तदानीं तमसावृतम् ॥५८२॥
निमीलति स्वपित्यात्मा जागर्ति विकसत्यपि ।
द्वेधा स्वप्नसुषुप्तिभ्यां स्वयं बाह्येन्द्रियाणि चेत् ॥५८३॥
लीयन्ते यदि जागर्ति चित्तं स्वप्नं तदोच्यते ।
मनश्चेल्लीयते प्राणे सुषुप्तिः स्यात्तदात्मनः ॥५८४॥

स्वमपीतः परात्मानं स्वपित्यात्मन्यतो मतः ।
श्रवणे नयने नासे वदनं गुदशेफसी ॥५८५॥

एतान्युक्तानि विद्वद्भिः नव श्रोतांसि देहिनाम् ।
स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्द्वे भगे तथा ॥५८६॥

अस्थिस्नायुशिरामस्तस्थानजानानि षोडश ।
षट् पुर्यः करयोर्बाह्वोः कन्धरायाश्च मेहने ॥५८७॥

पार्श्वयोरंसयोश्चापि चतस्रो मांसरज्जवः ।
सीवन्यः पञ्चशिरसि द्वे जिह्वा लिङ्गयोर्मते ॥५८८॥

चतुर्दशाष्टादश वा सीमन्ता अस्थिराशयः ।
अस्थ्नां शरीरे संख्या स्यात् षष्टियुक्तं शतत्रयम् ॥५८९॥

बलयानि कपालानि रुचकास्तरुणानि च ।
मूलकालीति तान्याहुः पञ्चधास्थिनि सूरयः ॥५९०॥

त्रीण्येवास्थिशतान्यत्र पतञ्जलिरभाषत ।
द्वे शते अस्थिसन्धीनां स्यातामत्र दशोत्तरे ॥५९१॥

कोरकाः प्रतरास्तत्र सीवन्यः स्युरुलूखलाः ।
सामुद्रा मण्डलाः शङ्खावर्त्तावायसतुण्डकाः ॥५९२॥

इत्यष्टधा समुद्दिष्टा योगेन्द्रैरस्थिसन्धयः ।
येषां स्नायुशिरासन्धिसहस्रद्वितयं मतम् ॥५९३॥

नव स्नायुशतानि स्युश्चतुर्धा तस्य जातयः ।
ज्ञेया नवत्यः शुषिराः सूक्ष्माश्च पृथु[ला?]स्तथा ॥५९४॥

बन्धनैर्बहुभिर्बद्धा भूरिभारक्षमा भवेत् ।
नौरम्भसि तथा स्नायुशतबद्धा तनुस्तथा ॥५९५॥
पञ्चपेशीशतान्याहुः शरीरस्थानि सूरयः ।
अधिका विंशतिः स्त्रीणां तत्र स्युः स्तनयोर्दश ॥५९६॥
यौवने ताः प्रवर्तन्ते दश योनौ तथैव च ।
द्वे अन्तःप्रसृते बाह्ये तिस्रो वै गर्भमार्गणाः ॥५९७॥
शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्ता शुषिरान्विता ।
आवर्त्ते गर्भशय्यास्ति पित्तपक्वाशयान्तरे ॥५९८॥
रोहिताभिधमत्स्यस्य सदृशी तस्य पेशिका ।
शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्रो गौर्यादिनामभिः ॥५९९॥
शिरोधमनिकाभिस्तु लक्षाणि नवविंशतिः ।
सार्द्धानि स्युर्नवशती षट्पञ्चाशत्तथैव च ॥६००॥
दशमूलशिरा ओजोवाहिन्या हृदयाश्रयाः ।
अङ्गुलं चाङ्गुलदलं यवं यवदलं तथा ॥६०१॥
गत्या द्रुमदलस्येव सीमण्यः प्रणता इव ।
भिद्यन्ते तास्तदा सप्तशतानि परिसंख्यया ॥६०२॥
तासु जिह्वास्थिते द्वे द्वे वाग्रसज्ञानकारणे ।
घ्राणे गन्धवहे द्वे द्वे मेषोन्मेषकृतौ दृशोः ॥६०३॥
श्रोत्रयोः शब्दग्राहिण्यौ तासु द्वे शम्भुनोदिते ।
धमन्यो रसवाहिन्यश्चतुर्विंशतिरीरिता ॥६०४॥

कुल्यादिभिरिव केदारस्ताभिर्देहोऽभिवर्द्धते ।
एताः प्रतिष्ठिता नाभ्यां चक्रनाभावरा इव ॥६०५॥
ऊर्ध्वं या हृदयं प्राप्ताः प्रतीयन्ते पृथग्विधाः ।
वातं पित्तं कफं रक्तं रसं द्वे द्वे विमुञ्चतः ॥६०६॥
शब्दं रूपं रसं गन्धं द्वे द्वे तत्रावगच्छतः ।
द्वे द्वे च भाषणं घोषं स्वापं बोधं च रोदनम् ॥६०७॥
कुर्वाते द्वे नरे शुक्रं स्तन्यं च स्रवतः स्त्रियाः ।
अधोगता अपि त्रेधा पृथक् पक्वाशयस्थिताः ॥६०८॥
प्रवर्तयन्ति तत्राद्या दशवातादिपूर्ववत् ।
अन्नं भुक्तो धमन्यौ द्वे वहतोऽम्बु समाश्रयात् ॥६०९॥
तोयं मूत्रं मलं द्वे द्वे नारोणामार्तवं त्विमे ।
विमुञ्चतो द्वे स्रोतांसि द्वे मूत्रं द्वे शकृत्तथा ॥६१०॥
स्वेदं समर्पयन्त्योऽन्यास्तिरश्च्यो बहुधा मताः ।
रोमकूपेषु सन्त्यासां मुखानि स्वेदमुक्तये ॥६११॥
प्रवेशयन्ति चाभ्यङ्गलेपादिप्रभवान् रसान् ।
जीवस्थानानि मर्माणि शतं सप्तोत्तरं विदुः ॥६१२॥
सार्द्धकोटित्रयं रोम्णां श्मश्रुकेशास्त्रिलक्षकाः ।
श्रोतः शिराश्मश्रुकेशैः सह रोम्णां तु कोटयः ॥६१३॥
चतुःपञ्चाशदाख्याताः सप्तषष्ट्या च सार्द्धया ।
लक्षाणां सहितामानं जलादेरधुनोच्यते ॥६१४॥

दशैवाञ्जलयो वारां रसस्याञ्जलयो नव ।
रक्तस्याष्टौ पुरीषस्य सप्त स्युः श्लेष्मणश्च षट् ॥६१५॥
पित्तस्य पञ्च चत्वारो मूत्रस्याञ्जलयस्त्रयः ।
वसाया मेदसो द्वौ तु मज्जात्वञ्जलिसम्मितः ॥६१६॥
अर्द्धाञ्जलिः शिरोमज्जाहृदयाष्टदलं दलम् ।
जिह्वा च द्वादशपला लिङ्गं योनिः पलत्रयम् ॥६१७॥
स्तनावजातापत्यानां प्रमदानां पलानि षट् ।
दशैव जातापत्यानां तत्र दुग्धं पलद्वयम् ॥६१८॥
शुक्रस्य कुडवः पुंसां तावदेव रजः स्त्रियाः ।
दशानामपि वायूनां ज्ञाताज्ञाता अहर्निशम् ॥६१९॥
स्पन्दप्रश्वासनिश्वासास्तेषां सञ्चरणं तनौ ।
त्रिंशत्कोटिमिता ज्ञेयाः स्वस्थस्य तनुधारिणः ॥६२०॥
ग्रासाधिक्यासमुत्थस्य विज्ञेयं रोगकारणम् ।
इति प्रत्यङ्गसंस्थानं संक्षेपात् कथितं मया ॥६२१॥
मत्प्रोक्ते विस्तरोऽध्यात्मसागरे ज्ञायतां बुधैः ।
अतः परं तु योगानां हेतुभूतानि पार्वति ॥६२२॥
समाकलय चक्राणि देहस्थानि यथाक्रमम् ।
पद्माकृतीति तत्पत्रफलयोर्नामिनी तथा ॥६२३॥
एतेषां ज्ञानतो योगाभ्यासः संपद्यते नृणाम् ।
गुदलिङ्गान्तरे चक्रमाधाराख्यं चतुर्दलम् ॥६२४॥

प्रकृतिर्महदहङ्कारतन्मात्राणि दलानिहि ।
परमः सहजस्तावदानन्दो धीरपूर्वकः ॥६२५॥
योगानन्दश्च तस्य स्यादैशानादिदले फलम् ।
तत्र कुण्डलिनी ब्रह्मशक्तिराधारपङ्कजे ॥६२६॥
आब्रह्मरन्ध्रमृजुतां नीते या साऽमृतप्रदा ।
स्वाधिष्ठानं लिङ्गमूले षड्पत्रं चक्रमस्य तु ॥६२७॥
पत्राणि विषयाभासौ वृत्तिः कान्तिः स्थितिर्लयः ।
पूर्वादिषु दलेष्वाहुः फलान्येतान्यनु क्रमात् ॥६२८॥
प्रश्रयः क्रूरता गर्वनाशौ मूर्च्छा ततः परम् ।
अवज्ञा चाप्यविश्वासः कामशक्तेरिदं गृहम् ॥६२९॥
नाभौ दशदलं चक्रं मणिपूरकसंज्ञकम् ।
विकृतिप्रत्ययौ बिम्बचैतन्यं सूक्ष्मदर्शनम् ॥६३०॥
उत्कण्ठोपाधिनिर्बन्धशिक्षाव्याजा दलानि च ।
सुषुप्तिरथ तृष्णा स्यादीर्ष्या पिशुनता तथा ॥६३१॥
लज्जा भयं घृणा मोहः कषायोऽथ विषादिता ।
क्रमात् पूर्वादिपत्रेषु स्याद् भानुभवनं च तत् ॥६३२॥
हृदयेऽनाहतं चक्रं शिवस्य प्रणवाकृतिः ।
पूतास्थानं तदिच्छन्ति दलैर्द्वादशभिर्युतम् ॥६३३॥
अवहेलाविसंवादो [1]व्याहारोऽप्यवलम्बनम् ।
शरीरस्याद उत्सेधः प्रकर्षः संविभागिता ॥६३४॥

१—व्यानाहो क० ।

कैतवं दानवैक्लव्ये सर्वशेषे विचारणा[1] ।
फलानि साम्प्रतं वच्मि तत्र तत्र समुद्भवम् ॥६३५॥
लौल्यप्रणाशः कपटं वितर्कोऽथानुतापिता ।
आशा प्रकाशश्चिन्ता च समीहा समता तथा ॥६३६॥
क्रमेण दम्भो वैकल्यं विवेकोऽहंमदस्ततः ।
फलान्येतानि पूर्वादिदलस्थस्यात्मनो जगुः ॥६३७॥
कण्ठेऽस्ति भारतीस्थानं विशुद्धिः षोडशच्छदम् ।
क्रमेण वक्ष्यमाणानि छदनानि निशामय ॥६३८॥
क्षयः प्रभावो विच्छेदजीवनग्लानियुक्तयः ।
भावनारचनास्वादविभ्रमौदास्यबुद्धयः ॥६३९॥
विक्रमः स्वैरता चित्तविह्वलत्वं विरोधिता ।
वक्ष्येऽधुना फलान्येषां तत्तद्दलकलाजुषाम् ॥६४०॥
बोधः प्रणव उग्दीथो नैर्मल्यं शान्तता तथा[2] ।
स्वाहा नमोऽमृतं षड्ज ऋषभस्तदनन्तरम् ॥६४१॥
गान्धारो मध्यमश्चापि पञ्चमो धैवतस्तथा ।
निषादः सर्वशेषे स्यात् क्रमेण सुरवन्दिते ॥६४२॥
इति पूर्वादिपत्रस्थे फलान्यात्मनि षोडश ।
ललनाख्यघण्टिकायां चक्रं द्वादशपत्रकम् ॥६४३॥
पर्णान्यमुष्य वक्ष्येऽहं क्रमेणैव सुरेश्वरि ।
विरागोन्मादनिर्वेदावहेलामर्षभीतयः ॥६४४॥

१—विचारयेत् क० ।
२—सुधा ख० ग० स्वधा घ० ङ० ।

तितिक्षास्फीतितानर्थलालसौदारतास्तथा ।
स्वभावः साम्प्रतं वक्ष्ये फलानि क्रमतः प्रिये ॥६४५॥
मदो मानस्तथा स्नेहः शोकः खेदश्च लुब्धता ।
अरतिः संभ्रमश्चोर्मिः श्रद्धा तोषोऽपराधिता ॥६४६॥
फलानि ललनाचक्रे स्युः पूर्वादिदलेष्विति ।
भ्रूमध्ये त्रिदलं चक्रमाज्ञासंज्ञं दलानि तु ॥६४७॥
आविर्भावतिरोभावौ तत्परं च विकारिता ।
सत्त्वं रजस्तम इति फलानि कथितानि ते ॥६४८॥
ततोऽप्यस्ति मनश्चक्रं षड्दलं तद्दलानि तु ।
कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहो द्वेषोऽप्यसूयता ॥६४९॥
स्वप्नं रसोपयोगश्च घ्राणं रूपोपलम्भनम् ।
स्पर्शनं शाब्दबोधश्च पूर्वादिषु दलेष्विति ॥६५०॥
ततोऽपि षोडशदलं सोमचक्रमितीरितम् ।
एतद्दलानां नामानि क्रमेण विनिबोध मे ॥६५१॥
आशयोपशमप्रज्ञास्मृतयः सदसत्तथा ।
लयो निमित्तः सत्ता च प्रमाणाक्षयवासनाः ॥६५२॥
अद्वैतं योगभूमिश्च पिण्डाविद्यानिवृत्तयः ।
दलेषु षोडशस्वस्य कलाः षोडशसंस्थिताः ॥६५३॥
कृपा क्षमार्जवे धैर्यं वैराग्यधृतिसम्मदाः ।
हास्यरोमाञ्चनिचयो ध्यानञ्च स्थिरता तथा ॥६५४॥

गाम्भीर्यमुद्यमो छन्नै औदार्यैकाग्रते ततः ।(?)
फलान्येतानि जीवस्य पूर्वादिदलगामिनः ॥६५५॥

चक्रं सहस्रपत्रं तु ब्रह्मरन्ध्रे सुधाधरम् ।
तत्सुधासारधाराभिरभिवर्द्धयते तनुम् ॥६५६॥

सहस्रदलपङ्कस्य दलानामस्य नाम हि ।
फलानां चैव नामानि नाब्रुवं विस्तृतेर्भयात् ॥६५७॥

गुदाच्च द्व्यङ्गुलादूर्ध्वमाधाराद्द्व्यङ्गुलादधः ।
एकाङ्गुलं देहमध्यं तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥६५८॥

तत्रास्तेऽग्निशिखा तन्वी चक्रात्तस्मान्नवाङ्गुलैः ।
देहस्य कन्दोत्थसेधायामाभ्यां चतुरङ्गुलम् ॥६५९॥

ब्रह्मग्रन्थिरितिप्रोक्तं तस्य नाम पुरारिणा ।
तन्मध्ये नाभिचक्रं तु द्वादशारमवस्थितम् ॥६६०॥

लूतेव तन्तुजालस्था तत्र जीवो भ्रमत्यम् ।
सुषुम्णया ब्रह्मरन्ध्रमारोहत्यवरोहति ॥६६१॥

जीवः प्राणसमारूढ़ो रज्ज्वाङ्कोऽजाविको तथा ।
सुषुम्णां परितो नाड्यः कन्दादौ ब्रह्मरन्ध्रतः ॥६६२॥

क्रोडीकृत्य स्थिताः कन्दशाखा इव महीरुहम् ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपेण तस्मात् सूक्ष्मतरेण च ॥६६३॥

चतुर्विंशतिसाहस्रा नाड्यस्तस्याः समीपगाः ।
तासां भूरितराणां तु मुख्याः प्रोक्ताश्चतुर्दश ॥६६४॥

सुषुम्णेडा पिङ्गला च कूहूरथ सरस्वती ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च वारणा च यशस्विनी ॥६६५॥
विश्वोदरा शङ्खिनी च ततः पूषा पयस्विनी ।
अलम्बुषेति तत्राद्यास्तिस्रो मुख्यतमा मताः ॥६६६॥
सुषुम्णा तिसृषु श्रेष्ठा शाङ्करी मुक्तिमार्गगा ।
कन्दमध्ये स्थिता तस्या इडा सव्येऽथ दक्षिणे ॥६६७॥
पिङ्गलेडापिङ्गलयोश्चरतश्चन्द्रभास्करौ ।
क्रमात् कालगतेर्हेतुः सुषुम्णा कालशोषिणी ॥६६८॥
सरस्वती कुहूश्चास्ते सुषुम्णायास्तु पार्श्वयोः ।
इडायाः पृष्ठपूर्वस्थे गान्धारिहस्तिजिह्वके ॥६६९॥
क्रमात् पूषायशस्विन्यौ पिङ्गलापूर्वपृष्ठयोः ।
विश्वोदरा मध्यदेशे स्यात् कूहूहस्तिजिह्वयोः ॥६७०॥
मध्ये कूहूयशस्विन्योर्वारणा संस्थिता मता ।
पूषासरस्वतीमध्यमधिशेते पयस्विनी ॥६७१॥
अङ्गुष्ठाद् दक्षिणाङ्घ्रिस्था देहे विश्वोदराखिले ।
शङ्खिनी सव्यकर्णान्ते पूषा त्वावामनेत्रतः ॥६७२॥
[1]यशस्विनी तु वितता दक्षिणश्रवणावधि ।
अलम्बुषायाधमूले नवलक्षव्यवस्थिता ॥६७३॥
पुनरन्या शतं चैका नाडी विग्रहगामिनी ।
जगाद भगवान् रुद्रस्ता अपि व्याहरामि ते ॥६७४॥

१--इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति ।

सर्गा विसर्गा धमनी कम्पिनी बन्धिनी हिता ।
निम्नाऽथ भासुरा सङ्कोचिनी दृप्ता प्रकाशिनी ॥६७५॥
प्रबुद्धा क्षेपणी च स्यादालस्याथ विलम्बिता ।
घर्घरावेशिनी पूर्णा क्षिप्ता रूक्षा च भोगिनी ॥६७६॥
क्लिन्ना स्निग्धा तथा चण्डा चण्डा भानुमती ध्रुवा ।
केकरा [1]कुटिला शुद्धा धरित्री दर्दुराकुला ॥६७७॥
काकतुण्डी मनोमाला चित्रा तेजस्विनी सती ।
अव्यक्ता गालनी मन्दा द्राविणी[2] मधुमत्यपि ॥६७८॥
चेतना मुदिता भ्रामिण्यतो रसवहापि च ।
सौवीरी कपिलाकर्षीण्युत्तरा रञ्जिनी तथा ॥६७९॥
सुमुखी रेवती विश्वदूता चाप्यायनी ततः ।
चन्द्रा हेमा च मैत्री च नन्दा चापि कपर्दिनी ॥६८०॥
तन्द्रावती विशाला च विचित्रा माण्डवी तथा ।
कल्पा सुकल्पा तदनु लोहिनी पूतनापि च ॥६८१॥
धारिणी धोरिणी धीरा सुरभी वेगवत्यपि ।
विवर्णा कृन्तनी चैव विकल्पा कोटराऽचला ॥६८२॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
अग्निज्वाला च संमोहा मूला स्वप्नावहापि च ॥६८३॥
तन्द्रावती लम्बिका च घण्टिकाऽविग्रहापि च ।
कैवल्या च तुरीया च विभ्रान्तिश्च प्रशान्तया ॥६८४॥

१—जटिला घ । २—धारिणी घ ।

योगनिश्रेण्यपि ततो निर्वाणा चापुनर्भवा ।
अमृता सर्वशेषे च क्रमेणैताः प्रकीर्तिताः ॥६८५॥

योगैरेतासु संप्रेष्य प्राणादिदशमारुतान् ।
यच्चिकीर्षति तत्सर्वं संसाधयति योगवित् ॥६८६॥

एतत्सर्वं यदुक्तं ते शरीरस्थानकं प्रिये ।
मनुष्यजातिमात्रे तु तिष्ठतीश्वरशिष्टितः[1] ॥६८७॥

एवंविधे तु देहेऽस्मिन् मलमूत्रसमन्विते ।
प्रसाधयन्ति धीमन्तो भुक्तिमुक्ती उपायतः ॥६८८॥

तत्र स्यात् सगुणाध्यानात् भुक्तिर्मुक्तिस्तु निर्गुणात् ।
ध्यानमेकाग्रवृत्तैकसाध्यं रहसि जायते ॥६८९॥

सशब्दे जनसंकीर्णे ध्यानं योगः कथं भवेत् ।
अत एव मया प्रोक्तं पूर्वं तव सुरेश्वरि ॥६९०॥

शयीतायोगविद्रात्रौ योगवित् प्रतिबुध्यतु ।
कुर्वीत सगुणाध्यानं किं वा योगं सुदुष्करम् ॥६९१॥

विदधीतोभयभ्रष्टः शयनं पशुवन्निशि ।
जपपूजाबलिस्तोत्रपाठानैवैतयोर्द्वयोः ॥६९२॥

सत्यं सत्यं प्राप्नुवन्ति देवि कोटिकलामपि ।
तस्मान्निशीथ उत्थाय ध्यानयोगौ समाश्रयेत् ॥६९३॥

यदीच्छेदात्मनः श्रेयो भवबन्धविमोक्षकृत् ।

१—शिल्पतः घ ।

देव्युवाच

प्रभो गर्भस्थिते पूर्वविधिस्त्वत्तः श्रुतं मया ॥६९४॥

सकलं देहसंस्थानं चक्राणामभिधा तथा ।

नामानि यत्र फलयोस्तेषां गतिरथ स्थितिः ॥६९५॥

नाडीनामपि सर्वासां धातूनामपि तत्त्वतः ।

तत्त्वैतया नस्वरया चपलाचलया कथम् ॥६९६॥

साधयन्त्यमृतं धीरा जन्ममृत्युजरापहम् ।

कथं वा कल्पपर्यन्तं स्थापयन्ति तनूमिमाम् ॥६९७॥

एतद्विस्तरशो ब्रूहि शरीरस्थानवद् विभो ।

महाकाल उवाच

कथयामि वरारोहे प्रीतो योगविधिं तव ॥६९८॥

धन्यासि या त्वं ब्रुवतः सर्वदा श्रोतुमिच्छसि ।

गुरूपदिष्टमार्गेण शक्यो योग उपासितुम् ॥६९९॥

तथा साधयितुं देवि नान्यथा वर्षकोटिभिः ।

योगस्तु द्विविधः प्रोक्तो हठः क्रामिक एव च ॥७००॥

बलेन क्रियमाणस्तु हठ इत्यभिधीयते ।

युक्त्या गुरूपदेशैश्च कृतः क्रामिक उच्यते ॥७०१॥

भूयांसो हठयोगेन मृता ब्रह्मर्षयः पुरा ।

तस्मान्नैवेह कुर्वीत हठयोगं कदाचन ॥७०२॥

वायुरोधप्रवेशाभ्यां रोगाः स्युर्बहवः प्रिये ।

तैर्म्रियन्ते झटित्येव हठयोगं त्यजेदतः ॥७०३॥

क्रमेण क्रियमाणस्तु क्रामिकः परिकीर्त्यते ।
गुरूपदेशैश्चाभ्यास औषधं मितभोजनम् ॥७०४॥
शिक्षा च व्यवहाराणां योगकार्योपयोगिनाम् ।
एते क्रमाः परिज्ञेयास्तद्भवः क्रामिको मतः ॥७०५॥
गुरूपदेशः सर्वत्रावश्यकत्वेन कीर्तितः ।
तस्मादेवोद्भवोऽन्येषां तस्मात्तत्राग्रहं चरेत् ॥७०६॥
क्रमेण सर्वान् वक्ष्येऽहं सावधाना निशामय ।
जातस्य द्विविधौ ज्ञेयौ पन्थानौ देवचोदितौ ॥७०७॥
कर्मात्मकावुभावेतौ प्रवर्तकनिवर्तकौ ।
वर्णाश्रमोक्तं कर्मैव कामसंकल्पपूर्वकम् ॥७०८॥
प्रवर्तकं भवेदेतत् संसारे वै प्रवर्तनात् ।
तदेव ज्ञानसंयुक्तं सर्वकामविवर्जितम् ॥७०९॥
निवर्तकं भवेदेतज्जन्मनस्तन्निवर्तनात् ।
निवर्तकश्च देहेषु द्विविधं मुनयो जगुः ॥७१०॥
बाह्यमाभ्यन्तरं वेति प्रत्येकं मुक्तिसाधनम् ।
बाह्यं बहिः क्रिया चेयं यत्तद् विहितसाधनम् ॥७११॥
आभ्यन्तरं तु बुद्ध्यैव विध्यनुष्ठानमात्मनि ।
तयोरन्यतमं कुर्यात् नित्यं कर्म यथाविधि ॥७१२॥
ज्ञानभक्तिसमायुक्तः सदानन्दमवाप्नुयात् ।
ज्ञानिनोऽज्ञानिनो वापि यावद्देहस्य धारणम् ॥७१३॥

तावद्वर्णाश्रमप्रोक्तं कर्तव्यं कर्म मुक्तये ।
इत्येतत् [1]कर्मसर्वस्वं कर्मकाण्डं स तत्त्वतः ॥७१४॥
उपदिश्य पुरा रुद्रो योगनिष्ठोऽभवत् स्वयम् ।
यतः कर्मैव कुर्वन्ति ज्ञानिनोऽपि मुमुक्षवः ॥७१५॥
अतस्त्वमपि देवेशि ज्ञानेनाचर कर्म तत् ।
ज्ञानं योगात्मकं विद्धि योगश्चात्मनि संस्थितिः ॥७१६॥
स योगोऽष्टाङ्गसंयुक्तः सर्वधर्मः स उच्यते ।
यथोपदिष्टं रुद्रेण तथाङ्गानि ब्रुवे तव ॥७१७॥
समाहितमना भूत्वा शृणु त्रिदशवन्दिते ।
यमश्च नियमश्चैव तथासनमपीष्यते ॥७१८॥
प्राणायामस्तथा देवि प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि प्रचक्षते ॥७१९॥
आदौ चत्वारि बाह्यानि तदन्याश्चतुराणि च ।
यमश्च दशधा प्रोक्तो नियमश्च तथा दश ॥७२०॥
आसनानां च सर्वेषामुत्तमानि तथा दश ।
तेषूत्तमानि चत्वारि मुख्यरूपाणि पार्वति ॥७२१॥
प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तः प्रत्याहारश्चतुर्विधः ।
धारणा पंचधा प्रोक्ता ध्यानं षोढा प्रकीर्तितम् ॥७२२॥
समाधिः समता प्रोक्ता तावद्ध्यानं पृथक् पृथक् ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः ॥७२३॥
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश ।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ॥७२४॥

१—ज्ञानसर्वस्वं ख घ ।

अक्लेशजननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभिः ।
विध्युक्तं चेत्त्वहिंसा स्यात् क्लेशजालैव जन्तुषु (?) ॥७२५॥
विधिनोक्तं च हिंसा स्यादभिचारो हि कर्म यत् ।
सर्वभूतात्मकं प्रोक्तं यद्यथार्थाभिभाषणम् ॥७२६॥
प्रियं तत्सत्यमित्युक्तं हितमेतत् ब्रवीमि ते ।
कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निस्पृहा ॥७२७॥
अस्तेयमिति तत्प्रोक्तं योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥७२८॥
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ।
ऋतावृतौ स्वदारेषु संगतिर्हि विधानतः ॥७२९॥
ब्रह्मचर्यं तु तत्प्रोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम् ।
शुश्रूषा च गुरोर्नित्यं ब्रह्मचर्यमितीरितम् ॥७३०॥
प्रियाप्रियेषु सर्वेषु समत्वं यच्छरीरिणाम् ।
क्षमा सैवेति कथिता विद्वद्भिर्योगवेदिभि ॥७३१॥
आत्महानौ च बन्धूनां वियोगेष्वपि संपदाम् ।
तेषां प्राप्तौ च सर्वत्र चित्तस्य स्थापनं धृतिः ॥७३२॥
परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि[1] वा सदा ।
आर्तेष्वपि दयाबुद्धिर्दयेति परिकीर्तिता ॥७३३॥
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा मनोवाक्कायकर्मणाम् ।
विहितेषु तदन्येषु एकरूपत्वमार्जवम् ॥७३४॥

१—द्वेष्येऽपि घ० ।

अष्टौ ग्रासा मुनेरुक्ता षोडशारण्य[1] वासिनाम् ।
द्वात्रिंशच्च गृहस्थानां यथेष्टं ब्रह्मचारिणाम् ॥७३५॥
उक्त एष मिताहारो ह्यन्येषामल्पभोजनम् ।
शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥७३६॥
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनःशुद्धिस्तथान्तरम् ।
मनःशुद्धिश्च विज्ञेया धर्मेणाध्यात्मविद्यया ॥७३७॥
उक्ताः संक्षेपतो देवि अहिंसाद्या यमा दश ।
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् ॥७३८॥
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्री मतिश्च जपो व्रतम् ।
नियमा दशधा प्रोक्तास्तांश्च सर्वान् पृथक् शृणु ॥७३९॥
विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिना ।
शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ॥७४०॥
यदृच्छालाभतो नित्यं मनस्तोषो भवेदिति ।
या धीस्तामृषयः प्राहुः सन्तोषं सुखलक्षणाम् ॥७४१॥
धर्माधर्मेषु विश्वासो यस्तदास्तिक्यमुच्यते ।
न्यायार्जितं धनं चान्नमन्यद्वा यत्प्रदीयते ॥७४२॥
अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतत्प्रकीर्तितम् ।
यत्प्रसन्नस्वभावेन शम्भोर्देव्या हरेरपि ॥७४३॥
यथाशक्त्यर्चनं भक्त्या एतदीश्वरपूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणं प्रोक्तं वेदान्तश्रवणं बुधैः ॥७४४॥

१—'शावनवा' घ० ।

वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं [1]कर्म यद्भवेत् ।
तस्मिन् भवति या लज्जा ह्रीः सैवेति कीर्तिता ॥७४५॥
विहितेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ।
गुरुणा चोपदिष्टेऽर्थे वेदवाक्यविवर्जिते ॥७४६॥
विधिनोक्तेन मार्गेण सदाभ्यासो जपः स्मृतः ।
जपश्च द्विविधः प्रोक्त उपांशुश्चैव मानसः ॥७४७॥
उच्चैर्जपादुपांशुः स्यात् सहस्रगुण उच्यते ।
सहस्रगुण उद्दिष्टस्तस्मादपि च मानसः ॥७४८॥
स्वकीयशाखाध्ययनमितिहासपुराणयोः ।
अधीतस्याप्यथान्यस्य सदाभ्यासो जपः स्मृतः ॥७४९॥
तुष्टेन गुरुणा पूर्वमुपदिष्टमनुज्ञया ।
धर्मार्थमोक्षसिद्ध्यर्थमुपायग्रहणं मतम् ॥७५०॥
आसनान्यथ वक्ष्येऽहं शृणु देवि समाहिता ।
स्वस्तिकं गोमुखं पद्मं वीरं सिंहासनं तथा ॥७५१॥
मयूरं कुक्कुटं चैव भद्रं कूर्मासनं तथा ।
मुक्तासनं तथा तेषां पृथग् वक्ष्यामि लक्षणम् ॥७५२॥
जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥७५३॥
सीवन्यामात्मनः पार्श्वे गुल्फौ निक्षिप्य पादयोः ।
सव्ये दक्षिणगुल्फं तु दक्षिणे दक्षिणेतरम् ॥७५४॥

१—गर्हितं ख० ग० ।

एतद्वा स्वस्तिकं प्रोक्तं सव्ये सव्येतरं करम् ।
सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत् ॥७५५॥
दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं परिकीर्तितम् ।
अङ्गुष्ठौ तु निबन्धीयात् हस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु ॥७५६॥
ऊर्वोरुपरि देवेशि कृत्वा पादतले उभे ।
पद्मासनं भवेदेतत् सर्वेषामपि पूजितम् ॥७५७॥
एकपादमथैकस्मिन् विन्यस्योपरि संस्थितः ।
इतरस्मिँस्तथा चोरौ वीरासनमुदाहृतम् ॥७५८॥
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुलिः संप्रसार्य च ॥
व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत नासिकाग्रं समाहितः ॥७५९॥
सिंहासनं भवेदेतत् पूजितं योगिभिः सदा ।
अवष्टभ्य धरां सम्यक् तलाभ्यां हि करद्वयोः ॥७६०॥
हस्तयोः कूर्परौ चापि स्थापयेन्नाभिपार्श्वयोः ।
[1]समुन्नतशिरः पादौ दण्डवद्व्योम्नि संस्थितः ॥७६१॥
मयूरासनमेतद्धि सर्वपापप्रमोचनम् ।
पद्मासनं समास्थाय जानूर्वोरन्तरे करौ ॥७६२॥
निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थकुक्कुटासनम् ।
गुल्फौ तु वृषणस्याधः सीवन्यः पार्श्वयोः क्षिपेत् ॥७६३॥
पार्श्वे पादौ तु पाणिभ्यां दृढं बद्धं सुनिश्चलः ।
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविषापहम् ॥७६४॥

१—समुत्पत्य ग० ।

गुदं निरुद्धच गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः ।
कूर्मासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः ॥७६५॥
संपीडच सीवनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु मध्यमः ।
सव्यं दक्षिणगुल्फेन मुक्तासनमितीरितम् ॥७६६॥
मेढ्रादुपरि निःक्षिप्य सव्यं गुल्फं तथोपरि ।
गुल्फान्तरं विनिःक्षिप्य मुक्तासनमिदं तु वा ॥७६७॥
यमैश्च नियमैश्चैव आसने च सुसंयतः ।
कृत्वा तु नाडिकाशुद्धिं प्राणायामं ततश्चरेत् ॥७६८॥
वृथा क्लेशो भवेत्तस्य नाडीशुद्धिमकुर्वतः ।
प्राणायामादिसर्वाणि योगाङ्गानि च सर्वतः ॥७६९॥
देव्युवाच
नाथ हे भगवन् ब्रूहि नाडीशुद्धिं विधानतः ।
केनोपायेन शुद्धाः स्युः धमन्यः सर्वदेहिनाम् ॥७७०॥
उत्पत्तिं चैव नाडीनां धारणं च यथाविधि ।
पुनरेव समीहेऽहं श्रोतुं श्रुतमपि प्रभो ॥७७१॥
कन्दं च कीदृशं प्रोक्तं कति तिष्ठन्ति वायवः ।
स्थानानि चैव वायुनां कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥७७२॥
विज्ञातव्यानि यान्यस्मिन् देहे देहभृता सदा ।
महाकाल उवाच
एकवारं प्रोक्तमपि पुनः शुश्रूषसे कथम् ॥७७३॥
इदमत्यद्भुतं भाति न जाने हेतुरत्र कः ।
सन्तोषणीया भवतो मया सर्वात्मना यतः ॥७७४॥

अतः प्रवक्ष्याम्यखिलं विस्तरेण तवेश्वरि ।
शरीरं सर्वमर्त्यानां षण्णवत्यङ्गुलात्मकम् ॥७७५॥
स्वाङ्गुलीभिरिति ज्ञेयं न न्यूनं नाधिकं तथा ।
देहे द्वात्रिंशदस्थीनि वदन्ति पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७७६॥
द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीणामपि सन्ति वै ।
शरीरादधिकः प्राणो द्वादशाङ्गुलमानतः ॥७७७॥
प्रयाणं कुरुते वायुस्तस्मात् प्राण इतीरितः ।
देहमध्ये शिखिस्थानं तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥७७८॥
चतुरस्रं त्रिकोणं तु इतरेषां तु मण्डलम् ।
तन्मध्ये तु शिखा तन्वी सदा तिष्ठति पावकी ॥७७९॥
[1]देहमध्ये तु कुत्रेति श्रोतुमिच्छसि चेच्छृणु ।
गुदाच्च द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रो मेढ्रात्तु द्व्यङ्गुलात् ॥७८०॥
एकाङ्गलं तु तन्मध्ये देहमध्यमितीरितम् ।
कन्दमस्ति शरीरेऽस्मिन् देहमध्यान्नवाङ्गुलम् ॥७८१॥
चतुरङ्गलमुच्छ्रायमायामं च तथाविधम् ।
अण्डाकृतिवदाधारं त्वगस्थिपरिभूषितम् ॥७८२॥
तन्मध्ये नाभिरित्युक्तं नाभीचक्रसमुद्भवः ।
द्वादशारयुतं चक्रं देहं तेन प्रतिष्ठितम् ॥७८३॥
चक्रेऽस्मिन् भ्रमते जीवः पुण्यापुण्यप्रचोदितः ।
तत्तु पञ्जरमध्यस्थो यथा भ्रमति मर्कटः ॥७८४॥

१—एतस्मादारभ्य २६ पंक्तयः ख० घ० पुस्तकयोर्न सान्ति ।

जीवमूले तु चक्रेऽस्मिन् अधः प्राणश्चरत्यसौ ।
तस्योर्द्ध्वं कुण्डलिस्थानं नाभेस्तिर्यगधोमुखम् ॥७८५॥
अष्टकप्रतिरूपा सा अष्टधा कुण्डलीकृता ।
अकारादिहकारान्ता कुण्डलिन्यभिधीयते ॥७८६॥
यावद्वायुप्रचारश्च निरुध्य सकलां तनुम् ।
स्वमुखेन समावेश्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा ॥७८७॥
योगकाले त्वपानेन प्रबुद्धाश्वासवायुना ।
स्फुरन्ती हृदयाकाशे नागरूपा महोज्ज्वला ॥७८८॥
वायुर्वायुसखेनैव ततो याति सुषुम्णया ।
कन्दमध्ये स्थिता नाडी सुषुम्णेत्युच्यते हि या ॥७८९॥
ब्रह्मरन्ध्रं यियासास्तु कुण्डलिन्या हि वर्त्मना ।
तस्याः पार्श्वगता नाड्यश्चतुर्दश पुरेरिता ॥७९०॥
नामतः स्थानतश्चापि तदुक्त्या किं प्रयोजनम् ।
मुक्तिमार्गे सुषुम्णा सा ज्वलन्ती विश्वरूपिणी ॥७९१॥
तथा कुण्डलिनीशक्तिरन्या दास्य इव स्थिताः
पृष्ठमध्यस्थितेनास्या ब्रह्मरन्ध्रं गतेश्वरी ॥७९२॥
मोक्षपन्था सुषुम्णा च ब्रह्मरन्ध्रं तथामृतम् ।
अव्यक्ता शाङ्करी सूक्ष्मेत्येतैर्नामभिरीर्यते ॥७९३॥
इडा च पिङ्गला चैव तस्याः सव्ये च दक्षिणे ।
इडायां पिङ्गलायां च चरतश्चन्द्रभास्करौ ॥७९४॥
चन्द्रस्तामस इत्युक्तः सूर्यो राजस उच्यते ।
तावेव धत्तः सकलं कालं रात्रिन्दिवात्मकम् ॥७९५॥

यथाश्वत्थदलेशुष्के तद्वद्ज्ञेयास्तु नाडयः ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।।७९६।।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
एतेषु वायवः पञ्च मुख्या ज्ञेया वरानने ।।७९७।।
तेषु मुख्यतमः प्राणः कन्दस्याधः प्रतिष्ठितः ।
आस्यनासिकयोर्मध्ये हृदये नाभिमण्डले ।।७९८।।
पादाङ्गुष्ठेऽपिच प्राणः स्वयमेवावतिष्ठते ।
अपानो मेढ्रपाय्वोश्च ऊरुवंक्षणजानुषु ।।७९९।।
जङ्घोदरे च कट्यां च नाभिमूले च तिष्ठति ।
व्यानः श्रोत्राक्षिमध्ये च हृत्कट्यां गुल्फयोरपि ।।८००।।
समानः [उदानट्] सर्वदेहेषु सर्वव्यापी प्रतिष्ठितः ।
भुक्तं सर्वरसं गात्रे व्यापयन् वह्निना सह ।।८०१।।
द्विसप्ततिसहस्रेषु नाडीमध्येषु संचरन् ।
समानो वायुरेवैकः स्थितो व्याप्य कलेवरम् ।।८०२।।
नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः ।
निःश्वासोच्छ्वासकासादि प्राणकर्म इतीष्यते ।।८०३।।
अपानवायोः कर्मैतद् विण्मूत्रादिविसर्जनम् ।
घ्राणोपादानचेष्टादिव्यानकर्मेति कथ्यते ।।८०४।।
उदानकर्म तत्प्रोक्तं देहस्योन्नमानादि यत् ।
शोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्त्यते ।।८०५।।
उदानादिगुणो यश्च नागकर्मेति कीर्तितम् ।
निमीलनादि कूर्मस्य क्षुत्तृष्णा कृकरस्य च ।।८०६।।

[1]देवदत्तस्य देवेशि तन्द्रा कर्म प्रकीर्त्यते ।
धनञ्जयस्य शोथादि सर्वकर्म प्रकीर्तितम् ॥८०७॥
ज्ञात्वैवं नाडिकास्थानं वायुयानांश्च यत्नतः ।
नाडीनां शोधनं [2]कार्यं यथाविधिपुरस्सरम् ॥८०८॥
विध्युक्तगुणसंपन्नः सर्वकामविवर्जितः ।
यमादिगुणसंयुक्तः सर्वसङ्गविवर्जितः ॥८०९॥
तपोवनं ततो गत्वा फलमूलोदकान्वितम् ।
तत्र वन्ये शुचौ देशे नद्यां देवालयेऽपि वा ॥८१०॥
सुशोभनं मठं कृत्वा कुशाजिनकमण्डलुम् ।
त्रिकालस्नानसंयुक्तः शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥८११॥
मन्त्रैर्न्यस्ततनुः श्रीमान् रुद्राक्षपूर्णविग्रहः ।
विभूतिभूषिततनुः सदा जपपरायणः ॥८१२॥
तृणासनोपरिकुशान् समास्तीर्याथ वाजिनम् ।
विनायकं सुसंपूज्य फलपुष्पोदकादिभिः ॥८१३॥
इष्टदेवीं गुरुं नत्वा तत आवध्य चासनम् ।
उदङ्मुखो वा प्राच्यास्योऽजिनासनगतोऽपि वा ॥८१४॥
समग्रीवशिरः कायः संवृतास्यः सुनिश्चलः ।
नासाग्रदृक् सदा सम्यक् सव्ये तस्येतरं करम् ॥८१५॥
नासाग्रे शशभृद्बिम्बज्योत्स्नाजालवितानितम् ।
सप्तमस्य च वर्गस्य चतुर्थं बिन्दुसंयुतम् ॥८१६॥

१—इतः पंक्तिद्वयं ग० पुस्तके नास्ति । २—कुर्याद् ख० ग० घ० ।

बिम्बमध्यस्थमालोक्य नेत्राभ्यां मनसा सह ।
ईडया पूरयेद् वायुं बाह्ये द्वादशमात्रकैः ॥८१७॥
ततोऽग्निं पूर्ववद्ध्यायेत्स्फुरज्वालावलीयुतम् ।
रेफं च विन्दुसंयुक्तं बह्निमण्डलसंस्थितम् ॥८१८॥
ध्यायेद् विरेचयेद् पश्चात् मन्दपिङ्गलया पुनः ।
पुनः पिङ्गलयापूर्य प्राणं दक्षिणतः सुधीः ॥८१९॥
तद्वत् विरेचयेत् पश्चात् ईडया च शनैः शनैः ।
त्रिचतुर्वत्सरं यावत् त्रिचतुर्मासमेव वा ॥८२०॥
षट्कृत्वश्चारभेदेवं त्रिषु कालेषु यत्नतः ।
नाडीशुद्धिमवाप्नोति पृथक् चिह्नोपलक्षितम् ॥८२१॥
शरीरलघुतादीप्तिर्जठराग्नेश्च वर्द्धनम् ।
नादाभिव्यक्तिरित्येतत् चिह्नं तत्सिद्धिसूचकम् ॥८२२॥
यावदेतानि संपश्येत्तावदेव समभ्यसेत् ।
अथवापानमार्गेण नद्यां सरसि वा जलम् ॥८२३॥
उत्तोलयेच्छनैः स्वल्पं स्वच्छं पिङ्गलया मुहुः ।
ईडया वाथवा देवि पूर्णं स्याद् यावतोदरम् ॥८२४॥
आलोडयेज्जाठरीयदण्डाभ्यां वारसप्तकम् ।
घटिकार्द्धं स्थापयित्वा तत्तोयं पुनरुत्सृजेत् ॥८२५॥
एवं त्रिवारं कुर्वीत भोजनात् पूर्वमेव हि ।
षण्मासाच्छुद्धिमायान्ति तिस्रो नाड्यो वरानने ॥८२६॥

प्राणायाममथेदानीं वक्ष्यामि प्रणवात्मकम् ।
समाहितमना भूत्वा शृणु यत्नेन पार्वति ॥८२७॥
प्राणापानसमायोगः प्राणायामः प्रकीर्तितः ।
प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचकपूरककुम्भकैः ॥८२८॥
वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचकपूरककुम्भकाः ।
स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः ॥८२९॥
यो वेदादौ स्वतः प्रोक्तो वेदान्तेषु प्रतिष्ठितः ।
तस्य प्रकृतिलीनस्य या परा सा महेश्वरी ॥८३०॥
सृष्टिस्थित्यात्मकावेतौ मकारो ह्यन्तकः स्मृतः ।
अकारो मूर्तिरित्येषा रक्ताङ्गी हंसवाहिनी ॥८३१॥
अक्षहस्ता सती बाला गायत्रीत्यवधार्यते ।
अकारमूर्तिमध्यस्था युवतिः शुक्लविग्रहा ॥८३२॥
गरुत्मद्वाहिनी चापि वैष्णवी चक्रधारिणी ।
मकारमूर्तिशुक्लाङ्गी सावित्री वृषभस्थिता ॥८३३॥
त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गी सितभस्मविभूषिता ।
माहेश्वरीति सा प्रोक्ता पश्चिमान्तककारिणी ॥८३४॥
अक्षरत्रयमेतद्धि कारणत्रयमिष्यते ।
त्रयाणां कारणं ब्रह्म भासुरं सर्वकारणम् ॥८३५॥
ओंकारः प्रथमो ज्योतिः तमाहुः प्रणवं बुधः ।
एवं ज्ञात्वा विधानेन प्रणवेन समन्वितम् ॥८३६॥

प्राणायामं त्रिधा कुर्यात् रेचकपूरककुम्भकैः ।
आकृष्य श्वसनं बाह्यात् पूरयेदिडयोदरम् ॥८३७॥
शनैः षोडशभिर्मात्रैरूकारं तत्र संस्मरन् ।
धारयेत् पूरितं पश्चात् चतुःषष्टचा तु मात्रया ॥८३८॥
उकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् प्रणवं जपेत् ।
यावद्वा शक्यते तावद् धारणं जपसंयुतम् ॥८३९॥
पूरितं रेचयेत् पश्चात् प्राणं बाह्यानिलान्वितम् ।
शनैः पिङ्गलया देवि द्वात्रिंशन्मात्रया पुनः ॥८४०॥
ध्यायन्नाद्याक्षरं नाभौ प्रणवस्य समाहितः ।
तदाकारं हृदि ध्यायन् मकारञ्च ललाटके ॥८४१॥
प्राणायामं भवेदेवं पुनश्चैनं समभ्यसेत् ।
पुनः पिङ्गलयापूर्य मात्राषोडशभिस्तदा ॥८४२॥
अकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् सुसमाहितः ।
पूरितं धारयेत् प्राणं पुनर्द्वात्रिंशतोर्द्वयोः ॥८४३॥
जपेत्तत्र स्मरन् मूर्तिं मकाराख्यं महेश्वरम् ।
यावद्वा शक्यते पश्चाद्रेचयेदिडयानिलम् ॥८४४॥
मकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् पूर्ववत् तथा ।
एवमेवं पुनः कुर्याद्द्वित्रयापूर्य पूर्ववत् ॥८४५॥
नित्यमेवं प्रकुर्वीत प्राणायामांश्च षोडश ।
अपि भ्रूणहननं मासात् पुनन्त्यहरहः कृताः ॥८४६॥

प्राणायामपराः सर्वे प्राणायामपरायणाः ।
प्राणायामैर्विशुद्धा ये ते यान्ति परमां गतिम् ॥८४७॥
प्राणायामादृते नान्यत् तारकं नरकादपि ।
संसारार्णवमग्नानां तारकः प्राणसंयमः ॥८४८॥
बाह्योदाहरणं वायोरुदरे पूरकं स्मृतम् ।
संपूर्णकुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भवद् भवेत् ॥८४६॥
बहिर्यद्रेचनं वायोरुदराद्रेचकोऽहि सः ।
प्रस्वेदं जनयेद् यस्तु प्राणायामेषु सोऽधमः ॥८५०॥
मध्यमः कम्पनात् प्रोक्तं उत्थाने चोत्तमो भवेत् ।
पूर्वं पूर्वं प्रकुर्वीत यावदुत्थानसम्भवः ॥८५१॥
संभवत्युत्तमे देवि प्राणायामे सुखी भवेत् ।
प्राणो न याति तेनैव देहस्यान्ते ततोऽधिकः ॥८५२॥
देहश्चोत्तिष्ठते तेन कृतासनपरिग्रहः ।
निश्वासोच्छ्वासको तस्य न विद्येते कथंचन ॥८५३॥
देहे यद्यपि तौ स्यातां स्वभाविकगुणावुभौ ।
तथापि नश्यतस्तेन प्राणायामोत्तमेन हि ॥८५४॥
तयोर्नाशे समर्थः स्यात् कर्तुं केवलकुम्भकम् ।
रेचनपूरके त्यक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ॥८५५॥
प्राणायामोऽयमित्युक्तः सर्वैः केवलकुम्भकः ।
सहितं केवलं चाथ कुम्भकं नित्यमभ्यसेत् ॥८५६॥

यावत् केवलसिद्धिः स्यात्तावत् सहितमभ्यसेत् ।
केवले कुम्भके सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ॥८५७॥

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
मनोजवत्वं लभते पलितादि विनश्यति ॥८५८॥

मुक्तेरयं महामार्गो साराख्योऽनन्तकारकः ।
नादश्चोत्पादयत्येष कुम्भकः प्राणसंयमः ॥८५९॥

प्राणसंयमनं नाम देहप्राणादिधारणम् ।
एष प्राणजयोपायः सर्वमृत्युनिवारणः ॥८६०॥

किञ्चित् प्राणजयोपायं तव वक्ष्यामि पार्वति ।
बाह्यात् प्राणं समाकृष्य पूरयित्वोदरं स्थितः ॥८६१॥

अङ्गुष्ठं नाभिनासाग्रे धारणाद् विजयिष्यते ।
एवं वायुजयोपायशक्य आसनसंस्थितः ॥८६२॥

इन्द्रियाणि वशीकृत्य विषयेभ्यो बलात्सुधीः ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य बाह्यमायुविर्धातकम् ॥८६३॥

बह्निस्थानं निरुद्ध्यैतत् वायुं तत्रैव धारयेत् ।
हस्ताभ्यां बन्धयेत् सम्यक् कर्णादिकरणानि वा ॥८६४॥

अङ्गुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां च चक्षुषी ।
नासाद्वयमथान्याभ्यां सम्यग्वै विनिबोधयेत् ॥८६५॥

सुखमुत्पद्यते नादः शुद्धस्फटिकसन्निभः ।
ब्रह्मरन्ध्रे सुषुम्णायां मृणालान्तरसूत्रवत् ॥८६६॥

आमूर्द्धं वर्तते नादो वीणादण्डवदुत्थितः ।
शङ्खध्वनिनिभस्यादौ मध्ये मेघध्वनिर्यथा ॥८६७॥
व्योमरन्ध्रं गते नादे गिरिप्रस्रवणं तथा ।
व्योमरन्ध्रं गते वायौ मनसा च सहेन्द्रियैः ॥८६८॥
तदा नादो[1] भवेद्देहे वायुस्तेन जितो भवेत् ।
योगिनस्त्वपरे ये तु वदन्ति तमशब्दजम् ॥८६९॥
प्राणायामपराः पूताः रेचकपूरकवर्जिताः ।
दक्षिणेन च गुल्फेन सीवनीं पीडयेच्छिराम् ॥८७०॥
अधस्तादण्डयोः सूक्ष्मां सव्योपरि च दक्षिणाम् ।
जङ्घोर्वोरन्तरे सम्यङ् निश्छिद्रं बन्धयेद्दृतम् ॥८७१॥
समग्रीवशिरश्चक्षुः समपृष्ठः समोदरः ।
नेत्राभ्यां दक्षिणं गुल्फं संपश्यन्नुपरि स्थितम् ॥८७२॥
भावयन् मनसा सार्द्धं व्याहरन् प्रणवाक्षरम् ।
आसने नान्यधीरास्ते रहस्ये विजितेन्द्रियः ॥८७३॥
आयुर्विघातकः प्राणस्त्वनेनाग्निस्थलं गतः ।
वायुस्तिष्ठति तत्रैव वह्निना सह निश्चितम् ॥८७४॥
धूमध्वजजयं यावन्नान्यधीरेवमभ्यसेत् ।
स्वाहाप्रियेण तत्प्राणं शनैरावाहयेत्ततः ॥८७५॥
नेत्राभ्यां लोकयन्नाभि मनसा प्रणवं जपन् ।
तिष्ठत्यस्मिन् गतप्राणो मन्दं नाभेरधःस्थितम् ॥८७६॥

१—तदानन्दी ख० ग० ।

एतेन नाभिमध्यस्थधारणेनैव यावतः ।
कुण्डलीं याति वह्निश्च दहत्यत्र न संशयः ।।८७७।।
ततः स वह्निना नागप्रबोधो याति वायुना ।
प्रवुद्धे संसरत्यस्मिन् वायुमारोहयेत्ततः ।।८७८।।
ब्रह्मरन्ध्रे सुषुम्णायां ध्यायन्नोङ्कारमक्षरम् ।
शनैरारोहयेन्मूर्ध्नि साग्निं वायुमनन्यधीः ।।८७९।।
धारयेद् व्योम्नि देवेशि साग्निं प्राणं समाहितः ।
तेनैव पूरिते व्योम्नि साङ्गोपाङ्गे कलेवरे ।।८८०।।
तदात्मा राजते तत्र यथा व्योम्नि दिवाकरः ।
शरीरं च सुसूक्ष्मं स्यादेवं ध्यानं समाधिवत् ।।८८१।।
एकाक्षरं परं ब्रह्म ध्यायन् परममीश्वरम् ।
संयोज्य मनसा मूर्ध्नि ब्रह्मरन्ध्रं स वायुना ।।८८२।।
प्राणमुल्लोचयेत् पश्चात् महाप्राणेऽथ मध्यमे ।
देहादतीते जगति शून्ये नित्ये ध्रुवे पदे । ८८३।।
आकाशे परमानन्द आत्मानं योजयेद्द्विषा ।
ब्रह्मैवासौ भवेद्देवि न पुनर्जन्मभाग्भवेत् ।।८८४।।
उक्तान्येतानि चत्वारि योगाङ्गानि सुरेश्वरि ।
प्रत्याहाराणि चत्वारि शृणुष्वाभ्यन्तराणि च ।।८८५।।
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ।
बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ।।८८६।।
यद्वत् पश्यति तत्सर्वं पश्येदात्मवदात्मनि ।
प्रत्याहारः स च प्रोक्तो योगविद्भिर्महात्मभिः ।।८८७।।

कर्माणि यानि नित्यानि विहितानि शरीरिणाम् ।
तेषामात्मन्यनुष्ठानं मनसा यद् बहिर्विना ॥८८८॥

प्रत्याहारो भवेत्सोऽपि योगसाधन उत्तमः ।
प्रत्याहारे प्रशस्तं तत् सेवितं योगिभिः सदा ॥८८९॥

अष्टादशस्वथो वायोर्मध्यस्थानेषु धारणम् ।
स्थानात् स्थानात् समाकृष्य प्रत्याहारः स चोत्तमः ॥८९०॥

पादाङ्गुष्ठौ च गुल्फौ च जङ्घा मध्ये तथैव च ।
जिह्वामूले च जानौ च मध्ये चोरुद्वयस्य च ॥८९१॥

पायुमूलं च तत्पश्चात् मध्यदेशश्च मेढ्रयोः ।
नाभिश्च हृदयञ्चैव कण्ठकूपस्तथैव च ॥८९२॥

तालुमूलं च नासाग्रं मूलं चाक्ष्णोश्च मध्यमौ ।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च मुर्द्धा च त्रिदशेश्वरि ॥८९३॥

मर्मस्थानानि चैतानि मानश्चैषां पृथक् पृथक् ।
पादाङ्गुष्ठात्तु नालस्य पृथङ्नालं न विद्यते ॥८९४॥

पादाङ्गुष्ठात्तु गुल्फस्य सार्द्धाङ्गुलचतुष्टयम् ।
गुल्फाज्जंघाप्रमाणं तु विज्ञेयं तु दशाङ्गुलम् ॥८९५॥

जंघामूलार्चिते[च्चिते]र्मूलं यत्तदेकादशाङ्गुलम् ।
चितिमूलान्महाभागे जानुः स्यादङ्गुलद्वयम् ॥८९६॥

जानोर्द्विरङ्गुलं प्राहुरूरुमूलं तनूविदः ।
ऊरुमध्यात्तथा देवि पादमूलं तथाङ्गुलम् ॥८९७॥

देहमध्यात्तथा पायुमूलं सार्द्धाङ्गुलद्वयम् ।
मेढ्रान्नाभिश्च विज्ञेयं तथा सार्द्धं दशाङ्गुलम् ॥८९८॥
नेत्रस्थानं तु तन्मूलादूर्ध्वाङ्गुलमपीष्यते ।
तस्मादर्धाङ्गुलं विद्धि भ्रुवोरन्तरमात्मनः ॥८९९॥
ललाटाक्षं भ्रुवोर्मध्यादूर्ध्वं स्यादङ्गुलत्रयम् ।
ललाटाद् व्योमसंज्ञं तु अङ्गुलद्वयमेव हि ॥९००॥
स्थानेष्वेतेषु मनसा वायुमारोप्य धारयेत् ।
स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारविधिर्मतः ॥९०१॥
य एवं कुरुते विद्वान् यथायोगं यथाविधि ।
स याति ब्रह्मसदनं पुनर्नावर्तते यतः ॥९०२॥
अथेदानीं प्रवक्ष्यामि धारणापञ्चकं शिवे ।
समाहितमना भूत्वा शृणु यत्नेन सादरा[१] ॥९०३॥
यमादिगुणसंयुक्ता मनसः स्थितिरात्मनि ।
धारणा प्रोच्यते विज्ञैर्योगशास्त्रार्थवेदिभिः ॥९०४॥
हृदये उदराकाशे यद्वाह्याकाशधारणम् ।
एषा हि धारणा प्रोक्ता तथैवाकाशगो भवेत् ॥९०५॥
भूमिरापोऽथानु तेजो वायुराकाशमेव च ।
[२]एतेषु पशुवर्णानां धारणं धारणा मता ॥९०६॥
तेष्वेव पशुवर्णानां धारणाश्चापि धारणा ।
पादादि जानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानमुच्यते ॥९०७॥

१—पार्वति ख० ग० घ० ।
२—इतश्चतस्रः पंक्तयः क पुस्तके नास्ति ।

आजानु वायुपर्यन्तंमया स्थानं प्रकीर्त्तितम् ।
आपायोर्हृदयं यावत् त्वह्निस्थानं सुरेश्वरि[1] ॥६०८॥
आहृन्मध्या भ्रुवोर्मध्ये यावद् वायुस्थलं भवेत् ।
आभ्रूमध्यात्तु मूर्द्धान्तं यावदाकाशमुच्यते ॥६०६॥
एतेषां प्रथमे स्थाने लकारं धारयेद् बुधः ।
वकारं धारयेदप्सु रेफं वह्नौ च धारयेत् ॥६१०॥
यकारं धारयेद् वायौ हकारं व्योम्नि धारयेत् ।
पृथिव्यां धारयेद्देवि ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥६११॥
विष्णुमप्स्वनले रुद्रं महत्तत्त्वं तु मारुते ।
आकाशे धारयेच्चैवमव्यक्तं परमेश्वरम् ॥६१२॥
नीत्वा वायुं पृथिव्यां तु वर्णदेवसमन्वितम् ।
धारयेत् पञ्च घटिकाः पृथिव्या जयमाप्नुयात् ॥६१३॥
यथोक्तवर्णदेवेशं संयोज्य वायुमप्सु च ।
धारयेत् पञ्चघटिकाः सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥६१४॥
पूर्ववद्व[धा]रणे वह्नेर्वह्निनासौ न दह्यते
मरुतं मारुतस्थाने वर्णदेवसमन्वितम् ॥६१५॥
धारयेत् पञ्च घटिकाः वायुवद्व्यमगो भवेत् ।
आकाशे वायुमारोप्य वर्णदेवसमन्वितम् ॥६१६॥
धारयेत् पञ्चघटिका जीवन्मुक्तो भवेत् प्रिये ।
अल्पमूत्रपुरीषः स्यादर्वागेव तु वत्सरात् ॥६१७॥

१—समीरितम् घ० ङ० ।

आसनाच्छयनाद्वापि न योगो लय एव सः (?) ।
धारणं यदिदं वायोः स्थानेष्वेतेषु पञ्चसु ॥६१८॥
पञ्चमी धारणेयं स्याज्जन्ममृत्युविनाशिनी ।
ध्यानं सम्प्रति वक्ष्यामि शृणु देवि समाहिता ॥६१९॥
ध्यानमेव हि जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
मर्मस्थानानि नाडीनां संस्थानं तु पृथक् पृथक् ॥६२०॥
वायूनां स्थानकर्माणि विदित्वा ध्यानमाचरेत् ।
ध्यानवायुस्वरूपाणां वेदनं मनसा भवेत् ॥६२१॥
तदेवं निखिलं वक्ष्ये भुवि त्रिदशवन्दिते ।
तदेव द्विविधं प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं तथा ॥६२२॥
सगुणं पञ्चधा प्रोक्तं निर्गुणं चैकमेव हि ।
एकं ज्योतिर्मयं शुद्धं सर्वगं व्योमवद् दृढम् ॥६२३॥
अत्यन्तनिर्मलं स्वच्छमादिमध्यान्तवर्जितम् ।
अस्थूलसूक्ष्मानाकाशास्पृश्यादृश्यमचाक्षुषम् ॥६२४॥
अरसं न च गन्धाढ्यमप्रमेयमजं विभुम् ।
आनन्दमजरं नित्यं सदसत् सर्वकारणम् ॥६२५॥
सर्वाधारं जगद्रूपममृत्युमजमव्ययम् ।
अदृश्यं दृश्यमानस्थं वह्निस्थं सर्वतोमुखम्[1] ॥६२६॥
सर्वदृक् सर्वतः पादं सर्वस्पृक् सर्वतो मुखम् ।
ब्रह्म ब्रह्ममयोऽहं स्यामिति यद्वेदनं भवेत् ॥६२७॥

१—सर्वतः शिरः ख० ग० घ० ।

तदैव निर्गुणध्यानं सामान्यं परिकीर्तितम् ।
विशेषमधुना वच्मि निर्गुणस्यापि पार्वति ॥६२८॥
एकां ज्योतिर्मयीं नित्यां सर्वगां व्योमरूपिणीम् ।
अत्यन्तनिर्मलां शुद्धामादिमध्यान्तवर्जिताम् ॥६२९॥
अतिसूक्ष्मामनाकाशामस्पृश्यां तामचाक्षुषीम् ।
कूटस्थामप्यदृश्यां च सच्चिदानन्दविग्रहाम् ॥६३०॥
अगन्धामरसां स्वच्छामप्रमेयामनूपमाम् ।
आनन्दामजरां शुक्लां सदसत्सर्वकारिणीम् ॥६३१॥
सर्वाधारां जगद्रूपाममृत्युं चाव्ययामजाम् ।
अनवस्थामप्रतर्क्यां वह्निस्थां सर्गधारिणीम् ॥६३२॥
सर्वदृक् सर्वतः पादां सर्वस्पृक् सर्वतः शिराम् ।
निरञ्जनां निर्विकारां शुद्धचैतन्यरूपिणीम् ॥६३३॥
कुलाकुलसमुद्भूताममृतानन्दसञ्चयाम् ।
सूर्यकोटिसमं शुभ्रां नादबीजतया स्थिताम् ॥६३४॥
सर्वावभासनकरीं सर्वतेजोऽभिभाविकाम् ।
ईदृग्विधां गुह्यकालीं निराकारां विभावयेत् ॥६३५॥
सगुणध्यानमधुना ब्रवीमि तव पार्वति ।
हृत्पद्मेऽष्टदलोपेताकन्दमूलसमुत्थिते ॥६३६॥
द्वादशाङ्गुलनालेऽस्मिश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रिते ।
प्राणायामैर्विकसिते केशरान्वितकर्णिके ॥६३७॥
हृत्सरोरुहमध्येऽत्र प्रकृत्यात्मिककर्णिके ।
अष्टैश्वर्यदलोपेते विद्याकेशरमण्डिते ॥६३८॥

ज्ञाननाले महाकन्दे प्राणायामप्रबोधिते ।
दशवक्त्रां गुह्यकालीं त्रिगुणात्मकविग्रहाम् ॥६३९॥
भयङ्करां जगद्योनिं ललज्जिह्वां करालिनीम् ।
भासयन्तीं स्वकं देहमापादतलमस्तकम् ॥६४०॥
भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयोगिनीगणैः ।
भैरवीभिः परिवृतां ज्वलत्पितृवनस्थिताम् ॥६४१॥
ज्वालाकरालवह्लचितामध्यकरस्थिताम् ।
शवाकारशिवारूढां विमुक्तचिकुरोच्चयाम् ॥६४२॥
निष्क्रान्तरसनाविद्युत्प्रकम्पितजगत्त्रयाम् ।
दन्तमण्डलनिर्गच्छच्चारुचन्द्रिकया तया ॥६४३॥
द्योतयन्ती जगत्सर्वं चन्द्रमण्डलवत्सदा ।
तुङ्गपीवरवक्षोजभरनम्रकलेवराम् ॥६४४॥
प्रत्यालीढ़पदां देवीमट्टहासभयानकाम् ।
परिवारैः समीपस्थैरतीव विकरालिनीम् ॥६४५॥
नृमुण्डमालासन्दोहकृतमालावगुण्ठिताम् ।
सद्यः कृत्तनृमुण्डाभ्यां कुण्डलद्वयशोभिनीम् ॥६४६॥
कठोरपीवरां नीलचतुःपञ्चाशदोर्युताम् ।
नरान्त्रविहितावद्धयोगपट्टपरिच्छदाम् ॥६४७॥
दिगम्वरां खर्वतनुं हसन्तीं कामलालसाम् ।
संवर्तकालज्वलनदुर्निरीक्ष्यतनुप्रभाम् ॥६४८॥

रत्नमालादिगोमायुपोतान्तान् दोःषु बिभ्रतीम् ।
कल्पान्तघोरमार्तण्डकोटिस्तम्भनकारिणीम् ॥६४६॥
निर्वातदीपवत्तस्मिन् दीपितां देव्यवाहने [?] ।
ततस्तस्य शिखामध्ये तिष्ठन्तीं जगदम्बिकाम् ॥६५०॥
विश्वार्चिषं ज्वलद्वह्निं वमन्तीं विश्वतो मुखम्[1] ।
वैश्वानरीं जगद्योनिं शिखानीलां महेश्वरीम् ॥६५१॥
नीलतोयदलोकाभ्यां विद्युल्लेखेव भासुराम् ।
नीवारशूकवत्तन्वीं ज्ञानमात्रैकगोचराम् ॥६५२॥
ध्यात्वेत्थं कालिकां देवीं सोऽहमस्मीति या मतिः ।
सगुणं चोत्तमं ह्येतद्ध्यानं योगविदो विदुः ॥६५३॥
तन्मयं स्वं[2] समासाद्य मुक्तिं तेनैव गच्छति ।
भ्रुवोर्मध्ये तथात्मानं ज्वलद्रूपिणमीश्वरम् ॥६५४॥
ध्यायन्नात्मानमत्रैव समाधिं समवाप्नुयात् ।
आदित्यमण्डले देवीं हिरण्मयतनुं शिवाम् ॥६५५॥
ध्यायन् कैवल्यमाप्नोति जन्ममृत्यू परित्यजेत्[3] ।
अष्टाङ्गात्मकमेतद्धि पवित्रं पापनाशनम् ॥६५६॥
ध्यानं गुह्यतमं पुण्यं कीर्तितं ते सुरेश्वरि ।
ज्ञानेनैव सहैतेन नित्यकर्माणि कुर्वतः ॥६५७॥
निवृत्तिफलसंकल्पान्मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
इदं यश्च पठेन्नित्यं योगाख्यानमनन्यधीः ॥६५८॥

---

१. मुखीम् घ. २. तन्मयत्वं ख. ग. घ. ।
३. परित्यजन् ख. ग. ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः कैवल्यमधिगच्छति ।
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥६५६॥
एकजन्मकृतं पापं दिनेनैकेन नश्यति ।
शृणुयाद् यः सकृद् वापि पुण्याख्यानमिदं परम् ॥६६०॥
अज्ञानजनितं पापं सद्यस्तस्य विनश्यति ।
योगाख्यानमिदं पुण्यं ज्ञानाख्यानमिदं परम् ॥६६१॥
सम्यग् विचारयेद् यस्तु स हि सर्वज्ञतामियात् ।
अनुतिष्ठन्ति ये नित्यमेतज्ज्ञानसमन्विताः ॥६६२॥
नित्यकर्माणि तान् दृष्ट्वा देवा अपि नमन्ति हि ।
तस्माद् योगेन सहितं नित्यकर्म यथाविधि ॥६६३॥
कर्तव्यं देहिना देवि मुक्तये भवभीरुणा ।
न केवलेन ज्ञानेन नापि योगेन लभ्यते ॥६६४॥
कैवल्यं किन्तु युक्तेन सद्यो वै नित्यकर्मणा ।
विज्ञायेत्थं परं तत्त्वं कर्म योगान्वितं चरेत् ॥६६५॥

[हठयोगप्रकारवर्णनम्]

हठयोगस्यापि किञ्चित् प्रकारं वच्मि ते प्रिये ।
इडा च पिङ्गला चैव नाड्यौ द्वे देहसंस्थिते ॥६६६॥
कण्ठं भित्वा गते ऊर्ध्वं ब्रह्मरन्ध्रं तलावधि ।
ततः पतन्ती पीयूषधारा सर्वकलेवरम् ॥६६७॥
आप्लावयितुमीशानि नामाकृतिधरे उभे ।
धयतोऽनुक्षणे ते तां जन्ममृत्युकृते नृणाम् ॥६६८॥

प्रवेशयित्वा रसनां तदग्रेण हि ते उभे ।
व्यावर्तिताननेे कुर्यात् तस्मिन् पातयत् सुधीः [?] ॥६६९॥
सहस्रदलराजीवगलत्पीयूषधारया ।
तनीयस्यातिसितया प्लावयत् सकलां तनुम् ॥६७०॥
तेनाजरत्वमाप्नोति सिद्धीरपि निजेच्छया ।
उक्तानि यानि देहेऽस्मिन् शुक्राणि सुरवन्दिते ॥६७१॥
गलादूर्ध्वं रसनया भेदयेत्तानि वै क्रमात् ।
तदधो दशभिः प्राणैः कुण्डलिन्यां तथैव च ॥६७२॥
नानासिद्धीरवाप्नोति तत्तन्मण्डलभेदतः ।
तत्प्रकारानथो वच्मि शृणुष्वावहिता शिवे ॥६७३॥
सीवनी रसनामूले या तिष्ठति वरानने ।
तया नान्तः प्रविशति जिह्वा बद्धेव रज्जुभिः ॥६७४॥
छिन्द्यादतीव शितया तिलमात्रमभीः सुधीः ।
समाहितः सीवनीं तामसिपत्र्युग्रधारया ॥६७५॥
पथ्यासैन्धवचूर्णाभ्यां मिश्रिताभ्यां प्रधर्षयेत् ।
सप्तमे सप्तमे रात्रे तावदेव विकृन्तयेत् ॥६७६॥
एवं दीर्घा भवेज्जिह्वा षट्पञ्चाशद्दिनैः प्रिये ।
रसनादोहनं कुर्यात् प्रातरेव दिने दिने ॥६७७॥
ऊर्ध्वाधः पार्श्वयोश्चापि घट्टनीयं सदैव हि ।
षण्मासाद् रसना लघ्वी भवेदपि तनीयसी ॥६७८॥

आसनं पूर्ववत् कृत्वा नाडीरपि विशोध्य च ।
स्थित्वा निःशब्द एकान्ते जिह्वामूर्ध्वं नयेत् सुधीः ॥९७९॥
तत्रादौ ललनाचक्रे षोडशच्छदभूषिते ।
प्रवेश्य रसनां तिष्ठेद् यामद्वयमनन्यधीः ॥९८०॥
एवं वर्षत्रयं तत्र कुर्यादभ्यासमीश्वरि ।
एवमभ्यस्यतस्तस्य दिवारात्रिमपि प्रिये ॥९८१॥
गलन्ति तस्य चक्रस्य व्यष्टयः पक्वतां गताः ।
तत्तत्फलोपजनितैर्दोषेणासौ विलिप्यते ॥९८२॥
सिद्धयो याश्च जायन्ते ता निबोध सुरेश्वरि ।
न क्षुत् पिपासा न स्वेदो न जृम्भा नापि च क्षुतम् ॥९८३॥
पुरीषमूत्रौ न स्यातां न शिरः पलिताद्यपि ।
निद्रातन्द्राशोकमोहकामक्रोधमदास्तथा ॥९८४॥
ललनाभेदिनं देवि न स्पृशन्ति कदाचन ।
यावन्तः स्युस्तनौ दोषास्तेषु कोऽपि न जायते ॥९८५॥
सरस्वती तस्य मुखे स्वयमेव वसेत्सदा ।
त्रिहायनानन्तरं हि भ्रुवोर्मध्ये परिस्थिताम् ॥९८६॥
आज्ञां भिन्द्याच्छनैर्देवि दलत्रयविराजिताम् ।
तत्रैव रसनायोगमभ्यसेद् वत्सरत्रयम् ॥९८७॥
त्रिगुणाविर्भावरूपफलान्यस्मिंस्तु तानि हि ।
लब्ध्वा परिणतिं तानि पतन्ति विषयैः सह ॥९८८॥
नवभावोपयातस्य देवत्वमवतिष्ठते ।
जायते दूरदर्शित्वं दूरश्रोतृत्वमेव च ॥९८९॥

कलेवरस्य सौगन्ध्यं हृषीकवशता तथा ।
आहारस्य परित्यागादपि प्राणस्य धारणा ॥६६०॥
अन्तर्ज्योतिःप्रकाशश्च विद्यानां स्फूर्तिरेव च ।
बाह्यसंवित्तिराहित्यं पुण्यपापप्ररोहणम् ॥६६१॥
आज्ञायां रसनायोगादेताः स्युः सिद्धयोऽस्य हि ।
तस्योर्ध्वं तु मनश्चक्रं ललाटो [टे] परितिष्ठति ॥६६२॥
निवेशयेत्तत्र जिह्वां दलषट्कविराजिते ।
तत्राप्यभ्यसतो वर्षत्रयेण जगदीश्वरि ॥६६३॥
फलानि विगलन्त्यस्य तरूणामिव पाकतः ।
तेनास्य स्वगतिर्भूयात् पतङ्गानामिवाम्बरे ॥६६४॥
पाषाणवदभेद्यत्वं तनोरप्यस्य जायते ।
आपो नैनं मज्जयन्ति पावको न दहत्यापि ॥६६५॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि विषं नाक्रमते तनौ ।
जायते कामरूपित्वं सर्वाभिभवता तथा ॥६६६॥
शापानुग्रहसामर्थ्यं सर्वज्ञत्वं तथैव च ।
एवं त्रिवर्षमभ्यस्य तदूर्ध्वं सोमनामनि ॥६६७॥
महाचक्रे सिद्धिहेतौ षोडशच्छदभूषिते ।
रसनाग्रं सन्निवेश्य निराकारं विचिन्तयेत् ॥६६८॥
अभ्यसन्नीदृशं पञ्चवर्षसोमविभेदनम् ।
अनेनैव शरीरेण देव एव प्रजायते ॥६६९॥
अच्छायो निमिषो भूत्वा महाबलपराक्रमः ।
भूत्वा गच्छति पातालं देवानामपि मन्दिरे ॥१०००॥

तैः सहास्ते कथां वक्ति भुङ्क्ते शेते व्रजत्यपि ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीः स झटित्येव प्रसाधयेत् ॥१००१॥
जायते चास्य वाक्सिद्धिस्त्रिलोकी वशगा भवेत् ।
चन्द्रार्कवद्दिशः सर्वाः प्रकाशयति तेजसा ॥१००२॥
यं यं कामयते कामं मनसा यद्वदत्यपि ।
वाचा तत्तस्य पुरतः स्वयमेवावतिष्ठते ॥१००३॥
द्वीपान्तरादिष्वप्यस्य गतिरव्याहता भवेत् ।
आपो वह्निं च विशति वायुमाकाशमेव च ॥१००४॥
एवमभ्यस्य तत्रैव स्थित्वा सप्तैव हायनान् ।
सहस्रदलसम्भेदे मनः सम्यङ् निवेशयेत् ॥१००५॥
इडायाः पिङ्गलायाश्च धारां सौधीं पिबन्मुखम्[1] ।
देहमध्ये तु गात्रेऽस्मिन् श्रोतुमिच्छसि चेच्छृणु[2] ।
तनीयेभ्योऽपि जिह्वाग्रैस्तनीयः परिवर्तयेत् ॥१००६॥
पराङ्मुखीकृत्य तद् वै वदने जगदीश्वरि ।
धारां तां पातयेदङ्गे रसनाग्रेण संलिहन् ॥१००७॥
तेनामरत्वमाप्नोति शिव एव भवेदपि ।
परार्द्धजीवी भवति प्रजापतिरिवापरः ॥१००८॥
देवानाकर्षयेच्चापि सयक्षासुरपन्नगान् ।
वर्णितुं शक्यते नास्य महिमा वर्षकोटिभिः ॥१००९॥

---

१. पिबन्मुहुः ख. ग. घ. ।   २. इयं पंक्तिः क पुस्तके नास्ति ।

रुद्र एव भवेत् साक्षात् पाञ्चभौतिकदेहभृत् ।
अप्यर्णवं शोषयितुं समर्थो निमिषेण सः ॥१०१०॥
वमन् मुखेन कालाग्नि जगद्रोद्धुमपि क्षमः ।
द्वादशाब्दं समभ्यस्य कैवल्यमपि साधयेत् ॥१०११॥
मोक्षैकसाधकस्यास्य विधेरन्यास्तु सिद्धयः ।
केवलं विघ्नकारिण्यः इत्येतद् विद्धि पार्वति ॥१०१२॥
मूढास्तु केवलं सिद्धीरभिकाङ्क्षन्ति सर्वदा ।
मोक्षार्थमेव यतते धीरः संसारसागरे ॥१०१३॥
दैनन्दिने सुरेशानि प्रलये समुपस्थिते ।
दह्यमाने त्रिजगति वह्निरेव भवत्यसौ ॥१०१४॥
नष्टेऽग्नौ ध्रुवपर्यन्तं जल उच्छलिते सति ।
स तोयविग्रहो भूत्वा तेष्वेव प्रविलीयते ॥१०१५॥
वायुना शोषिते सर्वं जगति प्राणवल्लभे ।
स समीरतनुर्भूत्वा तत्रैव विशति ध्रुवम् ॥१०१६॥
महाभूतेषु नष्टेषु चतुर्ष्वपि समं ततः ।
संभूयाकाशरूपोऽयं ख एव प्रविलीयते ॥१०१८॥
कल्पादौ पुनरस्यैव समारम्भे समुद्यति ।
यदीच्छति पुनर्देहं पूर्वरूपोऽभिजायते ॥१०१८॥
नो चेन्निर्वाणमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
रसनाग्रं भवेत्तत्र यच्चरेत् तद्वदामि ते ॥१०१९॥
निर्गुणं सगुणाकारं शून्यं ध्यानं समाचरेत् ।
इदमग्रे स देवासीद् देवि जन्मैककारणम् ॥१०२०॥

कारणादभवद् बीजं चतुर्वर्णात्मकं स्फुरत् ।
तदेतदोमिति ब्रह्म ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ॥१०२१॥
येन पश्यन्ति विद्वांसः सर्वतः परमामृतम् ।
तदेतद् ब्रह्मभवने प्रणवे यत्र सूरयः ॥१०२२॥
स पश्यन्ति धिया नित्यं तत्ते वक्ष्यामि संश्रृणु ।
संहारसंज्ञकस्यास्य व्यञ्जनं त्वर्द्धमात्रकम् ॥१०२३॥
बालसूर्यप्रतीकाशमस्ति बिन्दुमदक्षरम् ।
यदस्योङ्कारनिष्ठस्य मात्रांशो व्याप्तचेतनः ॥१०२४॥
ह्लादिनीं च मकारान्ते बिन्दुरूपं प्रदृश्यते ।
बिन्दोरुपरि नादश्च शुद्धस्फटिकसन्निभः १०२५॥
विशुद्धचेतसः शक्तिः प्रकाशयति चेतसि ।
तस्मिन्नित्याधिको रुद्रो महर्षिः कृष्णपिङ्गलः ॥१०२६॥
ऊर्ध्वरेता विरूपाक्षस्तिष्ठतीत्याहुरागमाः ।
आगमैकान्तसंवेद्यो रुद्र एको न चापरः ॥१०२७॥
तमागमज्ञानमात्रममृतं कृष्णपिङ्गलम् ।
तत्रत्यमिच्छतो देवि दृष्टिरोंकार एव च ॥१०२८॥
ओंकारो वाचकस्तस्य वाच्यो रुद्रो न चापरः ।
इति वेदावसानज्ञः स्वयंभूः प्राह सर्ववित् ॥१०२९॥
साङ्ख्यादिष्वपि विद्वासः सदा प्रणवसंस्थिताः ।
नादोपरि महादेवं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥१०३०॥
तथा महर्षयः सर्वे विशुद्धाः प्रणवाक्षरैः ।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥१०३१॥

भृगुर्वसिष्ठः सम्बर्तो जैगीषव्योऽथ गौतमः ।
कात्यायनो नाचिकेता विश्वमित्रपराशरौ ॥१०३२॥
उपमन्युर्भरद्वाजः कपिलो देवलोऽसितः ।
मार्कण्डेयकचात्रेयहारीतशुकशौनकाः ॥१०३३॥
एते चान्ये च मुनयो ब्रह्मनिष्ठास्तपोधनाः ।
विध्युक्तयोगनिरतास्त्यक्तसंसारवासनाः ॥१०३४ ॥
मौनिनो[1] जटिलः शान्ता रागद्वेषविवर्जिताः
जितकामक्रोधलोभा निगमाम्भोधिपारगाः ॥१०३५॥
निःशङ्काः निरहङ्काराः दान्ता वीतषडूर्मयः ।
चेतसा संप्रपश्यन्ति नादान्ते वृषभध्वजम् ॥१०३६॥
संसारपाशबद्धानां योगिनामप्ययोगिनाम् ।
नैवान्यदस्ति भैषज्यमन्तरेण वृषध्वजम् ॥१०३७॥
तमागमेष्वसन्दिग्धममृतं कृष्णपिङ्गलम् ।
ओंकाररूपिणं रुद्रं चिन्तयन् प्रणवं जपेत् ॥१०३८॥
तस्यात्मनि महादेवः प्रकाशयति सन्नतिम् ।
नैष्कलः परमात्माख्यो योगिनां हृदि संस्थितः ॥१०३९॥
ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वभुक् ।
निर्मलो भगवान् रुद्रकोटिभीरुद्र आवृतः ॥१०४०॥
ओंकारं गृहमाश्रित्य सन्निधौ तिष्ठतीति च ।
कृतमन्त्रन्यासतनुः सितभस्मावगुण्ठितः ॥१०४१॥

१–मानिनो ख० ग० ।

जिज्ञासुरपि कार्याणि स्वे स्वे संकृष्य कारणे ।
शम्भोः पदे च परमे चतुर्भिश्च समन्विते ॥१०४२॥
चित्तं निधाय योगे च देहेऽस्मिन् ब्रह्मणः पुरे ।
गुहायां निचितं रुद्रं परमानन्दविग्रहम् ॥१०४३॥
कोटिचन्द्रसमं स्वच्छं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
गुहाप्रविष्टममृतमोंकारेण जपेत् सदा ॥१०४४॥
स कल्पान्तमतिक्रम्य दीर्घायुर्ब्रह्मविद् भवेत् ।
प्रणवं व्याहरन् वाचा यस्त्यजेत् कायमात्मनः ॥१०४५॥
ब्रह्मैवाभूत् स्वतस्तस्य कालो मृत्युर्विभेति च ।
एवमेव जयोपायः कालस्य सुरवन्दिते ॥१०४६॥
हृत्पद्मेऽष्टदलोपेते कन्दमध्यात् समुत्थिते ।
द्वादशाङ्गुलनालेऽस्मिँश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रिते ॥१०४७॥
प्राणायामैर्विकसिते केशरान्वितकर्णिके ।
सुधारसं विमुञ्चद्भिः शशिरश्मिभिरावृते ॥१०४८॥
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपं सदाशिवम् ॥१०४९॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं सर्वभूतहृदि स्थितम् ॥१०५०॥
षोडषच्छदसंयुक्ताच्छिरः पद्मादधोमुखात् ।
निर्गतामृतधाराणां सहस्रैश्च समावृतम् ॥१०५१॥
प्लावितं पुरुषं तत्र चिन्तयन् सुसमाहितः ।
मृत्युञ्जयिन्याः गुह्यायास्त्र्यम्बकस्य तथैव च ॥१०५२॥

मृत्युं गृणन्न[1] विरतं ध्यायन्निश्चलमानसः ।
यजेद्वा नित्यकर्माणि कुर्वन्नैमित्तिकानि च ॥१०५३॥
मृतसंजीवनं देवि रुद्रमेवात्मनि स्मरेत् ।
यस्तु सर्वात्मकं रुद्रं परमानन्दविग्रहम् ॥१०५४॥
त्रैयम्बकेत्यृचा रुद्राध्यायैरर्चयतेऽन्वहम् ।
तस्य विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः कृष्णपिङ्गलः ॥१०५५॥
ऊर्ध्वरेता विरूपाक्षो विकासं याति चेतसि ।
मृत्युभीतो रुजाग्रस्तः सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१०५६॥
सर्वापत्सु च सर्वत्र मृतसंजीवनीं जपेत् ।
संसारपाशबद्धानां योगिनां मोक्षकामिनाम्[2] ॥१०५७॥
नान्यत् पश्यामि भैषज्यं मृत्योस्त्रैयम्बकादृते ।
एवं ते मृत्युविजयोपाय उक्तः सुरेश्वरि ॥१०५८॥
उपायं मृत्युविजये पुनरन्यं ब्रवीमि ते ।
सामरस्यसमापन्ने शिवशक्ती विचिन्तयेत् ॥१०५९॥
सहस्रदलराजीवकृतासनपरिग्रहे ।
अभेदत्वं समापन्ने द्वित्वभावविवर्जिते ॥१०६०॥
शून्यावस्थाकृतिधरे नादबिन्दू ज्वलत्तनू ।
वाच्यवाचकतारूपे प्रतीत्यन्तरवर्जिते ॥१०६१॥
तुरीयरूपसंभिन्नतुरीयातीतविग्रहे ।
निष्प्रपञ्चे निराकारे एकीभावमुपागते ॥१०६२॥

१—शृण्वन्नं घ० । २—०कांक्षिणाम ख० ग० घ० ।

सत्तामात्रपरिस्पन्दे चैतन्याभासभाविते ।
निरञ्जननिराकारे निरीहे च निरीन्धने ॥१०६३॥
ध्यायन्नेवं शिवं शक्तिं ब्रह्मरन्ध्राम्बुजान्तरे ।
वञ्चयित्वा स्वकं कालं जीवेदेशं सवत्सरम् [?] ॥१०६४॥
तेषु तेषु च भावेषु तत्तद्रूपेण संविशेत् ।
मृत्युं तरति देवेशि जन्म तत्तरणादपि ॥१०६५॥

[कालविवरणम्]

देव्युवाच

कियता कालचक्रेण शैवः संवत्सरो भवेत् ।
तन्मे कथय भूतेश विस्तरेण दयानिधे ॥१०६६॥

महाकाल उवाच ।

सूक्ष्मं कालं समारभ्य यावदेशौ हि वत्सरः ।
पूर्णो भवति कल्याणि विस्तरात्तावदीरये ॥१०६७॥
परमाणुं समभ्येति यावताऽनेहसा रविः ।
तं कालं कर्परीनाम्ना प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१०६८॥
तावता काललेशेन ग्रहाणामन्यराशिषु ।
संक्रमो जायते देवि सर्वेषां स्थितिराशितः ॥१०६९॥
दशभिः कर्परीभिस्तु विप्रुरेकोऽभिजायते ।
एका त्रुटिस्तु विप्रूणां शतेन परिजायते ॥१०७०॥
तथा त्रुटिशतेनैकस्तत्परोऽप्यभिधीयते ।
निमेषः कथितस्त्रिंशत्तत्परैर्जगदीश्वरि ॥१०७१॥
काष्ठा तथाष्टादशभिर्निमेषैः परिकीर्त्यते ।
त्रिंशद्भिरथ काष्ठाभिः कलैका प्रोच्यते बुधैः ॥१०७२॥

तथा कलाभिस्त्रिशद्भिः क्षण एकोऽभिजायते ।
षड्भिः क्षणैर्भवेन्नाडी मुहूर्तस्तद्द्वयेन च ॥१०७३॥
त्रिंशन्मुहूर्तैर्दिवस रजन्येकाभिजायते ।
मास एको भवेद्देवि त्रिंशद्भिर्दिनरात्रिभिः ॥१०७४॥
तस्यार्द्धेन भवेच्छुक्लः पक्षः कृष्णस्तथेतरः ।
शुक्लः पक्षः स विज्ञेयः यत्रासौ वर्द्धते शशी ॥१०७५॥
यत्र संक्रमते नित्यं स कृष्णः पक्ष उच्यते ।
मासेनैकेन मर्त्यानां पितृणामेकवासरम् ॥१०७६॥
शुक्लपक्षो निशा तेषां कृष्णो दिवसमुच्यते ।
कुर्याच्छ्राद्धमतो दर्शे पितृणां तृप्तिहेतवे ॥१०७७॥
मासाभ्यां स्याद् ऋतुर्द्वाभ्यां ते षडेव भवन्ति हि ।
मार्गादिमैर्द्वादशभिर्मासै षड्ऋतवः क्रमात् ॥१०७८॥
हेमन्तः शिशिरश्चैव वसन्तो ग्रीष्म एव च ।
वर्षा शरच्चायनं स्यादेतैरपि त्रिभिस्त्रिभिः ॥१०७९॥
शिशिराद्यैस्त्रिभिरुदग् वर्षाद्यैर्दक्षिणायनम् ।
[1]अयनाभ्यां तथा द्वाभ्यां मानुषोऽप्यभिजायते[?]॥१०८०॥
एकं दिनं स देवानां क्षपया सहितं प्रिये ।
उत्तरस्यां दिशि रविर्गच्छतीत्युत्तरायणम् ॥१०८१॥
दक्षिणस्यान्तथैवेति भवेत्तद्दक्षिणायनम् ।
वासरं कथितं देवि देवानामुत्तरायणम् ॥१०८२॥

१—इतश्चत्वारः पंक्तयः क० ङ० पुस्तकयोर्नसन्ति।

शयनाय तथा तेषां रजनी दक्षिणायनम् ।
जाग्रत्सु सर्वदेवेषु धर्मकार्याण्यतः प्रिये ॥१०८३॥
कर्तव्यानि द्विजैरन्यान्यपि वेदोदितानि च ।
एवं त्रिंशद्दिनं सौरैरेको मासोऽभिजायते ॥१०८४॥
तादृग्द्वादशभिर्मासैर्देवानामेकहायनम् ।
एतादृशानामब्दानां त्रैदशानां वरानने ॥१०८५॥
चत्वार्येव सहस्राणि धीराः सत्ययुगं विदुः ।
यथा दिनस्य भवतः पूर्वा सन्ध्या च पश्चिमा ॥१०८६॥
एवं युगस्यापि देवि द्वे सन्ध्ये भवतः सदा ।
चतुः शती पूर्वसन्ध्या पश्चिमा तु चतुःशती ॥१०८७॥
वर्षाणां देवमानेन विज्ञेया जगदीश्वरि ।
लक्षाणि सप्तदश वै नववत्सरमानतः ॥१०८८॥
अष्टाविंशतिसाहस्री तथान्या कृतमुच्यते ।
एतस्यैव चतुर्थांशहीना त्रेताभिधीयते ॥१०८९॥
कृतोऽर्द्धं द्वापरं ज्ञेयं तत्तूर्यांशः कलिर्मतः ।
युगैश्चतुर्भिर्देवानामब्दसंख्यां निबोध मे ॥१०९०॥
भवेद् द्वादशसामग्री मर्त्यमानं निबोध मे ।
नियुतानीह चत्वारि लक्षाणि त्रीणि चैव हि ॥१०९१॥
तथा विंशतिसाहस्री संख्येयं पिण्डिता मता ।
दिव्यं युगं देवि भवेदेकमीदृक् चतुर्युगैः ॥१०९२॥
एकसप्ततिभिर्दिव्यैर्युगैर्मन्वन्तरं मतम् ।
मन्वन्तरीयदैवाब्दान् मत्तो देव्यवधारय ॥१०९३॥

अष्टौ लक्षाणि पञ्चैवायुतानि तदनन्तरम् ।
द्वे सहस्रे तथान्ये च मर्त्यसंख्यामतः शृणु ॥१०९४॥
त्रिंशत्कोट्यः सप्तषष्टिलक्षाणि परमेश्वरि ।
तथा द्वे अयुते चैव वर्षाणां परिकथ्यते ॥१०९५॥
चतुर्दशैव मनवः स्युर्ब्रह्मदिवसे प्रिये ।
यथा युगानां सन्ध्ये द्वे भवतः पूर्वपश्चिमे ॥१०९६॥
मन्वन्तराणां न तथा पश्चिमा देवि कथ्यते ।
पूर्वैव सन्ध्या विज्ञेया सा कृताब्दप्रमाणिका ॥१०९७॥
सार्कमण्डलपर्यन्तं जलपूर्णाऽभिजायते ।
सर्वाद्यस्य मनोर्देवि प्रारम्भे सत्यसंमितः ॥१०९८॥
वर्षपूर्णो भवत्येव ते च पञ्चदश स्मृताः ।
सर्गादौ कुर्वतः सृष्टिं ब्रह्मणो दैवमानतः ॥१०९९॥
अयुतान्येव चत्वारि सहस्राण्यथ सप्त च ।
शतानि चत्वारि तथा व्यतियन्त्येवमेव हि ॥११००॥
नारं मानमथैतस्य गदतो मे निशामय ।
एका कोटिस्तथा सप्त नियुतानि महेश्वरि ॥११०१॥
चतुःषष्टिः सहस्राणि पिण्डिताङ्काः भवन्ति हि ।
शेषे संहरतो विश्वं रुद्रस्य सचराचरम् ॥११०२॥
दैनन्दिनीयकल्पान्ते तस्य संहाररूपिणः ।
एतावानेव कालो हि व्यतिक्रामति पार्वति ॥११०३॥
एतावद्दिवसं कस्य रात्रिरेतावती तथा ।
रीत्यानया तथैतस्य मासस्त्रिंशद्दिनैर्भवेत् ॥११०४॥

मासैर्द्वादशभिर्वर्षैस्तत्तद्रीत्यैव जायते ।
समाः पञ्चशतस्तस्य परार्द्धाभिधयेरिताः ॥११०५॥
द्वितीया द्विपरार्द्धाख्या तस्यैवं ब्रह्मणः पुनः ।
परमायुर्वर्षशतं ततः सोऽपि विपद्यते ॥११०६॥
पुनरन्यो भवेद् ब्रह्मा सोऽपि तावदनेहसम् ।
स्थित्वा पुनर्विपन्नः स्यादेवं ब्रह्मपरम्परा ॥ ११०७॥
अनादाविह संसारे जायते परमेश्वरि ।
शिवस्य दिन एकस्मिन् पञ्च ब्रह्माण ईदृशाः ॥११०८॥
उत्पद्यनो विलीयन्ते सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
रुद्रस्य वासरं यावत् तावत्येव विभावरी ॥११०९॥
उत्पद्यन्तेऽहःक्षपयोर्दश ब्रह्माण ईश्वरि ।
एवं विंशोत्तरशतैरहोभिर्मास इष्यते ॥१११०॥
अष्टचत्वारिंशमासैरेको वर्षोऽभिजायते ।
साब्दद्वादशसहस्री शिवस्य स्थितिरुच्यते ॥११११॥
ततः स लीयते स्वस्य शक्तावेव सुरेश्वरि ।
अन्तर्द्धाय तनुं श्वासात् सत्तामात्रेण तिष्ठति ॥१११२॥
संहारकर्तृ रुद्रस्य पादपङ्कावलम्बिनी ।
या करोटिमयी माला तां मे निगदतः श्रुणु १११३॥
एकं सहस्रं मुण्डानामशीत्या सहितं प्रिये ।
येषां केषामिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमिदं श्रृणु ॥१११४॥
अशीतिश्च शतं विष्णोस्त्रिशतं षष्टियुग् विधेः ।
पुरन्दरस्य विंशत्या सहितं शतमेव हि ॥१११५॥

अब्धिन्तुपत्ययोः [?]प्रत्येकं शतं त्रिदशवन्दिते ।
प्रत्येकं च तथा त्रिंशत् कालमृत्योरपि स्फुटम् ॥१११६॥
यमस्य विंशतिर्वह्नेर्दश वायोश्च सप्ततिः ।
कामस्य विंशतिः प्रोक्ता तथाष्टौ निर्ऋतेरपि ॥१११७॥
पञ्च पञ्च कपालानि प्रत्येकं चन्द्रसूर्ययोः ।
वासुक्यनन्तयोर्द्वे द्वे हयग्रीवशिरस्त्रयम् ॥१११८॥
कूर्मत्रिविक्रमक्रोडमीनकेशरिणां त्रयम् ।
प्रत्येकं वर्तते तस्यां मालायां जगदीश्वरि ॥१११९॥
अन्येषां कैव गणना भूतानामिह संसृतौ ।
कालेन विध्यते वेधा अच्युतोऽपि च्युतो भवेत् ॥११२०॥
रुद्रोऽपि द्रवतां याति का कथान्येषु जन्तुषु ।
इति ते कथितं शैवं प्रमाणं मासवर्षयोः ॥११२१॥
अनेनैव प्रमाणेन तादृग् ज्ञानपरो नरः ।
तत्तद्रूपेण संविश्य जीवेदब्दं सशाङ्करम् ॥११२२॥
दुष्करं योगसंवित्ति दुष्करं मृत्युनाशनम् ।
दुष्करा शिवशक्त्योश्च भक्तिरव्यभिचारिणी ॥११२३॥
इति सर्वमशेषेण कथितं तव पार्वति ।
शरीरोत्पत्तिसंस्थानं नाडीनामपि भूरिशः ॥११२४॥
क्रमयोगो हठयोगः प्राणायामविधिस्तथा ।
आसनानां च सर्वेषां विधानमुपवर्णितम् ॥११२५॥

त्रैकालिकज्ञानशाली त्रिपुरघ्नो जगत्पतिः ।
चतुर्युगाचारधर्त्ता [1]सार्वान्तर्याम्यधीश्वरः ॥११२६॥
ज्ञात्वा हार्दमभिप्रायं लोकानां विषयैषिणाम् ।
न्यासपूजाजपबलिप्रभृतीनुक्तवान् पुरः ॥११२७॥
कामकेलिः सह स्त्रीभिर्यत्र मांससुराशनम् ।
आचारस्य च सङ्कोचः स्वेच्छाचारित्वमेव च ॥११२८॥
प्ररोचनतया सर्वं वर्तिष्यन्नीदृशेऽध्वनि ।
दुष्करत्वादसाध्यत्वाद् योगं तदनु वै जगौ ॥११२९॥
वर्त्मद्वयं भगवता दर्शितं करुणावशात् ।
यस्येच्छा वर्तते यत्र स तत्र रमतां सुखम् ॥११३०॥
योगः स्थितः सत्ययुगे त्रेतायां ध्यानमेव च ।
द्वापरेऽर्चाजपन्यासा मद्यमांसाशनं कलौ ॥११३१॥
कदाचिद् भाग्ययोगेन लभ्यते तादृशो गुरुः ।
एतान् विहायापि तदा योगमेव समभ्यसेत् ॥११३२॥
अत एव मया प्रोक्तमयोगज्ञः स्वपन्निशि ।
योगज्ञस्तु समुत्थाय निशीथे योगमभ्यसेत् ॥११३३॥
पूजान्यासान्वितं योगं ये कर्तुं शक्नुवन्ति हि ।
मनुष्यचर्मणा नद्धास्ते रुद्रा नात्र संशयः ॥११३४॥

इति महाकालसंहितायां शरीरयोगकथनं नाम—
एकादशः पटलः ॥

१—वेत्ता ख० ग० घ० ।

द्वादशतमः पटलः

महाकाल उवाच ।

[काम्यनैमित्तिकपूजयोः परिचयः]

एतावान्नित्यपूजाया विधिरुक्तो मया तव ।
नैमित्तिकानि काम्यानि साम्प्रतं त्वं निशामय ॥१॥
निमित्तं किञ्चिदाश्रित्य[1] यदायाति सुरेश्वरि ।
तन्नैमित्तिकमुद्दिष्टं नित्यवत्तदपि प्रिये ॥२॥
कामनां कामपि स्वीयां चित्ते कृत्वा प्रवर्तते ।
तत् काम्यमिति निर्दिष्टं कामनाफलसाधकम् ॥३॥
तत्रापि प्रथमं वक्ष्ये कर्म नैमित्तिकं शिवे ।
नैमित्तिकमपि प्रायो विज्ञेयो नित्यवद् वुधैः ॥४॥
शरद्वासन्तिकी पूजा तथा चैवोपरागिकी ।
निमित्तत्वेनाभ्युपेता तेन नैमित्तिकी मता ॥५॥
एतयोरननुष्ठानात् पापं तेन च नित्यता
एवं सर्वत्र बोद्धव्यं सर्वेष्वेव निमित्तिषु ॥६॥

[निमित्तानां परिचयः]

तत्रादावपि सर्वाणि निमित्तानि ब्रवीमि ते ।
सांवत्सरीयास्तिथयो नैमित्तिकतया स्थिताः ॥७॥
चन्द्रसूर्योपरागौ च सुतसंस्कार एव च ।

१–किञ्चिदुद्दिश्य ख. ग. ङ.

तीर्थयात्राभिगमनं गमनं चाश्रमान्तरे ॥८॥
उत्पातानां दर्शनं च बद्धमोक्षो रिपून्नतिः ।
ग्रहपीडा राजभयं शान्तिरभ्युदयं तथा ॥९॥
एवं नानाप्रकारेण निमित्तानीरितानि ते ।
दमनारोपणं नाम पवित्रारोहणं तथा ॥१०॥
अन्तर्भवन्ति कृत्येषु तिथीनामेव पार्वति ।

[तिथिपर्वणामभिधानम्]

तिथिपर्वाणि कथ्यन्ते येषु नैमित्तिकार्चनम् ॥११॥
अष्टमी नवमी चैव तथा चैव चतुर्दशी ।
उभयोः पक्षयोरेताः पूर्णिमा दर्श एव च ॥१२॥
संक्रमा द्वादश तथा चत्वारस्तेष्वपीडिताः ।
अयने द्वे द्वे विषुवे षडशीति चतुष्टयम् ॥१३॥
चतुष्कं विष्णुपद्याश्च नैते पूर्वसमे प्रिये ।
आद्याश्चराणां चत्वारो द्विरूपाणां ततः परम् ॥१४॥
ततः स्थिराणां तावन्त[1] एषां पुण्योदयः शुभः ।
व्यतीपातो वैधृतिश्च तिथीनां क्षय एव च ॥१५॥
चतस्रोऽपि युगाद्यास्ता महापुण्यफलप्रदाः ।
शुक्ला तृतीया राधीया तादृगूर्जनवम्यपि ॥१६॥
भाद्री त्रयोदशी कृष्णा तापसो दर्श एव च ।

१—चत्वारो ख. ग. घ. ।

शुक्ला वा सप्तमी कृष्णा रविवारेण संयुता ॥१७॥
सोमान्विताऽप्यमावास्या चतुर्थी भौमसंयुता ।
अष्टमी सौम्यसहिता दशमी गुरुणापि च ॥१८॥
षष्ठी भार्गवसंपृक्ता शनिना च त्रयोदशी ।
वैशाखी सप्तमी शुक्ला शुक्ला ज्यैष्ठी चतुर्थ्यपि ॥१९॥
ज्येष्ठस्य शुक्ला षष्ठी च दशम्यपि वरानने ।
श्रावणी पञ्चमी कृष्णा शुक्ला पञ्चम्यपि प्रिये ॥२०॥
द्वितीयां तिथिमारभ्य तिथिः स्याद् यावदष्टमी ।
शुक्लपक्षे तु भाद्रस्य तिथयः सप्त पुण्यदाः ॥२१॥
सामान्येनाष्टमीत्वेन पर्वत्वे प्रत्युपस्थिते ।
दूर्वाष्टमी विशेषेण दुर्गाप्रीतिप्रदा तिथिः ॥२२॥

[मौलेयमते दूर्वाङ्कुरारोपणविधिकर्तव्यत्वकथनम्]

दूर्वाङ्कुरारोपणाख्यं मौलेया अत्र कुर्वते ।
आरभ्यैषाष्टमीं कृष्णां यावत् स्याद्दशमी सिता ॥२३॥
अष्टादशेमास्तिथयो देवीप्रीतिकराः स्मृताः ।
तिस्रो विशेषतः पुण्याः सप्तम्याद्याः वरानने ॥२४॥
सर्वैर्निर्वर्त्यते यासु शारदीयो महोत्सवः ।
त्रयोदश्यादयस्तिस्रस्तिथयः कार्तिकस्य तु ॥२५॥
कृष्णपक्षे वरारोहे स्युरनन्तफलप्रदाः ।
फलत्रयोदशी नाम्नी घोराख्या च चतुर्दशी ॥२६॥
दर्शे तु सुखरात्र्याख्या अथवा दीपमालिका ।

प्रतिपद् बाहुलीया च सिता तस्यां यजे[1]च्छिवाम् ।।२७।।
शुक्लाष्टमी तु गोष्ठा[पा]ख्या सा भूरिसुकृतप्रदा ।
युगाद्या नवमी प्रोक्ता तस्यां जागर्ति कालिका ।।२८।।
अतस्तु पूजाविस्तारः कार्यस्तस्यां विशेषतः ।
प्रतिपन्मार्गशीर्षीया वा कृष्णा सापि महाफला ।।२९।।
अस्य शुक्ला तृतीया च नाम्ना रम्भेति विश्रुता ।
षष्ठी च स्कन्दषष्ठ्याख्या सप्तमी मित्रसप्तमी ।।३०।।
चतुर्दशी च पाषाणचतुर्दश्यभिधीयते ।
पूर्णिमा च तथा शालिपूर्णिमेत्यभिधीयते ।।३१।।
एताः षट् तिथयः शस्ताः कालीपूजनकर्मणि ।
पौषशुक्लाष्टमी पुण्या महाभद्रेति गीयते ।।३२।।
विख्याता कालिका नाम्ना माघासितचतुर्दशी ।
पूज्या विशेषतोऽमुष्यां कालिका कालनाशिनी ।।३३।।
माघस्य वाथ पौषस्य दर्शोऽर्केन युतो यदि ।
व्यतीपातः श्रवणभयोगादर्द्धोदयो भवेत् ।।३४।।
युगाद्याः कोटिभिस्तुल्या विज्ञेया सा महातिथिः ।
अनन्तफलदं तत्र विज्ञेयं कालिकार्चनम् ।।३५।।
अवश्यं कालिका पूज्या धर्मकामार्थसिद्धये ।
कृत्वा जागरणं तत्र बलिं दत्वा विधानतः ।।३६।।
धनधान्यसुतान् प्राप्य देहान्ते मोक्षमाप्नुयात् ।

१–जपे ख. ग. घ. ।

माघशुक्लतृतीया च वरनाम्नाभिधीयते ॥३७॥
अत्रार्चिता कालिका हि कन्याभ्यो वरमृच्छति ।
धूपदीपारात्रिबलिपुष्पनैवेद्यचन्दनैः ॥३८॥
अर्चनं कालिकादेव्याः कोटिकोटिगुणं भवेत् ।
एतस्या अपरेद्युस्तु या चतुर्थी तिथिर्भवेत् ॥३९॥
सा शान्ताख्या बुधैरुक्ता तृतीयावत् फलप्रदा ।
अस्यां यद्विहितं देव्या बलिन्यासजपार्चनम् ॥४०॥
भवेत् तत् कोटिगुणितं नात्र कार्या विचारणा ।
तस्याः पुनर्याऽपरेद्युर्या जायते तिथिरुत्तमा ॥४१॥
ख्याता श्रीपञ्चमी नाम्ना सर्वतिथ्युत्तमोत्तमा ।
अस्यामाराधिता काली बहुसम्भारसञ्चयैः ॥४२॥
ददाति चतुरोऽप्यर्थान् प्रसन्ना परमेश्वरी ।

[भाण्डिकेरमते कुन्दारोपणविधिकृत्यताभिधानम्]

अस्यामेव तिथौ देवि भाण्डिकेराः प्रकुर्वते ॥४३॥
कुन्दारोपणकं कर्म दमनारोपवत्सदा ।
अतः पूज्या भगवती कुन्दपुष्पैर्विशेषतः ॥४४॥
पट्टवासादिभिश्चूर्णैः नानारागेण रञ्जितैः ।
प्रतिमायन्त्रयोः पांशुवृष्टिवत् समवाकिरेत् ॥४५॥
एतस्या अनु या देवि सप्तमी साचलाह्वया ।
तस्यां संपूज्य मध्याह्ने देवीं देवीपुरे वसेत् ॥४६॥
कृष्णाष्टमी फाल्गुनस्य सा शाकाभिधयोच्यते ।

[देव्याः शाकम्भरीनाम्न रहस्योद्घाटनम्]

अस्यामेव तिथौ देवि तामसस्यान्तरे मनोः ॥४७॥
त्रेतायुगे समुत्पन्ना शिवा शाकम्भरी पुरा ।
क्रतुराजे विश्वजिति कालमित्रस्य भूपतेः ॥४८॥
मिथो विवदमानास्ते दक्षिणार्थं महेश्वरि ।
परस्परं विनिघ्नन्तं विनेशुः षोडशर्त्विजः ॥४९॥
अपचारेण तेनैव निखिले जगतीतले ।
शतसंवत्सरव्यापी बभूवावग्रहो महान् ॥५०॥
अन्नाभावेन सर्वेषु म्रियमाणेषु जन्तुषु ।
स्वशरीरसमुद्भूतैः शाकैरेव जगत्त्रयम् ॥५१॥
बभार तेन नाम्नैव देवी शाकम्भरी मता ।
अन्नाभावाच्च पितरः शाकमेवोपयाचिरे ॥५२॥
शाकाष्टकेति विख्याता पितृतृप्तिप्रदा तिथिः ।
महाविभवविस्तारैस्तस्मादत्र शिवां यजेत् ॥५३॥
तिथिश्चतुर्दशी प्रोक्ता या चैतस्या अनु प्रिये ।
शिवरात्रिस्तु सा प्रोक्ता कोटिपापविनाशिनी ॥५४॥
एकीकृत्यैकासने तु शिवशक्ती प्रपूजयेत् ।
चतुर्युगावधिकृता पूजा भवति यावती ॥५५॥
तावती सकला देवि दिनेनैकेन लभ्यते ।
उपवासो विधेयोऽत्र पूजाजागरणान्वितः ॥५६॥
वारुणीति भुवि ख्याता चैत्रकृष्णत्रयोदशी ।

क्षीरोद्मथनाज्जाता पुरास्यामेव वारुणी ॥५७॥
दुहितृत्वेन जग्राह तामेवापांपतिः स्वयम् ।
अत एवात्र संपूज्या विशेषेण महेश्वरी ॥५८॥
मधुमासस्य या शुक्ला तृतीया परिकीर्तिता ।
सा सौभाग्यतृतीयाख्या तस्यां पूजा महाफला ॥५९॥

[चैत्रशुक्लषष्ठ्यास्तिथेः माहत्म्याभिधानम्]

ततः षष्ठयां तु शुक्लायां चैत्रमासस्य पार्वति ।
सैनापत्येऽभिषिक्तस्तु देवानां ब्रह्मणा स्वयम् ॥६०॥
जघान तारकं दैत्यं जयं लेभे षडाननः ।
जयं लब्ध्वार्चयामास मातरं विश्वमातरम् ॥६१॥
तस्मात्तत्राम्बिका पूज्या जयकामैः क्षितीश्वरैः ।
धूपैर्दीपैश्च नेवैद्यैः पुष्पैर्माल्यैः सुगन्धिभिः ॥६२॥
वस्त्रालङ्कारबलिभिर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
आरात्रिकैर्दीपवृक्षैर्घण्टाचामरदर्पणैः ॥६३॥
आरोग्यकामैर्भूपालैः पुत्रवद्भिर्विशेषतः ।

[दमनारोपणपर्वणः मुख्यबासराभिधानम्]

चैत्रस्य शुक्लसप्तम्यां पूजां दमनकादिभिः ॥६४॥
कृत्वाप्नोति नरो भोगान् विगताधिर्महायशा ।
दमनारोहणस्येदं मुख्यं वासरमुच्यते ॥६५॥
अशक्तावत्र दिवसे अन्यस्मिन्नपि योजयेत् ।
चैत्रशुक्लं समारभ्य यावद् राधस्य पूर्णिमा ॥६६॥
दमनारोहणं तावत् तदूर्ध्वं नैव कारयेत् ।

मधुमासे सिताष्टम्यां विशेषात् कालिकार्चनम् ॥६७॥

कर्तव्यं सर्ववर्णेन विशेषेण द्विजातिभिः ।

वुधवारश्चादितिभं यदि तत्र प्रजायते ॥६८॥

तदाप्नोति फलं कोटिबाजपेयस्य पार्वति ।

येऽस्मिन्नशोककुसुमैरर्चिष्यन्ति सुरेश्वरीम् ॥६९॥

न ते कदापि निरये पतिष्यन्ति शिवाज्ञया ।

[कापालिकमते अशोकारोहणकृत्यताभिधानम्]

कापालिकाः प्रकुर्वन्ति तिथावस्यां विशेषतः ॥७०॥

अशोकारोहणं कर्म दमनारोहणं यथा ।

तस्मादस्मिन् बहुविधैः पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ॥७१॥

अशोकपुष्पैरधिकैरर्चयिष्यन्ति येऽम्बिकाम् ।

न तेषां जायते शोको रोगो वाप्यथ दुर्गतिः ॥७२॥

तत्प्रातः पूज्येद्देवीं महिषासुरमर्दिनीम् ।

कुङ्कुमागुरुकर्पूरैर्धूपदीपान्नमोदकैः ॥७३॥

दमनैश्चम्पकाशोकैः करवीरैः सरोरुहैः ।

कुन्दैर्जपामरुवकैः विजयाख्यं पदं लभेत् ॥७४॥

[शारदीपूजाविधिः]

आश्विनामलपक्षस्य यथा प्रतिपदि प्रिये ।

शारदीयार्चनारम्भः समाप्तिर्नवमीतिथौ ॥७५॥

वासन्तीपूजनस्यापि ज्ञेय ईदृग्विधो विधिः ।

चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रारम्भोऽस्या विधीयते ॥७६॥

महापूजा ततोऽष्टम्यां समाप्तिर्नवमी दिने ।

शारदीया यथा पूजा वासन्त्यपि तथा मता ॥७७॥
तयोर्भेदं न कुर्वीत कालिकार्चनकर्मणि ।
इयमेव स्थिता पूर्वं वासन्ती वार्षिकी क्रिया ॥७८॥

शारदीपूजायाः प्रारम्भकथा]

रामेण न यदा शक्यो रावणो हन्तुमाहवे ।
रक्षार्थमस्य जगतो निस्ताराय नृणामपि ॥७९॥
रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च ।
अकाले ब्रह्मणा बोधो विहितो मास आश्विने ॥८०॥
तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् शारद्येवाब्दिकी क्रिया ।

[वासन्तीपूजायाः प्राचीनताभिधानम्]

वासन्त्येवाब्दिकी पूर्वमासीत् कमललोचने ॥८१॥
अतोऽस्यां पूर्ववत् कार्यं विशेषात् कालिकार्चनम् ।

[दमनारोपणविधेः रहस्योद्घाटनायोपक्रमः]

पुरारिणा पुरा देवि हिमाद्रौ कुर्वता तपः ॥८२॥
तपो विघातकृद्दग्धो मदनो नयनाग्निना ।
आस भस्मावशेषः स कर्पूर इव पार्वति ॥८३॥
जाते विवाहे रुद्राण्या देवतैः संप्रसादितः ।
रत्यानुनीत ईशानो जीवयामास मन्मथम् ॥८४॥
विशेषतस्तु पार्वत्या प्रार्थितो हर्षविह्वलः ।
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां पुनरुज्जीवितः स्मरः ॥८५॥
अतोऽमुष्यां तिथौ देवि कालिकां रतिमन्मथौ ।

पूजयेद् भक्तिभावेन देवीसन्तोषहेतवे ॥८६॥
नानाविभवविस्तारैः कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ।
विधाय प्रतिमां देव्याः सरतेर्मदनस्य वा ॥८७॥
संपूज्य धूपदीपाद्यैर्व्यजनैर्वा यजे[1]च्छिवाम् ।
अत्र संपूजिता देवी मायूरव्यजनादिभिः ॥८८॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं प्रसन्ना संप्रयच्छति ।

[कामदेवदम्पतिपूजाभिधानम्]

तिथावस्यां कामदेवो देव्या वामे व्यवस्थितः ॥८९॥
रतिप्रीतिसमायुक्तोऽशोकपुष्पविभूषितः ।
वसन्तसहितः पूज्यो देवीसन्तोषहेतवे ॥९०॥
वामेऽनङ्गस्य च रतिः प्रीतिर्दक्षिणतस्तथा ।
मध्याह्ने पूजयेद् देवीं धूपदीपस्रगम्बरैः ॥९१॥
एवं विधानेन यस्तु पूजयेद् जगदम्बिकाम् ।
आधयस्तस्य नश्यन्ति व्याधयश्च शरीरजाः ॥९२॥
सम्पद्यते तथाभीष्टं जायन्ते सम्पदः स्थिराः ।
भवन्ति नापदस्तस्य न रोगो न दरिद्रता ॥९३॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य सर्वत्र विजयः सदा ।
प्रातः काले तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे चतुर्दशी ॥९४॥
प्रोक्ता दमनभञ्जीति सुरासुरमहोत्सवा ।

१—पूजये घ. ।

कालो पूजयितव्यात्र शाखाभिर्दमनस्य तु ॥९५॥
पूजयिष्यन्ति ये मर्त्यास्तदङ्गतरुपल्लवैः ।
ते यान्ति परमं स्थानं कालिकायाः प्रभावतः ॥९६॥
तस्मिन्नेव दिने कुर्यान् मदनस्य महोत्सवम् ।
जुगुप्सितोक्तिभिस्तत्र गीतवाद्यादि. नस्तथा ॥९७॥
शक्तिभिः सह संभोगैः विवस्त्रशबरोत्सवैः
कर्दमैरवहेलाभिर्मादकद्रव्यभोजनैः ॥९८॥
एवं कृते भगवती तुष्यते जगदम्बिका ।
सर्वसम्पत्प्रदा भूत्वा पुत्रपौत्रायुरर्थदा ॥९९॥
देव्याः प्रसादभूतैस्तु नैवेद्येरुत्तमांशुकैः ।
आत्मानं भूषयेद्धूपैः पुष्पमालानुलेपनैः ॥१००॥
न पालयन्ति ये पर्व चतुर्दश्यां हि मादनम् ।
तेषां हि वार्षिकं पुण्यं देवी क्रुद्धा निहन्ति हि ॥१०१॥
अतो देव्याः स्मरस्यापि पुजा कार्या हितार्थिभिः ।
पूर्णिमा चैत्रमासस्य नाम्ना चैत्रावली मता ॥१०२॥
चैत्रावल्यां जगद्धात्रीं पूजयित्वा सुरेश्वरि ।
सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥१०३॥
कुङ्कुमेन तथा लिप्त्वा त्रिलोकजननीं शिवाम् ।
यत् प्राप्यते फलं सम्यक् न तत् क्रतुशतैरपि ॥१०४॥
दीपमालाः प्रदातव्या जगद्धात्र्यै घृतप्लुताः ।

सर्वकामाः समृद्धयन्ति तत्प्रदानेन तस्य हि ॥१०५॥
मन्दवारेऽर्कवारे वा यदि स्याच्चैत्रपूर्णिमा ।
तत्राश्वमेधिकं पुण्यं लभते चण्डिकार्चनात् ॥१०६॥
चित्रानक्षत्रयोगेन महाचैत्री प्रकीर्त्यते।
तत्र पूजा जपो होमबलिन्यासाश्च जागरः ॥१०७॥
कोटिकोटिगुणाः सर्वे भवन्ति सुरवन्दिते ।
वर्षनैमित्तिकीपूजा समाप्ता जायतेऽत्र हि ॥१०८॥
अतो विशेषतो वर्षसमाप्तौ पूज ं चरेत् ।
एवं तिथय उद्दिष्टा उपरागोऽधुनोच्यते ॥१०९॥

[ग्रहणकालिककर्तव्यतादिनिर्णयः]

दर्शे वा पूर्णिमायां वा राहुः सूर्यनिशाकरौ ।
संछादयति देवेशि ब्रह्मणो वरदानतः ॥११०॥
भूमिच्छायानुगश्चन्द्रं चन्द्रगोऽर्कः कदाचन ।
एकराशावर्कभेदो यदा ताभ्यां मिलत्यपि ॥१११॥
सति योगे सप्तमे व राकादर्शावशा[सा]नतः ।
तदोपरागो भवति कोटिपुण्यफलप्रदः ॥११२॥
स्नाने जपे तथा दाने होमे श्राद्धेऽम्बिकार्चने ।
स महान् पुण्यकालो हि विज्ञातव्यः सुरेश्वरि ॥११३॥
अहोरात्रोषितः पूर्वं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
जपित्वाभ्यर्च्य वा देवीं दानं दत्वा तथैव च ॥११४॥
कृत्वा श्राद्धं विधानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

यद्यत्करोति तत्काले तस्य स्यादक्षयं हि यत् ॥११५॥
स्वल्पेनाप्यत्र पुण्येन मोदते ब्रह्मणा सह ।
भास्करस्य च चन्द्रस्य ग्रहणे प्रत्युपस्थिते ॥११६॥
आपः कौप्या अपि देवेशि गङ्गाजलसमाः स्मृताः ।
तस्माच्छतगुणं ज्ञेयं सारसं सलिलं शुचि ॥११७॥
तस्मात् सहस्रगुणितं नादेयं परिकीर्तितम् ।
तस्मात् कोटिगुणं ज्ञेयं गाङ्गेयं पावनं महत् ॥११८॥
स्नानात् सहस्रगुणितो होमो ज्ञेयो विचक्षणैः ।
होमाच्छतगुणं श्राद्धं श्राद्धाच्छतगुणो जपः ॥११९॥
जपात् सहस्रगुणितं दानमाहुर्मनीषिणः ।
दानात् कोटिगुणा पूजा भगवत्या विशिष्यते ॥१२०॥
तत्र नैमित्तिकी पूजा कार्या नित्या कदापि न ।
पूर्वेद्युरुपवासे तु पूजा कोटिगुणा भवेत् ॥१२१॥
उपोषणस्यासामर्थ्ये पूजा लक्षगुणा मता ।

[ग्रहणसमये पूजारम्भावसरनिर्णयः]

चन्द्रार्कौ तमसाग्रस्तौ दृष्ट्वैवार्चां समारभेत् ॥१२२॥
अदृष्टे तु ग्रहे देवि सर्वं विफलमीरितम् ।
न परप्रत्ययात् स्वस्य प्रत्ययो देवकर्मणि ॥१२३॥
स्नाने दाने जपे होमे श्राद्धेऽर्चायां प्रतिग्रहे ।
दर्शनानन्तरं नृणामधिकारो न चान्यथा ॥१२४॥
[1]स्वराशितो वरारोहे त्रिषष्ठैकादशे ग्रहे ।

१—इत आरभ्य १६० श्लोकं यावत् घ पुस्तके नास्ति

न दोषं पश्यतो राहुमित्रस्यात्राल्पदोषता ॥१२५॥
यतः फलानां बाहुल्यं दोषाणामल्पता तथा ।
जायतेऽतः प्रकर्तव्यमवश्यं राहुदर्शनम् ॥१२६॥
नाडीभाष्टमचन्द्रादिदोषाणामपनुत्तये ।
किञ्चिद्दानं प्रकर्तव्यं तत्तद्विघ्नोपशान्तये ॥१२७॥
उद्धृता ये मया पूर्वं कालीमन्त्राः शुचिस्मिते ।
तेषामेकोऽप्येकवारं जप्तश्चेद् राहुदर्शने ॥१२८॥
पापानि नाशयत्येवं कोटिजन्मकृतान्यपि ।
षोडशार्णां सप्तदशीमेकवारं य उच्चरेत् ॥१२९॥
सप्तद्वीपवतीपृथ्वीदानस्य फलमश्नुते ।
तस्माद् विशेषतः कार्यो जपः पूजासमन्वितः ॥१३०॥
पुरश्चरणमत्रैव गौणं कुर्वन्ति केचन ।
कर्म्मैकं कार्यमेतस्मान्न ते पूजाधिकारिणः ॥१३१॥
आवश्यकतया तैस्तु प्रकर्तव्यमुपोषणम् ।
पूजाकर्तुर्न मुख्यं तत् कृते तु फलभूमता ॥१३२॥
यामत्रयं न भोक्तव्यं चन्द्रग्रहणपूर्वतः ।
सूर्यग्रहणतः पूर्वं प्रहराणां चतुष्टयम् ॥१३३॥
राहुनिर्मुक्तमरुणं तथैव रजनीकरम् ।
दृष्टैव भोजनं कुर्यादन्यथा नारकी भवेत् ॥१३४॥
ग्रस्तास्तौ चेदुभौ स्यातां अथवाभ्रनिमीलितौ ।

दिवारात्रमुपोष्यैव ततोऽश्नीयाद् यथासुखम्[1] ॥१३५॥
अविधाय नरो यस्तु विमुक्तिस्नानमीश्वरि ।
भुङ्क्ते विश्वैनसा सार्द्धं ते[2]नान्नमिति मे मतम् ॥१३६॥
श्राद्धकृद् होमकृद् वापि दानकृज्जपकृच्च वा ।
निर्वर्तितप्रात्यहिकः कालाकांक्षी स्थितो भवेत् ॥१३७॥
ग्रहं दृष्ट्वाऽशुचः स्नात्वा तत्तत्कर्म समाचरेत् ।
अशौचं जन्ममरणजनितं चेत् प्रजायते ॥१३८॥
न कार्याः श्राद्धदानार्चाः केवलं स्नानमाचरेत् ।
सूतकव्यपदेशीयो मूर्खो वा स्नाति न ग्रहे ॥१३९॥
सद्यः स मृत्युमाप्नोति स्नायी पापं न विन्दति ।
जपे दाने तथा होमे श्राद्धे चैव सुरार्चने ॥१४०॥
अशौचदोषः सर्वत्र न तु स्नाने सुरेश्वरि ।
मासयोर्भाद्रनभसोः सरितः स्यू रजस्वलाः ॥१४१॥
चन्द्रसूर्यग्रहे प्राप्ते रजोदोषो न विद्यते ।
स्नात्वा पूण्योदके तीर्थे शुचिः पूर्वमुपोषितः ॥१४२॥
स्पर्शाद् विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत् ॥१४३॥
अथवा महतीं पूजां कुर्याद्दानं तथैव च ।

१—यथाक्रमम् ङ । २—पङ्क्तिरियं ङ पुस्तके नास्ति ।

मूलमन्त्रस्य सिद्ध्यर्थं गुरुं यत्नेन तोषयेत् ॥१४४॥
एवं च मन्त्रसिद्धिः स्यात् देवता च प्रसीदति ।

[तीर्थविशेषेषु कृतस्य ग्रहणकालिकस्नानस्य माहात्म्यम्]

तत्तत्तीर्थविशेषेण विशेषः कोऽपि कथ्यते ॥१४५॥
दशजन्मकृतं पापं गङ्गास्नानेन नश्यति ।
त्रिंशज्जन्मकृतं पापं गङ्गायमुनसङ्गमे ॥१४६॥
शतजन्मकृतं पापं गङ्गासागरसङ्गमे ।
जन्मनां तु सहस्रेण यत्पापं समुपार्जितम् ॥१४७॥
कृत्वा सूर्यग्रहस्नानं तन्मुञ्चति महोदधौ ।
जन्मना नियुतेनैव यत्किञ्चिन्नृभिरर्जितम् ॥१४८॥
वाराणस्यां ग्रहस्नानात्तदाश्वेव व्यपोहति ।
नरैः पापं कृतं यद्यज्जन्मनां कोटिकोटिभिः ॥१४९॥
तत्सर्वं सन्निहत्यापो राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
नाशयेत् स्नानमात्रेण सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥१५०॥
सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा ।
चूडामणिरिति ख्यातस्तदा योगो महाफलः ॥१५१॥
सर्वेभ्यो देवि दानेभ्यो द्वे दानेऽतिमहाफले ।
भूमेरथ सुवर्णस्य स्वर्णाद् भूमिः प्रशस्यते ॥१५२॥
पूजायामपि देवेशि परिवारगणार्चनात् ।
षोडशद्वादशाष्टाब्जदलपूजा प्रशस्यते ॥१५३॥
ततः कोटिगुणं ज्ञेयं निश्चितं बिन्दुपूजनम् ।

अनुकल्पाप्रदातृणां द्विजानां श्राद्धमेव हि ॥१५४॥
कौलानामपि सर्वेषां विमुक्त्यभिषवादनु ।
पात्राणां ग्रहणं शस्तं ग्रहमध्ये कदाचन[1] ॥१५५॥
इति संक्षेपतः प्रोक्तो ग्रहणस्य विनिर्णयः ।

[तिथिनिर्णयप्रकरणम्]

तिथीनां निर्णयं वच्मि सूक्ष्मोक्त्या न तु विस्तरात् ॥१५६॥
नैमित्तिकीषु पूजासु तिथयो या निरूपिताः ।
ग्राह्या निशीथव्यापिन्यः पक्षयोरुभयोरपि ॥१५७॥
प्रशस्तमर्द्धरात्रं हि भगवत्यर्चने सदा ।
योगो निशीथेन यदा तिथीनां नैव जायते ॥१५८॥
तदा विवेकः कर्तव्यो द्वयोरेव हि पक्षयोः ।
यासूदितो रविः शुक्ले तिथयो विहिता हि ताः ॥१५९॥
कृष्णे यास्वस्तमायाति सामान्योऽयं विधिर्मतः ।
मुहूर्तमात्रादधिका या तिथिः शुक्लपाक्षिकी ॥१६०॥
सा स्नानदानपूजादौ विहितत्वेन गृह्यते ।
न्यूना मुहूर्तमात्राद्वा मुहूर्तेन मितापि वा ॥१६१॥
तिथिः कालमलत्त्वेन सा न ग्राह्या कथञ्चन ।
यावती या तिथिस्तिष्ठेत् तावत्यां तदुदीरिता ॥१६२॥
क्रियारभ्य समाप्तव्या तत्तत्कर्मोपयोगिनी ।
कृष्णेऽप्येवं यदा सा तु तिथिः कालेन युज्यते ॥१६३॥
तदा तद्विहितं कर्म कार्यं रात्रौ दिनेऽपि वा ।

१—कदापि न ङ ।

निशीथयोगाभावे तु पक्षयोरुभयोरपि ।।१६४।।
पूजादिकं तु कर्तव्यं पूर्वाह्णे नापराह्णतः ।
देवानामिह पूर्वाह्णो मध्याह्नस्तु नृणां भवेत् ।।१६५।।
अपराह्णः पितृणां स्यादेवं धर्मविनिर्णयः ।
विहितं कालमुल्लङ्घ्य या काचित् क्रियते क्रिया ।।१६६।।
न तयाल्पं फलमपि जायते सुरवन्दिते ।
वित्तनाशस्तथायासो भवतीत्याहुरागमाः ।।१६७।।
तस्मात् काले प्रकर्तव्यं कर्म स्वर्गफलार्थिभिः ।

[तिथिद्वैधे कर्तव्यकालनिर्णयः]

तिथिद्वैधविचारोऽयमधुना वै निरूप्यते ।।१६८।।
दिनद्वयेऽपि चेल्लभ्या पूर्वाह्णव्यापिनी तिथिः ।
परार्द्धा पूर्वविद्धावा कथं कार्येति संशये ।।१६९।।
आद्या तिथिरमाविद्धा कर्तव्या न द्वितीयया ।
द्वितीया परविद्धा च तिथ्या नैवाद्यया क्वचित् ।।१७०।।
चतुर्थी सहिता कार्या तृतीया न द्वितीयया ।
चतुर्थी पूर्वविद्धैव कर्तव्यार्चनवासरे ।।१७१।।
पञ्चम्या सहितां कुर्वन् सद्यो नश्यति सान्वयः ।
चतुर्थ्या सहिता कार्या पञ्चमी कालिकार्चने ।।१७२।।
सप्तम्या सहिता षष्ठी प्रशस्ता सर्वकर्मसु ।
षष्ठी विद्धा प्रकर्तव्या सप्तम्यन्यत्र वासरे ।।१७३।।
नह्याश्विने तु शारद्यां पूजायां जगदीश्वरि ।

पक्षद्वयेऽप्यष्टमी तु विधातव्या परान्विता ॥१७४॥
अष्टम्या सहिता कार्या नवमी पुण्यदा तिथिः ।
नवम्या दशमी विद्धा सर्वसौख्यकरी मता ॥१७५॥
नैकादशी दशाविद्धा कर्तव्या भूतिमिच्छता ।
नैकादश्या द्वादशी च न द्वादश्या त्रयोदशी ॥१७६॥
चतुर्दशी प्रकर्तव्या त्रयोदश्या समन्विता ।
अमा परयुता कार्या चतुर्दश्या न योजिता ॥१७७॥
इति देव्यर्चनविधौ तिथिकर्तव्यतेरिता ।
व्रतादौ तु विशेषेण विज्ञेयः **स्मृतिशास्त्र**तः ॥१७८॥

[नैमित्तिकीपूजाकालविचारः]

पूजा नैमित्तिकी कार्या प्रत्यब्दं जन्मवासरे ।
गृहग्रामपुराणां च प्रवेशेऽवश्यमर्चनम् ॥१७९॥
उल्लाघानां मङ्गलार्थं विद्यारम्भे तथैव च ।
महामारी विघाताय नाट्यारम्भाय चैव हि ॥१८०॥
अन्येष्वपि च कार्येषु पूजा नैमित्तिकी स्मृता ।
अब्दकृत्ये जन्मतिथौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥१८१॥
चान्द्रो मासः परिग्राह्योऽशौचादौ तु सुरेश्वरि ।
राशिक्रमेण यो मासो विवाहादौ स हि स्मृतः ॥१८२॥
ऋणादानप्रयोगे च सावनश्चाध्वरादिषु ।
शान्तिके पौष्टिके चापि नाक्षत्रो मास इष्यते ॥१८३॥
इन्द्राग्न्योराहुतिर्यत्र दीयते सुरवन्दिते ।

मासस्यादिः स हि ज्ञेयो व्रतारम्भादिकर्मणि ।१८४॥
होमाग्नीषोमयोर्यत्र मासमध्यं तदुच्यते ॥
पितृषोमाह्वयं कर्म यदा निर्वहति प्रिये ॥१८५॥
अन्तो मासस्य भा ज्ञेयः प्रतिमासमियं क्रिया ।
निमित्तानि बहून्येव पूजायाः सन्ति पार्वति ॥१८६॥
एक एव क्रमोऽर्चायाः पञ्च मुक्त्वार्चनं प्रिये ।
शारद्यर्चाथ वासन्ती दमनारोपणं तथा ॥१८७॥
पवित्रारोहणं चैवशुक्ले कामदिनेऽर्चनम् ।
एता विहाय पश्चार्चा यावत्यः सन्ति पार्वति ॥१८८॥
नैमित्तिक्यो महापूजा एकरूपाः प्रकीर्तिताः ।
यस्तु नैमित्तिकीं पूजां निमित्तत्वैरुपस्थिताम् ॥१८९॥
कुरुते नित्यपूजावदज्ञानपरिबृंहितः ।
तस्मात् पापतरः को वा कालिकाद्वेषभाजनम् ॥१९०॥
अङ्गहान्यापि नित्यस्य न हानिरुपकल्प्यते ।
नैमित्तिकस्याङ्गहान्या फलहानिः प्रजायते ॥१९१॥
तस्मात् साङ्गं प्रकर्तव्यं शास्त्रदृष्टया गुरुक्रमैः ।
अङ्गानि केचन न्यासाः पात्राधिक्यं शिवाबलिः ॥१९२॥
पञ्चायतनरीतिश्च मन्त्रपार्थक्यमेव च ।
पूजाक्रमः पशुबलिः पूजायाः क्रम एव च ॥१९३॥
धूपदीपादिसम्भारः शक्तिपूजा दश स्मृताः ।

नित्यपूजासु सन्त्येव यद्यप्येतेषु केचन ।।१६४।।
स्यान्नित्यनैमित्तिकयोर्भिन्ना रीतिस्तथापि हि ।

[नैमित्तिकपूजोपचाराभिधानम्]

नैमित्तिकक्रियाचारमधुनोपदिशामि ते ।।१६५।।
नैमित्तिकमहाकृत्ये श्वः कर्तव्ये सुरेश्वरि ।
एकवारं हविष्यान्नं भुञ्जीत विजितेन्द्रियः ।।१६६।।
मलीमसांशुकत्यागं क्षुरकर्म धरोषिताम् ।
मूर्तिपीठादिसंसृष्टिं तत्प्रासादोपलेपनम् ।।१६७।।
पूजापात्रादिसंशुद्धिं तत्तद्द्रव्यैर्विशेषतः ।
नैमित्तिकक्रियायां हि षडेतानि समाचरेत् ।।१६८।।
धूमोद्गारे दन्तरक्ते सूतके च गलद्व्रणे ।
पूजापूर्वं मैथुने च स्त्रीद्विजाक्रोशने तथा ।।१६९।।
नैमित्तिकं न कुर्वीत कुर्वन्नैवाप्नुयात् फलम् ।
कौलाचाररतः सर्वान् योषितश्च कुलाध्वगाः ।।२००।।
निमन्त्रयीत यत्नेन सर्वेषां प्रथमं गुरुम् ।
नैवेद्यधूपदीपानां कुर्याद् यत्नेन सम्भृतिम् ।।२०१।।

[पुष्पमाल्ययोर्विषये विशेषाभिधानम्]

विशेषतश्च पुष्पाणां माल्यानां च वरानने ।
प्राचुर्यं वकुलानां च वैशाखे मासि कारयेत् ।।२०२।।
नागकेसरपुष्पाणां ज्यैष्ठ आधिक्यमाचरेत् ।

[१]आषाढ़े तु प्रकर्तव्यः करवीरस्य सञ्चयः ॥२०३॥
चम्पकोत्पलपद्मानां भूयस्त्वं नभसीष्यते ।
बाहुल्यमोड्रपुष्पस्य मासि भाद्रपदे चरेत् ॥२०४॥
भूयिष्ठता विधातव्या बन्धूकस्याश्विने तथा ।
अगस्त्यकुसुमानां हि भूरितामूर्ज आचरेत् ॥२०५॥
आधिक्यं बिल्वपत्राणां मार्गशीर्षे समाचरेत् ।
पौषे दूर्वाङ्कुराणां हि सन्दोहोऽतिफलप्रदः ॥२०६॥
कौन्दः स्तोमो माघमासि सर्वकल्याणकारकः ।
फाल्गुने माधवीपुष्पं सर्वसिद्धिविधायकम् ॥२०७॥
चैत्रेऽशोकस्य कलिका काली कालविनाशिनी ।
मालती यूथिका चैव दमनं कर्णिकारकम् ॥२०८॥
कुरुण्टकं कुरुबकमम्लानं पाटला तथा ।
नवमालिकार्कपुष्पं च तथा चैवातिमुक्तकम् ॥२०९॥
एकादशैतानि सदा कुसुमानि वरानने ।
देयानि जगदम्बायै नरैर्नैमित्तिकार्चने ॥२१०॥
नैवेद्यानीह यावन्ति दीयन्ते नित्यपूजने ।
तेभ्योऽधिकं प्रकर्तव्यं सदा नैमित्तिकार्चने ॥२११॥
कर्तव्यं नित्यपूजावत् सर्वद्रव्यविशोधनम् ।
प्रातःकृत्यविधानं च शौचाचारविधिस्तथा ॥२१२॥
स्नानसन्ध्यादिकं चापि विदध्यान्नित्यवत् प्रिये ।

१—इतस्तिस्रः पंक्तयः ख, ग, पुस्तकयोर्न सन्ति ।

आदौ प्रात्यहिकं कर्म कुर्याद् यावत्सदा चरेत् ॥२१३॥

[नैमित्तिकार्चने कर्तव्यन्यासनिर्णयाभिधानम्]

अथ प्रवक्ष्ये तान् न्यासान् येऽवश्यं परमेश्वरि ।
नैमित्तिकार्चनविधौ कर्तव्यत्वेन निश्चिताः ॥२१४॥
यस्य यस्य मनोर्यो य ऋष्यादिः परिकीर्तितः ।
सोऽत्राप्यावश्यकत्वेन विधेयः शिवशासनात् ॥२१५॥
कराङ्गन्यास एष्टव्यः षडङ्गन्यास एव च ।
विराट्पूर्वा मातृका च योगरत्नाह्वयस्तथा ॥२१६॥
द्वितीयं पञ्चकं सर्वं कर्तव्यत्वेन कीर्तितम् ।
आदितूर्यविहीनं हि तूर्यपञ्चकमेव हि ॥२१७॥
विधेयत्वेन विहितमाद्यं पञ्चमपञ्चके ।
एवमेकादश न्यासा आवश्यकतया मताः ॥२१८॥
चतुर्णां सम्मतं षोढास्वप्येकं किञ्चिदेव हि ।

[पात्रग्रहणे विविधसम्प्रदायानां मतानि]

नैमित्तिकेषु पात्राणामाधिक्यं यदुदीरितम् ॥२१९॥
नानागममतेनैव तद्विचारं ब्रुवेऽधुना ।
कपालडामरमते षट्त्रिंशत्पात्रकल्पना ॥२२०॥
एकैकस्य च पात्रस्य तत्त्वनाम्नाभिधा भवेत् ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वमिति च षट्त्रिंशत् पात्रकल्पना ॥२२१॥
मन्त्राणां तत्र विस्तारो विविधान्यर्चनानि च ।

एष कापालिकानां ते सिद्धान्तः परिकीर्तितः ॥२२२॥
भैरव्यां संहितायां तु पात्राणां त्रिंशदेव हि ।
तेषामाख्या पुनर्भिन्ना मनवश्च पृथक् पृथक् ॥२२३॥
तर्पणं ग्रहणं चैव पृथग्रूपतया स्थिते ।
नैमित्तिकीमुपासन्ते [ते] मन्त्रैरेतैर्दिगम्बराः ॥२२४॥
यामले देवि पात्राणां चतुर्विंशतिरीरिता ।
भिन्नाः भिन्नास्तथा चैषां संज्ञास्तत्तन्मतेरिताः ॥२२५॥
शोधनं च प्रदानं च स्वीकारस्तर्पणादिमः ।
मन्त्राश्चैषां सर्वमेव भिन्नरूपतया स्थितम् ॥२२६॥
मौलेयानां मतमिदं तव देवि प्रकाशितम् ।
तथा **शाबरतन्त्रेऽपि** पात्राण्यष्टादश प्रिये ॥२२७॥
शबरेश्वरेण कथिता तद्रीतिः सकलापि च ।
तामेव ते मानयन्ति भाण्डिकेराः न चेतराम् ॥२२८॥
ये मन्मतप्रवृत्ता हि कौलिका वाप्यकौलिकाः ।
तथानुकल्पदातारो ये द्विजाः कालिकार्चकाः ॥२२९॥
ते द्वादशैव पात्राणि कल्पयन्ति नचाधिकम् ।
तेषां षण्णां तु पूर्वैव संज्ञा या नित्यकर्मणि ॥२३०॥
यानीतराणि षड् देवि तेषां नामानि वै पृथक् ।
इतिकर्तव्यताभिन्ना तर्पणग्रहणान्तिमा ॥२३१॥
देव्युवाच
परं कौतूहलं तद्यत् प्राणनाथ त्वयोदितम् ।

निश्चयं नाधिगच्छामि चिन्तयन्तो पुनः पुनः ॥२३२॥
विभो त्वया यदाख्यातं तन्मयापि निशामितम् ।
न पुनः संशयश्छिन्नो ममान्तर्गत ईश्वर ॥२३३॥
महाकाल उवाच
कः संशयः प्रिये तेऽन्तर्गतो न छिन्नतां गतः ।
स्वाभिप्रायं समाचक्ष्व ततो वक्ष्ये त उत्तरम् ॥२३४॥
महान्तं संशयं यस्तु गुरुं पृच्छति हृद्गतम् ।
स स्वल्पधीरपि च्छात्रो वेदितव्यो विचक्षणः ॥२३५॥
यः संशयं शिष्यपृष्टं छिनत्ति बहुयुक्तितः ।
वेदशास्त्राविरोधेन तर्केण व्याहरन् वचः ॥२३६॥
स गुरुः सर्वदर्शी स्यात् न सामान्यगुरुर्गुरुः ।
तस्मात् प्रब्रूहि सन्देहः कोऽपनोद्यस्तव प्रिये ॥२३७॥
[विविधतान्त्रिकसम्प्रदायानां कथमेकवाक्यतेतिजिज्ञासा]
देव्युवाच
डामरं यत्कपालाख्यं **संहिता** या च **भैरवी** ।
यामलं शाबरं तन्त्रं सर्वं शिवमुखोद्गतम् ॥२३८॥
एवं त्वमपि देवेश **संहिता** स्वमतेन हि ।
त्रिपुरघ्नादुपश्रुत्य मह्यं व्याहृतवानसि ॥२३९॥
सर्वेषामागमानां चेद्वक्ता प्रमथनायकः ।
सर्वैकवाक्यता तर्हि कथं न भवति प्रिय ॥२४०॥
श्रेष्ठं किमेष ज्ञातव्यं कर्तव्यत्वेन निश्चितम् ।

पञ्चानामपि पक्षाणां मध्ये सारतरं नु किम् ॥२४१॥
एवं विधेयमथवा सर्वमेव सुरेश्वर ।
एतत्सर्वमशेषेण निर्णीयाज्ञापय प्रभो ॥२४२॥
विविधतान्त्रिकसम्प्रदायानामाविर्भावकथयोक्तजिज्ञासानिरासः]
महाकाल उवाच
सम्यक् पृष्टं त्वया देवि सन्देहस्यापनुत्तये ।
एवंविधा त्वदन्या का जिज्ञासुर्विद्यते भुवि ॥२४३॥
चतुर्ष्वपि च देवेषु पुराणेष्वखिलेषु च ।
इतिहासादिषु तथा धर्म एकः स्वयंभुवा ॥२४४॥
भूतसर्गं विधायैव निर्दिष्टः सार्वलौकिकः ।
अनन्तरं तु मुनय एकरूपतया स्थितम् ॥२४५॥
तमेव धर्मं देवेशि विविच्य स्वमनीषया ।
वर्णाश्रमविभागेन कल्पयामासुरञ्जसा ॥२४६॥
वर्णानामाश्रमाणां च तत्र केचन पार्वति ।
एकरूपतया प्रोक्ता भिन्ना केचन लौकिकाः ॥२४७॥
धर्माः साधारणाश्चान्ये सर्वभूतस्य कृत्स्नशः ।
एवमागमिको धर्म एक एव पुरारिणा ॥२४८॥
कथितो लोकनिस्तारहेतवे ग्रन्थविस्तरैः ।
अनन्तरं तदीयांशभूतैरस्माभिरीश्वरि ॥२४९॥
कदाचारसदाचारौ निरीक्ष्य नरजातिषु ।
सर्वागमानां विषयव्यवस्था परिकीर्तिता[1] ॥२५०॥

१—परिकल्पिता ख. ग. घ. ङ.

शुभदो निखिलो धर्मो देव्याराधनहेतुकः ।
आगमेऽभिहितः किन्तु भिन्न आचार इष्यते ॥२५१॥
निर्मर्यादाः समर्यादाः निर्घृणा सघृणास्तथा ।
निर्लज्जाश्च सलज्जाश्च सज्ञाना ज्ञानवर्जिताः ॥२५२॥
सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्च तथा नराः ।
तत्परत्वेन सर्वेषां व्यवस्था परिकल्प्यते ॥२५३॥
पूर्वमप्युक्तमेतत्ते इदानीमपि कथ्यते ।
तत्र कापालिका निन्द्या नृकपालमयानि हि ॥२५४॥
कुलद्रव्यप्रदानाय ये पात्राणि प्रकुर्वते ।
कल्पयन्ति तथा शक्तीर्भगिनीर्दुहितृस्नुषाः ॥२५५॥
श्रुतौ नरास्थिसंस्पर्शात् सचैलं स्नानमीरितम् ।
आगमादिप्रसिद्धत्वाद् रुद्रस्य वचनादपि ॥२५६॥
किञ्चिद्धातव्यमुभयोः किञ्चिद्ग्राह्यं द्वयोरपि ।
कापालिकमते त्याज्ये करोटौ पानभोजने ॥२५७॥
अस्पर्शश्च तथामुष्याः श्रुत्युक्तो हेय ईश्वरि ।
न मालाकरणे दोषो जपार्थं तस्य कश्चन ॥२५८॥
पानभोजनपात्रादिकरणे दोष एव हि ।
नरमांसाशिता साक्षादत्र ते संशयोऽस्तु मा ॥२५९॥
सर्वेष्वपि मतेष्वेवं बोद्धव्यं कमलानने ।
तेषां ये हि कदाचारा निन्दिताः श्रुतिवर्त्मनि ॥२६०॥
अस्माभिस्ते परित्यक्ता यद्भद्रं तदुरीकृतम् ।
मिश्रिताभ्यां पयोम्बुभ्यां क्षीरं हंसो यथा पिबेत् ॥२६१॥

शुभाशुभाभ्यां हि तथा शुभमेवाश्रयेत् सुधीः ।
यदुक्तं मनुनार्थेऽस्मिन्नवधेहि तदीश्वरि ॥२६२॥
नीचादप्युत्तमां विद्यां कन्यारत्नं सुदुष्कुलात् ।
अप्युन्मत्तात् महामन्त्रममेध्यादपि काञ्चनम् ॥२६३॥
अत एव महेशानि प्रोक्तं यद्यत्स्थले स्थले ।
कापालिकैः शुभं वाक्यं तन्मयात्रोपवर्णितम् ॥२६४॥
तेषामेव परित्यक्तं यदसद्यौक्तिकं वचः ।
उदीरितं नाप्यमुष्यां संहितायां सुरेश्वरि ॥२६५॥
नैमित्तिकार्चने पात्राधिक्यं यत्तैरुदीरितम् ।
युक्तियुक्तमिति ज्ञात्वा कथयिष्यामि तेऽखिलम् ॥२६६॥
कापालिकानां सिद्धान्तमारभ्य सकलं क्रमात् ।
यावन्मदीयसिद्धान्तं तावद् वक्ष्येऽखिलं तव ॥२६७॥
उत्तरोत्तरतः किन्तु लाघवं वर्तते मते ।
यद्यस्य शक्यविषयं भवेत् तत्राधनेन वा ॥२६८॥
तेन तेन प्रकर्तव्यं तत्तदेव सुरेश्वरि ।
एकस्य करणेनापि समग्रं फलमश्नुते ॥२६९॥
द्वैधीभावो न कर्तव्यस्तस्मादत्र कथञ्चन ।

[शिवाबलिविधिः]

शिवाबलेर्विचारं[1] त्वमधुना कलय प्रिये ॥२७०॥
मुख्यो गौणश्चेति सोऽपि द्विविधः परिकीर्तितः ।

[मुख्यस्य शिवाबलिविधेरभिधानम्]

पुरा ग्रामाद्बहिर्गत्वा कृत्वा प्रत्यक्षतः शिवाः ॥२७१॥

१—विधानं ख ग घ ।

मन्त्रपूर्वं बलिं दत्वा भोजयित्वा च ताः पुनः ।
स्तुत्वा प्रणम्य च तथा यदमूषां विसर्जनम् ॥२७२॥
शिवाबलिर्मुख्य एष कथितो मन्त्रपारगैः ।

[गौणस्य शिवाबलेर्विधेः कथनम्]

गौणस्तु तद्योग्यरूपं बलिं पूजाक्षणे प्रिये ॥२७३॥
उत्सृज्य दीयते ताभ्यस्तांश्च खादन्तु वा न वा ।

[पञ्चायतनरीत्यभिधानम्]

पञ्चायतनरीतिं त्वं साम्प्रतं शृणु सादरा ॥२७४॥
अग्निनिर्ऋतिवागीशकोणगांश्चतुरः सुरान् ।
पूजयेन्मध्य ईशानीं पञ्चायतनमीदृशम् ॥२७५॥
पञ्चायतनपूजाया द्वौ पक्षौ नित्यकर्मणि[1] ।
केचिदावश्यकत्वेन प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२७६॥
केचिन्नेत्यागमविदो मन्मतं चेदृशं प्रिये ।
नैमित्तिक्यामथार्चायामावश्यकतयोदिता ॥२७७॥
पञ्चायतनपूजा वै सर्वेष्वेवागमादिषु ।
गणाधिपश्च सूर्यश्च विष्णू रुद्रस्तथैव च ॥२७८॥
किन्तु पूजास्थानमेषां पूजाकाले प्रवक्ष्यते ।
मन्त्राणां चापि पार्थक्यं वर्ततेऽत्र सुरेश्वरि ॥२७९॥
तस्मिन्नेव क्षणे सर्वं प्रवक्ष्यामि विशेषतः ।

[आवरणपूजाक्रमाभिधानम्]

तथावरणपूजायाः क्रमोऽन्योऽस्या निगद्यते ॥२८०॥

१—पर्वणि ख ।

[नैमित्तिकपूजायां पशुबलिनित्यता]

नित्येऽनित्यः पशुबलिर्नित्यो नैमित्तिकार्चने ।
आवश्यकः पशुबलिस्तस्मान्नैमित्तिके विधौ ॥२८१॥
पशूनां जातिभेदेन भिन्ना च प्रोक्षणक्रिया ।
पूजान्ते वक्ष्यते सापि बलिदानक्षणे प्रिये ॥२८२॥

[आवरणपूजायां षडाम्नायगतदेवीपूजाभिधानम्]

अथावरणपूजाया मध्य एव सुरेश्वरि ।
षडाम्नायगतानां हि देवीनामस्ति पूजनम् ॥२८३॥
अग्रपश्चाद्भावरूपो विशेषो वर्ततेऽस्य हि ।
तत्र नानागमविदां प्रकारा विविधाः प्रिये ॥२८४॥
नानातन्त्रोदिताः सन्ति प्रधानं तत्र मन्मतम् ।
शास्त्रक्रमोऽत्र नैव स्यादाधिक्यं धूपदीपयोः ॥२८५॥
शक्तिपूजा प्रात्यहिकादधिका काचन स्मृता ।
एवं दशानामाधिक्यं विधीनां सुरवन्दिते ॥२८६॥
नैमित्तिकार्चनविधौ ज्ञातव्यं साधकैः सदा ।
अकृत्वा नित्यकर्माणि स्यान्नैवात्राधिकारिता ॥२८७॥
अत आदौ नित्यपूजा कर्तव्या साधकोत्तमैः ।
यथा पशुबलिर्नित्यो देवि नैमित्तिकार्चने ॥२८८॥
नित्यस्तथैव होमोऽपि केषाञ्चिन्मतमीदृशम् ।
[1]केऽप्याहुर्न तदंगं स न नित्यः काम्य एव हि ॥२८९॥

१—इतश्चतस्रः पंक्तयः ख पुस्तके न सन्ति

पूजायां शारदीयायां वासन्त्यामपि पार्वति ।
कुमारीपूजनं नित्यं काम्यमन्यत्र कथ्यते ॥२६०॥
गुरुं वाऽप्यथवा शिष्यमन्यं वा साधकोत्तमम् ।
कृताकृतावेक्षणार्थमुपद्रष्टारमाचरेत् ॥२६१॥
दीक्षिताः साधिका द्वित्रा उपवेश्याग्रतः प्रिये ।
नियोजयेत्कर्मणि च प्रदाने धूपदीपयोः ॥२६२॥
[नित्यपूजाप्रकरणानुक्तस्य विधेरितो संग्राह्यत्वाभिधानम्]
यन्नोक्तं नित्यपूजायां ग्रन्थगौरवभीतितः ।
तत्सर्वं वक्ष्यते ह्यत्र समासाद् विस्तरेण वा ॥२६३॥
तद्योजनीयं नित्येऽपि रुद्रस्य वचनात् प्रिये ।
[इहानुक्तस्य नित्यपूजाप्रकरणाद् ग्रहणम्]
यद्यन्नैमित्तिके नोक्तं तत्तन्नित्यस्य गृह्यते ॥२६४॥
इत्थं विचारः सकलो नैमित्तिकसमुद्भवः ।
कथितस्ते वरारोहे प्रयोगं शृण्वतः परम् ॥२६५॥
रजन्यां दिवसे वापि विहितार्चनसम्भृतिः ।
कृतनित्यक्रियो दर्भपाणिः शुचिरनन्यधीः ॥२६६॥
पूर्वोक्तासन आसीने वसानो धौतवाससी ।
भूत्वोत्तराशाभिमुख आचामेद् देशिकः शनैः ॥२६७॥
पूर्वार्चिते यन्त्रमूर्ती स्थापयित्वा पुनर्जलैः ।
अपनीय प्रसूनस्रग्गन्धादीन् स्थापयेत् पुरः ॥२६८॥
पूर्ववत्सर्वपात्राणि प्रक्षाल्य च सुरेश्वरि ।
मृद्वासने सुखासीनो यथा विभवकल्पिते ॥२६९॥

न भग्नजीर्णमलिने केशकीटाहते न च ।

[आसनगुणदोषाभिधानम्]

कृष्णाजिनं नाधितिष्ठेदमन्त्रज्ञः कदाचन ॥३००॥

मन्त्रज्ञः संविशेदेव मन्त्रसिद्ध्यर्थमीश्वरि ।

सर्वव्याधिहरं ज्ञेयं सुखदं वसनासनम् ।

द्वीपिकृत्तिः सिद्धिदात्री सुखदं वेत्रनिर्मितम् ॥३०१॥

पाट्टं पुष्टिप्रदं प्रोक्तं ज्ञानकृद्धारिणं तथा ।

बाल्मकं[1] बुद्धिजनकं शैलेयं गदवर्द्धनम् ॥३०२॥

दुःखदा केवला भूमिः बुद्धिघ्नं तार्णमासनम् ।

काष्ठासनं दुर्गतिकृत् पवित्रं मास्करं बहु ॥३०३॥

दालं स्वान्तभ्रमकरं कौशं मोक्षप्रदायकम् ।

मेधाकृत् कौसुमं चापि फालमुच्चाटनप्रदम् ॥३०४॥

धीहार्यं भूमिसंस्पृष्टं तालीयं वशकारकम् ।

नानासिद्धिप्रदं ज्ञेयं न्रस्थिनिर्मितमासनम् ॥३०५॥

आसनानां गुणानेवं दोषान् विज्ञाय चेश्वरि ।

मृदुयोग्यासने पूते संविष्टो भस्मरूषितः । ॥३०६॥

[पूजापूर्वकालिककृत्याभिधानम्]

त्रिपुण्ड्रधृग् बद्धशिखः सितयज्ञोपवीतवान्

नित्यकर्मोदितैर्मन्त्रैः पूजार्थं क्लृप्तवस्तुना ॥३०७॥

सर्वेषां क्रमशः कुर्याच्छोधनं प्रथमं प्रिये ।

तत्रानुक्तस्य तु विधेरितो ग्रहणमाचरेत् ॥३०८॥

१—दारुकं ख ग

एवमत्रानुदीर्णस्य ग्रहणं तत एव हि ।
ज्ञात्वैवं समयं कुर्यात्प्रयोगं दैशकालिकम् ॥३०९॥
स्नानसन्ध्ये न कर्तव्ये एकवारं कृते हि ते ।
अस्पृश्यस्पर्शनादौ तु पूर्वं कार्यं न चेतरम् ॥३१०॥
कौलैस्तु कुलमार्गेण व्यवहर्तव्यमीश्वरि ।
सदाचारानाचरद्भिः स्मार्तैश्च स्मृतिवर्त्मना ॥३११॥
अनुकल्पेन विधिना तथा चैवानुकल्पिकैः ।
प्राणायामं भूतिशुद्धिं नित्यवद् विदधीत वै ॥३१२॥
एकाक्षरं समारभ्य यावन्नवनवार्णिका ।
मन्त्रोपासनकर्तॄणामेका नैमित्तिकी क्रिया ॥३१३॥
ऋष्यादि करषडङ्गं भिन्नं भिन्नमुदाहृतम् ।
बाह्वस्त्राधिक्यतो ध्यानमपि भिन्नं प्रजायते ॥३१४॥
वक्त्रन्यासो वक्त्रपूजा वक्त्राधिक्यान्मतेतरा ।
एवं मन्त्रस्यापि प्रिये[1] विज्ञेयं बुद्धिशालिभिः ॥३१५॥
रीतीरेताः विहायान्याः सर्वेषु मनुषु प्रिये ।
वेदितव्यास्तुल्यतया कौलिकाकौलयोरपि ॥३१६॥
व्याहरिष्याम्यथो सर्वान् प्रयोगान् क्रमसंभवान् ।
दिव्यान विध्नान् दिव्यदृष्टया तथास्त्राय फडीरयेत् ॥३१७॥
पुष्पाक्षतैरान्तरीक्षान् विघ्नानुत्सारयेत्ततः ।
वामपार्ष्ण्यभिघातैश्च त्रिभिर्भौमान् क्रमात् प्रिये ॥३१८॥
तारत्रपाभ्यामाधारशक्तिपद्मासनाय हृत् ।
उच्चार्याक्षतपुष्पाभ्यामासनं स्वं प्रपूजयेत् ॥३१९॥

१—शिवे ख ग घ ङ

कुसुमाक्षतसिद्धार्थानादाय तदनन्तरम् ।
विकीर्यानेन मन्त्रेण कुर्याद् भूतापसारणम् ॥३२०॥
दिवि तिष्ठन्ति ये भूता भूता ये चान्तरीक्षगाः ।
दिवाचरा रात्रिचरा भुवि भूतगणाश्च ये ॥३२१॥
पूजाविघ्नकरा ये ये नानारूपेण संस्थिताः ।
अपसर्पन्तु नश्यन्तु विद्रवन्तु दिशो दश ॥३२२॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा भ्यसन्तं परमं गुरुम् ।
हृदन्तिमं समुच्चार्य प्रणमेद् वामभागतः ॥३२३॥
ततो दक्षे गणेशं च गणेशात् ङेऽन्तमीरयेत् ।
हार्दान्तं प्रणमेद्देवि सम्मुखे तदनन्तरम् ॥३२४॥
शाकिन्यास्तत्तदङ्काङ्कचक्रायै[1] परिकीर्त्य हि ।
हृदन्तिमां गुह्यकालीं प्रणमेन्नम्रकन्धरः ॥३२५॥
गन्धपुष्पे समादाय प्रोक्तास्त्राय फडित्यपि ।
मर्दयित्वा कराभ्यां च घ्रात्वा वामे परित्यजेत् ॥३२६॥
पुनस्तेनैव मनुना कृत्वोर्द्ध्वोर्द्ध्वं परिक्रमम् ।
तालत्रयं वादयित्वा वीक्ष्य पीठार्चनस्थले ॥३२७॥
दशदिग्बन्धनं कुर्यात् छोटिकाभिः षडेव वा ।
भूतशुद्धिं ततः कुर्याद्रीत्या पूर्वोक्तया प्रिये ॥३२८॥
तत्तन्मन्त्रर्ष्यादिमस्मिन् क्षणे न तु षडङ्गकम् ।
प्राणायामं ततः कुर्यात् प्रकारद्वितयेन हि ॥३२९॥

१—चक्रायै ख ग ङ ।

नैमित्तिकार्चनविधावन्यत्रैकं समाचरेत् ।
योगमार्गोदितं कुर्यात् तत्रादावपि पार्वति ॥३३०॥
तत आगम आख्यातं प्रकारद्वयमीदृशम् ।

[योगमार्गोदितप्राणायामविधिनिरूपणम्]

ईडयाकर्षयेद् वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ॥३३१॥
धारयेत् पूरितं योगी चतुषष्ट्या तु मात्रया ।
सुषुम्णामध्यगं सम्यग् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ॥३३२॥
नाड्या पिङ्गलया चैव रेचयेद् योगवित्तमः ।
प्राणायाममिमं प्राह त्रिपुरघ्नस्तु योगिनाम् ॥३३३॥
भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन तथैव च ।
त्रिवारमेको भवति प्राणायामोऽनया दिशा ॥३३४॥

[आगमोदितप्राणायामविधिनिरूपणम्]

शृण्वथागमिकं देवि प्राणायाममनुत्तमम् ।
पूरकं षोडशावृत्त्या स्वेष्टमन्त्रस्य कल्पयेत् ॥३३५॥
कुम्भकं च चतुःषष्ट्या रेचं द्वात्रिंशता तथा ।
इत्थं त्रिवारकरणमावश्यकमुदीरितम् ॥३३६॥
अधिके फलभूयस्त्वमित्थमावश्यकं द्वयम् ।
न्यासौ करषडङ्गाख्यौ ततः कार्यावृषिं विना ॥३३७॥
शिवशक्तिन्यासमतो विदधीत वरानने ।
कालीपञ्जरसंज्ञं च न्यासद्वयमिदं परम् ॥३३८॥

नित्येन विहितावेतौ सर्वं एवं जगुर्वचः ।
नैमित्तिकार्चनविधावावश्यकतयोदितौ ॥३३९॥
अत उद्धारमनयोः कथयिष्यामि दुर्गमम् ।
[शिवशक्त्याख्यन्यासस्य ऋष्यादिनिर्वचनम्]
शिवशक्त्याह्वयस्यास्य वसिष्ठ ऋषिरीरितः ॥३४०॥
जगतीच्छन्द आख्यातं शिवशक्ती च देवते ।
पुष्पमालाह्वयं बीजं शक्तिश्च भगमालिनी ॥३४१॥
कीलकं रत्नकुम्भश्च विनियोगोऽथ कीर्तितः ।
शिवशक्तिसामरस्यजप एव वरानने ॥३४२॥
[शिवशक्त्याख्यन्यासस्य षडङ्गन्यासः]
चर्पटादिचतुष्कैस्तु सौरङ्गाद्यैश्च पञ्चभिः ।
अङ्गुष्ठे हृदये न्यस्येद्भद्रिकाद्यैर्हि पञ्चभिः ॥३४३॥
तर्जनीशिरसोश्चापि मध्यमाशिखयोरपि ।
डिण्डिमान्तफला माल्याद्यैस्त्रिभिः सुरसादिभिः ॥३४४॥
वेदवेद्यादिमं शाम्भवं चिच्छक्तिरतः परम् ।
जगदावृत्तिकमहाकल्पस्थायिसमाह्वयौ ॥३४५॥
अनामिकाकवचयोर्विन्यसेद्देशिकोत्तमः ।
भगमालिन्यादिभूता शक्तिसर्वस्वमित्यपि ॥३४६॥
परापरं ततो वज्रकवचं परिकीर्तितम् ।
शेषे ब्रह्मकपालाख्यं कनिष्ठायां च दृक्त्रये ॥३४७॥
अस्त्रं करतलद्वन्द्वं सुक्तताद्यैर्व्ययान्तिमैः ।
एवं षडङ्ग उदिते न्यासोद्धारमतः शृणु ॥३४८॥

[शिवशक्त्याख्यन्यासस्य मन्त्रोद्धार.]

आदौ तु तारप्रासादौ सर्वत्राचलरूपिणौ ।
ततः शिवस्य नामानि ज्ञातव्यानि चलानि हि ॥३४९॥
तानि ङेन्तानि देवेशि रावस्तस्यानु च स्थिरः ।
एतस्यानु च नामानि शक्तीनां कथितानि हि ॥३५०॥
तानप्यस्थिररूपाणि ङेन्तानि च सुरार्चिते ।
हार्दो मनुः सर्वशेषे सर्वत्रैव स्थिरो मतः ॥३५१॥
इत्युद्धारः समाख्यातो नामान्याकलयाधुना ।

[शिवनामानि]

महादेवो देवदेवो महेश्वर इतः परम् ॥३५२॥
भूर्भुवेश्वरसंज्ञश्च तथा मणिमहेशयुक् ।
मदनान्तकनामा च भुवनेश्वर इत्यपि ॥३५३॥
विमलेश्वर एवं स्यादयोगन्धेश्वरोऽपि च ।
ईशानेश्वर इत्येवं ततो ज्ञेयस्त्रिलोचनः ॥३५४॥
महाबलश्च स्थाणुश्च मल्लिकार्जुन एव च ।
शिवः पञ्चदशतमः कमलेश्वरसंज्ञितः ॥३५५॥
महायोगी नीलकण्ठो भीमेश्वर इतः परम् ।
महानादो महाकालः कपर्दीश्वर एव च ॥३५६॥
त्रयोविंशतमश्चापि त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ।
हरो वृषभध्वजः शङ्करः[१] पशुपतिस्तथा ॥३५७॥

१—श्चन्द्रशेखरः ख. ग. घ. ङ ।

हाटकेश्वरनामा च विरूपाक्षस्ततोऽप्यनु ।
भूतेश्वरः कोटीश्वरः कृत्तिवासास्तथैव च ॥३५८॥
प्रमथेशो भवश्चापि महातेजा इतोऽप्यनु ।
मृत्युञ्जयश्च सर्वज्ञ ऊर्ध्वलिङ्गस्ततोऽप्यनु ॥३५९॥
श्रीकण्ठगङ्गाधरौ च शङ्कुकर्णस्तथैव च ।
वामदेवो महारुद्रः सुवर्णाक्ष इतोऽप्यनु ॥३६०॥
जल्पीश्वरस्तथा भूतेश्वरः शर्वः प्रकीर्तितः ।
अट्टहासश्च पञ्चाशत्तमश्चण्डीश्वरोऽपि च ॥३६१॥
पञ्चाशत्संख्यका एते समाख्याताः सदाशिवाः ।

[शक्तिनामानि]

तावतीरथ शक्तीश्च प्रोच्यमाना निशामय ॥३६२॥
सर्वादिमा विशालाक्षी ततो वै लिङ्गधारिणी ।
ललिता कामुकी चापि कुमुदा विश्वकायया ॥३६३॥
ततः कीर्तिमती विश्वा पुरुहूता ततः परम् ।
मोक्षदायिन्यथो नन्दा ततः स्याद् भद्रकर्णिका ॥३६४॥
भवानी माधवी भद्रा कमला तदनन्तरम् ।
रुद्राणी तत्परा काली कपिला च ततोऽप्यनु ॥३६५॥
कात्यायनी चण्डिका च जयन्ती कामचारिणी ।
मदोत्कटा तथा गौरी रम्भा पार्वत्यनन्तरम् ॥३६६॥
ज्ञानदा भगवत्येवमुमा त्रिंशत्तमा मता ।
[1]महामाया कालरात्रिश्चामुण्डा शूलिनी तथा ॥३६७॥

१—इतः पंक्तित्रयं ख. ग. घ. पुस्तकेषु न सन्ति ।

दुर्गा ततः कालकर्णीं जालन्धर्यप्यनन्तरम् ।
अमृता भोगवत्युक्ता ततोऽपर्णा च सिद्धिदा ॥३६८॥
भ्रामरी महोदरी च मालिनी कौशिकी तथा ।
वाग्वादिनी भैरवी च ततः स्यात् सर्वमङ्गला ॥३६९॥
शिवदूती योगिनी च पञ्चाशदिति कीर्तिताः ।
स्थानानि मातृकानां ते यान्युक्तानि पुरा मया ॥३७०॥
तान्येवास्यापि देवेशि ज्ञातव्यानि क्रमेण हि ।
इत्येवं शिवशक्त्याख्यो न्यासः परमदुर्लभः ॥३७१॥
तीर्थानुल्लेखमात्रेण न्यूनोऽयं षोढयाऽणुकः ।
यः कश्चन विशेषोऽन्यो वर्तते ह्युभयोरपि ॥३७२॥
न तस्मिन् द्वापरः कार्यः स तादृगयमीदृशः ।

[कालीपञ्जरन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

कालीपञ्जरनाम्नोऽस्य न्यासस्य ऋषिरीरितः ॥३७३॥
पैठीनसिः सुप्रतिष्ठाच्छन्दः काली च देवता ।
कालरात्रिर्भवेद् बीजं व्ययः शक्तिर्निगद्यते ॥३७४॥
घटी शङ्कुः कालिकाङ्गकल्पनायां नियोगता ।

[कालीपञ्जरन्यासस्य षडङ्गन्यासः]

विचित्रादिं पाणिगीत्यवसानं हृदयाद्ययोः । ३७५॥
ध्यानादि च वियोगान्तं शिरस्तन्मित्रयोः स्मृतम् ।
विरसादि विदिक्शेषं शिखा तत्सार्थयोरपि ॥३७६॥

सतीर्थ्ये कंकटे पञ्च वियुक्त्यादीनपि स्मरेत् ।
कृत्तिपौरस्त्यतपनविरामं दृग्दृगग्रयोः ॥३७७॥
विकराल्यादीनि पञ्च करपृष्ठास्त्रयोरपि ।

[कालीपञ्जरन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

अभिधास्याम्यथोद्धारमेतस्योभयमीश्वरि ॥३७८॥
सामान्यं च विशेषं च तत्राप्यादिं निशामय ।
द्वे बीजे पुरतो देवि सर्वत्र स्थिरताजुषी ॥३७९॥
ततोऽनु बीजमेकैकं विभिन्नं प्रतिमन्वपि ॥
तस्यानु भिन्नभिन्नाश्च शब्दाः प्रोक्ता वरानने ॥ ३८०॥
तैरात्मिकापदस्यापि विग्रहो ङेविभक्तिकः ।
पुनः त्रिबीजी कूटस्था नामान्यथ पृथक् पृथक् ॥३८१॥
ङे विभक्तीनि तानि स्युः पदं त्वथ परापरा ।
चतुर्थ्येकवचोरूपा स्थिरेयं प्रतिमन्वपि ॥३८२॥
पुनर्बीजत्रयं स्थाष्णु प्रतिमन्त्रं वरानने ।
अन्ते हृदस्त्रशीर्षाणि स्थेयांसि सकलेष्वपि ॥३८३॥
इति सामान्य उद्धारो विशेषमवधारय ।

[कालीपञ्जरन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धरः]

सर्वादिमौ तारराबौ तदन्वेव क्रमादिमम् ॥३८४॥
कुणपान्तं व्युत्क्रमेण वर्णमेकैकमुच्चरेत् ।
अथ शब्दो निर्गुणश्च सगुणस्तदनन्तरम् ॥३८५॥

अदिसर्गो भूतसर्गः प्रतिसर्गस्ततः परम् ।
सत्वं[1] रजस्तमश्चैव गुणा गीत इतः परम् ॥३८६॥
जीवः प्राणश्च बुद्धिश्च ततोऽहङ्कार इत्यपि ।
मनः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धास्ततोऽप्यनु ॥३८७॥
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वाघ्राणवाक्पाणयस्ततः ।
पादं पायुरुपस्थश्च आकशो वायुतेजसी ॥३८८॥
जलं च पृथिवी चैव ततोऽद्वैतमथाक्षरम्
निरञ्जनं च प्रज्ञा च सत्ताभासनिवृत्तयः ॥३८९॥
प्रमाणप्रतिबिम्बौ च नित्यं कैवल्यमित्यपि ।
चैतन्यं परमात्मा च प्रत्ययोपशमावपि ॥३९०॥
निर्वाणं सर्वशेषे च पञ्चाशदिति कीर्तिताः ।
बीजत्रयं भौवनेशी योगिनी कूर्चमेव च ॥३९१॥
कालिकाया अथो नाम पञ्चाशदवधारय ।
चण्डयोगेश्वरी वज्रकापालिन्यप्यनन्तरम् ॥३९२॥
ततो महाडामरी च भवेत् सिद्धिकराल्यपि ।
स्यात् सिद्धिविकराली च चण्डकापालिनी तथा ॥३९३॥
अट्टहासिन्यनु भवेन् मुण्डमालिन्यपि प्रिये ।
कालचक्रेश्वरी चापि ततो डमरुकापि च ॥३९४॥
फेत्कारिणी ततो विश्वग्रासिनी च प्रभञ्जना ।
कुम्भोदरी च चामुण्डा कुरुकुल्ला तथैव च ॥३९५॥

१—इत आरभ्य ४१६ तम श्लोकं यावत् घ पुस्तके नास्ति ।

श्मशानवासिनी फेरुमालिनी च कपालिनी ।
बलाकिनी कालरात्रिरेकानंशा शवाशिनी ॥३९६॥
लम्बोदरी चण्डघण्टा तत उल्कामुखी स्मृता ।
भीमदंष्ट्रा महामायाज्वालामालिन्यनन्तरम् ॥३९७॥
विरूपा मदिराक्षी च बज्रतुण्डी कटंकटा ।
ततो महापूतना च [1]कोकामुख्यप्यनन्तरम् ॥३९८॥
सौदामिनी पिङ्गजटा मातङ्गी कालमर्दिनी ।
संहारिणी महाघोरा महातामस्यथ स्मृता ॥३९९॥
बाभ्रवी शिवदूती च महागुह्या च कौलिकी ।
जालन्धरी ऋक्षकर्णी विद्युत्केशी तथैव च ॥४००॥
गुह्यकाली च चरम एताः पञ्चाशदीरिताः ।
बीजत्रयं चैतदन्ते वधूः कामश्च डाकिनी ॥४०१॥
इत्युद्धारो विशेषाख्यः कालीपञ्जरनामकः ।
नैमित्तिकार्चनविधौ न्यास आवश्यको ह्यसौ ॥४०२॥
अत एवं भवेदङ्गहानिस्तस्य सुनिश्चिता ।
आदावेतौ विधायैव पुनरन्यान् समाचरेत् ॥४०३॥

[पूर्वोक्तैकादशन्यासानामिहावश्यकर्तव्यतानिर्देशः]

यानवोचं पुरा न्यासानहमेकादश प्रिये ।
सर्वानावश्यकत्वेन विदध्याद्देशिकोत्तमः ॥४०४॥

१—कोलमुख्य ख० ग० । कोकानख्य० ङ० ।

एषामेकमपि न्यासमकुर्वन् क्षिप्रकारकः ।
नियोजयत्यङ्गहान्या पूजां नैमित्तिकीं ह्यसौ ॥४०५॥
तस्माद् यत्नेन कुर्वीत न्यासानेकादशापि हि ।

[शिवशक्तिन्यासस्थानप्रसङ्गे निर्देशः]

शिवशक्त्याह्वयन्यासस्थानं मातृकया समम् ॥४०६॥

[कालीपञ्जरन्यासस्थानप्रसङ्गे निर्देशः]

तस्यैव विपरीतं हि कालीपञ्जर ईरितम् ।
मातृकाणीनुसारेण बोद्धव्यं जगदीश्वरि ॥४०७॥
ततः पुनः करषडङ्गन्यासं विदधीत वै ।
सामान्यपीठन्यासं च कुर्वीत तदनन्तरम् ॥४०८॥
ततोऽनु वै योगरत्नपीठन्यासे समाचरेत् ।
एतौ नित्यतया ज्ञेयौ देवि नैमित्तिकार्हणे ॥४०९॥
पीठन्यासौ विधायेत्थं द्वावपि प्राणवल्लभे ।
ततो देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम् ॥४१०॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण सर्वं परिसमाप्य च ।
योगरत्नाह्वयं न्यासं त्रिरुच्चार्य स्पृशन्नुरः ॥४११॥
तारो लज्जा योगिनी च कूर्चवध्वौ च शाकिनी ।
हृदयं भगवत्यै च ससन्धि तदनन्तरम् ॥४१२॥
वज्रकापालिनी ङेन्ता सर्वभूतात्मिका ततः ।
गुह्यकाली च तदनु चराचरपदादनु ॥४१३॥

जगद्रूपिण्यपि तथा ततस्त्रैलोक्यशब्दतः ।
व्यापिका च ततः सर्वात्मसंयोगपदादनु ॥४१४॥
योगपद्मपदं तस्मात् भवेत् पीठात्मिकापदम् ।
पदानि पञ्च ङेन्तानि कार्याणि भानि पार्वति ॥४१५॥
शेषे नमः पदं ब्रूयादेष मन्त्रो मयोदितः ।
पीठन्यासे प्रात्यहिके केचित् कुर्वन्ति साधकाः ॥४१६॥
नैतन् मम मतं देवि न कापालिकमौलयोः ।
यद्यद्ध्यानं यस्य यस्य स तत्तद् विदधीत वै ॥४१७॥

[अर्घ्यपात्रविन्यासप्रकारकथनम्]

अथार्घ्यपात्रविन्यासप्रकारमवधारय ।
भूयान् विशेषो देवेशि विशेषे परिवर्तते ॥४१८॥
सामान्योऽपि च सामान्यप्रकारैः सम्भृतो भवेत् ।
प्रतिमा च विशेषार्घः श्रीपात्रमिति च त्रयम् ॥४१९॥
तुल्यरूपतया पूज्यं विशेषं नैव कारयेत् ।
स्ववामे कालिका दक्षे वारिणानामिकाजुषा ॥४२०॥
त्रिकोणं मण्डलं कुर्याद् भूमौ मन्त्रमनुपठन् ।
तारह्रीयोगिनीरावकूर्चा अस्त्राय फट् ततः ॥४२१॥
तत्र त्रिः पादौ प्रक्षाल्य न्यसेदेनं मनुं पठन् ।
वधूरावरुषोऽस्त्राय फडिति प्रतिकीर्तितम् ॥४२२॥
मैधाङ्कुशरमाकामफेत्कारीशाकिनीस्त्रियः ।
गुह्यकाली विशेषार्घपात्राधारमुदीर्य च ॥४२३॥

स्थापयाम्यनु रोषास्त्रहृदयानि तथा शिरः ।
इत्युक्त्वा स्थापयेत्तत्र त्रिपादीं समरूपिणीम् ॥४२४॥

पुनस्तारामृते मैधं शाकिनी योगिनी स्मरः ।
धूम्रादिदशकलात्मने पालीबीजं ततः परम् ॥४२५॥

बह्निमण्डलतो ङेन्ता हृन्मन्त्रः सर्वशेषगः ।
इति मध्ये पूजयित्वा प्रादक्षिण्यक्रमेण हि ॥४२६॥

कलाभिर्दशभिर्देवि पूजयीत त्रिपादिकाम् ।
ता एव हि कला मन्त्ररीतिः सैव वरानने ॥४२७॥

श्रीपात्रस्थापने या वै पुरा ते कथिता मया ।
विशेषोऽत्राधिकः कोऽपि सोऽधुना परिकीर्त्यते ॥४२८॥

पातालानि समुद्रांश्च पर्वतांस्तदनन्तरम् ।
एकैकस्मिन् देवि पादे वक्ष्यमाणमनुक्रमैः ॥४२९॥

पूजयीत त्रिपाद्यास्तु सिद्धान्तः सार्वतान्त्रिकः ।
तलं तलातलं चैव रसातलमतः परम् ॥४३०॥

पातालं सुतलं चापि प्रतलं सत्तलं तथा ।
मध्ये तारहृदोर्ङेन्तानेतानुच्चारयेत् क्रमात् ॥४३१॥

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकैः ।
एतैरुपपदैः कार्याः समुद्रा ङेन्तरूपिणः ॥४३२॥

इतरत् पूर्ववद्बोध्यं पूर्वपौरस्त्ययोरपि ।
मलयः सह्यबिन्ध्यौ च कैलासो हिमवानपि ॥४३३॥

मेरुर्लोकालोक इति कुर्याद्‌पपदं प्रिये ।
पूर्ववत् पर्वतो ङेन्तश्चाद्यन्तमपि तादृशम् ।।४३४।।

[शङ्खप्रक्षालनमन्त्रः]

रमारामास्मरह्लीभिः शङ्खक्षालनमाचरेत् ।

[अर्घ्यस्थापनमन्त्रः]

मैधप्रणवराचामानृहरिक्रोधविद्युतः ।।४३५।।
ततोऽनु गुह्यकाल्यम्बार्घ्यपात्रं स्थापयामि च ।
अस्त्रं हृच्छिरसी चापि शङ्खस्य स्थापने मनुः ।।४३६।।
भौवनेशी योगिनी च [1]रामाश्रीशाकिनीरुषः ।
क्षेत्रपालखगाधीशाँ तपिन्यादिपदादनु ।।४३७।।
द्वादशकलात्मने च ङेऽन्तं वै सूर्यमण्डलम ।

[शङ्खपूजाविधिः]

हृन्मन्त्रश्चरमे चापि शङ्खार्चा हृन्मनूत्तमः ।।४३८।।
कलाभिश्च द्वादशभिः प्रत्येकं पूर्वमीरितैः ।
मनुभिः पूजयेद्देवि शङ्खं दिक्षु विदिक्षु च ।।४३९।।
जम्बुप्लक्षकुशक्रौञ्चशाकशाल्मलिपुष्करान् ।
द्वीपपूर्वोपपदमापन्नान् ङेन्तांश्च मध्यगान् ।।४४०।।
सर्वान्मैधहृदोः प्रोच्य पूजयीत चतुर्दिशम् ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव ।।४४१।।
त्रिष्टुप् च जगती चैव ङेन्ता एता विनिर्दिशेत् ।
छन्दसे पृथगेवेति पूर्ववच्चेतरन्मतम् ।।४४२।।

१—रावा० ख. ग. घ. ।

भभुर्वः स्वर्महर्जनतपः सत्यपदादनु ।
लोकायान्यत् पूर्वसमं मन्त्रैरेतैश्च पूजयेत् ॥४४३॥
चन्द्रमण्डलनिर्गच्छत्सुधारूपेण चिन्तितैः ।
शुद्धतोयैः क्षकरादीनकारान्तानुदीरयेत् १॥४४४॥
वर्णान् सम्पूरयेच्छंखमनुमन्यं च कीर्तयन् ।
तारमैधे रमारोषौ२योगिनीवनिते तथा ॥४४५॥
रावडाकिन्यमाश्चापि अमृतं पूरयामि च ।
नमः स्वाहा च चरमे मन्त्रोऽयं डामरोदितः ॥४४६॥
अस्त्राय फट् नमः प्रोच्य मूलमन्त्रमपीरयन् ।
गन्धपुष्पाक्षतान्यत्र प्रक्षिपेद्देवताधिया ॥४४७॥
दद्याद् यवान् कुशाग्रांश्च तिलानथ च सर्षपान् ।
दूर्वाङ्कुराणि दुग्धं च सिन्दूरं कज्जलं तथा ॥४४८॥
द्रव्याष्टकप्रदाने तु मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ।

[दिगम्बरमतेन धूपदीपनैवेद्यार्पणकथनम्]

धूपप्रदीपनैवेद्यं ददत्यत्र दिगम्बराः ॥४४९॥
अदाने नाङ्गहानिः स्याद्दाने तु फलभूमता ।
इष्टदैवतरूपं च जलं तच्च विभावयेत् ॥४५०॥
तीर्थावाहनमन्त्रेण तत्र तीर्थं प्रसाधयेत् ।
मुद्रयाङ्कुशनाम्न्या वै जलमालोडयेच्छनैः ॥४५१॥

१—नुदीरयन् ख ग घ ङ । २—रावी ख ग घ ।

आगमोक्तेन मन्त्रेण पूजयीत ततो जलम् ।
मैधत्रपारमामायावधूकामसुधारुषः ॥४५२॥
रावाङ्कुशौ डाकिनी च फेत्कारी नृहरिस्तथा ।
कामप्रदामृताद्युक्त्वा नु षोडशकलात्मने ॥४५३॥
सोममण्डलमुच्चार्य ङेऽन्तमर्घामृतं च हृत् ।
वामावर्तक्रमेणैव कलाषोडशभिस्ततः ॥४५४॥
शङ्खमध्यस्थितं तोयं पूर्ववन्मनुभिर्यजेत् ।

[पूज्यतीर्थनामानि]

पुष्करं च प्रभासं च तथा चामरकण्टकम् ॥४५५॥
वाराणसी प्रयागश्च गया कनखलं तथा ।
एतान्युपपदानि स्युस्तीर्थस्य ङेऽन्तरूपिणः ॥४५६॥
तारहृन्मन्त्रयोरन्तः स्थितैरेतैः प्रपूज येत् ।

[पूज्यनदनदीनामानि]

शोणसिन्धुहिरण्याक्षकोकलोहितघर्घराः ॥४५७॥
शतद्रुश्चेत्यमीषां प्राक् चैतन्यं समुदीरितम् ।
नदाय नम इत्यन्ते सविग्रहमिमैर्यजेत् ॥४५८॥
गङ्गा ततोऽनु यमुना ततोऽनु च सरस्वती ।
गोदावरी नर्मदा च काबेरी च महानदी ॥४५९॥
एता ङेन्ता नदी चापि प्रत्येकं कुलयोषितः ।
परः पूर्वं हृन्मनुश्च पुनरेतैः प्रपूजयेत् ॥४६०॥
एवं त्रिषष्टिरुदिता अधिका ग्रर्घ्यकर्मणि ।
जलं स्पृष्ट्वा मूलमन्त्रमष्टधा परिकीर्तयेत् ॥४६१॥

मन्त्राङ्गानि च विन्यस्य अस्त्राय फडिति त्रिभिः ।
तालत्रयं च दिग्बन्धं कृत्वा हूमिति कीर्तयेत् ॥४६२॥
दीर्घाधोमुखतर्जन्या पाथसि भ्राम्यमाणया ।
अवगुण्ठ्य ततो धेनुमुद्रया करबद्धयोः ॥४६३॥
अमृतीकृत्य संरोधमुद्रया संनिबोधयेत् ।
अतः स्वदक्षिणेऽस्त्राय फडिति प्रतिकीर्तयेत्[1] ॥४६४॥
क्षालयेत् प्रोक्षणीपात्रं हूं फट् नम इतीरयन् ।
स्थापयीत त्रिपाद्यां तु ताररावौ समुद्गिरन् ॥४६५॥
गन्धपुष्पे विनिःक्षिप्य दूर्वाक्षतसमन्विते ।
विशेषार्घजलं किञ्चिच्छनैस्तत्र विनिःक्षिपेत् ॥४६६॥
अर्घ्यस्योत्तरतः कुर्यात् पाद्यमाचमनीयकम् ।
स्नानीयपात्रं विन्यस्येन्माधुपर्कं च भाजनम् ॥४६७॥
विशेषार्घजलं किञ्चित् प्रोक्षण्यादाय पार्वति ।
पूजासाधनवस्तूनि पीठमात्मानमेव च ॥४६८॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य तज्जलेनाभिषिञ्चयेत् ।
अर्घ्यादीनि तु पात्राणि विलुम्पन्ति हि राक्षसाः ॥४६९॥
तस्माद् हूमिति संप्रेक्ष्य[2] कुशै रेखां विनिर्दिशेत् ।
याम्यां समारभ्य दिशं कौवेर्यां परिशिष्यते[3] ॥४७०॥

१· प्रतिकीर्तयन् ख· ग· ङ· । २· जलैः ख· ग· घ· ।
३· परिपूर्यते ख. घः ङ. ।

अस्त्राय फडिति प्रोच्य तालत्रयमुदीरयेत्[1] ।
दिग्बन्धनेन संरक्षेत् तानि पात्राणि सुन्दरि ॥४७१॥

[आत्मपूजाविधिः]

अथात्मपूजां कुर्वीत देशिको विधिनामुना ।
तत्तत्स्थाने स्वदेहे तु पीठन्यासक्रमेण हि ॥४७२॥
धर्माय नम इत्यादीन् धर्मादीन् पीठमन्त्रगैः ।
संपूज्य गन्धपुष्पाभ्यां हृत्पङ्के चेष्टदेवताम् ॥४७३॥
[2]विधिना स तद्रूपतया ध्यातमात्मानमीश्वरि ।
पृथग्[3] गतैर्गन्धपुष्पधूपदीपादिविस्तरैः ॥४७४॥
चतुर्भिरुपचारैश्च पूजयेद् देवताधिया ।
मस्तके हृदये मूलाधारे पादे तथैव च ॥४७५॥
सर्वेष्वङ्गेषु वै दद्यात् कुसुमाञ्जलिपञ्चकम् ।
क्रोडसंस्थापितोत्तानकरयुग्मः सुनिश्चलः ॥४७६॥
समकायशिरग्रीवो विनिमीलितलोचनः ।
समस्तैश्वर्यसंपन्नं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम् ॥४७७॥
भासयन्तं जगत्सर्वं स्वतेजोभिरहर्निशम् ।
विभाव्य हंसः सोऽहमिति जपन्मन्त्रमनन्यधीः ॥४७८॥
देवाकारतयात्मानं भावयन् शुद्धया धिया ।
आनन्दाब्धिविनिर्मग्नो निरुच्छ्वासोऽपरिप्लवः ॥४७९॥

१–मुदीरयन् ख. ग. घ. ङ. २–विचिन्त्य ख० ग० घ० ।
३–पृथक् कृतै ङ० ।

यथेष्टं चिन्तयंस्तिष्ठेदिदमात्मप्रपूजनम् ।
समर्चयेत्ततो देवि गुरूपंक्तिं समाहितः ॥४८०॥
वायव्यकोणादारभ्य मूलपीठस्य सुन्दरि ।
वारुणीककुभं यावद् गुरूनष्टौ प्रपूजयेत् ॥४८१॥
आदौ तु मैधपरमौ हार्दो मन्त्रश्च पश्चिमे ।
मध्ये भ्यसन्ता विज्ञेया गुरुपंक्तिः सुरेश्वरि ॥४८२॥
गुरुरादौ केवलस्तु गुरोः पूर्वपदान्यतः ।
परमः प्रथमस्तेषां परापर इतः परम् ॥४८३॥
परमेष्ठी च परमपरापर इतोऽप्यनु ।
परमात् परमेष्ठी च षष्ठः परिनिगद्यते ॥४८४॥
परापराच्च परमेष्ठी ततः परमुच्यते ।
परमपरापरतः परमेष्ठी ततः परम् ॥४८५॥
मुख्यः पक्षोऽयमुदितो गौणं संप्रति कीर्तये ।
स्थाने द्विबीजयोर्देवि श्रीकारः परिनिष्ठितः ॥४८६॥
गुरुः परमगुरुश्चापि परमेष्ठिगुरुस्तथा ।
भ्यसन्तता हार्दमन्त्रशेषता तुल्यरूपिणी ॥४८७॥
एवं पंक्तित्रयी कार्या केषांचिन्मतमीदृशम् ।
ततो गणेशमाग्नेये नैर्ऋत्ये भास्करं तथा ॥४८८॥
वायव्ये विष्णुमैशान ईशानं परिपूजयेत् ।
ङेऽन्तो महागणपतिर्गणेशहृदयान्तरा ॥४८९॥

दशाक्षरो महामन्त्रो गणेशस्यायमीरितः ।
महागणपतिदशाक्षरमन्त्रस्य पार्वति ॥४६०॥
वीतहव्यऋषिः प्रोक्तः पंक्तिश्छन्द उदीर्यते ।
महागणपतिश्चापि देवता परिकीर्तिता ॥४६१॥
अमाबीजं तु बीजं स्यादावेशः शक्तिरुच्यते ।
सोमः कीलकमुद्दिष्टं नियोगो विघ्नशान्तये॥४६२॥
अप्सरोऽन्वितमात्सर्यवैश्वदेवर्षभान्वितैः ।
प्रयाजैः सभयायुक्तैः षडङ्गद्वयमाचरेत् ॥४६३॥
ध्यानं ततः प्रकुर्वीत पुष्पमादाय देशिकः ।

[गणपतिध्यानम्]

खर्वं महास्थूलतरं सिन्दूरारुणविग्रहम् ॥४६४॥
लम्बमानमहापीनोदरं रक्तत्रिलोचनम् ।
महागजेन्द्रवदनं शुण्डादण्डविराजितम् ॥४६५॥
दानधारागन्धलुब्धभ्रमद्भ्रमरराजितम् ।
मूषिकेन्द्रपरिन्यस्तपद्मासनसुखोषितम् ॥४६६॥
चतुर्भुजं दक्षकरे परशुं जपमालिकाम् ।
वामे स्वभग्नदन्तं च मोदकं तदधोऽपि च ॥४६७॥
मोदकोपरि विन्यस्तशुण्डं पीतोरुयुग्मकम् ।
गिरिजानन्दनं भग्नैकदन्तं गणनायकम् ॥४६८॥
सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वसिद्धिविधायकम् ।
ध्यात्वैवं पूजयेत् पाद्यादिभिः पुष्पानुलेपनैः ॥४६९॥

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पृथगेवोपकल्पितैः ।
ततोऽक्षतैः प्रकुर्वीत तस्यावरणपूजनम् ॥५००॥
लम्बोदरो वक्रतुण्डो गजवक्त्रस्तथैव च ।
हेरम्ब एकदन्तश्च महाकायस्ततः परम् ॥५०१॥
गणाधिपतिरित्येवं तथा विघ्नविनायकः[1] ।
प्रणवादिनमोऽन्तैश्च ङे'ऽन्तैरेतैः प्रपूजयेत् ॥५०२॥
सप्तविंशतिवारांश्च जपित्वा मन्त्रमुत्तमम् ।
समर्प्यानेन मन्त्रेण प्रणमेद् भक्तिभावितः ॥५०३॥
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरोत्तमैः ।
सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ॥५०४॥
विधायेत्थं गणेशार्चां भास्करार्चामथाचरेत् ।
मन्त्रो दण्डत्रपादित्यैस्त्र्यक्षरस्तस्य कीर्तितः ॥५०५॥

[सूर्यपूजार्थं तस्य ऋष्यादिकथनम्]

श्रीसूर्यं त्र्यक्षरस्यास्य मन्त्रस्य ऋषिरध्वरः ।
मध्याच्छन्दः समुद्दिष्टं श्रीसूर्यो देवता तथा ॥५०६॥
गोंऽशुशुक्ला क्रमाज्ज्ञेया बीजशक्तिककीलकाः ।
सर्वपापक्षयायास्य विनियोगः प्रकीर्तितः ॥५०७॥
दण्डादिपञ्चकैर्मेषान्वितैः क्रमगतैः प्रिये ।
द्विषडङ्गं संविधाय ध्यायेत् पुष्पं प्रगृह्य हि ॥५०८॥

१· तथा च विघ्ननायकः ख ग ।

[सूर्यध्यानम्]

जपापुष्पसमाभासं तिमिरौघप्रमर्दकम् ।

सहस्रकिरणं देवं रथोपरि निविष्टितम् ॥५०९॥

वाजिरूपधरैः सप्तच्छन्दोभिः परिभूषितम् ।

रथं चारुणयन्तारमध्यासीनं महाप्रभम् ॥५१०॥

श्रुतिस्वरं दक्षहस्ते वामे पद्मं च बिभ्रतम् ।

द्विभुजं रत्नमुकुटहारकेयूरमण्डितम् ॥५११॥

कालचक्रविनिर्माणहैतुकं सर्वरूपिणम् ।

ध्यात्वैवं पूजयेत् सर्वोपचारैः पृथगादृतैः ॥५१२॥

[सूर्यस्यावरणपूजाविधिः]

ततोऽक्षतप्रसूनाभ्यां कुर्यादावरणार्चनम् ।

आदित्यस्तपनः सूर्यो दिवाकरविकर्तनौ ॥५१३॥

मार्तण्डो भास्करो हंसो नामाष्टकमिदं शुभम् ।

प्रणवादि नमः शेषैश्चतुर्थ्येकवचोन्वितैः ॥५१४॥

पूजयित्वा जपं कृत्वा स्तुत्वा चैव विसर्जयेत् ।

[सूर्यविसर्जनमन्त्रः]

तमः पापप्रणाशाय जगन्नेत्राय भास्वते ॥५१५॥

प्रवर्तकाय वेदानां भास्कराय नमो नमः ।

[हृषीकेशपूजाविधिः]

ततोऽर्चयेद् हृषीकेशं कोणे वायव्यसंज्ञिते ॥५१६॥

तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि सावधाना निशामय ।
भूयःसु तस्य मन्त्रेषु तिष्ठत्सु जगदीश्वरि ॥५१७॥

[हृषीकेशस्य द्वादशाक्षरमन्त्रस्योत्कृष्टताभिधानम्]

द्वादशाक्षरिको मन्त्रः सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ।
आदौ प्रणवमुद्धृत्य नमो भगवते ततः ॥५१८॥
वासुदेवाय शेषे च मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ।

[उक्तमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

द्वादशाक्षरमन्त्रस्य ऋषिर्नारद उच्यते ॥५१९॥
जगतीच्छन्द आख्यातं वासुदेवश्च देवता ।
प्रणवो बीजमुदितं कामः शक्तिरुदाहृता ॥५२०॥
रमाबीजं कीलकं स्याद् विनियोगश्च मुक्तये ।

[उक्तमन्त्रस्य षडङ्गन्यासः]

हृदयाङ्गुष्ठयोस्तारस्तर्जनीशिरसोर्नमः ॥५२१॥
शिखामध्यमयोश्चापि भवेद् भगवते पदम् ।
अनामिकाकवचयोर्वासुदेवाय चेत्यपि ॥५२२॥
मन्त्रः समस्तो विज्ञयो नेत्रत्रयकनिष्ठयोः ।

[केषाञ्चिन्मते मन्त्रस्यास्य पञ्चाङ्गन्यासविधिः]

त्रिवारोच्चारणं तस्य ज्ञेयं करतलास्त्रयोः ॥५२३॥
नेत्रत्रयं केचिदस्य नेच्छन्ति सुरवन्दिते ।
हृदयं प्रणवेनैव हार्देन च शिरस्तथा ॥५२४॥
शिखावर्णैश्चतुर्भिः स्यात् कवचं पञ्चभिस्तथा ।
समस्तेनोदितं चास्त्रं पञ्चाङ्गो मनुरेष हि ॥५२५॥

शिरोललाटनयन[1],मुखकण्ठकरद्वये ।
[2]हृदये कुक्षिनाभ्योश्च लिङ्गे जानुपदद्वये ॥५२६॥
प्रणवादिनमोऽन्तेन एकैकं द्वादशाक्षरम्[3] ।
मध्ये विन्यस्य देवेशि न्यसेदेतेषु वै क्रमात् ॥५२७॥
ततो ध्यानं प्रकुर्वीत पुष्पमादाय साधकः ।

[हृषीकेशध्यानम्]

क्षीराब्धौ शेषभोगीन्द्रभोगपर्यङ्कवासिनम् ॥५२८॥
इन्दीवरदलश्यामं पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
स्निग्धकुन्तलसंभिन्नमाणिक्यमुकुटोज्ज्वलम् ॥५२९॥
कोटिचन्द्रसमानास्यं भ्राजन्मकरकुण्डलम् ।
श्रीवत्सवक्षसं राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥५३०॥
काश्मीरपिङ्गलोरस्कं[4] पीताम्बरधरं हरिम् ।
हारकेयूरकटकरसनादिभिरूर्जितम् ॥५३१॥
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाम्बुजम् ।
धारयन्तं हसन्तं च स्तुवन्तं वीक्ष्य सेवकम् ॥५३२॥
ब्रह्मादिभिः सुरगणैः स्तूयमानपदाम्बुजम् ।
बद्धाञ्जलिपुटं तार्क्ष्यं वीक्ष्य स्मेराननं पुरा ॥५३३॥
जगद्योनिं त्रिलोकीशं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ।
कौस्तुभोद्भासिहृदयं नानारत्नविभूषितम् ॥५३४॥

---

१. जघन ख ग घ ।
२. पंक्तिरियं ख ग पुस्तकयोर्नास्ति ।
३. मानवा० ङ ।
४. पिङ्गलोवक्षं ख ग ।

ध्यात्वा संपूजयेद् विष्णुमुपचारैः सुकल्पितैः ।

[हृषीकेशस्यावरणपूजाविधिः]

नैवेद्यदीपधूपाद्यैर्विशेषेण प्रपूजयेत् ॥५३५॥

कुर्यात्ततश्चावरणपूजामस्य सुरेश्वरि ।

माधवः पुण्डरीकाक्षो हृषीकेशो जनार्दनः ॥५३६॥

दामोदरः पद्मनाभो वैकुण्ठो गरुडध्वजः ।

चतुर्थ्यन्तेन तारादि नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ॥५३७॥

[हृषीकेशशक्तिपूजाविधिः]

पुनरेषां तथाष्टौ च शक्तीः संपूजयेत् क्रमात् ।

लक्ष्मीः पद्मा च कमला श्रीश्च क्षीरोदनन्दिनी ॥५३८॥

जगन्माता भूतिदात्री शेषगा हरिवल्लभा ।

[हृषीकेशास्त्रपूजाविधिः]

तृतीयेऽस्त्राणि च तथा पूजयीत वरानने ॥५३९॥

पाञ्चजन्यं ततश्चापि सुदर्शनमुदाहृतम् ।

कौमोदकीं शोणदलं नन्दकं कौस्तुभं तथा ॥५४०॥

श्रीवत्सं वनमालां च चतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ।

यथाशक्ति जपं कृत्वा समर्प्य स्तुतिमाचरेत् ॥५४१॥

[हृषीकेशस्तुतिः]

अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।

वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ॥५४२॥

वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ।

दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ॥५४३॥

गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तं तमपराजितम् ।
अधोक्षजं जगद्बीजं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम् ।।५४४।।
अनादिनिधनं देवं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ।
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ।।५४५।।
पीताम्बरं चक्रधरं वनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभिनं श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् ।।५४६।।
प्रपद्येऽहं महाविष्णुं सर्वकामप्रसिद्धये ।

[महेशानपूजाविधिः]

ततोऽर्चयेन् महेशानमीशाने विदिशि प्रिये ।।५४७।।

[महेशानस्य मन्त्रत्रयनिर्देशः]

मूलमन्त्रास्त्रयो ह्यस्य तारो हृत् ङेऽन्तयुक् शिरः ।
मृदादि[1]क्लृप्तलिङ्गानां पूजनेऽयं मनुर्मतः ।।५४८।।
पञ्चक्रमेण मृल्लिङ्गमर्चयेत् स्वहितं चरन् ।
अथोत्क्रम्याचरेद् यस्तु सगणः स व्रजत्यधः ।।५४९।।
एकाक्षरश्च प्रासादबीजमस्यापरो मनुः ।
शैलेयाद्यवरं लिङ्गं प्रासादस्थं स्वयम्भुवा ।।५५०।।
पूजयेदमुना देवि सदैव मनुनाऽमुना ।
तैजसं स्फाटिकं वापि रात्नं मारकतं तथा ।।५५१।।
नार्मदं सौतमपि वा पञ्चायतन इष्यते ।
तारो हृत् सन्धियुङ् ङेऽन्तो नीलकण्ठो गजाक्षरः ।।५५२।।

---

१. ०दिक्रम लि० क० ।

[महेशानमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋषिरस्य भरद्वाजः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ।
देवता नीलकण्ठश्च प्रासादो बीजमेव च ॥५५३॥

प्रणवः शक्तिराख्याता पाशः कीलकमेव च।
विनियोगस्तु कैवल्यपदलाभाय केवलम् ॥५५४॥

[उक्तन्यासस्य षडङ्गन्यासः]

द्विधा करषडङ्गानि शृण्वमुष्य सुरेश्वरि ।
अध्वामनोरुट् समाधिप्रासादा मठचपि क्रमात् ॥५५५॥

सद्योजातो वामदेवोऽघोरस्तत्पुरुषोऽपि च ।
ईशानः स्यादथ सदाशिवो ङेऽन्तो युतस्तथा ॥५५६॥

स्वस्वमन्त्रैश्च चरमे न्यासं चास्यापरं शृणु ।
प्रासादयोर्मध्यगतमेकैकं मानवाक्षरम् ॥५५७॥

ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च वदने कण्ठ एव च ।
वक्षोजठरयोर्लिङ्गे पादयोरपि विन्यसेत् ॥५५८॥

[महेशानध्यानम्]

ध्यानं ततः प्रकुर्वीत गृहीत्वा कुसुमाक्षते ।
स्वच्छस्फटिकसंकाशं जटाजूटविराजितम् ॥५५९॥

पञ्चवक्त्रं त्रिनयनं प्रतिवक्त्रं कपर्दिनम् ।
विभूतिभूषिततनुं चन्द्रार्धकृतशेखरम् ॥५६०॥

व्याघ्रचर्मपरीधानं गजकृत्त्युत्तरीयकम् ।
भोगीन्द्रावद्धकटकांगदहारोपवीतिनम् ॥५६१॥

रजताचलदेहाभं नानारत्नोल्लसत्तनुम् ।
अष्टपत्राम्बुजगतं योगपट्टविभूषितम् ॥५६२॥
चतुर्बाहुं दक्षभुजे परशुं वरमेव च ।
वामे मृगमभीतिं च धारयन्तं हसन्मुखम् ॥५६३॥
पार्वत्या सह कुर्वाणमालापान् ज्ञानबृंहितान् ।
कालकूटाशनं नीलकण्ठच्छविविभूषितम्[1] ॥५६४॥
विष्णुस्वरूपवृषभवाहनं मदनान्तकम् ।
नन्दिभृङ्गिमहाकालप्रमथादिगणैर्वृतम् ॥५६५॥
श्मशानवासिनं देवं किञ्चिन्मीलितलोचनम् ।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्मातृसंघैश्च सेवितम् ॥५६६॥
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं दयालुं सर्वजन्तुषु ।
देवदेवेश्वरं रुद्रं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम् ॥५६७॥
चिन्तयेदीदृशं देवि सर्वकामार्थसिद्धये ।
उपचारैस्ततः पाद्यादिभिः सर्वैः प्रपूजयेत् ॥५६८॥
विशेषतो विभूतिं च दद्याच्चन्दनलेपवत् ।
विल्वपत्रादिभिः पुष्पैर्विहितैरपि पूजयेत् ॥५६९॥
नैवेद्यदीपधूपादिसंभारैरपि तोषयेत् ।

[महेशानावरणार्चाविधिः]

आवृत्त्यर्चां ततः कुर्याद् वक्ष्यमाणक्रमेण हि ॥५७०॥
आदौ तारो हृच्चरमे मध्ये ङेऽन्तं पदद्वयम् ।
भिन्नभिन्नं वरारोहे तेनावरणमर्चयेत् ॥५७१॥

१. विराजितम् घ. ङ.

पुष्पाक्षते समादाय प्रत्येकं मन्त्रमुच्चरन् ।
रुद्रश्च ब्रह्ममूर्तिश्च शङ्करो विष्णुमूर्तियुक् ।।५७२।।
महेश्वरः सृष्टिमूर्तिरनन्तः स्थितिमूर्तिधृक् ।
हरः संहारमूर्तिश्च पिनाकी जन्ममूर्तिमान् ।।५७३।।
मृत्युञ्जयो मृत्युमूर्तिः शिवः कल्याणमूर्तियुक् ।
ङेऽन्तः सर्वत्र कर्तव्यो मूर्तिशब्दो न चेतरः ।।५७४।।
एवमीदृक्प्रकारेण मन्त्रः पौराणिको भवेत् ।
तेनापि पूजयेद्देवि द्वितीयावरणार्चनम् ।।५७५।।
शर्वः क्षितिर्भवश्चापि जलं रुद्रोऽग्निरेव च ।
उग्रो वायुस्तथा भीम आकाशः कथितः प्रिये ।।५७६।।
पशुपतिर्यजमान ईशानः सूर्य एव च ।
महादेवस्तथा सोमः सर्वमन्यत् पुरोक्तवत् ।।५७७।।
शिवशक्त्यात्मिकान्यार्चा कर्तव्यावरणार्चने ।
शक्तिरादौ शिवोऽप्यन्ते भ्यामन्तौ विग्रहीकृतौ ।।५७८।।
आद्यन्तयोस्तारहृदो दत्वा देवि प्रपूजयेत् ।
उमामहेश्वरस्त्वादौ भवानीशङ्करस्ततः ।।५७९।।
शिवाभवश्च रुद्राणीश्रीकण्ठस्तदनन्तरम् ।
पार्वतीगिरिशो गौरीशशिशेखर एव च ।।५८०।।
दुर्गात्रिलोचनश्चापि चण्डिकामदनान्तकः ।
सद्योजातादिकाः पञ्च महादेवसदाशिवौ ।।५८१।।

विश्वेश्वरो ङेऽन्तरूपास्ताराद्या हृदयान्तिमाः ।
क्रमे पाशुपते तावदियमन्यावृतिक्रिया ॥५८२॥

[महेशानास्त्रपूजाविधिः]

पूजयीत ततोऽस्त्राणि ङेऽन्तं तारहृदन्तिमैः ।
त्रिशूलं डमरुश्चापि खट्वाङ्गं परशुस्तथा ॥५८३॥
पिनाकोऽङ्कुशशक्ती च पाशः पूर्ववदप्यमी ।
एते सर्वे तु पूर्वादिदिश आरभ्य पार्वति ॥५८४॥
समापनीया ऐशान्यामथान्यावरणार्चनम् ।
नन्दीश्वरो महाकालो भृङ्गीश्वर इतः परम् ॥५८५॥
चण्डेश्वरश्च वृषभो मृगः पद्मासनं तथा ।
रुद्राक्षमाला शेषेऽपि पूर्ववन्मन्त्रकल्पना ॥५८६॥
एवमावरणीयार्चाः षडेव परिकीर्तिताः ।
ततो जपं प्रकुर्वीत यावच्छक्यं सुरेश्वरि ॥५८७॥
समर्प्य च स्तुतिं कुर्यादेभिः मन्त्रैः समाहितः ।

[महेशानस्तुतिः]

नमस्ते नीलकण्ठाय जटिने कृत्तिवाससे ॥५८८॥
कपर्दिने त्रिनेत्राय शूलखट्वाङ्गधारिणे ।
मुण्डाय विकरालाय सोमसूर्याग्निचक्षुषे ॥५८९॥
शितिकण्ठाय रुद्राय भीमाय वरदाय च ।
पूष्पोदन्तविनाशाय भगनेत्रनिपातिने (?) ॥५९०॥

शम्भवे त्रिपुरघ्नाय सर्वज्ञाय पिनाकिने ।
महेश्वराय शर्वाय हिरण्यपतये तथा ॥५६१॥
दक्षयज्ञविनाशाय कालमृत्युविमर्दिने ।
वर्षीयसेति बालाय प्रांशवे वामनाय च ॥५६२॥
सर्वेषां पूर्वजाताय श्मशानारण्यवासिने ।
जगल्लिङ्गाय भर्गाय लिङ्गरूपधराय च ॥५६३॥
निषङ्गिणे धन्विने च रथिने वर्मिणे तथा ।
उग्राय प्रमथेशाय विरूपाक्षाय मीढुषे ॥५६४॥
मृत्युञ्जयाय रुद्राय स्थाणवे शशिमौलये ।
इन्द्रे[?]ऽरुणाय ताम्राय वृषस्कन्धगताय च ॥५६५॥
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महादेवाय ते नमः ।
शिव शम्भो महादेव नीलकण्ठ त्रिलोचन ॥५६६॥
शर्व रुद्र भवेशान महेश हर शङ्कर ।
इमं श्लोकं तथा वारपञ्चकं समुदीरयेत् ॥५६७॥
मुखवाद्यादिकं कृत्वा प्रणमेच्च पुनः पुनः ।

[देव्या आवाहनविधिः]

ऋष्यादिकं पुनः कुर्यात्तथा करषडङ्गकम् ॥५६८॥
आवाहनं ततः कुर्याद्देव्याः पूर्वोक्तमुद्रया ।
न पूर्वोक्तेन मन्त्रेण स भिन्नोऽन्योऽस्ति तं शृणु ॥५६९॥

[देव्या आवाहनमन्त्रः]

तारमैधौ त्रपालक्ष्म्यौ कालीकूर्चौ वधूस्मरौ ।
ताक्ष्यार्ङ्कुशौ ततः प्रेतभैरव्यौ शक्तिविद्युतौ ॥६००॥

मुक्तामहानृसिंहाश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी बीजानामेकविंशतिः ॥६०१॥
सत्त्वकूटं च हैरण्यगर्भकूटं ततः परम् ।
कूटे पुष्करभासाख्येऽनाख्यासंहारनामनी ॥६०२॥
स्वाधिष्ठानादित्रयं च वैपरीत्येन कीर्तयेत् ।
एवं नवैव कूटानि तत एह्येहि कीर्तयेत् ॥६०३॥
संबुद्धिर्भगवत्याश्च बज्रकापालिनीरयेत् ।
तद्वत् सिद्धिकराली च स्यात् सिद्धिविकराल्यपि ॥६०४॥
तथा महागुह्यकाली पञ्चापि सममूर्तयः ।
सान्निध्यं कुरुयुग्मं च ततः स्वयमधिष्ठिता ॥६०५॥
भवद्वयं पुनर्मन्त्रमयपीठ इतीरयेत् ।
ज्वलप्रज्वलयुग्मं च स्फुर प्रस्फुर च द्वयम् ॥६०६॥
सर्वान्तर्यामिनि प्रोच्य विश्वव्यापिनि कीर्तयेत् ।
जयद्वयं[1] जीवयुगं युगलं हस कीर्तयेत् ॥६०७॥
श्मशानवासिनि महाट्टाट्टहासिनि तत्परम् ।
जगद्भासिनि चाभाष्य कूटानि नव तानि वै ॥६०८॥
बीजानि तान्यपि पुनर्वैपरीत्येन कीर्तयेत् ।
अस्त्रद्वयं हृच्छिरसी सर्वशेषे विभावयेत् ॥६०९॥
भवेदेकशताशीतिमयवर्णो मनूत्तमः ।
अनेनावाहनं कुर्यान्नैमित्तिकसमर्हणे ॥६१०॥

१. जयद्वन्द्वं ख. ग. ।

नित्यावाहनमिच्छन्ति केचिदप्यमुना प्रिये ।
कुर्वतोऽनेन तेनापि फलाधिक्यं प्रजायते ॥६११॥
आवाहनान्तरगा याः क्रियाः समुदीरिताः ।
मुद्रा याश्च समानास्ता विधेया उभयोरपि ॥६१२॥
पीठं तदनु संस्पृश्य कुशेन कुसुमेन वा ।
स्थिरपीठप्रतिष्ठान्ता [1]प्रकुर्यान्मनुनामुना ॥६१३॥
त्रिपुरायाः प्रकरणे मन्त्रोऽयं यद्यपीरितः ।
तथापि किञ्चिद्वैशेष्यमस्ति तेन पुनर्वदे ॥६१४॥
नित्यं प्राणप्रतिष्ठां ये कुर्वन्ति मनुनामुना ।
का पूजा तैर्न विहिता किं कृतं सुकृतं न च ॥६१५॥
किं नोपकरणं दत्तं के सम्भाराः न तैः कृताः ।
एतन्मन्त्रकृतप्राणप्रतिष्ठा गुह्यकालिका ॥६१६॥
विधाय मूर्तिं दिव्यां स्वां सर्वदैवततेजसा ।
तस्मिन् पीठे कृतावासा तिष्ठत्येव न संशयः ॥६१७॥
मन्त्रं मया प्रोच्यमानं निबोधातः परं प्रिये ।

[पीठप्राणप्रतिष्ठामन्त्रः]

मैधत्रयं भौवनेशी रमापाशाङ्कुशास्ततः ॥६१८॥
प्रेतः परा कामवध्वौ प्रासादक्षेत्रपावपि ।
योगिनीनरसिंहौ च सूत्रं शैशुकमेव च ॥६१९॥
डिण्डिमव्ययघट्यश्च तत उत्कोचिनी मता ।
विधृतिर्विदिगस्यानु ततो ब्रह्मकपालकम् ॥६२०॥

---

१. कुर्याच्च ख ग घ ।

महाकल्पस्थायिबीजं स्युरेवं पञ्चविंशतिः ।
भगवत्या गुह्यकाल्याः संबुद्धिरुभयोस्ततः ।।६२१।।
शाम्भवेन समाभाष्य महसेति ततो वदेत् ।
मनावमुष्मिन् सर्वत्र ज्ञेयं सन्धिविवर्जितम् ।।६२२।।
आत्मानं ते कल्पयामि भैमेनेति ततः परम् ।
मनस्ते कल्पयाम्युक्त्वा रौद्रेणेति ततो वदेत् ।।६२३।।
वक्त्रं ते कल्पयाम्युक्त्वा नैललोहित ईरयेत् ।
न जटान्ते कल्पयापि सोमसूर्या ततः परम् ।।६२४।।
ग्नेयैश्चक्षूंषि ते प्रोच्य कल्पयामि ततः परम् ।
स्यादानलानिलेयाभ्यां कर्णौ ते कल्पयामि च ।।६२५।।
आश्विनेयेन नासान्ते कल्पयामि ततो वदेत् ।
स्याच्छाङ्करेण वक्षस्ते कल्पयामि ततः परम् ।।६२६।।
स्याद्वैष्णवेन बाहूंस्ते[1] कल्पयामि ततोऽप्यनु ।
पार्थिवेन समाभाष्य चरणौ ते ततो वदेत् ।।६२७।।
कल्पयाम्यनु मार्त्युञ्जयेन प्राणांस्त ईरयेत् ।
कल्पयामि ततौ वैरूपाक्षेणेति समुल्लिखेत् ।।६२८।।
वाचं ते कल्पयाम्युक्त्वा महारुद्रेण कीर्तयेत् ।
सर्वाङ्गानि तु उद्धृत्य कल्पयामि ततः स्मरेत् ।।६२९।।
शाकिनी डाकिनी चैव फेत्कारी प्रलयादनु ।
शेखरो बज्रकवचं जगदावृत्तिरेव च ।।६३०।।

१. बाङ्स्ते ख ग घ ।

चर्मचूड़ापुष्पमालाः कूटं वै पारिजातकम् ।
वैश्वदेवेन संकीर्त्य प्रत्यङ्गानि तु ईरयेत् ॥६३१॥
कल्पयाम्यन्वघोरेण रूपं ते कल्पयामि च ।
ऐशानेन रसं तेऽनु कल्पयामि पुनस्तथा ॥६३२॥
स्थाणवेनानुगन्धं ते कल्पयामि ततोऽप्यनु ।
माहेश्वरेण स्पर्शं ते कल्पयामि ततो वदेत् ॥६३३॥
कामदेवेन शब्दं ते कल्पयामि तथैव च ।
प्रणवत्रितयं तार्क्ष्यो भ्रूर्बलिस्तुङ्ग [1]एव च ॥६३४॥
चूडामणिर्वारिधानी कलामाली ततः परम् ।
एकावली रत्नकुम्भो बीजानि द्वादशैव हि ॥६३५॥
प्राणबीजाह्वयौ कूटौ गुह्याकूटं ततः परम् ।
कूर्चानां च तथास्त्राणां त्रितयं त्रितयं ततः ॥६३६॥
हृदयं शीर्षमन्त्रश्च सम्पूर्णो मन्त्र उच्यते ।
शतत्रयं तु वर्णानां पूर्णमन्त्र निगद्यते ॥६३७॥
सन्धिना वियुगान्वेतत् हानै साङ्गवैन्दवैः [?] ।
स्थिरपीठप्रतिष्ठायां महामन्त्रोऽयमीरितः ॥६३८॥

[मन्त्रस्यास्य प्रभाववर्णनम्]

अयमेवोदितो मन्त्रो नैमित्तिकसमर्हणे ।
नित्येऽपि केचिदिच्छन्ति फलाधिक्योल्लसद्धियः ॥६३९॥
प्रासाददेवालययोः स्थापनं मूर्तियन्त्रयोः ।
विधीयते यदा देवि तदामुं मनुमन्तरा ॥६४०॥

---

१. कूर्चानि ख ग घ ।

न जायते वै सान्निध्यं गुह्यकाल्याः कदाचन ।
यामले मनवः प्रोक्ता नवाधिष्ठानकारका ॥६४१॥
मृतसंजीवनोनाम्ना मुख्योऽयं तेषु[1] कथ्यते ।
एकवारं समुच्चार्य प्रतिष्ठा चेद् विधीयते ॥६४२॥
सान्निध्यं जायते तत्र सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ।
द्विवारोच्चारणेनास्य प्रतिष्ठा विहिता यदि ॥६४३॥
गुह्या निगदितप्राया तिष्ठति प्रसभीकृता ।
त्रिवारं यः समुच्चार्य कुरुते प्राणधारणम् ॥६४४॥
न कदापि जहातीमं पीठं सिद्धिकरालिनी ।
देवालयादिभङ्गेऽपि तत्तस्थानच्युतावपि ॥६४५॥
यावत् पीठोऽथवा मूर्तिस्तावत्तत्र वसेच्छिवा ।
तं देशिकं विहायापि यद्यन्यत्र व्रजेद्द्वयम्[2] ॥६४६॥
तथापि तत्र गुह्यायाः सान्निध्यं नैव नश्यति ।
एतादृशः प्रभावस्ते मन्त्रस्य परिवर्णितः ॥६४७॥
आगतायां ततो देव्यां पीठे समुपकल्पिते ।

[अष्टद्वारपालपूजाविधिः]

प्रपूजयेद्द्वारपालानष्टावष्टदिशि स्थितान् ॥६४८॥

[अष्टदिक्पालध्यानम्]

प्रचण्डं चण्डवेगं च चण्डं चण्डकरालिनम् ।
महापाशं विद्युदन्त्रं कालदण्डं महोदरम् ॥६४९॥

---

१. तेन ख ग घ ।
२. व्रजेत् स्वयम् घ ङ ।

सर्वान् पाशधरान् वामे दक्षिणे बिभ्रतो गदाः ।
ध्यात्वा पूर्वादिदिग्भागगान् क्रमेण प्रपूजयेत् ॥६५०॥

[दिक्पालपूजामन्त्रः]

आदौ तारं ततः कूर्चं मध्ये ङेऽन्तानिमांस्ततः ।
पूर्वाग्नेयं दक्षिणं च नैर्ऋतं पश्चिमं तथा ॥६५१॥
वायव्योत्तरमीशानं पदैरेभिर्विगृह्य च ।
द्वारपालानपि ङेऽन्तान् सन्ध्यूनान् सहृदो वदेत् ॥६५२॥
ततः पुनरपि प्राणायामं कृत्वा षडङ्गकम् ।
कृत्वा बद्धाञ्जलिर्मन्त्ररूपौ श्लोकाविमौ पठेत् ॥६५३॥

[देव्यनुज्ञाप्रार्थनम्]

गुह्यकालि महाघोरे जगत्कारणरूपिणि ।
करालवदने चण्डे दशवक्त्रे भयानके ॥६५४॥
नैमित्तिकार्चनकृते मम सिद्ध्यर्थमीश्वरि ।
अनुज्ञां देहि देवेशि पात्रसंस्थापनाय ते ॥६५५॥

[पात्रस्थापनविधिः]

इत्युच्चार्याचरेत् पात्रस्थापनं जगदीश्वरि ।
तच्च पञ्चविधं ज्ञेयं मतभेदेन धीमताम् ॥६५६॥
सर्वं मयात्र वक्तव्यं मन्त्रक्रमसमर्हणैः ।
यद्यस्य शक्यं तत्तेन कर्तव्यं सुरवन्दिते ॥६५७॥
पूर्वः पूर्वो गुरुर्ज्ञेयः उत्तरोत्तरतो लघुः ।
यथा कर्तव्यतायां हि फलेऽप्युन्नेयमीदृशम् ॥६५८॥

शक्तौ पूर्वं परित्यज्य नोत्तरं परिकल्पयेत् ।
पूर्वपूर्वाभावतस्तु परः पर उदीर्यते ॥६५९॥
येषां यावन्ति पात्राणि तत्पुरैव निरूपितम् ।
कर्तव्यानीह सर्वाणि [1]साधाराणि वरानने ॥६६०॥
मीनमांसप्रदानार्थं प्रत्येकमितराणि च ।
कार्याण्यमत्राणि शिवे साधाराणि पुनस्तथा ॥६६१॥
सुरामीनामिषामत्रं न भूमिं स्पर्शयेद् बुधः ।
क्रियाः काश्चित्तुल्यरूपाः सर्वत्र सुरवन्दिते ॥६६२॥
एक एव हि तन्मन्त्रो ज्ञेयो सर्वमतेष्वपि ।
केचिद् भिन्नाश्च विज्ञेयाः क्रियामन्त्रस्थितिक्रमाः ॥६६३॥
उक्तानुक्तविधौ चैषां कार्याकार्येषु च प्रिये ।
क्रमाक्रमेष्वपि तथा मूलं गुरुपरम्परा ॥६६४॥
पद्धतिर्डामरे प्रोक्ताऽथवा भैरवसंहिता ।
केचित्पूर्वोदिता ज्ञेया मन्त्रा ये नित्यकर्मणि ॥६६५॥
इत्यादि बुद्ध्वा चैतस्य कृत्याकृत्यं सुरेश्वरि ।
प्रारभेत ततः पात्रस्थापनं विधिपूर्वकम् ॥६६६॥

[षट्त्रिंशत् पात्रस्थापनक्रमः]

सृष्टिक्रमेण[2] कर्तव्या षट्त्रिंशद्भाजनस्थितिः ।
प्राच्यन्ता च प्रतीच्यग्रामिया[?]प्राच्यन्तिमा तथा ॥६६७॥

---

१. धारणानि ख ग घ ।
२. सृष्टिरूपेण ख ग घ ।

अधोधोभावतः कार्या साम्यद्वयमुपेयुषी ।
एकैकत्र षडेव स्युरेवं स्थानानि षट् प्रिये ॥६६८॥
तुरीया प्रकृतिश्चैव पुरुषस्तदनन्तरम् ।
महत्तत्त्वमहङ्कारो विद्या च षडिमाः क्रमात् ॥६६९॥
प्रज्ञा [1]बुद्धिर्निवृत्तिश्चाविद्या नियतिरेव च ।
माया चेति पुनः षट् स्यू रीत्या पूर्वोक्तयाखिलाः ॥६७०॥
सत्तापृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशास्तत्त्वपश्चिमाः ।
तृतीया पंक्तिरुदिता गुरुस्थानगताः क्रमात् ॥६७१॥
चतुर्थ्यामादिमा ज्ञेया चेतना जगदीश्वरि ।
गन्धो रसश्च रूपश्च स्पर्शः शब्दस्ततः परम् ॥६७२॥
इच्छा घ्राणश्च जिह्वा च चक्षुस्त्वक् श्रोत्रमेव च ।
धारेयं पञ्चमी ज्ञेया षष्ठीमथ निशामय ॥६७३॥
मनो वाक्पाणिपादाः स्युः पायूपस्थौ ततः परम् ।
एवं नामान्यमत्राणां षट्त्रिंशदुदितानि ते ॥६७४॥
तत्तच्छब्दादनुवदेत्तत्त्वमित्यक्षरद्वयम् ।
[त्रिंशत्पात्रस्थापनक्रमः]
अथ दैगम्बरीयाणां त्रिंशत्पात्राभिधां शृणु । ६७५॥
वैपरीत्यक्रमेणैषां स्थापनसंहृतीर्यया ।
नैषां तत्त्वपदं योज्यमन्ते कमललोचने ॥६७६॥
ज्ञानवैराग्यमस्यानु निवृत्तिस्तदन्तरम् ।
अद्वैतमथ निर्वाणं प्रथमा पंक्तिरीरिता ॥६७७॥

---

१. वृत्ति० ख० ।

योगः प्रमाणं प्रज्ञा च विशुद्धिरथ कीर्तिता ।
आनन्दश्च द्वितीयेयं शक्तिस्थानगता क्रिया ॥६७८॥
तार्तीयपंक्तावमृतमथोपशमनामकम् ।
शुद्धसत्त्वं च परमार्थश्चैतन्यमतः परम् ॥६७९॥
तुर्याऽविद्यानिमित्तं च विकृतिः प्रकृतिस्तथा ।
ज्योतिर्मयमथो धर्मवासने बन्ध एव ॥६८०॥
प्रतिबिम्बश्च कैवल्यं पञ्चमी परिकीर्तिता ।
षष्ठ्यां प्रथममैश्वर्यं महोदय इतः परम् ॥६८१॥
ममतामोहकामाश्च त्रिंशदेता उदीरिताः ।
स्थाप्यानीमानि संहार संहारक्रमतः प्रिये ॥६८२॥
प्राच्यग्राणि पुरः कृत्वा प्रतीच्यन्तानि कारयेत् ।
पूर्वोक्तया सर्वमन्यद्रीत्या कार्यं विचक्षणैः ॥६८३॥

[मौलेयमते पात्रस्थापनविधिकथनम्]

मौलेयानां मतमथो समाकलय तत्त्वतः ।
कठिनं च दुरूहं च बोध्यं बुद्ध्या विशुद्धया ॥६८४॥
आम्नायस्य तु देवेशि एकैकस्य क्रमेण हि ।
देव्यश्चतस्रः संग्राह्यास्तासां पात्रस्य कल्पना ॥६८५॥
अङ्गरूपेण ताः सर्वा भासन्तेऽत्र सुरेश्वरि ।
संस्थापनक्रमोऽप्यत्र न पूर्वोक्तवदिष्यते ॥६८६॥
भिन्न एव स चाप्यूह्यो मदुक्तवचनेन हि ।
उत्तराग्रां समारभ्य दक्षिणान्तां समापयेत् ॥६८७॥

रेखास्तत्र चतस्रोऽमूर्देवीः संस्थापयेत् क्रमात् ।
पूर्वाम्नायगताश्चण्डेश्वरी तत्रादिमा मता ॥६८८॥
हरसिद्धा बाभ्रवी च पिङ्गला तदनन्तरम् ।
तत्समा पूर्वभागाग्रा द्वितीया पश्चिमान्तगा ॥६८९॥
दक्षिणाम्नायगा तत्र मातङ्गी संकटा तथा ।
तृतीया शूलिनी मुण्डमधुमत्यथ कीर्तिता ॥६९०॥
दक्षिणाग्रोत्तरान्ता च रेखा तार्तीयिकोष्यते ।
कुब्जिका तत्र चामुण्डा चण्डघण्टा तथैव च ॥६९१॥
मायूरी वेति विज्ञेया पश्चिमाम्नायगा इमाः ।
पश्चिमाग्रां च पूर्वान्तां रेखां तुर्यां समालिखेत् ॥६९२॥
सिद्धिलक्ष्मीस्तथा चण्डयोगेश्वर्यप्यनन्तरम् ।
वज्रकापालिनी कामकलाकाली तथैव च ॥६९३॥
एवं स्मृताश्चतुर्दिक्षु पञ्च पञ्च वरानने ।
उत्तराम्नायगा एताश्चतस्रः समुदीरिताः ॥६९४॥
अथाध आम्नायगतास्थापनं कलय प्रिये ।
हरसिद्धोपरि गता भीमादेवी प्रकीर्तिता ॥६९५॥
संकटायाः समे ऊर्ध्वं विज्ञेया हाटकेश्वरी ।
चामुण्डायाः कालरात्रिश्चण्डयोगेश्वरी समा ॥६९६॥
महामाया परिज्ञेया ऊर्ध्वाम्नायगताः शृणु ।
भीमादेव्युपरि ज्ञेया महात्रिपुरसुन्दरी ॥६९७॥
ऊर्ध्वगा हाटकेश्वर्याः कामाख्या परिनिष्ठिता ।
कालरात्रिर्विश्वरूपा महामायोपरि स्थिता ॥६९८॥

मोक्षलक्ष्मीरिति प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसंख्यकाः ।
सर्वासां मध्यगा ज्ञेया गुह्यकाली शुचिस्मिते ॥६९९॥
सा पञ्चविंशतितमा मूलभूता सुरेश्वरि ।
तत्तन्नामोपपदतः पात्रमासामुदीर्यते ॥७००॥
सर्वत्रैव प्रकर्तव्या रेखादौ दीर्घरूपिणी ।
तन्मध्ये वारिणा कार्यं प्रत्येकं मण्डलं ततः ॥७०१॥

[भाण्डिकेरमते पात्रस्थापनविधिः]

इदानीं भाण्डिकेराणां प्रकारं ते ब्रवीम्यहम् ।
षडेव तानि पात्राणि स क्रमः सैव कृत्यता ॥७०२॥
तेषामवस्थात्रितयात् प्रत्येकं तु त्रयं स्मृतम् ।
सात्त्विकं राजसं चापि तामसं चेति पार्वति ॥७०३॥
आद्यवत् परिविज्ञेया पूर्वाधोभावतास्य च ।
स्थापनं चास्य विज्ञेयं सृष्टिक्रमत ईश्वरि ॥७०४॥
तत्तत्पदोपपदतस्तत्तत्पदमुपन्यसेत् ।
एवमष्टादशामत्रकल्पना वर्णिता मया ॥७०५॥

[द्वादशपात्रस्थापनविधिः]

साम्प्रतं शृणु देवेशि पात्रद्वादशकं क्रमम् ।
लघु प्रकारं सुगमं द्वादशामत्रविग्रहम् ॥७०६॥
देवीप्रियं बहुफलं स्वल्पायामं मनोरमम् ।
सृष्टिसंहारमार्गाभ्यां कर्तव्यमिदमुत्तमम् ॥७०७॥
षडादौ सृष्टिमार्गेण स्थापयित्वा वरानने ।
पुनः संहारमार्गेण षडेव हि समर्पयेत् ॥७०८॥

पात्राल्पत्वेन नात्र स्याद् रेखा वै वारिधारया ।
बिन्दुवन्मण्डलं कार्यं केवलं जगदीश्वरि ॥७०६॥
पूर्वत्रोभयमेव स्यात् तत्र हेतुस्तु भूरिता ।

[वैदिकक्रमे पात्रनामानि]

नामानि कलयेदानीं पात्राणां वैदिकक्रमे ॥७१०॥
परमात्मा च समयभावनाचक्रसिद्धयः ।
जीवात्मा चेति [देवे]शि सृष्टिक्रमगभाजनम् ॥७११॥
संहारक्रमतः सृष्टिः स्थितिः संहार इत्यपि ।
अनाख्या च तथा भासा मुक्तिरित्येव षट् तथा ॥७१२॥
इत्येवं देवि पञ्चानां मतभेदास्तु पञ्च वै ।
मया ते कथितास्तत्तन्नामभिः सक्रमक्रियैः ॥७१३॥

[विविधसंप्रदायेषु पात्रस्थापनमन्त्रादिकर्मकाण्डवर्णनम्]

अथ मन्त्रांस्तथा पौर्वापरीभावं विधानकम् ।
परिपाटीं च सर्वेषामितिकर्तव्यतामपि ॥७१४॥
कथयाम्यर्पितस्वान्ता सावधाना निशामय ।
यस्य यस्य मते यद्यद्भिन्नमन्त्राः क्रियाक्रमाः ॥७१५॥
तत्तन्मया पृथक् कृत्वा गृहीत्वा तन्मताभिधाम् ।
विशेषेण विविच्यैव कथयिष्यामि पार्वति ॥७१६॥
तन्मुक्त्वान्यत्तु सर्वेषां समानं सकलं स्मृतम् ।
अत्रानुक्तं हि यत्किञ्चित् तन्नित्यस्य प्रगृह्यते ॥७१७॥
तत्राप्यनुक्ते विज्ञेयः प्रासन्नविधिको विधिः ।
गुरूपदेशेन विना त्रयं नैतद् विबुध्यते ॥७१८॥

तस्मान्मन्त्रार्णवं ततुं कर्णधारो गुरुः स्मृतः ।
स्वमतिस्तरणिस्तत्र क्रमास्तान्त्रा नियामकाः ॥७१९॥
मतभेदास्तु कल्लोलाः कुशिक्षावर्त उच्यते ।
कर्तव्यतान्तरो यश्च ज्ञेयः पद्धतिरातरः ॥७२०॥
सांयात्रिका देशिकाः स्युरूहो[1] रज्जुद्रुमोऽपि च ।
नानाशास्त्राणि दाशाः स्युरभ्यासो वातपर्ण्यपि ॥७२१॥
तारमैधत्रपाः ङेऽन्ताधारशक्तिर्महाबला ।
द्वयी हृदन्ते रेखायाः सर्वत्र करणे मनुः ॥७२२॥
शाकिनी योगिनीवध्वोर्वज्रप्राकार एव च ।
मन्त्रार्गलश्च द्वौ ङेऽन्तौ कूर्चास्त्रं शिर एव च ॥७२३॥
सर्वत्रायं मनुर्ज्ञेयो विधेये वारिमण्डले ।
कालाग्निरुद्रो भेकश्च कमठः शेष एव च ॥७२४॥
पृथिव्यमी पञ्चशब्दा महोपपदतो मताः ।
शब्दत्रयं मध्यगतं शेषे राजपदान्वितम् ॥७२५॥
ङेऽन्तश्च तारः सर्वाद्यः सर्वशेषे च हृन्मनुः ।
सर्वत्रानेन बिम्बार्चा कर्तव्या सर्वसम्मते ॥७२६॥

[त्रिपाद्याः प्रक्षालनमनुः]

सारस्वतरमे कामवध्वौ कूर्चस्ततः परम् ।
समयाधारमुच्चार्य पावयद्वितयं ततः ॥७२७॥
अस्त्रं शिरस्त्रिपाद्यास्तु क्षालने मनुरीरितः ।
तारत्रपारावकूर्चडाकिन्यः फट्त्रयं शिरः ॥७२८॥

---

१. रज्जुक्रमोऽपि ख ग घ ।

मन्त्रेणानेन बिम्बाग्रे न्यसेन्न स्याद्यथास्वनः ।
एवमुक्तक्रमेणैव प्रोक्तैर्मनुभिरेव हि ॥७२९॥
मीनमांसाधारपात्रं क्रमेण परिपूजयेत् ।
एतत्समयतः पात्राधारमर्चेत्त्रिपादिकाम् ॥७३०॥
मैधमाये कुण्डगभौं डाकिनीसमरव्यया: ।
एकावली डिण्डिमश्च सोऽहं नामपदादनु ॥७३१॥
पात्राधारं साधयामि रोषास्त्रैर्हृदयं शिरः ।
प्रणवः कमला कामः फेत्कारी भगमालिनी ॥७३२॥
वियोगोत्तानषट्चक्रक्रमकूटाः क्रमान्नव ।
ततो धूम्रादिदशकलात्मने परिकीर्तयेत् ॥७३३॥
वह्निमण्डलतो ङेऽन्ता हृन्मन्त्रः सर्वशेषगः ।
संपूज्य मध्ये वै देवि प्रादक्षिण्यक्रमेण हि ॥७३४॥
पूर्वोक्तनित्यमनुभिः कलाभिर्दशभिर्यजेत् ।
शक्तावेवं देवि सर्वपात्राधारप्रपूजनम् ॥७३५॥
अशक्तौ मूलपात्रस्य प्रकारं सर्वमाचरेत् ।
तारप्रासादनृहरिशाकिन्यो योगिनी तथा ॥७३६॥
सोऽहं तत्तन्नामपात्रं क्षालयामि समुद्धरेत् ।
द्विः पावय च कूर्चास्त्रे पात्रनिर्णेजने मनुः ॥७३७॥
निरम्बु तत्समाधाय वामे संस्थाप्य वै करे ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्वक्ष्यमाणमन्त्रैस्तदर्चयेत् ॥७३८॥

सारस्वतत्रपाजम्भदीपान् सन्यासमेव च ।
सोऽहं तत्पात्रमालिख्य पूजयामि नमो वदेत् ॥७३९॥
कालीयकेन चन्द्रेण मलयैः कौशिकैरपि ।
धूपं विधाय दहने पात्रं संधूपयेच्छनैः ॥७४०॥
तन्मनुं कलयेदानीं तारमैधामृतश्रियः ।
नृहरी रावडाकिन्यौ फेत्कारी प्रलयादिमा ॥७४१॥
तन्नामपात्रमुच्चार्य वासयामि नमः शिरः ।
त्र्यङ्घ्रिकोपर्यवस्थापने मनुं कलयाधुना ॥७४२॥
ताररावौ योगिनी च डाकिनी सानुमेखले ।
स्थितिकूटं सोऽहं पात्रं स्थापयामि नमस्ततः ॥७४३॥
तारचैतन्यमायाश्रीसृणिगारुडमन्मथाः ।
प्रासादप्रेतभैरव्यः कलामालिविधिक्रमाः[1] ॥७४४॥
फलकं पुष्पमाला च बीजानि दश पञ्च हि ।
खेचरी डाकिनी माला कूटत्रयमतः परम् ॥७४५॥
तत्तदाख्यापात्रमुक्त्वा पूजयाम्यथ शब्दतः ।
साधयामि महाहारौ रोषास्त्रे हृदयं शिरः ॥७४६॥
उदीर्यमाणमन्त्रेण तत्तत्पात्रं ततोऽर्चयेत् ।
मायारमारोषकामयोगिनीशाकिनीसुधाः ॥७४७॥

---

१. क्रमाल् घ

क्षेत्राधीशखगाधीशौ सिद्धिप्रदपदादनु ।
तपिन्यादिद्वादशकलात्मने तदनन्तरम् ॥७४८॥
सूर्यमण्डलशब्दानु स्वरूपाय समुद्धरेत् ।
तत्तन्नामानु पात्राय रोषास्त्रे हृच्छिरस्ततः ॥७४९॥
अन्तरे तेन संपूज्य नित्योक्तमनुभिः प्रिये ।
प्रत्येकं द्वादशकलानामभिः परिपूजयेत् ॥७५०॥

[कुलकुम्भस्थापनविधिः]

कुलकुम्भं स्वस्य वामे संस्थाप्य त्रिदशेश्वरि ।
आच्छाद्य मुद्रया मैन्या [?]मन्त्रमेनमुदीरयेत् ॥७५१॥
क्षीरोदादभवः पूर्वं त्वं तवानु सुधाऽभवत् ।
आस्वादितासि देव्या त्वं सा च सर्वैः सुरैस्तथा ॥७५२॥
अतोऽद्य कालिकायै त्वामर्पयिष्यामि वारुणि ।
गन्धभ्रान्तिविकारादींस्त्वमाश्वेव परित्यज ॥७५३॥
देवीवक्त्रदृगम्भोजप्रतिबिम्बप्रभावतः ।
इत्युच्चार्य कुलद्रव्ये प्रतिमायन्त्रयोर्यथा ॥७५४॥
प्रतिबिम्वो भवेत् कार्यं तथैव सुरवन्दिते ।
अशक्तौ मुकुरं देवीं प्रदर्श्य तदुपर्यथ ॥७५५॥
अधोमुखं भ्रामयेत्तं शनैर्वारत्रयं बुधः ।
[1]पातने प्रतिबिम्बस्य मन्त्रं शृणु मयोदितम् ॥७५६॥

[कुलद्रव्ये बिम्बसंक्रामकमन्त्राभिधानम्]

तारत्रयं मैधयुगं योगिनीस्त्रीकुलाङ्गनाः ।
सौरङ्गं रत्नकुम्भं च चर्म सान्तपनं तथा ॥७५७॥

---

१. अत्र पंक्तिद्वयं घ पुस्तके नास्ति ।

एह्येहि भगवत्युक्त्वा वज्रकापालिनि स्मरेत् ।
प्रतिबिम्बं दर्शय द्विर्दोषं नाशय च द्वयम् ॥७५८॥
गन्धभ्रान्तिविकारांश्च संहरद्वितयं ततः ।
निद्रा योगिन्यथो पूर्णा धूमो ललितया सह ॥७५९॥
अस्त्रत्रयं शिरः शेषे बिम्बसंक्रान्तिकृन्मनुः ।

[कुलकुम्भपूजाविधिः]

गन्धाक्षतप्रसूनानि गृहीत्वा तदनन्तरम् ॥७६०॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुलकुम्भं प्रपूजयेत् ।
सारस्वतश्च प्रणवो मायालक्ष्मीस्मरस्त्रियः ॥७६१॥
प्रेतः परा नृसिंहश्च बलिः पृथुरनन्तरम् ।
ककुच्छैशुकताटङ्कनीले पतनसंहृती ॥७६२॥
बीजं ब्रह्मकपालं च कुलादिद्वयकूटकम् ॥
पारिजाताह्वयः शेष एकविंशतिरित्यमी ॥७६३॥
ङेऽन्ताऽमृताधारशब्दैः कुलकुम्भस्तथैव च ।
शङ्खादिपञ्चकं प्रोच्य नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥७६४॥

[सकलदोषापहारकाष्टदिग्पूजनम्]

इति मध्येऽभ्यर्च्य घटमष्टदिक्षु प्रपूजयेत् ।
प्रोच्यमानेन मन्त्रेण सर्वदोषापनुत्तये ॥७६५॥
पूर्वादिदिक्क्रमेणैव स्पृशन् वामेन पाणिना ।
प्रणवादिनमोऽन्तैश्च ङेऽन्तैरेतैः पदैर्यजेत् ॥७६६॥

आदौ क्षीरसमुद्रः स्याद् द्वितीयो मन्दराचलः ।
बासुकिः सर्पराजस्तु तार्तीयो विग्रहं गतः ॥७६७॥
धन्वन्तरिर्मोहिनी च सुधा चन्द्रः सुरा तथा ।

[नामाष्टकेन सुरसंशोधनम्]

पुनरष्टाभिराख्याभिः सुरां मध्ये पुनर्यजेत् ॥७६८॥
त्रपारावामृतैराद्यैर्वस्तुहृन्मूर्धपश्चिमैः ।
ङेऽन्तैर्मध्यस्थितैरेभिः पदैर्मन्त्रप्रकल्पना ॥७६९॥
आदौ सुरा ततो हाला क्षीरोदतनया ततः ।
प्रसन्ना वारुणी चैव सुगन्धेरा सुधानुजा ॥७७०॥
ततः कुशेन पुष्पेण दूर्वया वा तृणेन वा ।
राजत्याप्यथ हाटक्या तेजत्या वा शलाकया ॥७७१॥
आलोडयेच्छनैर्वक्ष्यमाणं मन्त्रमुदीरयन् ।

[कुलद्रव्यालोडनमन्त्र]

मैधवैकारिकध्वानत्रपारावरुषः स्मरः ॥७७२॥
ततो विवत्ससम्भारौ त्र्यस्रादिद्वितयं व्ययः ।
उत्तिष्ठद्वितयं प्रोच्य अमृते अमृतोद्भवे ॥७७३॥
सन्धिहीनं सुधा देवि सिद्धिं प्रकटय द्वयम् ।
ततश्च खेचरीमुद्रां महाशब्दात् समुच्चरेत् ॥७७४॥
दर्शयानु क्रोधयुगं द्विरस्त्रं हृच्छिरः सकृत् ।
अथावधेहि देवेशि मदुदीरितमादरात् ॥७७५॥

---

१. त्रपादि ख० घ० ।

एतावत् सर्वपात्राणां कृत्यं मुख्यतयोदितम् ।
समाप्यैकस्य कर्तव्यं सर्वेषां युगपच्च वा ॥७७६॥
युगपच्चेति कापालाः समाप्यैकं मतं मम ।
एका समाप्तावन्यस्येत्यर्थान्तरभिया ब्रुवे ॥७७७॥
अर्थान्तरादङ्गहानिरिति जैमिनिभाषितम् ।
अनयोः कतरत्साधु विज्ञा एव हि जानते ॥७७८॥

[कापालिकमतेऽत्राधिकविधिनिरूपणम्]

अथैकं किञ्चिदधिकं कापालिकमते स्थितम् ।
पात्रालम्भं प्रकुर्वन्ति श्राद्धवत् क्षेपमुद्रया ॥७७९॥
ताररावौ योगिनी च फेत्कारी चर्पटं ततः ।
ततः पातालमाधानं त्रपाकूर्चस्त्रियस्ततः ॥७८०॥
आकाशमपिधानं च रक्षयुग्मं शिरस्ततः ।
सर्वत्रैवं संविधाय कुशाग्रस्थितविप्रुषः ॥७८१॥
तेषु पात्रेषु सर्वेषु दद्यात् क्रमत ईश्वरि ।
केवलेन प्रसूनेन पृषतांस्तांस्ततः परम् ॥७८२॥
पूजयेद् वक्ष्यमाणेन मनुना परमेश्वरि ।
रावो डाकिन्यमालक्ष्मीः फेत्कारी क्रोध एव च ॥७८३॥
वदेदमृतबीजाय नमः स्वाहा ततः परम् ।
ततो दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा तं घटं प्रिये ॥७८४॥
गृणन्मनुं वक्ष्यमाणं मूलं वारत्रयं तथा ।
कुलकुम्भस्थितद्रव्यैः सर्वपात्राणि पूरयेत् ॥७८५॥

मैधतारौ त्रपारावौ कूर्चवध्वौ च योगिनी ।
श्रमानरहरी चापि नवार्णा नव च क्रमात् ॥७८६॥
सर्वाभ्योऽनु च देवीभ्यो वौषट् शेषे नियोजयेत् ।
ततो धेन्वामृतीकृत्य मत्स्येनाच्छाद्य सत्त्वरम् ॥७८७॥
कृताञ्जलिः पठेन्मन्त्रं श्लोकाकारतया स्थितम् ।
सुधासहोदराकार त्रिलोकीसारविग्रह ॥७८८॥
देवीकराम्बुजस्थायिन् पात्र त्वं पूरितो भव ।
पूर्वोदितैः पञ्चमन्त्रैस्ततः शापं विमोचयेत् ॥७८९॥
ततः कुलद्रव्यमर्घ्यं कथ्यमानं पठन्मनुम् ।
समर्चयेत्त्रपातारकामामारावडाकिनीः ॥७९०॥
सूत्रसान्वक्षफेत्कारीप्रेतक्रोधनृसिंहकाः ।
कामप्रदामृताद्युक्त्वा नु षोडशकलात्मने ॥७९१॥
सोममण्डलमुच्चार्य ङेऽन्तं पात्रामृतं च हृत् ।
वामावर्तक्रमेणैव कलाषोडशभिस्ततः ॥७९२॥
श्रीपात्रसंस्थितं द्रव्यं महेत् पूर्ववदेव हि ।

[दिगम्बरमतेऽत्राधिकविधिनिरूपणम्]

अत्र दैगम्वरीयाणां सिद्धान्तः कश्चनाधिकः ॥७९३॥
वर्तते तं व्याहरामि दत्तचित्ता निशामय ।
मैधताराश्विनेयेभ्योऽश्विनौ ते रूपमीरयेत् ॥७९४॥
यच्छतामों प्रतिष्ठेति मन्त्रमुच्चारयन् प्रिये ।
कुशेन वा प्रसूनेन सुधाग्रे रूपमुल्लिखेत् ॥७९५॥

ते एव बीजे यज्ञश्च वरुणस्ते रसं तथा ।
यच्छन्नथ विसन्धानमों प्रतिष्ठेति कीर्तयेत् ॥७९६॥
मध्ये रसं लिखेत्तस्याः पुनस्ते अप्युदीरयन् ।
नरसिंहोऽथ गन्धर्वास्ते गन्धं तदनन्तरम् ॥७९७॥
ससन्ध्युपनयेत्युक्त्वा ओं प्रतिष्ठेति सन्धिना ।
रहितं समनूच्चार्य लिखेद् गन्धमधः प्रिये ॥७९८॥
ताभ्यां प्रेतोऽथ वायुस्ते स्पर्शं यच्छतु तत्परम् ।
ओं प्रतिष्ठेति च स्पर्शं याम्यायां विलिखेद्दिशि ॥७९९॥
ताभ्यां परापरा ज्ञेया सूर्यस्ते शब्दमेव च ।
यच्छ त्वन्नो प्रतिष्ठेति विलिखेदुत्तरां दिशि ॥८००॥

[मौलेयमतेऽन्नाधिकविध्यभिधानम्]

आधिक्यमधुना किञ्चिन्मौलेयानां निशामय ।
यस्य यस्य तु मन्त्रस्य य ऋष्यादिरुदाहृतः ॥८०१॥
यद्यत्करषडङ्गं च तत्तत्तद्बहिरर्चयेत् ।
मूलपात्रेण सर्वत्र तेषामेष क्रमोऽखिलः ॥८०२॥
अस्मिन्नेव क्षणे देवि विशेषार्घे इवेश्वरी ।
पुष्पैरावाहयेद्ध्यात्वा मध्य एवास्य वस्तुनः ॥८०३॥
तत्रोपचारान् पाद्यादीन् योग्यान् मध्ये बहिस्तथा ।
पुनराचमनीयान्तां दद्यान्मूलमनुं पठन् ॥८०४॥
ततो द्रव्यस्य मध्ये तु ध्यायेदानन्दभैरवम् ।
आनन्दभैरवीं चापि पूर्वोक्तध्यानवर्त्मना ॥८०५॥

ततस्तारत्रपारावडाकिनीप्रलयामृतैः ।
आनन्दभैरवानन्दभैरवीभ्यामुदीर्य[1] च ॥८०६॥
समयाचारपदतो भ्यामन्ता च प्रवर्तका ।
तद्वच्च सामरस्यापन्ना शब्दः सुरवन्दिते ॥८०७॥
नेत्रहृन्मस्तकान्यन्ते मैत्रेणैतेन पूजयेत् ।

[भाण्डिकेरमतेऽत्राधिकविध्यभिधानम्]

भाण्डिकेरमते किञ्चिदधिकं वर्ततेऽत्र हि ॥८०८॥
मध्ये तारहृदोर्ङेन्ता अमाशक्तीः प्रपूजयेत् ।
स्तम्भिनी मोहिनी चैव वशिन्युच्चाटिनी तथा ॥८०९॥
द्वेषिणी मारिणी द्राविण्यपि शोषिण्यतः परम् ।

[दशदिग्बन्धनस्य समन्त्रो विधिः)

दशदिग्बन्धनं कुर्याच्छोटिकादशकैस्ततः ॥८१०॥
दशमन्त्रैर्वक्ष्यमाणैः संहितामतमीदृशम् ।
तारात् पूर्वा च दिङ्ङयन्ता ततः सन्धिसमन्विताः ॥८११॥
आदित्यास्त्वामवन्तूक्त्वा शिरः शेषे नियोजयेत् ।
मैधात्तद्वद्दक्षिणा दिक् पितरस्तदनन्तरम् ॥८१२॥
षडक्षरी शेषतनी सर्वसाधारणी मता ।
कामात्तथा पश्चिमा दिङ्नागाः शेषे षडक्षरी ॥८१३॥
शाकिन्या उत्तरा दिक् च यक्षाः शेषं तु पूर्ववत् ।
एवं त्रपा त आग्नेयी विदिक् सिद्धा षडक्षरी ॥८१४॥

१—०भ्यामितीर्य घ ङ ।

मन्दाग्नैर्ऋत्यपिविदिग्यातुधानाः षडक्षरी ।
वध्वा वायव्यपि विदिक् साध्याश्चापि षडक्षरी ॥८१५॥
कमलाच्च तथैशानी विदिग्रुद्राः षडक्षरी ।
डाकिनीतस्तथा चोर्द्ध्वं क्षेत्रपालाः षडक्षरी ॥८१६॥
फेत्कारीतः पुनरधो मातरश्च षडक्षरी ।
इदं विधानं विज्ञेयं मदुक्ते संहितामते ॥८१७॥

[पञ्चरत्नपूजाविधिः]

रत्नानि पञ्च तदनु पूजयेत् पूर्ववत् प्रिये ।
किन्तु मन्त्रगतो ह्यत्र विशेषो विनिगद्यते ॥८१८॥
भौवनेशी रमा रामा कामो योगिन्यनन्तरम् ।
शाकिनी च क्रमाः सप्त बीजानि स्थैर्यभाञ्जि हि ॥८१९॥
अष्टमन्त्रं परिज्ञेयं बीजं त्रिभुवनेश्वरी ।
तत्तल्लोकादिमो वर्णो ह्यवत्युपरि विष्टितः [?] ॥८२०॥
गगनं स्वर्गमर्त्यौ च पातालं नाग एव च ।
विगृह्य रत्नशब्देन ङेऽन्तेन किल हृज्जुषा ॥८२१॥
एवं संस्थापनं कृत्वा मूलपात्रस्य वै पुरः ।
एकादशापि तदनु पात्राणि स्थापयेत् क्रमात् ॥८२२॥
परमात्मा च समयो भावना चक्रमेव च ।
सिद्धिर्जीवात्मेति षट् च सृष्टिक्रमत उच्यते ॥८२३॥
संहारक्रमतः सृष्टिः स्थितिः संहार इत्यपि ।
अनाख्या च तथा भासा मुक्तिरित्येव षट् स्मृताः ॥८२४॥

शक्तावन्यप्रकारोऽपि त्रिपुरघ्नेन कीर्तितः ।
षट्त्रिंशतां हि पात्राणां मध्य भासा निगद्यते ॥८२५॥
सिद्धान्ततो द्वितीयात्तु विशेषः कश्चनाधिकः ।
तत्ते ब्रवीमि देवेशि दत्तचित्तावधारय ॥८२६॥
उत्तराग्राद्दक्षिणान्ता रेखा पूर्ववदिष्यते ।
चण्डेश्वरी तु सर्वाद्या हरसिद्धा ततः परम् ॥८२७॥
बाभ्रवी पिङ्गला चैव मातङ्गी संकटापि च ।
शूलिनी सप्तमी मुण्डमधुमत्यप्यनन्तरम् ॥८२८॥
कुब्जिका चापि चामुण्डा चण्डघण्टा तथैव च ।
मायूरी सिद्धिलक्ष्मीश्च चण्डयोगेश्वरी ततः ॥८२९॥
बज्रकापालिनी कामकलाकाली तथैव च ।
भीमादेवी ततो हाटकेश्वर्यपि वरानने ॥८३०॥
कालरात्रिर्महारात्रिस्तथा[1] त्रिपुरसुन्दरी ।
कामाख्या विश्वरूपा च मोक्षलक्ष्मीरिति क्रमात् ॥८३१॥
चतुर्विंशतिरुद्दिष्टाः षडाम्नायस्य देवताः ।
चतुर्युगं चतुर्वेदश्चाष्टदिक्पाल एत्र च ॥८३२॥
पञ्चप्रेतो भैरवश्च शिवो योगिन्यनन्तरम् ।
डाकिनी चेति देवेशि कोणगा अष्ट कीर्तिताः ॥८३३॥
तन्मध्येऽपि विदिक् स्थाने चत्वारि कथितानि हि ।
सृष्टिस्थित्यथ संहारानाख्यानामान्वितानि हि ॥८३४॥

१—महामाया तथा ख घ ङ ।

सर्वमध्ये तु विज्ञेयं पात्रं भासाभिधं प्रिये ।
श्रीपात्रमपि तन्नाम परमात्मा च मुक्तिवत् ॥८३५॥
मूलं गुह्याख्यया चापि कीर्त्यते निगमादिषु ।
प्रकारद्वयमित्थं ते वर्णितं जगदीश्वरि ॥८३६॥
शक्तावुत्तरमाचर्यमशक्तौ पूर्वमेव हि ।
ततो बद्धाञ्जलिर्वक्ष्यमाणं श्लोकमुदीरयेत् ॥८३७॥
चिदानन्दरसानन्दसन्दानितकलेवर ।
अधिष्ठितामत्रयोः स्यामुक्तौ च परमात्मनि ॥८३८॥

[कुलसंव्यत्ययविधि]

षट्त्रिंशामत्रपक्षे तु भिन्नं मन्त्रमुदीरयेत् ।
देवीमाः शक्तयः सर्वास्तवाकारसमुद्भवाः ॥८३९॥
अमूनि तासां तुष्ट्यर्थं पात्राणि स्थापितानि हि ।
प्रोक्षण्या वा कुशाग्रेण पुष्पैर्वापि ततः परम् ॥८४०॥
पात्राणामपि सर्वेषां कुलसंव्यत्ययं चरेत् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण द्वादशामत्रपक्षके ॥८४१॥
प्रणवात् परमात्मानमाकाशे तदनन्तरम् ।
जुहोमि तदनु स्वाहा प्रथमो ह्येष वै मनुः ॥८४२॥
आकाशं तत्परं वायौ सर्वमन्यत् पुरोक्तवत् ।
वायुं तेजसि तद्वच्च तेजो जल इतः परम् ॥८४३॥
जलं पृथिव्यां तदनु शब्दस्पर्शपदादनु ।
वदेद्रूपरसार्णे च गन्धान् मनसि पूर्ववत् ॥८४४॥

तद्वत् सृष्टि स्थितौ चापि स्थितिं संहार ईरयेत् ।
तत्संहारमनाख्यायामनाख्यां तदनन्तरम् ॥८४५॥

भासायामथ भासां च मुक्तौ मुक्तिमतः परम् ।
परमात्मनि संकीर्त्य कुलव्यत्ययमाचरेत् ॥८४६॥

एवमुत्तरपक्षेऽपि कुलव्यत्यय इष्यते ।
तत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि सुगमं जगदीश्वरि ॥८४७॥

तारत्रपारावबीजाद् वदेत् चण्डेश्वरीपदम् ।
ततश्च हरसिद्धायां लयमापद्यतां शिरः ॥८४८॥

अनयैव दिशा सर्वं विधेयं सुरवन्दिते ।
यत्प्रसन्नाविधानेषु कथितं तत्त्वशोधनम् ॥८४९॥

तदत्रापि प्रकर्तव्यं नैमित्तिकसमर्हणे ।
अशक्तौ सर्वशेषीयं मन्त्रमावश्यकं प्रिये ॥८५०॥

नियोजयीत पात्राणां कुलस्य च विशुद्धये ।
अथवा तारमैधश्रीव्रीडाकामवधूरुषः ॥८५१॥

नृसिंहक्षेत्रपालौ च योगिनी शाकिनी तथा ।
अमृतं हैमनास्त्रं च दानवास्त्रं ततः परम् । ८५२॥

वायव्यास्त्रं गणास्त्रं[चः] कूटं कुण्डलिनी पदम् ।
कूटं स्वाधिष्ठानमतो मणिपूरमनाहतम् ॥८५३॥

विशुद्धाज्ञे ततः कूटे जीवात्मानं ततो वदेत् ।
परमात्मना चेति ततः शोधयामि प्रकीर्तयेत् ॥८५४॥

अस्त्रत्रयं हृच्छिरसी महामन्त्रः प्रकीर्तितः ।
एकेनैवामुना देवि मन्त्रेण द्रव्यशोधनम् ।।८५५।।
कुर्वीत दोषहान्यर्थं फलाधिक्यार्थमेव च ।

[देव्याः ध्यानविधिः]

ततः प्रसूनं संगृह्य त्रिखण्डामुद्रया सुधीः ।।८५६।।
करकच्छपिकां बध्वा ध्यानं देव्याः समाचरेत् ।
यस्य मन्त्रस्य यद्ध्यानं यादृशं परिकीर्तितम् ।।८५७।।
स तेन ध्यानयोगेन ध्यायीत जगदम्बिकाम् ।
वहन्नासापुटद्वारा हृदयाम्बुजमध्यतः ।।८५८।।
देवीं पुष्पे समानीय पुष्पं यन्त्रे प्रविन्यसेत् ।
बिन्दुं करेण संस्पृश्य मूलं वारत्रयं पठेत् ।।८५९।।
अम्बाहृत् पञ्चवारं च पठित्वा जगदीश्वरि ।
कुशाग्रेण तथा पुष्पाग्रेण वा तदनन्तरम् ।।८६०।।
बिन्दुं स्पृशेत् प्रणवतः सजीवा भव फट् शिरः ।
अङ्गन्यासं ततः कुर्याद्देव्यङ्गे मन्त्ररीतिवत् ।।८६१।।
पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यान्मूलेन तदनन्तरम् ।

[देव्याआवाहनविधिः]

तारत्रपारावबीजाद् गुह्यकाली समीरयेत् ।।८६२।।
इहागच्छ द्वयं प्रोच्य इह तिष्ठ द्वयं ततः ।
वारद्वयं ततो ब्रूयादिह सन्निहिता भव ।।८६३।।

इह सन्निरुद्धा भव द्विवारं समुदीरयेत् ।
मम पूजां गृहाणेति वारमेकं समुच्चरेत् ॥८६४॥
मन्त्रैरेतैः समावाह्य तत्तन्मुद्राश्च दर्शयेत् ।

[आसनदानमन्त्रः]

अथासनप्रदानस्य मन्त्रं समुपवर्णये ॥८६५॥
वेदादिभौवनेशी च ततश्चापि प्रभञ्जना ।
कमलाकामवध्वश्च विधिबीजमतः परम् ॥८६६॥
इदमासनमाभाष्य गुह्यकाल्यै शिरोऽपि च ।

[पाद्यदानमनुः]

मैधं कुलाङ्गना कामवध्वौ रावश्च डाकिनी ॥८६७॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी गुह्यकाल्यै इदं ततः ।
पाद्यं नमश्चेति पाद्यमनुरेष प्रकीर्तितः ॥८६८॥

[अर्घदानमन्त्रः]

प्रणवः पाशरोषौ च त्रपाभूतौ तथैव च ।
ततः श्मशानवासिन्यै एषोऽर्घः शिर एव च ॥८६९॥
इत्यर्घदानमन्त्रस्ते देवेशि प्रतिपादितः ।

[आचमनीयमन्त्रः]

चैतन्यकामस्त्रीप्रेता भैरवी हाकिनी तथा ॥८७०॥
भगवत्यै गुह्यकाल्यै ततोऽनन्तरमीरयेत् ।
इदमाचमनीयं च स्वधा शेषे नियोजयेत् ॥८७१॥

एष आचमनीयस्य मनुः परमशोभनः ।

[स्नानीयदानमन्त्रः]

शाकिनीतो गुह्यकाल्यै इदं स्नानीयमेव च ॥८७२॥

हृदयं मनुरेषोऽपि स्नानीयस्य प्रकीर्तितः ।

[मधुपर्कदानमन्त्रः]

वेदादिपाशचैतन्यं रोषः प्रासाद एव च ॥८७३॥

गुह्यकाल्यै एष मधुपर्कस्तदनु च स्वधा ।

इत्येवं मधुपर्कस्य मनुर्दानाय कथ्यते ॥८७४॥

[पुनराचमनीयदानविधिः]

मधुपर्कानन्तरं हि पुनराचमनीयकम् ।

पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण दातव्यं परमेश्वरि ॥८७५॥

[वस्त्रार्पणमन्त्रः]

सारस्वतं पाशलज्जे रोषो नरहरिस्तथा ।

पुनर्भगवति प्रोच्य गुह्यकालि समीरयेत् ॥८७६॥

विसन्धीदं ततो वस्त्रं तेऽर्पयामि ततोऽप्यनु ।

परिधत्स्व समाभाष्य विजयं मन्दमेव च ॥८७७॥

सम्मोहं पतनं तद्वत् संहारं रोषमेव च ।

अस्त्रं हृदयशीर्षे च वस्त्रदाने मनुर्मतः ॥८७८॥

[शववस्त्रतन्तुदानमन्त्रः]

अथो शवाम्बरीयांस्तु तन्तून् देव्यै समर्पयेत् ।

तन्मन्त्रमधुना वच्मि श्रुत्वा समवधारय ॥८७९॥

तारं सारस्वतं पाशं जम्भं सह प्रचण्डया ।
कर्णिकामथ मन्दारं बलिं सौरास्त्रमेव च ॥८८०॥
गुह्यकालि समाभाष्य ततश्चेमान् मृताक्षरात् ।
चेलतन्तूनर्पयामि परिधत्स्व ततोऽप्यनु ॥८८१॥
ततो भगवति प्रोच्य तत्सिद्धिविकराल्यपि ।
प्रसीद द्वितयं कूर्चास्त्रं शिरस्तदनन्तरम् ॥८८२॥
एतत्प्रदानस्य फलं वक्तुमेव न शक्यते ।
स्वयं देवीकरेणैव गृह्णाति त्रिदशेश्वरि ॥८८३॥

[भूषणार्पणमनुः]

तारपाशाङ्कुशानुक्त्वा प्रासादप्रेतभैरवीः ।
कामरामारुषः[1]शस्यां ङेन्ता सिद्धिकराल्यपि ॥८८४॥
इदमाभरणं प्रोच्य भगवत्यै समीरयेत् ।
समर्पयामि च महाचण्डयोगेश्वरीत्यपि ॥८८५॥
द्विर्भूषय शरीराणि वैपरीत्येन कीर्तयेत् ।
नमः स्वाहेत्यलङ्कारदानाय मनुरीरितः ॥८८६॥

[गन्धार्पणमन्त्रः]

कुलस्त्रीरावडाकिन्यः प्रणवो मैधकामले ।
स्मरश्च गन्धबीजञ्च भगवत्यै ततः परम् ॥८८७॥
वज्रकापालिनी ङेऽन्ता एष गन्धो विसन्धियुक् ।
शिरो हृच्चेति मन्त्रोऽयं गन्धदानस्य कीर्तितः ॥८८८॥

१–माया ख. ग. घ. ।

[स्वयम्भूकुसुमार्पणमन्त्रः]

पाशो मैधश्च शर्वश्च तारो ह्रीर्योगिनी तथा ।
शाकिनी डाकिनी चापि नृहरिश्च प्रचण्डया ॥८८९॥
प्रासादममृतं चापि बीजानि द्वादशैव हि ।
श्मशानचारिणी शब्दो भगवत्यप्यनन्तरम् ॥८९०॥
सिद्धार्णाद् विकराली च वज्रकापालिनीति च ।
गुह्यकालीति पञ्चैताः संबोधनतया वदेत् ॥८९१॥
स्वयम्भूकुसुमं लघु च गृह्ण द्विर्गृहाण च ।
एकं सिद्धिं प्रयच्छेति स्वाहान्तो मनुरीरितः ॥८९२॥
इति स्वयम्भूकुसुमदानमन्त्र उदाहृतः ।

[मुक्तप्रसूनार्पणमन्त्रः]

चैतन्यरावयोगिन्यः कूर्चवध्वौ ततः पराम् ॥८९३॥
चण्डोग्रकापालिनि च ततो दण्डादिपञ्चकम् ।
इदं पुष्पं तुभ्यमिति नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥८९४॥
इति मुक्तप्रसूनानां प्रदाने मनुरीरितः ।

[माल्यार्पणमन्त्रः]

रावत्रपाक्षेत्रपालककुच्छैशुकमेव च ॥८९५॥
मदनातुरा ततो ङेऽन्ता प्रभा कान्ता विराडपि ।
ततो मालामर्पयामि हृच्छिरः सर्वशेषतः ॥८९६॥
इत्येकजातिकुसुमग्रथितायां स्रजीरयेत् ।
त्रपामैधे तारकामौ ततो बीजं च कामलम् ॥८९७॥

एषा स्रग् भगवत्यै च गुह्यकाल्यै नमः शिरः ।
विभिन्नजातिकुसुमग्रथितायां मनुस्त्वयम् ॥८९८॥

[सिन्दूरार्पणमनुः]

सारस्वतस्मरक्रोधयोगिनीशाकिनीत्रपाः ।
डाकिनी वनिता चापि बीजान्यष्टाविमानि हि ॥८९९॥
चण्डाट्टहासिनि महामुण्डमालिनि तत्परम् ।
ततः पिङ्गलितजटाभारभासुर ईरयेत् ॥९००॥
सिन्दूरं तुभ्यमहमर्पयामि तदनन्तरम् ।
ललाटानि समुद्धृत्य भूषय द्विरुदीरयेत् ॥९०१॥
उज्ज्वलीकुरुयुग्मं च रोषो हृच्छिर एव च ।
इति सिन्दूरदानस्य मन्त्रः समुपवर्णितः ॥९०२॥

[अञ्जनदानमन्त्रः]

माया नु पाशप्रासादौ शाकिनी योगिनी तथा ।
क्षेत्रपालश्च चण्डातिपदाच्चण्डतरेत्यपि ॥९०३॥
महावज्रपदात् कापलिनि नेत्राञ्जनं वदेत् ।
गृह्णद्वयं च नेत्राणि शोभय द्वितयं ततः ॥९०४॥
हृदस्त्रमस्तकान्यन्ते मनुरञ्जनदत्तये ।

[अलक्तकार्पणमन्त्रः]

चैतन्यतारयोरादौ त्रितयं त्रितयं प्रिये ॥९०५॥
प्रासादं सप्तमं प्रोच्येदमलक्तकमेव च ।
रतिप्रियायै तदनु ततो निवेदयामि च ॥९०६॥

चरणौ भूषय तथा शिरो रक्तप्रदो मनुः ।

[धूपदानमन्त्रः]

वेदादिकमलामैधस्मरपाशाः क्रमेण हि ॥६०७॥

प्रासादो भुवनेशी च क्षेत्रपालश्च योगिनी ।

ततो महाभोगपदाद् भासुरा भगवत्यपि ॥६०८॥

चण्डकापालिनी चापि कुण्डला नरमुण्डतः ।

पदानीमानि चत्वारि ङेऽन्तानि तदनन्तरम् ॥६०९॥

एष धूपो नमः स्वाहा मन्त्रोऽयं धूपदत्तये ।

[सर्वाङ्गसुरभये धूपदानविशेषमन्त्रः]

वेदादिमन्मथरमायोगिन्यो गरुडस्तथा ॥६१०॥

कालरात्रिर्वज्रचण्डकापालिनि ततः परम् ।

ततो नरानु रुधिरमांसप्रिय इतीरयेत् ॥६११॥

शववाहिनि संकीर्त्य पुनर्धूपमिहोच्चरेत् ।

समर्पयाम्यनु सर्वाङ्गान्यतः सुरभीकुरु ॥६१२॥

सुरभीकुरु चोल्लिख्य केशरं काकिनीमपि ।

[अगुरुधूपार्पणमनुः]

नेमिश्छन्दश्च विश्वं च रुडस्त्रं हृदयं शिरः ॥६१३॥

इत्येषोऽगुरुधूपस्य प्रदानाय मनुर्मतः ।

[दीपदानमन्त्रः]

तारपाशाङ्कुशा रावो डाकिनी दीप एव च ॥६१४॥

सूत्रमारिषबीजे च क्रमादष्टौ भवन्ति हि ।

ततो महाचण्डवेगा मुण्डमालिन्यनन्तरम् ॥६१५॥

गलद्रुधिरचर्चिता च वज्रकापालिनी तथा ।
ङेऽन्तानीमानि चत्वारि पदानि सुरवन्दिते ॥६१६॥
एष दीपोऽस्त्रहृच्छीर्षाण्यतः परमुदीरयेत् ।
इति दीपप्रदानाय मनुरुक्तः पुरारिणा ॥६१७॥
अतो चतुर्विधानां त्वं नैवेद्यानां समर्पणे ।
पृथक् पृथङ् मनुं देवि सावधाना निशामय ॥६१८॥

[दीपितनैवेद्यार्पणमनुः]

सारस्वतस्त्रपा तारो लक्ष्मीः कामश्च शाकिनी ।
योगिनी वनिता कूर्चो नव बीजानि वै क्रमात् ॥६१९॥
ततो महाभैरवाधिरूढापदमनुत्तमम् ।
कालाग्निरुद्रासना च गुह्यकाली तथैव च ॥६२०॥
ङेऽन्ता तु त्रिपदी कार्या दीपितं सन्धियुक्त्वदम् ।
समर्पयामि च नमः स्वाहा दीपितदो मनुः ॥६२१॥

[फाणितनैवेद्यार्पणमनुः]

पाशाङ्कुशौ रोषमैधे त्रपाकामलशक्तयः ।
धनदा चाष्टबीजानि पुरतः समुदीरयेत् ॥६२२॥
चण्डाट्टहासिनि ततो जगद्ग्रासिनि चेत्यपि ।
ततश्च फाणितमिदं गृह्ण स्वद युगं युगम् ॥६२३॥
आस्वादय द्वयं चापि तुभ्यं स्वान्तास्त्रमस्तकम् ।
इति फाणितदानाय मनुः संकीर्तितो मया ॥६२४॥

[पारितनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

रावः सारस्वतं प्रेतो योगिनी वनिता तथा ।
चण्डकापालिनी ङेऽन्ता इदं पारितमित्यपि ॥६२५॥
निवेदयामि हृच्छीर्षे एष पारितदो मनुः ।

[विस्रनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

योगिनी कुलिकश्चैव तारकांकुशराव [?] च ॥६२६॥
पाशः सारस्वतं तारः प्रासादो भगवत्यपि ।
नरमुण्डान्मालिनि च जगत् पालिनि चेत्यपि ॥६२७॥
विसन्धीदं ततो विस्रं गृह्‌ण खाद युगं युगम् ।
भक्षय द्वितयं चापि सिद्धिं द्विर्देहि कीर्तयेत् ॥६२८॥
महामुद्रां प्रकटय स्वाहा विस्रप्रदो मनुः ।

[मिश्रनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

वनिता मन्मथो लक्ष्मीर्योगिनी शाकिनी त्रपा ॥६२९॥
तारमैधे भगवति महाकालि तथैव च ।
कापालिनि ब्रह्मविष्णुमुण्डमालिनि चेत्यपि ॥६३०॥
विसन्धीदं मिश्रमथो गृहाण द्वितयं वदेत् ।
भक्षय द्विश्चर्वय द्विः खाहि द्वितयमेव च ॥६३१॥
मां रक्ष युगलं चापि कूर्चास्त्रहृदयं शिरः ।
इति मिश्रप्रदानस्य मनुः समुपवर्णितः ॥६३२॥

[शीतलजलदानमन्त्रः]

प्रासादो वाग्भवादिश्च क्षेत्रपालश्च शाकिनी ।
यागिनी कूर्चममृतं डाकिनी चाष्ट वै क्रमात् ॥६३३॥

नरमुण्डकुण्डला च मेघनीला तथैव च ।
वज्रकापालिनी चेति संबुद्धित्रितयं चरेत् ॥९३४॥
हिमभामोदि संकीर्त्य जलं पिब युगं ततः ।
प्रपिबद्वितयं चापि कूर्चं हृच्छिर एव च ॥९३५॥
इति शीतलतोयस्य दानमन्त्र उदाहृतः ।

[ताम्बूलदानमन्त्रः]

चैतन्यं पाशप्रणवौ नृसिंहः श्रीश्च डाकिनी ॥९३६॥
योगिनी वनिता चैव सुधाहारौ ततः परम् ।
प्रेतो भैरव्यपि ततो बीजानि द्वादशैव हि ॥९३७॥
परापराच्च समयतत्त्वधारिणि कीर्तयेत् ।
गुह्यातिगुह्यपरमरहस्यपदतोऽपि च ॥९३८॥
कुलाकुलपदाच्चक्रप्रवर्तिनि समीरयेत् ।
ताम्बूलमिदमाभाष्य निवेदयामि तत्परम् ॥९३९॥
गृह्ण गृह्णापय द्विर्द्विः महामाये ततोऽप्यनु ।
सकलप्रपञ्चातीते हसद्विर्द्विः कहेत्यपि ॥९४०॥
नदीकामरतिप्राणमेघबीजान्यतः परम् ।
अस्त्रं नमश्च स्वाहा च ताम्बूलस्यार्पणे मनुः ॥९४१॥
राजोपचाराद्दानार्थं ये मन्त्राः पूर्वमीरिताः ।
अत्रापि योजनीयास्ते न पृथग्देवि ते स्मृताः ॥९४२॥
समष्टिव्यष्टिदानार्थमथ सर्वस्य वस्तुनः ।
उक्तानुक्तपदार्थानामर्पणाय सुरेश्वरि ॥९४३॥

[सकलवस्तुदानमन्त्रः]

महामन्त्रमिदानीं त्वं समाहितमना: शृणु ।
सारस्वतं च प्रणवः कमला च कुलाङ्गना ॥६४४॥
पाशप्रासादकन्दर्पयोगिनीवनिता अपि ।
नृहरी रतिशाकिन्यौ डाकिनी प्रलयोऽपि च ॥६४५॥
फेत्कारी सत्त्वकूटं च सकूटानीह षोडश ।
ततो भगवति प्रोच्य वज्रकापालिनोरयेत् ॥६४६॥
पुनः सिद्धिकराल्युक्त्वा महाचण्डाट्टशब्दतः ।
हासे च भैरवाराव सन्त्रासितपदादपि ॥६४७॥
वदेत् त्रिभुवने देवि कलामाली रवादिमः ।
चर्मबीजं रत्नकुम्भः पुष्पमाला तथैव च ॥६४८॥
कृताकृतं समाभाष्य मुक्तामुक्तं ततो वदेत् ।
ततः सर्वमुपचारं गृह्ण द्वितयमेव च ॥६४९॥
गृह्णापय युगं चापि मम सर्वमनोरथान् ।
पूरय द्वितयं कूर्चत्रितयं फट्त्रयं तथा ॥६५०॥
नमः स्वाहा च चरमे सर्ववस्तुप्रदानकृत् ।
कथितोऽसौ महमन्त्रो मया देवि महाफलः ॥६५१॥
अथारात्रिकदानाय मन्त्रं समुपवर्णये ।
तारः कुलस्त्रीमैधे च रमा पाशः स्मरश्च रुट् ॥६५२॥
वध्वङ्कुशक्षेत्रपालयोगिनीप्रेतविद्युतः ।
सानुः वर्मलया जम्भो हारः कर्णिकया तथा ॥६५३॥

कात्यायिन्याश्च संबुद्धिः कापालिन्यास्ततः परम् ।
नव पञ्च पदाच्चक्रलयिनि स्यादतोऽप्यनु ॥६५४॥

एवं महापिङ्गलतो जटाभाराच्च भासुरे ।
भ्रामरी च प्रचण्डा च मन्दः सम्मोह एव च ॥६५५॥

भोगः सृष्टिः भीमरावे भोगवत्यपि तत्परम् ।
वज्रकापालिनि ततो विसन्धिः परिकीर्तयेत् ॥६५६॥

इममारात्रिकं गृह्ण युगलं समुदीरयेत् ।
मम शत्रून् दह द्वन्द्वं भस्मीकुरु युगं तथा ॥६५७॥

सिद्धिं ततो देहि दद द्वितयं द्वितयं वदेत् ।
कूर्चास्त्र योरपि तथा नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥६५८॥

मन्त्रराजो [उ] पचाराणां प्रदानाय पुरोदितः ।
य त एवात्र संयोज्या नान्य उक्ताः पुरारिणा ॥६५९॥

अथ देव्यङ्गपूजायाः प्रकारं ते ब्रवीम्यहम् ।
तत्रादावाननार्चा तु विधेया परमेश्वरि ॥६६०॥

[तान्त्रिकाणां तु] सर्वेषां चतुर्णां सिद्धिमिच्छताम् ।
सिद्धान्त एक एवायं श्रोतव्यो ज्ञेय एव च ॥६६१॥

नित्यार्चने वा काम्ये वाथवा नैमित्तिकार्चने ।
सर्व एव हि ये मन्त्रा कथिताः सन्ति ये मया ॥६६२॥

शक्तौ तेषामादिभूतबीजानि सकलानि हि ।
समुच्चरेदशक्तौ तु तारेणैकेन सम्भवेत् ॥६६३॥

मन्त्रयोग्यक्रियाः सर्वास्तत्तत्पूजनकर्मणि ।
न मध्यगानां बीजानामानुकल्पिकक्रुद्विधिः ॥९६४॥

एवं स्थिते हि सिद्धान्ते यो यदिच्छति तस्य तत् ।
किन्त्वस्ति फलवैशिष्ट्यं वाच्यमेवोभयं मया ॥९६५॥

योगिनीरावनिताडाकिनीकूर्चविद्युतः ।
प्रेतः परा चाष्टबीजीं पुरतः समुदीरयेत् ॥९६६॥

दशापि नामानि ततो गुह्याया भिन्नभिन्नवत् ।
वक्त्राणामभिधा पश्चात् तयोर्मध्येऽनु पार्वति ॥९६७॥

स्वरूपशब्दो दातव्यो ङेऽन्तो विग्रहसंयुतः
शेषे नमः पदं देवि नामानि कलयाधुना ॥९६८॥

[देव्या दश नामानि]

सर्वादिमा महाचण्डयोगेश्वर्युच्यतेऽभिधा ।
वज्रकापालिनी चापि महाडामर्यनन्तरम् ॥९६९॥

कराली सिद्धितः सिद्धिविकराली तथैव च ।
गुह्यकाली चण्डकापालिनी तदनु कथ्यते ॥९७०॥

अट्टहासिन्यथो मुण्डमालिनी सुरवन्दिते ।
कालचक्रेश्वरी सर्वशेषे परिनिगद्यते ॥९७१॥

[देव्या दशवक्त्ररूपपरिचयः]

द्विपः सिंहश्च फेरुश्च कपिर्ऋक्षस्तथैव च ।
नरो गरुड···चाथ मकरो गज इत्यपि ॥९७२॥

दशमस्तु परिज्ञेयः सर्वपाश्चात्त्यगो हयः ।
इत्येतैरीदृशैश्चापि मन्त्रैः परमशोभनैः ॥९७३॥
दशानामपि वक्त्राणां क्रमात् पूजा विधीयते ।
ऊर्ध्वाधोभावसहिता गन्धाक्तकुसुमाक्षतैः ॥९७४॥
पूर्वोक्तस्य विधेर्देवि दृष्टास्तत्त्वधुनोच्यते ।
एकैकस्मिन् मनौ दद्यादष्टबीजीं मनोः पुरः ॥९७५॥
अशक्तौ तारमात्रेण सिद्ध्यति त्रिदशेश्वरि ।
एवं सर्वत्र बोद्धव्यं पक्षोऽयं सार्वतान्त्रिकः ॥९७६॥

[अस्त्रपूजाविधिः]

एकं बीजं भिन्नभिन्नं पुरतः परिकीर्तयेत् ।
तत्तत्करस्थितं चास्त्रं ङेन्तरूपतयोच्चरेत् ॥९७७॥
तत्तच्छब्दस्य यल्लिङ्गं तल्लिङ्गत्वेन तन्मतम् ।
शेषे नम इति ज्ञेय इत्यस्त्रार्चा प्रकीर्तिता ॥९७८॥
अस्मिन्नेव ह्यवसरे मन्त्रोद्धारैककर्मणि ।

[अस्त्रवत्यर्चाविधिः]

अस्त्रवत्यर्चनमपि वक्ष्ये उद्धारपूर्वकम् ॥९७९॥
बीजं विभिन्नमेकैकं बोद्धव्यं सर्वगामि हि ।
ङेन्तत्वेन पुरा प्रोक्ता ये शब्दा अस्त्रनामकाः ॥९८०॥
करस्थास्ते क्रमेणैव तथा कार्या यथास्थिता ।
स्त्र्यन्ता ङेन्ता पुनश्चैव ततः पञ्चाक्षरी प्रिये ॥९८१॥

शेषसंस्था स्थिरा ज्ञेया सर्वत्रैव समा तथा ।
सा रावहृच्छिरांसीत्थमिति व्यक्ततयोदितः ॥६८२॥

उभयोर्मन्त्रयोर्ज्ञेयस्तारस्तु प्रथमं स्थिरः ।
बीजात्प्रागिति निर्दिष्टं त्रिपुरघ्नेन मां पुरा ॥६८३॥

एवमष्टाधिकशते मनौ तारोऽग्रतः प्रिये ।
केवलेनापि तारेण बीजाभावेऽपि पूर्ववत् ॥६८४॥

विशेषः सुमहानन्यो वर्तते तं निशामय ।
वामभागे सप्तदशतमस्थाने वरानने ॥६८५॥

विहायागममूर्धानं द्वे बीजे भवतो ध्रुवम् ।
एवं दक्षेऽपि नवमस्थाने तारं विनापि हि ॥६८६॥

भवन्ति पञ्च बीजानि सावधाना भवात्र हि ।
पुरोक्तवत्सर्वमन्यद्व्यत्ययो नैव च क्वचित् ॥६८७॥

इदानीमभिधां वच्मि बीजानां क्रमतः प्रिये ।
मणिमाला कपालं च चर्म[1]पाशस्तथैव च ॥६८८॥

शक्तिः खट्वाङ्गमथ च मुण्डं पश्चाद् भुशुण्ड्यपि ।
पिनाकचक्रमस्यानु घण्टा प्रेतश्च सानु च ॥६८९॥

कङ्कालं नकुलश्चापि निर्मोकस्तदनन्तरम् ।
उन्मादवेणुस्तस्यानु मुद्गरः कुण्डमेव च ॥६९०॥

१—कर्म पाश ङ ।

डमरुः परिघश्चापि भिन्दिपालोऽप्यनन्तरम् ।
मुसलः पट्टिशः प्रासः शतघ्नी फैरवं तथा ॥९९१॥

इति वामकरास्त्राणां प्राग्बीजान्युदितानि ते ।
अथ दक्षकरस्यापि सावधाना निशामय ॥९९२॥

माला कर्त्री च खड्गश्च तर्जनं वाप्यथाङ्कुशः ।
दण्डश्च रत्नकुम्भश्च शूलं तदनु कथ्यते ॥९९३॥

नालीकवत्सदन्तक्षुरप्रभल्लार्धचन्द्रकाः ।
कुन्तश्च पारिजातश्च छुरिका तोमरोपि च ॥९९४॥

पुष्पमाला डिण्डिमश्च तथोलूकः कमण्डलुः ।
पलश्रुक्फलमस्यानु कीलः पर्णं गदा तथा ॥९९५॥

यष्टिर्मुष्टिश्च कुणपः शैशुकस्तदनन्तरम् ।
इति दक्षभुजास्त्राणां बीजानि कथितानि ते ॥९९६॥

अथास्त्राणि समाख्यास्ये ङेऽन्तान्युक्तानि यानि हि ।
तेनैव चरितार्थत्वमिति चेदुत्तरं शृणु ॥९९७॥

नामभेदेन बीजानां तथास्त्राणां विपर्ययः ।
कदाचित्स्यादतो वक्ष्ये विशदीकरणाय हि ॥९९८॥

वतुप्मतुप्प्रत्ययौ द्वौ ज्ञातव्यौ ज्ञानचक्षुषा ।
दाक्षीसुतोक्तिरीत्यैव नाहंकारधिया पुनः ॥९९९॥

पुनरुक्तादिदोषेण नैव दूष्यं वचो मम :
ब्रवीमि तस्य दृष्टान्तं प्रतीत्यर्थं तवेश्वरि ॥१०००॥

बीजपूरफलं देव्या वर्तते दक्षिणे करे ।
बीजपूराह्वयं बीजं नहि बीजेषु पठ्यते ॥१००१॥

एतदर्थं प्रब्रवीमि नामास्त्राणां पृथक् पृथक् ।
रत्नमाला कपालं च चर्मपाशस्तथैव च ॥१००२॥

शक्तिः खट्वाङ्गमुण्डं च भुशुण्डी च पिनाकयुक् ।
चक्रं घण्टा तथा बालप्रेतःशैलोऽप्यनन्तरम् ॥१००३॥

नरकङ्कालनकुलौ सर्प उन्मादवंश्यपि ।
मुद्गरो वह्निकुण्डश्च डमरुः परिघोऽपि च ॥१००४॥

भिन्दिपालश्च मुसलः पट्टिशः प्रास एव च ।
शतघ्नीच शिवापोतः सव्यहस्तस्थितानि हि ॥१००५॥

अस्त्राण्युदीरितानीत्थमथ दक्षस्य वै शृणु ।
रत्नमाला च कर्त्री च खड्गस्तर्जन्यपि प्रिये ॥१००६॥

ततोऽङ्कुशश्च दण्डञ्च रत्नकुम्भस्तथैव च ।
शूलं वाणाश्च कुन्तश्च पारिजातस्तथैव च ॥१००७॥

छुरिका तोमरः पुष्पमाला डिण्डिम एव च ।
गृध्रः कमण्डलुर्मांसखण्डः स्रग्वीजपूरकः ॥१००८॥

शूची पर्शुः गदायष्टिर्मुष्टिः कुणपलालनम् ।
इति दक्षिणहस्तस्य प्रोक्ताण्यस्त्राणि पार्वति ॥१००९॥

अथेन्नन्तप्रत्ययान्तङेन्तस्त्रीलिङ्गशब्दतः ।
प्राग्बीजानि प्रवक्ष्यामि तानि त्वं क्रमतः शृणु ॥१०१०॥

त्रपा कामवधूलक्ष्मीडाकिन्यो योगिनी तथा ।
अंशुर्मुक्ता च फेत्कारी ततः शुक्लो महा तथा ॥१०११॥
ताटंको भ्रामरी लीला मन्दः सम्मोह एव च ।
केकराक्षी कालरात्रिः पतनं संहृतिस्तथा ॥१०१२॥
कर्णिका शृंखला चापि दुष्कृतं पद्ममेव च ।
सुरसः समरस्तन्त्रा कुटिला तदनन्तरम् ॥१०१३॥
संभूतिश्चतुरस्रञ्च नादान्तक इतोऽप्यनु ।
चामरश्चैव मारण्डो विनादोऽप्यथ कथ्यते ॥१०१४॥
विरूपश्चापरान्तश्च दाक्षिकः सौमतोऽपि च ।
धन्यमुल्लोप्यसर्वस्वं विप्रियं तदनूद्यते ॥१०१५॥
ततो विवत्ससंभावौ पुर्नविनिमयोऽपि च ।
सञ्जीवनी च × × × संवर्तकविवर्तकौ ॥१०१६॥
विराधश्च तुरीया च षट्चक्रमथ कथ्यते ।
सर्वागमः स्यात्तदनु शक्तिसर्वस्वमेव च ॥१०१७॥
सर्वशेषे परिज्ञेया चिच्छक्तिर्वरवर्णिनि ।
इति तत्तच्छस्त्रवत्या बीजाली पूर्वगामिनी ॥१०१८॥
क्रमेण वामभागात्तु मया ते कथिताऽखिलाः ।
अस्त्रपूजैवमाख्याता अस्त्रवत्यास्ततोऽप्यनु ॥१०१९॥
केचित्पूर्वं प्रकुर्वन्ति नोत्तरं यामलादयः ।
विपरीतं तथा चान्ये सर्वे कापालिकादयः ॥१०२०॥

मन्मतं तूभयं कुर्यात्त्रिपुरघ्नवचोऽप्यदः ।
नैमित्तिके च शारद्यां युग्ममावश्यकं प्रिये ॥१०२१॥

तत्तद्बीजाद्यमुल्लेख्यं तारेणैकेन वा भवेत् ।
अथाङ्गानि तथा प्रत्यङ्गानि देव्याश्च पूजयेत् ॥१०२२॥

तारो रावो भौवनेशी वनिता योगिनी च रुट् ।
फेत्कारी स्थितिकूटं च शेषे हार्दमनुस्तथा ॥१०२३॥

ऊहाः कार्या मध्यगताः स्वबुद्धया योजयेत्तु तान् ।
सप्तविंशतिशब्दानु लोचनेभ्यः प्रकीर्तयेत् ॥१०२४॥

आभाष्य विंशतिपदं ततश्चेमान् प्रकीर्तयेत् ।
कर्णेभ्यस्तत्परं नासापुटेभ्यो भ्रूभ्य एव च ॥१०२५॥

कपोलेभ्योऽथ गण्डेभ्यो हनुभ्यस्तदनन्तरम् ।
सृक्केभ्यो दन्तपंक्तिभ्योऽधरौष्ठेभ्यस्ततः परम् ॥१०२६॥

ततः पुनर्दश प्रोच्य नासाभ्यः परिकीर्तयेत् ।
जिह्वाभ्योऽथ गलेभ्यश्च पार्श्वाभ्यां वक्षसे तथा ॥१०२७॥

पृष्ठाय जठरायापि नाभये वस्तयेऽपि च ।
ऊरुभ्यामथ जानूभ्यां जङ्घाभ्यां तदनन्तरम् ॥१०२८॥

गुल्फाभ्यां चरणाभ्यां च चतुर्विंशतिरित्यमी ।
अङ्गप्रत्यङ्गपूजायामावश्यकतयोदिताः ॥१०२९॥

नारीरीत्यैवान्यदपि सर्वमेव प्रयोजयेत् ।
वक्त्रबाह्वधिके पूर्वरीतिरत्रापि पार्वति ॥१०३०॥

न सर्वगा नो समया शस्ते नैमित्तिकार्चने ।
क्षणेऽस्मिन्नेव कर्तव्या पूजा परमहेशितुः ॥१०३१॥
कालाग्निरुद्रस्य विभोर्भीषणाकारधारिणः ।
ज्वालामालिनृसिंहेति नाम्नाऽसौ परिकीर्त्यते ॥१०३२॥
तन्मन्त्रध्यानपूजादि पुरा यत् प्रतिपादितम् ।
तेनैव सर्वं कर्तव्यं भिन्नं नास्त्यत्र वै मतम् ॥१०३३॥
सामरस्यबलिः पूर्वमन्त्रेणैव प्रदीयते ।
एवं निर्वर्त्यते ह्येनमुभयोरेकदैव हि [?] ॥१०३४॥

[देव्यनुज्ञाप्रार्थनामन्त्रः]

बद्धाञ्जलिः पठेत्पद्यरूपं मन्त्रमनन्यधीः ।
गुह्यातिगुह्ये देवेशि ब्रह्मतत्त्वस्वरूपिणि ॥१०३५॥
परिवारगणार्चार्थमनुज्ञां देहि मे शिवे ।
अनन्तगुह्यसमयसामरस्यप्रवर्तिनि ॥१०३६॥
प्रार्थयेऽहं तवानुज्ञां त्वदावरणपूजने ।
इत्यनुज्ञां समादाय कुर्यादावरणार्चनम् ॥१०३७॥

[नैमित्तिकावरणपूजोपक्रमः]

अत्रापि पौर्वः सिद्धान्तो न सार्ष्टयः कदाचन ।
सांहृतेयो गणार्चायां त्रिपुरघ्नानुशासनात् ॥१०३८॥
अत्रापि नित्यपूजावन्नानाब्जपरिकल्पना ।
अविद्यमानमप्येतत् पूजाहेतोर्विभाव्यते ॥१०३९॥
प्राणायामं ततः कृत्वा षडङ्गं कालिकातनौ ।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा जपित्वा हृदयाभिधाम् ॥१०४०॥

दशकृत्वो महाविद्यां समयां तावदेव च ।
यावत्यो मूर्तिसंबन्धाद्यावत्यः पीठयोगतः ॥१०४१॥
तावत्यः प्रक्रिया बोध्या उभयोरपि पार्वति ।
वर्ष्मक्रमागताः काश्चित्पीठमर्यादया पराः ॥१०४२॥
मर्यादयोभयोः काश्चिद्विज्ञेयास्तनुपीठयोः ।
अत्रापि मन्त्रादिभूतबीजोच्चारणकर्मणि ॥१०४३॥
अशक्तः प्रणवेनैव सर्वं मन्त्रमुदीरयेत् ।

[समुद्रादिदेव्यालयपूजाविधिः]

चैतन्यकमलारावरोषस्मरपुरस्सरान् ॥१०४४॥
शब्दान् सप्त नमोऽन्तस्थान् ङेन्तानुच्चारयन् महेत् ।
समुद्रस्तट ऊर्मिश्च फेन आवर्त एव च ॥१०४५॥
वेला पङ्कश्च कूलञ्च रुधिरो पय आदि ये ।
विगृहीतास्ततस्तारडाकिनीशाकिनीरुषः ॥१०४६॥
रक्तद्वीपं सर्वमन्यत् कुर्यात्पूर्वोदितक्रमैः ।
एभ्यो नवानु मांसार्णाद् भ्यसन्तमपसैकतम् ॥१०४७॥
तद्वदेवास्थियादोभ्यस्त्रपारावाङ्कुशस्त्रियः ।
चामुण्डाभैरवमपवेष्टनाय नमोऽन्वितः १०४८॥
पाशचैतन्यरावह्रीप्रासादक्रोधविद्युतः ।
योजनायुतशब्दश्च महामण्डलमेव च ॥१०४९॥
ङेन्तत्वेन विनिर्दिश्योभयं कूर्चास्त्रमुद्धरेत् ।
नमः स्वाहा सर्वशेषे उभयोः पूजने मनुः ॥१०५०॥

[भैरवीकोटिघटितप्राकारपूजाविधि]

तारो मैधं योगिनी च प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ।
भैरवीकोटिघटितः प्राकारस्तदनन्तरम् ॥१०५१॥
भिन्नं ङेन्तत्वेन कृत्वा नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ।
मैधं मुक्ता महासानुरत्नबीजानि पञ्च वै ॥१०५२॥
शतयोजनप्रमाणं च ततोऽनु जगदीश्वरि ।
महाश्मशानशब्दश्च ङेन्तत्वेन विनिर्दिशेत् ॥१०५३॥
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते सामान्यो मनुरीरितः ।
प्रणवो द्वीपपाशह्लीरावप्रलयविद्युतः ॥१०५४॥
योगिनीभित्तये रोषास्त्रद्वयं नम एव च ।

[अष्टश्मशानपूजाविधिः]

तारमैधे चण्डसृणी प्रासादः प्रलयोऽपि च ॥१०५५॥
रावकालादित्यशक्तिकुलिकाऽमृतमेखलाः ।
ज्वालाजालकरालेभ्योऽष्टश्मशानेभ्य एव च ॥१०५६॥
हूं फट् नमस्ततः स्वाहा सामान्यो व्यापको मनुः ।
ब्रवीम्यष्टश्मशानानां प्रत्येकमधुना मनुम् ॥१०५७॥
भौवनेशी योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा ।
एतानि पञ्च बीजानि सर्वादौ कीर्तितानि हि ॥१०५८॥
स्थेयांसीह विभाव्यानि ततः शब्दाश्चलाः पृथक् ।
तेषां श्मशानशब्देन विग्रहो ङेविभक्तिकः ॥१०५९॥

पूर्वे चलाः स्थिराः शेषे उभयोः पदयोरपि ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरोरूपा सर्वशेषे षडक्षरी ॥१०६०॥
विज्ञेयैषापि कूटस्था सर्वमन्त्रान्तगामिनी ।

[अष्टश्मशाननामानि]

नामान्यथ श्मशानानां क्रमेण व्याहरामि ते ॥१०६१॥
महाघोरः कालदण्डो ज्वालाकुल इतः परम् ।
चण्डपाशस्तथा कापालिको धूमाकुलस्तथा ॥१०६२॥
भीमाङ्गारो भूतनाथो दिक्षिवत्वष्टसु पूजयेत् ।
कालरात्रिः केकराक्षी भ्रामरी च प्रभञ्जना ॥१०६३॥
ज्वालाकुलश्मशानाष्टदिग्भागेभ्य इतीरयेत् ।
नमः पदं केवलं तु कूर्चास्त्रेयो न वा शिरः । १०६४॥
इति सामान्यतोऽभ्यर्च्य विशेषात्पूजयेत्ततः ।
सारस्वतत्रपामाया योगिनी मणिमालिका ॥१०६५॥
स्थिराण्येतानि बीजानि सर्वेषामेव पार्वति ।
मध्ये पूर्वादिहरितां विदिशां च क्रमेण हि ॥१०६६॥
विभागा नामभिर्भिन्नैःप्रत्येकं प्रतिपादिताः ।
तांश्चतुर्थ्येकवचनान् कृत्वा तदनु कीर्तयेत् ॥१०६७॥
एते पृथक् पृथग्रूपाः पूर्वगैर्नामभिर्मताः ।
द्वितीयैः स्थिरतापन्नैः सपरस्परविग्रहैः ॥१०६८॥
या पूर्वमीरिता शेषे सैव ज्ञेया षडक्षरी ।
श्मशानानां दिग्विदिशोरष्टौ नामानि वै क्रमात् ॥१०६९॥

[अष्टश्मशानदिग्विदिशां च नामानि]

श्रृणु पार्वति यत्नेन श्रुत्वा चैवावधारय।
प्रथमः स्वस्तिकावर्तो ज्वालावर्तस्ततः परम् ॥१०७०॥

याम्यावर्तस्ततो ज्ञेयोऽनन्यावर्तः सुरेश्वरि।
भद्रावर्तः पुनः सौम्यावर्तोऽपि प्रतिपादितः ॥१०७१॥
मङ्गलावर्त इति च संभ्रमावर्त एव च।
इत्येतेऽष्टश्मशानानां दिग्विभागाः क्रमान्मताः ॥१०७२॥
पूज्या ग्रावरणार्चायां साधकेन विपश्चिता।

[द्वारपालपूजाविधिः]

ततो मन्त्रैर्वक्ष्यमाणैर्द्वारपालान् प्रपूजयेत् ॥१०७३॥
तारमायारमाकामयोगिनीपञ्चबीजकम्।
पुरतः सर्वमन्त्राणां स्थिराणि कथितानि च ॥१०७४॥
श्मशानस्याष्टदिग्भागनामभिर्द्विपदान्तिमैः।
अधिष्ठातृपदस्यापि विग्रहो ङेवचोऽन्वितः ॥१०७५॥
त्रयाणामेव शब्दानां सर्वाद्यं चञ्चलं मतम्
उत्तरं पदयोर्युग्मं निस्तरङ्गं प्रकीर्त्यते ॥१०७६॥
भिन्ना भिन्नाः पुनः शब्दास्ततः परमुदीरिताः।
तैर्द्वारपालशब्दस्य समासो ङेस्वरूपधृक् ॥१०७७॥
ततो नु भिन्नभिन्नानि नामानि सुरवन्दिते।
चतुर्थ्येकवचोरूपः कर्तव्यः सोऽपि तत्परम् ॥१०७८॥

परस्परागता या तु सा पश्चिमषडक्षरी ।
इति सामान्य उद्धारो मयोक्तो दुर्ग्रहो नृभिः ॥१०७९॥
विशेषमधुना वच्मि स्फुटताप्रतिपत्तये ।
पाशचण्डस्मरामाह्रीफेत्कारीप्रलयस्त्रियः ॥१०८०॥
पंचानुष्ठौ [?] कीर्तयन्ति कापालिकदिगम्बराः ।
फलातिरेकता हेतोर्नैतन्मम मतं प्रिये ॥१०८१॥
द्वारपालपदात्पूर्वगतान् शब्दान्निशामय ।
पूर्वं आग्नेयविदिश दक्षिणास्तदनन्तरम् ॥१०८२॥
तन्नैर्ऋतविदिक् चापि पश्चिमोऽस्यानु कीर्तितः ।
वायव्यविदिगस्यानु तत उत्तर एव च ॥१०८३॥
ऐशानविदिगन्ते स्यादेवं रूपपदोद्धृतिः ।

[अष्टद्वारपालनामानि]

द्वारपालपदस्यानु भिन्नांच्छब्दाच्छृणूत्तरान् ॥१०८४॥
कालपाशो भीमपाशो यमपाशस्ततः परम् ।
मृत्युपाशो दण्डपाशो नागपाश इतः परम् ॥१०८५॥
ज्वालपाशो घोरपाश इत्यष्टौ द्वारपालकाः ।

[अष्टशूलपूजाविधिः]

पूजामथाष्टशूलानां वक्ष्यमाणां निबोध मे ॥१०८६॥
शुम्भात्रिशैशुककुद् रामा कूर्चविद्युतः [?] ।
ततोऽष्टभ्य स्त्रिशूलेभ्यो नम इत्येव केवलम् ॥१०८७॥
इति सामान्यरूपेणाष्टौ शूलानि प्रपूज्य वै ।
क्रमात्पुनर्विशेषेण वक्ष्यमाणैर्मनूच्चयैः ॥१०८८॥

पूजयीत समुद्धारमधुना कलयेश्वरि ।
तारप्रासादनृहरिभैरवीप्रेतमन्मथाः ॥१०८९॥
एते वर्णाः स्थिरा ज्ञेयाः प्रतिमन्त्रं महोदयाः ।
पूर्वोदितश्मशानानां दिग्भागाख्या पदैः सह । १०९०॥
वर्तिशब्दस्य विज्ञेयो विग्रहो ङेविभक्तिकः ।
क्रमेणैव चलाः पूर्वे स्थिरावुत्तरगौ पुनः ॥ १०९१॥
चतुर्वर्णात्मकानां हि त्रिशूलानां ततः परम् ।
नामानि भिन्नभिन्नानि तैस्त्रिशूलपदस्य च ॥१०९२॥
विग्रहः स चतुर्थ्येकवचनात्मा व्यवस्थितः ।
कूर्चमस्त्रं च हृदयं ततोऽप्यनलवल्लभा ॥ १०९३॥

[त्रिशूलनामानि]

अथ त्रिशूलनामानि कथयामि सुरेश्वरि ।
जयावहो विद्युदन्त्रश्चण्डखण्डस्ततः परम् ॥ १०९४॥
विकरालः कालकूटो घोरनादो विमारणः ।
शोणितोदश्च नामानि त्रिशूलानाममूनि हि ॥१०९५॥

[दम्भोलिपूजनविधिः]

अथ दम्भोलिमहनमहमासादयामि ते ।
हार एकावली चर्म मुन्तला भगमालिनी ॥१०९६॥
चतुर्भ्योऽनु च वज्रेभ्यो नम इत्यथ कीर्तयेत् ।
वज्राण्यभ्यर्च्य सामान्यप्रकारेण सुरेश्वरि ॥१०९७॥

पुनः संपूजयेत्तानि विशेषान्नामपूर्वकम् ।
पूतनापूतकौणप्यः सौरङ्गश्च महाङ्कुशः ॥१०९८॥
स्थिराण्यमूनि सर्वत्र चलांच्छाब्दानतो ब्रुवे ।
उल्कामुखोऽङ्गारमयो भस्मान्तकभयङ्करौ ॥१०९९॥
एभिर्वज्रपदस्यापि विग्रहस्तदनन्तरम् ।
तं ङेन्तत्वेन निर्दिश्य नमोऽन्ते विनियोजयेत् ॥११००॥
व्यादीन्दिरापञ्चकानु पञ्चमो दारुणाह्वयः ।
अथोल्कामुखवज्रादिपदैर्धारिन् पदस्य हि ॥११०१॥
विग्रहीकृत्य युञ्जीत ङेविभक्ति सुरेश्वरि ।
चत्वार्यन्यानि नामानि तैर्वेतालपदस्य च ॥११०२॥
पूर्ववत्सकलं कृत्वा नमोऽन्ते विनियोजयेत् ।
तान्यग्नितुण्डः प्रथमं मृत्युजिह्वस्ततोऽप्यनु ॥११०३॥
कालदण्डो जंबुनादः कार्यः सन्ध्यूनतोऽग्रगः ।

[सिंहासनादिपूजा]

अथ सिंहासनादीनां पूजनं कथयामि ते ॥११०४॥
शृङ्खलानान्दिकौ तारपूर्वौ पुरत ईरयेत् ।
त्रयीमयं त्रिदैवश्च पुष्पस्रग् भगमालिनी ॥११०५॥
चूडा चेत्यष्टबीजानि मनोः पुरत उच्चरेत् ।
सर्वाधः स्थितशब्दं च ततः सिंहासनं पुनः ॥११०६॥

कृत्वोभयं ङेन्तरूपं रुड्रावाङ्गुष्ठमस्तकाः ।
इत्थं सामान्यरूपेणाभ्यर्च्य सिंहासनं प्रिये ॥११०७॥

पुनस्तच्च विशेषेण पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ।
तदुद्धारं ब्रुवे देवि किञ्चित्काठिन्यसंयुतम् ॥११०८॥

योगिनी शक्ति शुक्लोऽक्षरासानयनदात्रयः ।
इयमग्रे भवेदष्टबीजी सर्वमनोरपि ॥११०९॥

सर्वाधःस्थितसिंहासनधरायापि च स्थिरम् ।
आयुर्वेदो धनुर्वेदस्ततो गान्धर्ववेदयुक् ॥१११०॥

अथर्ववेदः क्रमादेते चतुर्थ्येकवचोऽन्विताः ।
रोषरावास्त्रहृच्छीर्षाण्यन्ते परिकीर्तयेत् ॥११११॥

आद्यन्तौ सन्धिरहितौ करणीयौ मनूद्धृतौ ।
ततो मैधं पाशदण्डौ कर्णिका हार एव च ॥१११२॥

रत्नसिंहासनाद्यानु नमः पदमुदीरयेत् ।
एवं सिंहासनं रात्नं सामान्येन प्रपूज्य वै ॥१११३॥

विशेषतः पुनः सिंहासनधारिण आर्चयेत् ।
चैतन्यमायाकमलास्त्रिवीजी सकलादिगा ॥१११४॥

मनू हृच्छिरसोरन्ते चलं मध्येऽधुना शृणु ।
नमः पदात्पूर्वगतं मुण्डासनपदं प्रिये ॥१११५॥

चतुर्थ्येकवचः कृत्वा स्थिरं सर्वत्र योजयेत् ।
पदानि मध्यगानि त्वमधुना कलय प्रिये ॥१११६॥

आदौ कृतयुगं त्रेतायुगं तदनु कथ्यते ।
ततोऽनु द्वापरयुगं ततः कलियुगं मतम् ॥१११७॥
ऋग्वेदश्च यजुर्वेदः सामवेदस्तथैव च ।
अथर्ववेदः कथितः सर्वशेषे सुरेश्वरि ॥१११८॥
एतैर्मुण्डासनस्यापि कर्तव्यस्तस्य विग्रहः ।
अथ तार्तीयकं सिंहासनपूजनमारभे ॥१११९॥
चामरव्यजने ताराद् व्ययरागौ च सूत्रतः ।
विमर्दशेखरौ पद्माद् धीरमौक्तिकशब्दतः ॥११२०॥
सिंहासनाय हृन्मन्त्रः सामान्येन पुरोऽर्चयेत् ।

[विशेषमन्त्रेण दिक्पालपूजा]

ततो विशेषमन्त्रेण दिक्पालानष्ट पूजयेत् ॥११२१॥
शाकिनी डाकिनी फेत्कारिणी बीजत्रयं पुरः ।
अस्त्रहृन्मस्तकान्यन्ते स्थिरौ पूर्वापरौ मतौ ॥११२२॥
मध्ये पदत्रयं ङेन्तं सर्वत्रैव स्थिरं समम् ।
नमः पदात्पूर्वपदं सिंहासनधरं पदम् ॥११२३॥
द्विबीजतोऽष्टदिक्पालाः स्वस्वनाम्ना व्यवस्थिताः ।
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ॥११२४॥
वायुः कुबेर ईशान एतादृग्भिः स्वनामभिः ।
अनयोरन्तरपदं त्रिपद्यैव विनिर्मितम् ॥११२५॥
परस्परं समासिन्याश्चैतस्याः शेषगं पदम् ।
पतिरित्यभिनिर्दिष्टं तत्पूर्वे द्वे पदे शृणु ॥११२६॥

दिशां चतसृणामेव न चान्येषां वरानने ।
पूर्वं दिग्विदिगित्येव ततो दक्षिणदिक्पुनः ॥११२७॥
विदिक्पश्चिमदिक् चापि विदिगुत्तरदिक् तथा ।
पुनर्विदिगथोच्चार्य मनूनष्टौ विनिर्दिशेत् ॥११२८॥

[कापालिकरीत्या दिक्पालपूजाप्रकारवर्णनम्]

कापालिकानां भिन्नैव दिक्पतीनां महक्रिया ।
एतेषामेव मन्त्राणां बीजे द्वे हि पुरो गते ॥११२९॥
ते एव बीजे विज्ञेये वक्ष्यमाणमनुष्वपि ।
प्रोक्ता या चरमेऽमीषां सुरेश्वरि नवाक्षरी ॥ ११३० ॥
साऽप्यन्तेष्वपि दातव्या तत्पूर्वमधिकं परम् ।
पदं सपरिवारं तु ङेऽन्तं कृत्वा नियोजयेत् ॥११३१॥
इदमप्यक्षिणे[?]मन्त्रे कूटत्वेन नियोजितम् ।
द्विबीजमनु दिक्पालान्सर्वान् पूर्वोदिताक्षरैः ॥११३२॥
ङेन्तान् विधाय युञ्जीत विशेषणपदत्रयम् ।
ततस्तत्त्वेन निर्दिश्य तदग्रे विनियोजयेत् ॥११३३॥
इदानीं क्रमतो वक्ष्ये मध्यगानां समुद्धृतिः ।
पीतो रक्तश्च कृष्णश्च धूम्रः श्वेतस्तथैव च ॥११३४॥
श्यामो गौरस्तथा शुभ्र एतैर्वर्णपदस्य हि ।
विग्रहः स क्रमाज् ज्ञेय आद्यमेकं विशेषणम् ॥११३५॥
ऐरावतस्तथा छागो महिषस्तुरगस्तथा ।
मकरो हरिणश्चैव नरो वृषभ एव च ॥११३६॥

एतैर्वाहनशब्दस्य समासः पूर्ववत्क्रमः ।
विशेषणमिदं बोध्यं द्वितीयं चापि पार्वति ॥११३७॥
वज्रं शक्तिर्दण्डखड्गपाशध्वजगदाः क्रमात् ।
त्रिशूलं चेदृशैः शब्दैरायुधस्य च विग्रहः ॥११३८॥
इदं तृतीयं विज्ञेयं विशेषणमतः परम् ।
विभक्तिवचने पूर्वमीरिते ते सुरेश्वरि ॥११३९॥
एवमन्यप्रकारेण दिगीशपरिपूजनम् ।
कार्यमेकमशक्तौ तु शक्तौ तूभयमाचरेत् ॥११४०॥
फलातिरेकप्रेप्सूनामुभयं योग्यमुच्यते ।
पाशो मैधं भौवनेशी योगिनी कमला वधूः ॥११४१॥
नृसिंहः सत्त्वकूटञ्च ज्योतिर्मयपदादनु ।
सिंहासनाय हृद्बीजं सामान्येन प्रपूजयेत् ॥ ११४२॥
पुनस्तारयतिहृस्वनान्दीनान्दिकशक्तयः ।
प्रेतो भैरव्यमा चेति नवबीजानि चोद्धरेत् ॥११४३॥
सामान्ये तानि सर्वेषामन्ते च नम इत्यपि ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥११४४॥
एकैकमेषामेकस्मिन् मन्त्रे क्रमत ईरये ।
महाप्रेतपदं सर्वसामान्यत्वेन तत्परम् ॥११४५॥
ज्योतिर्मयानु सिंहासनधरस्तत्परोऽपि च ।
विशेष्यत्वेनोक्त आद्यो विशेषणतयाऽपरौ ॥११४६॥

ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिष्टास्त्रयोऽपि त्रिदशेश्वरि ।
चैतन्यं शाकिनी पाशरमारामाक्रुधः ०० ॥११४७॥
कूटं मार्त्युञ्जयं चापि शाम्भवं तदनन्तरम् ।
कृष्णवर्णेत्यतः शब्दस्तनःपिङ्गलजटोऽपि च ॥११४८॥
नरमुण्डास्थिमाली च महाशब्दादनु प्रिये ।
भैरवासनमित्येवं चत्वार्येव पदानि हि ॥११४९॥
कार्याणि ङेऽन्तरूपाणि सर्वाण्येव मनूद्धृतौ ।
कूर्चगावास्त्रहृच्छीर्षमनवश्वरमस्थिताः ॥११५०॥

[शिवासनपूजा]

क्रमाभावेऽपि देवेशि शिवासनमनुं शृणु ।
मायापाशौ चण्डकाल्यौ प्रासादप्राणवारिदाः ॥११५१॥
पुष्पमाला वृद्धिकूटं कूटं सन्ताननामकम् ।
शशाङ्कशेखरपदं नागहारिपदं ततः ॥११५२॥
भीमदर्शनमित्येवं वज्रदंष्ट्रानखस्ततः ।
व्याघ्रचर्माम्बरमणिशूलखट्वाङ्गधार्यपि ॥११५३॥
ततो धूमलवर्णश्च पुनः पिङ्गजटाधरः ।
शिवाकारश्च नवमो दशमश्च शिवासनम् ॥११५४॥
सर्वेऽप्येते चतुर्थ्येकवचसा परिगुण्ठिताः ।
सक्रोधा शाकिनी चास्त्रं नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥११५५॥
शिवासनस्य पूजायां मन्त्र एष मयोदितः ।

[पूजायाः निगमागमविहितक्रमः]

अथावधेहि देवेशि त्रिपुरारिप्रकाशितम् ॥११५६॥

दुरूहमतिविस्तारं निगमागमयोः क्रमम् ।
यथा नैमित्तिकार्चायां कालीप्रीतिप्रदायिनम् ॥११५७॥

नित्ये चतुर्विंशदलाम्बुजं यद्वत् प्रकल्प्यते ।
तथात्राप्युभयं कल्प्यं पूजाविस्तारहेतवे ॥११५८॥

षट्त्रिंशद्दलमम्भोजं द्वात्रिंशद्दलमेव च ।
चतुर्विंशच्छदं चापि त्रितयं परिकल्प्यते ॥११५९॥

षोडशद्वादशाष्टाब्जं सिद्धमेव हि तिष्ठति ।
वृत्तयोरष्टदिग्भागकल्पना च विधीयते ॥११६०॥

अन्यमेकं च समयमवधारय पार्वति ।
सर्वत्रैवात्र विज्ञेया कालिकार्च्यतया खलु ॥११६१॥

तत्तन्नाम्ना विशेषाच्च सा सा काल्यभिधीयते ।
न ते गुणा न ते भावा न तद् द्रव्यं न सा क्रिया ॥११६२॥

न सा सृष्टिर्न तद्वस्तु न तच्छास्त्रं न स क्रमः ।
न हि येषामधिष्ठात्री कालिका क्षेमकारिका ॥११६३॥

यद्यत्पदार्थाधिष्ठात्री या या काली प्रकीर्तिता ।
तत्तन्नाम्नैव सा सा हि विख्याता परमेश्वरि ॥११६४॥

एवंस्थितस्य देवेशि सिद्धान्तस्याखिलस्य हि ।
अथान्तर्वर्तिनीं काञ्चिद्रीतिमन्यां निशामय ॥११६५॥

एकषष्टिः शतोपेता कालिकानां प्रकीर्तिता ।
नासां वक्त्राकाररीतिः कथिता पुरवैरिणा ॥११६६॥

पञ्चारपूजने यास्तु कालिकाः परिकीर्तिताः ।
त्रिंशाधिकं शतं तासां मुखाकारो निरूपितः ॥११६७॥

[षट्त्रिंशद्दलकालीपूजाविधिः]

अथावधेहि षट्त्रिंशद्दलकाल्यर्चनं पुरः ।
प्रथमं तारराबाभ्यां तारेणैकेन वा पुनः ॥ ११६८॥
[1]पूजयेत् प्रथमं देवि तत्तन्नाम समुच्चरन् ।
आगमो निगमश्चैव नेत्रं व्यापकमेव च ॥११६९॥
सङ्कल्पश्च विकल्पश्च खेचरो भूचरोऽपि च ।
नियतिः सत्त्वरजसी तमो हृदयमेव च ॥११७०॥
शिरः शिखा च कवचं नेत्रं व्यापकमेव च ।
सङ्कल्पश्च विकल्पश्च संभ्रमो विभ्रमोऽपि च ॥११७१॥
संपद्विवादसंवादा आलापोऽथादिरेव च ।
चरमश्चाहतस्तद्वदनाहत इतः परम् ॥११७२॥
शब्दो ध्वनिवर्णपदवाक्यानीति क्रमात् प्रिये ।

[द्वात्रिंशद्दलपूजाविधिः]

अथावधेहि द्वात्रिंशद्दलाम्भोजप्रपूजनम् ॥११७३॥
सर्वत्रैव परिज्ञेयः स एव क्रम आगतः ।
आद्यन्तयोर्मध्यगो वा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः ॥११७४॥

१--इतः पूर्वं पंक्तित्रयमधिकं ख ग पुस्तकयोः--

तच्छब्दैः कालिकायाश्च विग्रहं सुविचार्य वै ।
सङ्गेऽन्तमन्त्रैः दत्त्वा सुरक्षावर्तं इतीरितः ॥
पुष्पैर्दलैरसतैर्वा मिश्रितैरपि वा पुनः ॥

तुरीया मोहविज्ञानमिच्छा सुखमथापि च ।
दुःखं रागश्च बन्धश्च मोक्षः प्रकृतिरेव च ॥११७५॥
पुरुषो भावना चापि स्वभावो भूत एव च ।
योनिः खर्वश्च दीर्घश्च गुरुर्लघुरथापि च ॥११७६॥
संयोगश्च वियोगश्च निर्मलो मानवोऽपि च ।
ततः प्रकटगुप्तौ च आरम्भश्च विरामयुक् ॥११७७॥
आविर्भावतिरोभावौ द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ।

[चतुर्विंशदलकमलकाल्यर्चनविधिः]

अथ तत्तदलाम्भोजकालिकार्चनमीरये ॥११७८॥
तारो ध्यानं विग्रहश्च योगो मुख्यश्च सर्वयुक् ।
दान्तः शान्तश्च दीक्षा च पवित्रं व्रतमेव च ॥११७९॥
जलं स्थलं चाप्यशुचिस्तीर्थं दिननिशे तथा ।
संध्याग्रामारण्यभेदाखण्डाद्वैतान्यतः परम् ॥११८०॥
चतुर्विंशतमं ब्रह्म सर्वमन्यत्पुरोक्तवत् ।

[षोडशदलकमलकाल्यर्चनविधिः]

अधुना षोडशदलकमलार्चनमुच्यते ॥११८१॥
प्रतापश्च प्रभावश्च धर्मः पापं तथैव च ।
रहस्यं च प्रकाशश्च स्वपक्षोऽपि विपक्षयुक् ॥११८२॥
पूर्णन्यूने ततोऽप्याशा धृतिरुत्पात एव च ।
विवेकसौम्यकैवल्यमित्येवं षोडशार्चनम् ॥११८३॥

[द्वादशदलकमलार्चाविधिः]

अथ द्वादशपत्राब्जपूजनं कथयामि ते ।
हेतुर्निधानसंतोषस्फुटगूढा यथाक्रमम् ॥११८४॥

संवित्तिचैतन्याम्नायाः प्रवृत्तिश्च निवृत्तियुक् ।
विक्षेपावरकौ चापि द्वादशार्चनमीदृशम् ॥११८५॥

[अष्टदलकमलकाल्यर्चाविधिः]

अथाष्टदलपद्मार्चा मया ते परिकथ्यते ।
द्वन्द्वातीतो निराकारः परमार्थो निरञ्जनः ॥११८६॥

सनातनः सामयिको ज्ञेयो ज्ञानमयस्ततः ।
अष्टमश्चापवर्गाख्यः प्रोक्तमष्टाम्बुजार्चनम् ॥११८७॥

अस्मिन्नेव ह्यवसरे देवि कापालिकादयः ।
आचरन्त्यधिकं किञ्चिच्चत्वारः कौलिका अपि ॥११८८॥

नृसिंहान् भैरवांश्चापि तथा चैव विनायकान् ।
कामांच्छक्तीः डाकिनीश्च षट्सु षट् पूजयन्ति हि ॥११८९॥

तन्मन्त्ररीतिरादौ तु तारोऽन्ते नम इत्यपि ।
ङेन्तं तत्तत्पदं मध्ये कृत्वा सर्वान् प्रपूजयेत् ॥११९०॥

[एकपञ्चाशन्नरसिंहनामानि]

नृसिंहानामथो नाम क्रमेण कथयामि ते ॥११९१॥

ज्वालामाली करालश्च भीमश्चैवापराजितः ।
क्षोभणश्च तथा सृष्टिः स्थितिः कल्पान्त इत्यपि ॥११९२॥

अनन्तश्च विरूपश्च वज्रायुधपरापरौ ।
प्रध्वंसनस्ततोऽनु स्याद्विश्वमर्दन इत्यपि ॥११६३॥
उग्रो भद्रश्च मृत्युश्च सहस्रभुज एव च ।
विद्युज्जिह्वो घोरदंष्ट्रो महाकालाग्निरेव च ॥११६४॥
मेघनादश्च विकटस्तथा पिंगसटोऽपि च ।
प्रदीप्तो विश्वरूपश्च विद्युद्दशन एव च ॥११६५॥
विरोदा विक्रमश्चापि प्रचण्डः सर्वतोमुखः ।
वज्रो दिव्यश्च भोगश्च मोक्षो लक्ष्मीरपि क्रमात् ॥११६६॥
विद्रावणः कालचक्रः कृतान्तस्तप्तहाटकः ।
भ्रामकश्च महारौद्रो विश्वान्तकभयङ्करौ ॥११६७॥
प्रतप्तो विजयश्चापि सर्वतेजोमयस्तथा ।
ज्वालाजटालश्च खरनखरो नाददारुणः ॥११६८॥
निर्वाणनरसिंहश्चेत्येकपञ्चाशदीरिताः ।
कालीरूपाः शक्तयस्तु शिवरूपा इमे मताः ॥११६९॥
अमीषामत एवात्र पूजनीकुर्वते हि ते ।
षट्त्रिंशद्दलयोर्मध्ये इमे पूज्या वरानने ॥१२००॥

[भैरवनामानि]

अधुना भैरवाणां त्वं नामानि कलय क्रमात् ।
क्रोधः श्मशानः कापाली कालः कालान्तको रुरुः ॥१२०१॥
महाघोरो घोरतरः संहारश्चण्ड इत्यपि ।
हूंकारोऽनादिरुन्मत्त आनन्दस्तदनन्तरम् ॥१२०२॥

भूताधिपः कृतान्तोऽसिताङ्गः कालाग्निरित्यपि ।
उग्रायुधश्च वज्रांगः करालस्तदनन्तरम् ॥१२०३॥
विकरालो महाकालः कल्पान्तस्तदनु स्मृतः ।
विश्वान्तकः प्रचण्डश्च भगमाल्युग्र एव च ॥१२०४॥
भूतनाथश्च भद्रश्च तथा संपत्प्रदोऽपि च ।
मृत्युर्यमान्तकश्चापि तत उल्कामुखः प्रिये ॥१२०५॥
एकपाद्यस्तथा प्रेतो मुण्डमाली ततः परम् ।
वटुकः क्षेत्रपालश्च ततोऽप्यनु दिगम्बरः ॥१२०६॥
वज्रमुष्टिर्घोरनादश्चण्डोग्रोऽपि प्रकीर्तितः ।
सन्तापनः क्षोभणश्च ज्वालः सम्बर्त एव च ॥१२०७॥
वीरभद्रस्त्रिकालाग्निः शोषणस्त्रिपुरान्तकः ।
भैरवा एकपञ्चाशदेते देवि प्रकीर्तिताः ॥१२०८॥
तस्यैव केशरे पूज्याः क्रमेण कुसुमाक्षतैः ।
देव्या आसनभूतत्वादेतेषां परिपूजनम् ॥१२०९॥

[विनायकनामानि]

विनायकानां नामानि सांप्रतं परिवर्णये ।
लम्बोदरश्चैकदन्तो गजवक्त्रो विनायकः ॥१२१०॥
विघ्नहर्ता भीमनादो हेरम्बो मूषवाहनः ।
जितेन्द्रियश्च सुमुख एकानंशो गणेश्वरः ॥१२११॥
कथितः सूर्पकर्णश्च देवीपुत्रो घटोदरः ।
महाकायो भग्नदन्तो विश्वमूर्तिर्महाबलः ॥१२१२॥

स्थिरासन्नो व्यालसूत्री चलकर्णो गणाधिपः ।
ऊर्ध्वरोमा महापद्मी प्रत्यूहच्छिन्महास्वनः ॥१२१३॥
महाशुण्डो जगन्नेता सिद्धिदाता बलिप्रियः ।
कार्यकर्ता कर्मसाक्षी प्रभिन्नः प्रणतार्तिहृत् ॥१२१४॥
उग्रनादो महावाग्मी शिवपुत्रोऽरिमर्दनः ।
सिन्दूरमुण्डो हेमाङ्गोऽङ्कुशधारी सटाधरः ॥१२१५॥
आखुध्वजो रतित्यागी महागण्डो महेश्वरः ।
मत्तरूपः सुरत्राता महाविघ्नौघमर्दनः ॥१२१६॥
एकपञ्चाशदित्येते गणनाथाः प्रकीर्तिताः ।
विघ्नापसारकर्तृत्वात् कालीपुत्रतया तथा ॥१२१७॥
कर्णिकायामिमे पूज्याश्चतुर्विंशदलाम्बुजे ।

[एकपञ्चाशत्कामनामानि]

[1]अथ कामान् प्रब्रवीमि क्रमेण सुरवन्दिते ॥१२१८॥
आद्योऽनङ्गः समाख्यातस्ततः कन्दर्प उच्यते ।
रतिप्रियः पञ्चशरः सुरतान्तर इत्यपि ॥१२१९॥
मनोभवस्ततो ज्ञेयः कुसुमायुध इत्यपि ।
चित्ततर्जन इत्येवं मन्मथस्तदनन्तरम् ॥१२२०॥
सम्मोहनो यौवनेशो मदनस्तत्परोऽपि च ।
हृत्क्षोभकश्चाकर्षकः केलिवल्लभ एव च ॥१२२१॥

---

१ इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति ।

चित्तविद्रावणश्चापि दर्पको भ्रामकोऽपि च ।
त्रिलोकीरसकारी च मकरध्वज इत्यपि ॥१२२२॥
उन्मादकोऽन्धकर्ता च चण्डवेगस्ततोऽपि च ।
मार उच्चाटनश्चापि ततो व्यामोहदाय्यपि ॥१२२३॥
पुष्पधन्वा स्मरस्तस्याप्यनु संतापनो मतः ।
मनःप्रमाथी भगदो मीनकेतुरितः परम् ॥१२२४॥
उपस्थगो योनिवासी तथा मनसिजोऽपि च ।
पुष्पचापो यौवतेशस्तथा विश्वोपताप्यपि ॥१२२५॥
वसन्तमित्रो मलयकेतुश्चेतःप्रलोभनः ।
क्रमणश्चण्डतेजाश्च धर्माधर्मप्रवर्तकः ॥१२२६॥
कोमलायुध इत्येवं प्रमर्दन इतः परम् ।
त्रिलोकीसुखदः पश्चात्पिकदुन्दुभिरेव च ॥१२२७॥
अलिमाली जगज्जेता कामोऽन्ते च प्रकीर्तितः ।
कामा इत्येकपञ्चाशदर्चनीयास्ततः परम् ॥१२२८॥
कालीनृसिंहयोः स्वस्वशक्तिशक्तिमतोः क्रमात् ।
सामरस्यैककरणादर्चनीया इमे मताः ॥१२२९॥
केशराग्रेषु संपूज्या एवमाह पुरद्विषः ।

[एकपञ्चाशत्शक्तिनामानि]

अथ शक्तीः समाख्यास्ये क्रमेण सुरवन्दिते[1] ॥१२३०॥
सूक्ष्मा जया तथा माया प्रभा च विजया पुनः ।
सुप्रभा नन्दिनी पश्चाद्विशुद्धिः कान्तिरुन्नतिः ॥१२३१॥

---

1 + नायिके ङ ।

कीर्तिर्विभूतिर्हृष्टिश्च व्युष्टिः सन्नतिरुद्धृतिः ।
ऋद्धिरुत्कृष्टिरजिता तथा चैवापराजिता ॥१२३२॥
नित्या सरस्वती श्रीश्च स्मृतिर्लक्ष्मीरुषा धृतिः ।
बुद्धिः श्रद्धा मतिर्मेधा विद्या प्रज्ञा ततः परम् ॥१२३३॥
इच्छा क्रिया तथा च्छाया दीप्ता प्रीतिरितः परम् ।
नीतिः सृष्टिः स्थितिश्चापि संहृतिश्चेतनापि च ॥१२३४॥
सत्या शान्ती रतिर्भद्रा रौद्री ज्येष्ठा च विद्युता ।
एकपञ्चाशत्तमा च ज्ञेया शक्तिः परापरा ॥१२३५॥
शक्तिशक्तिमतोरत्राङ्गित्वेन परिपूजनम् ।
स्थानमासां केशरयोर्मध्यमे[ए?]व प्रकीर्तितम् ॥१२३६॥

[एकपञ्चाशत् डाकिनीनामानि]

डाकिनीनां वरारोहेऽभिधानमधुना शृणु ।
महारात्रिः कालरात्रिर्विरूपा च कपालिनी ॥१२३७॥
महासेवा गुह्यनिद्रा ततो दोर्दण्डखण्डिनी ।
वज्रिणी शूलिनी चापि विमला च महोदरी ॥१२३८॥
कुरुकुल्ला कौमुदी च कौलिनी कालसुन्दरी ।
बलाकिनी फैरवी च ज्ञेया डमरुका तथा ॥१२३९॥
घटोदरी भीमदंष्ट्रा ततश्च भगमालिनी ।
मेना तारावती भानुमती तदनु कीर्तिता ॥१२४०॥
एकानङ्गा केकराक्षी न्त्राक्षी (?) संहारिणी तथा ।
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डाक्ष्यपराजिता ॥१२४१॥

विद्युत्केशी महामारी शोषिणी वज्रनख्यपि ।
शुची तुण्डी जृम्भका च तीव्रा प्रस्वापनी तथा ॥१२४२॥
ज्वालिनी चण्डघण्टा च लम्बोदर्यग्निमर्दिनी ।
एकदन्तोल्कामुखी च सर्पजिह्वा च घोणकी ॥१२४३॥
पूतना वेगमाला च ततो जालन्धरी मता ।
एकपञ्चाशदित्येताः डाकिन्यः परिकीर्तिताः ॥१२४४॥
पूज्याः केसरमूलेषु त्रिपुरघ्नानुशासनात् ।
यद्यपीदं मतं देवि कपालव्रतधारिणाम् ॥१२४५॥
तथापि फलबाहुल्यान्ममापि मतमीदृशम् ।

[अष्टवृत्तेषु कालिकापूजाविधिः]

अथाष्टधा विभक्ते तु वृत्ते पूजनमुच्यते ॥१२४६॥
तत्रापि कालिकाः सर्वाः पूर्ववत्पूजनक्रमः ।
आदावमूर्तोऽथासङ्गोऽदृश्योऽनादिरितः परम् ॥१२४७॥
अव्यक्तोऽचिन्त्यमस्यानु भवेदक्षरमित्यपि ।
अवेद्यमष्टमं ज्ञेयं कालिकापूर्वगं पदम् ॥१२४८॥
अष्टभिर्नामभिश्चैतैरकारैरादिगैः प्रिये ।
काल्यवर्णेश्वरीत्युक्ता प्रणवस्यादिरूपिणी ॥१२४९॥

[अष्टकोणाधिष्ठात्रीणां कालीनां वर्णनम्]

अथाष्टकोणाधिष्ठात्रीः कालिकाः परिवर्णये ।
ज्योतिः सत्ता जातिरपि चेष्टायुक्तिरुपाधयः ॥१२५०॥

उपायोपशमौ चापि वस्वारपरिपूजने ।
मन्त्ररीतिः सैव बोध्या सर्वत्रान्यो न च क्रमः ॥१२५१॥
द्वितीयवृत्ताष्टांशार्चा सांप्रतं विनिगद्यते ।
भावोदयास्तमध्याः स्युर्जन्ममृत्युविधिस्तथा ॥१२५२॥

[नवारपूजाविधिः]

शेषे बोध इति ख्यातो नवारार्चा निशामय ।
बाला युवत्यवीरा च वृत्ता प्रौढा च मन्थरा ॥१२५३॥
कुलं शीलं सती चेति नवकोणप्रपूजनम् ।

[नवारपूजायां भाण्डिकेरदिगम्बरयोः कर्तव्याधिक्यकथनम्]

नवारपरिपूजानु भाण्डिकेरदिगम्बरौ ॥१२५४॥
अधिकं कुर्वतः किञ्चित्तदपि व्याहरामि ते ।
प्राकारत्वेन पञ्चारचक्रस्य सुरवन्दिते ॥१२५५॥
विंशाधिकशतं देवीमर्चयन्ति मनुक्रमैः ।
सोऽपि तारहृदोर्मध्ये ङेन्ता तदभिधा भवेत् ॥१२५६॥
लक्ष्मीस्तथा महालक्ष्मीरन्नपूर्णा तथैव च ।
वनदुर्गा च विजया घोरा पद्मावती तथा ॥१२५७॥
सप्तमी च परिज्ञेया ततो महिषमर्दिनी ।
जयदुर्गा च दुर्गा च राजमातङ्ग्यनन्तरम् ॥१२५८॥
तथैवोच्छिष्टमातङ्गी चाण्डाल्युच्छिष्टशब्दतः ।
बगला धनलक्ष्मीश्च सरस्वत्यथ कथ्यते ॥१२५९॥

भुवनेश्वरी ततश्चापि अश्वारूढा तथैव च ।
नित्यक्लिन्नानु च जयभैरवी विनिगद्यते ॥१२६०॥
राजराजेश्वरी चापि शूलिनी तदनन्तरम्
ततो जयमहाचण्डयोगेश्वर्यपि कीर्त्यते ॥१२६१॥
त्रिपुटा तत्परं राज्यसिद्धिलक्ष्मीर्निगद्यते ।
त्वरिता तत्परं गुह्या महाभैरव्यपि स्मृता ॥१२६२॥
अघोरा विश्वलक्ष्मीश्च यन्त्रप्रमथिनी तथा ।
चण्डयोगेश्वरी चापि महाचण्डाच्च भैरवी ॥१२६३॥
त्रैलोक्यविजया चैव जयलक्ष्मीरतः परम् ।
महामन्त्रेश्वरी चापि वज्रप्रस्तारिणी ततः ॥१२६४॥
कात्यायिनी चण्डकापालेश्वरी तदनन्तरम् ।
स्वर्णकूटेश्वरी चापि वार्त्ताली स्यात्ततोऽप्यनु ॥१२६५॥
वार्ताल्यौ चण्डजययोस्तदनन्तरमीरिते ।
उग्रचण्डा श्मशानोग्रचण्डा तदनु कीर्तिता ॥१२६६॥
रुद्रचण्डा प्रचण्डा च ततो वै चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चापि अतिचण्डा च चण्डिका ॥१२६७॥
ज्वाला कात्यायिनी चाप्युन्मत्तमहिषमर्दिनी ।
चैतन्यभैरवी चापि तुम्बुरेश्वर्यनूद्यते ॥१२६८॥
ततो मुण्डमधुमती वाग्वादिन्यप्यनन्तरम् ।
पूर्णेश्वरी ततो रक्तचामुण्डेश्वर्यनूद्यते ॥१२६९॥

वागीश्वरी च त्रिपुरा पदतस्तदनन्तरम् ।
कालभैरव्यथ पुनश्चण्डवारूण्यपीष्यते ॥१२७०॥

अघोरा सौम्य तदनु धनदा घोरया सह ।
दिगम्बरी कालरात्रिः किरातेश्वर्यथ स्मृता ॥१२७१॥

कुब्जिका शिवदूती च कालसंकर्षिणो ततः ।
कुक्कुटी तदनु ज्ञेया तस्यानु भ्रमराम्बिका ॥१२७२॥

धनदा सङ्कटा देवी भोगवत्यथ कथ्यते ।
महार्णवेश्वरी चापि जयझंकेश्वरी ततः ॥१२७३॥

पिङ्गलास्याः पुरः किन्तु विज्ञेया शबरेश्वरी ।
सिद्धिलक्ष्मीरथ महामोहिनी परिकीर्तिता ॥१२७४॥

बाला ततोऽनु त्रिपुरसुन्दरी विनिगद्यते ।
मूकाम्बिका चैकजटा छिन्नमस्ता तथैव च ॥१२७५॥

ततोऽनु वश्यवगला तत्परं च त्रिकण्टकी ।
सङ्ग्रामजयदुर्गा च त्रिजयप्रदया सह ॥१२७६॥

ततो नीलपताका च चण्डघण्टा ततोऽप्यनु ।
चण्डेश्वरी ततोऽनङ्गमाला च हरसिद्धया ॥१२७७॥

फेत्कारी लवणेश्वरी ततो वै मृत्युहारिणी ।
नाकुली वज्रवाराही हयग्रीवेश्वरी तथा ॥१२७८॥

मोक्षलक्ष्मीश्च परमहंसेश्वर्यादिमा मता ।
शातकर्णी ततो जातवेदसी प्रतिपादिता ॥१२७९॥

महानीला विष्णुमाया गुह्येश्वर्यथ कथ्यते ।
महाविद्या वाभ्रवी च डामरी चर्किकाऽभया ॥१२८०॥
एकवीरा तामसी च जयन्ती ब्रह्मवादिनी ।
प्रकीर्तिता ततो नीललोहितेश्वर्यपि प्रिये ॥१२८१॥
मायूरी रक्तदन्ती च भीमा देवी च शेषगा ।
पञ्चारावृत्तिसंस्थानां देवीनां पूजनं त्वदः ॥१२८२॥
एताः कामकलाकाल्या अयुतार्णा स्वदेवताः ।
इहाङ्गदेवताकोटिमध्ये सर्वाः प्रवेशिताः ॥१२८३॥
पञ्चाप्याराणि देवेशि स्वस्वाधीनानि भिन्नगम् ।
सृष्ट्यादीनां हि कालीनां भवनानि प्रचक्षते ॥१२८४॥
स्वदक्षभागादारभ्य पूजनीयाः प्रयत्नतः ।
वैचित्र्यं मुख्यभूताया आननानां यथा स्मृतम् ॥१२८५॥
तथैव तत्तत्कालीनां वैचित्र्यं वक्त्रगामि हि ।

[सृष्टिकाल्याः प्रकारभेदाभिधानं समन्त्रः पूजाविधिश्च]

तत्रादौ प्रथमारस्था सृष्टिकाली प्रकीर्तिता ॥१२८६॥
तस्या भेदाश्चतुर्विंशकालिकास्तत्र विष्ठिताः ।
आदौ मन्त्रक्रमं वच्मि वक्ष्ये नामान्यतः परम् ॥१२८७॥
तारो माया शाकिनी च डाकिनी योगिनी तथा ।
पञ्चबीजानि पुरतः स्थिरार्णि प्रतिमन्वपि ॥१२८८॥
श्रीपादुकां पूजयामि नमः शेषेऽपि च स्थिरम् ।
मध्ये च तत्तत्तिर्यञ्चां नामानि कमलानने ॥१२८९॥

तैराननपदस्यापि विग्रहः स्त्रीत्वबृंहितः
पुनः पदानि भिन्नानि तैः काल्याश्चापि विग्रहः ॥१२६०॥
इत्युद्धारः समुद्दिष्टो नामानि कलयाधुना ।
शार्दूलश्च वराहश्च ततः पारावतो मतः ॥१२६१॥
मार्जारोऽपि कपोतोऽथ ईहामृग इतः परम् ।
उलूकश्येनरुरवो भरद्वाज इतोऽप्यनु ॥१२६२॥
चमरद्वीपिखड्गश्च कङ्कः सृमर एव च ।
चासमेलिन्दभूलिङ्गकलिङ्गा रोहितोऽपि च ॥१२६३॥
शल्यश्च दार्वाघाटश्च गोकर्णो मृग एव च ।
तिर्यञ्च एते कथिताः कालीपूर्वपदं श्रृणु ॥१२६४॥
समयानन्दचन्द्राश्च नियमत्रिदशावपि ।
हिरण्यविद्युतक्रोधा उल्काफेरुस्ततः परम् ॥१२६५॥
जीमूतगुप्तौ तदनु विग्रहश्च प्रतप्तयुक् ।
चैतन्यविश्वे च कुलं ज्योती रूपं च मेधया ॥१२६६॥
व्यालोत्तरावर्तसिंहनादो मन्त्रास्ततः परम् ।
चतुर्विंशतिसंख्याका एताः काल्यो वरानने ॥१२६७॥
सृष्टिकालीकुलगताः संपूज्याः कुसुमाक्षतैः ।
शेषे पाद्यादिभिः सर्वोपचारैः सृष्टिकालिकाम् ॥१२६८॥
पूजयीत पृथक्कृत्य मूल एव हि मण्डले ।

[सृष्टिकाल्यः पूजामन्त्रः]

तन्मन्त्रस्तारडाकिन्यौ फेत्कारी सृष्टिकालि च ॥१२६९॥

योगिनी भौवनेशी च वधूकूर्चौ च शाकिनी ।
हृदुत्तमाङ्गौ शेषे च सृष्टिकाल्या मनुस्त्वसौ ॥१३००॥
एतेन मनुना सर्वोपचारान् विनिवेदयेत् ।
मीनमांससुरायुक्तं बलिं भिन्नतया तथा ॥१३०१॥

[बल्यर्पणमन्त्रः]

तन्मन्त्रो मैधपाशह्लीसृणिक्षेत्रपविद्युतः ।
प्रेतो भैरव्यपि तथा सृष्टिकालि ततोऽप्यनु ॥१३०२॥
सन्धिह्रीनं चादिसर्गप्रवर्तिनि ततः परम् ।
ततश्चतुरशीत्यर्णादिकोटिभूत इतीरयेत् ॥१३०३॥
जातिसंघ समाभाष्य कल्पनाकारिणीरयेत् ।
इमं बलिं गृह्णयुगं खाद खाहि युगं युगम् ॥१३०४॥
भ्रूबल्लीतुङ्गचूडामणी च तदनन्तरम् ।
कूर्चास्त्रयोश्च त्रितयं हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ॥१३०५॥
निवेद्यानेन च बलिं गृहीत्वा कुसुमाक्षते ।

[पूजासमापनमन्त्रः]

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तस्या अर्चां समापयेत् ॥१३०६॥
चैतन्यशाकिनीतारमायागरुडविद्युतः ।
सुरसं कर्णिकां सृष्टिं सृष्टिकूटं ततः परम् ॥१३०७॥
सृष्टिकालि समाभाष्य जगदुत्पत्तिशब्दतः ।
हेतुभूते च संसारजालमर्कटनीरयेत् ॥१३०८॥
ततस्त्रिलोकी जीवारष्टवीजोर्वर इत्यपि [?] ।
महायोगिनि संकीर्त्य योगीन्द्रहृदयार्णतः ॥१३०९॥

सञ्चारिणि प्रविलिखेन्महामाये ततः परम् ।
मायाप्रवर्तिके प्रोच्य मायातीतस्वरूपिणि ॥१३१०॥
प्रसीद द्वितयात्पूर्वं भगवत्यपि कीर्तयेत् ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते प्रोच्यान्योन्यं समुच्चरेत् ॥१३११॥
तारराबौ सृष्टिकुलक्रमागतपदादनु ।
चतुर्विंशतितः कालीभेदाच्च समयार्णतः ॥१३१२॥
पालिकायै सृष्टिकाल्यै नमो वदेत् प्रिये सदा ।

[स्थितिकाल्याः प्रकारभेदाभिधानं समन्त्रः पूजाविधिः]

अधुना स्थितिकालीनां भेदानाकर्णय प्रिये ॥१३१३॥
पूर्ववत् सकलं ज्ञेयं केवलं नाम कथ्यते ।
सरभश्चातकश्चापि सारङ्गो गवयोऽपि च ॥१३१४॥
तरक्षुर्महिषो गोधा कुक्कुटो गोधिकाऽपि च ।
चटकश्च वकः कृष्णसारः क्रकच एव च ॥१३१५॥
शम्बरानु करद्रुश्च शशः छागश्च कोकिलः ।
काको रङ्कश्च मेषश्च काकोलस्तदनन्तरम् ॥१३१६॥
दात्यूहो वृषभश्चेति चतुर्विंशतिरीरिताः ।
एतेषामुत्तरपदं कलय क्रमशोऽधुना ॥१३१७॥
कल्पोत्पातौ च संमोहचक्राधाराः क्रमेण हि ।
समरश्चाविनाशश्च मेघो वक्षाचलस्तथा [?] ॥१३१८॥

१– इतः पंक्तित्रयं क पुस्तके नास्ति ।

कपिलः पुष्करश्चापि शिखरो व्यूह एव च ।
ततः परं तीव्रनखः पाण्डुरोऽप्यस्य पश्चिमे ॥१३१९॥
ततो जम्बालमार्तण्डौ केतुः कूटः सयन्त्रवत् ।
भूतादिरथ दुर्द्धर्षो लोहिताक्ष इतः परम् ॥१३२०॥
इमा अपि चतुर्विंशसंख्यकाः परिकीर्तिताः ।
स्थितिकाली कुलायाताः समभ्यर्च्याः प्रयत्नतः ॥१३२१॥
सर्वैरेवोपचारैस्तु शेषे च स्थितिकालिकाम् ।
अर्चयेन्मूलपीठे च अस्या एवं मनुं गृणन् ॥१३२२॥
[स्थितिकाल्याः पूजामन्त्रः]
तन्मनुं कलयेदानीमृष्यादिपरिवर्जितम् ।
प्रणवो योगिनी चापि माया नु स्थितिकालि च ॥१३२३॥
डाकिनी वनितारोषौ शाकिनी स्थितिरेव च ।
नमः स्वाहा च चरमे मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥१३२४॥
सर्वोपचारदानाय मनुरेष प्रकाशितः ।
पूर्ववच्च ततो भिन्नं बलिं दद्यान्मनुं पठन् ॥१३२५॥
[तस्याः बल्यर्पणमन्त्रः]
तारपाशौ मैधरावौ सान्वक्षौ मणिमालया ।
कर्णिकाश्रृङ्खलाहारान् स्थितिकालीति तत्परम् ॥१३२६॥
स्थितिकारिण्यथाभाष्य सर्वाप्यायनकारिणि ।
जगदेकपालनपदाद् व्यापारिणि समुद्धरेत् ॥१३२७॥
इमं बलिं तुभ्यमहं ददे तं भक्ष युग्मकम् ।
भक्षय द्वितयं चापि मां रक्ष युगलं ततः ॥१३२८॥

मन्दारं जम्भमथ च सङ्ग्रहं स्थावरं तथा ।
रोषत्रयं फट्त्रयं च नमः स्वाहा ततोऽप्यनु ॥१३२९॥
दत्वा बलिमनेनाथ समष्टिव्यष्टितोऽर्चयेत् ।
तन्मन्त्रमधुना वक्ष्ये दत्तचित्ता निशामय ॥१३३०॥
तारचैतन्यपाशह्लीवधूकामांकुशामृतम् ।
व्ययश्च स्थितिकूटं च स्थितिकालि ततोऽप्यनु ॥१३३१॥
स्थितिकारिण्यथाभाष्य सर्वेश्वरि ततो वदेत् ।
भगवत्यनु वै विश्वपालनव्यापृते वदेत् ॥१३३२॥
दैत्यदानवशब्दानु प्रमर्दिनि समुच्चरेत् ।
प्रबलप्रचण्डिन्याभाष्य भुजदण्डे च कर्कशात् ॥१३३३॥
ततश्च विस्रस्तजटाभारभासुर इत्यपि ।
पुनर्घण्टा किङ्कणी च नादार्णाद्भरितेत्यपि ॥१३३४॥
ततस्त्रिभुवने प्रोच्य सर्वान्तर्यामिनीरयेत् ।
श्रौपदेयादिपञ्चापि ततोऽनन्तरमुच्चरेत् ॥१३३५॥
जय द्वयं द्वयं चाथ प्रसीद समुदाहरेत् ।
पूर्वमन्त्रान्तगात्रापि शेषे देवि दशाक्षरी ॥१३३६॥

[संहारकाल्याः प्रकाराभिधानपूर्वकः समन्त्रः पूजाविधिः]

अथ संहारकाल्यास्तु परिवारान्निशामय ।
उष्ट्रश्चिन्दो गर्दभश्च गृध्रश्च शुककुक्कुरौ ॥१३३७॥
क्रौञ्चः सर्पो मूषिकश्च शिशुमारोऽपि मीनयुक् ।
कृकलासो बृको ग्राहः सारसस्तदनन्तरम् ॥१३३८॥

चक्रवाकः कच्छपश्च कुररो हंस एव च ।
उद्रो नु टिट्टिभो ज्ञेयः कुलूतः कर्कटोऽपि च ॥१३३९॥
कुम्भीरः सर्वशेषे स्यात्काल्याख्यामधुना शृणु ।
दीपश्चाण्डाल इत्येवं समृद्धिः स्यात्ततः परम् ॥१३४०॥
सर्वेश्वरो विश्ववाहुरनन्तस्तदनूद्यते ।
जटालो मृत्युमुखयुक् तपनो रौरवोऽपि च ॥१३४१॥
सिन्धुनादश्च निर्ह्रादो हेमाङ्गस्तदनन्तरम् ।
हव्यवाहः पूर्णभद्रश्चपलो मणितारयुक् ॥१३४२॥
मित्रं नीलश्च दैत्यान्त उद्योतस्तदनन्तरम् ।
शोणाक्षः शरणश्चेति शेषे सङ्क्रान्त ईरितः ॥१३४३॥
संहारकालिकाकौलक्रमागम इमा मताः ।
एताः संपूज्य कुसुमाक्षतैर्देवि पृथक् पृथक् ॥१३४४॥
निखिलैरुपचारैस्तु शेषे संहारकालिकाम् ।
अभ्यर्चयेत्तन्मनुना तदुद्धारं ब्रुवे तव ॥१३४५॥

[संहारकाल्याः पूजामन्त्रः]

तारः प्रासादरावौ च ततः संहारकालि च ।
डाकिनी कर्णिका माया संहारो हृच्छिरोऽपि च ॥१३४६॥
निवेद्यानेनोपचारांस्ततश्च बलिमर्पयेत् ।
तन्मन्त्रं सांप्रतं वच्मि बलिर्येन प्रसिद्ध्यति ॥१३४७॥

[संहारकाल्याः बल्यर्पणमन्त्रः]

आदौ पाशप्रेतपराः कापालं काकिनी ततः ।
नृहरिक्षेत्रपालौ च सानुर्मेखलया सह ॥१३४८॥

संहारकूटं तदनु पुनः संहारकालि च ।
महाघोरतरे प्रोच्य जगद्ग्रसनकारिणि ॥१३४९॥
महाप्रलयशब्दानु नर्तकीति ततः परम् ।
विस्रस्तचिकुरे चापि चर्चरी करतालिके ॥१३५०॥
नृत्य गाय हस द्विर्द्विरिमं बलिमथापि च ।
गृह्णद्वयं भुञ्जयुगं लां खां खां लां ततः परम् ॥१३५१॥
मम शत्रून्नाशयद्विर्मारय द्वितयं तथा ।
निद्रां संयोगिनीं पूर्णां धूमं ललितया सह ॥१३५२॥
पौरातनी सर्वशेषे परिज्ञेया दशाक्षरी ।
ततो व्यष्टिसमष्ट्या च तदर्चां परिपूरयेत् ॥१३५३॥
तस्याधुना महामन्त्रं सम्यक् कलय[1] पार्वति ।
तारो माया रमाकामवध्वः प्रासाद एव च ॥१३५४॥
चामरव्यजने नादान्तकं संहारकूटकम् ।
संहारकालि चोद्धृत्य जगत्संहारकारिणि ॥१३५५॥
कोटिब्रह्माण्डपदतः स्मरेच्चर्वणकारिणि ।
पुनर्महाविकटतस्तरमूर्ते प्रभाषयेत् ॥१३५६॥
ब्रह्मविष्णु समुद्धृत्य रुद्रमारिणि कीर्तयेत् ।
पापौघतारिणि ततो द्विः स्फुर प्रस्फुर द्वयम् ॥१३५७॥
द्विर्द्विर्ज्वल प्रज्वल च सदाशिवगृहिण्यपि ।
भीमावतार आभाष्य भयं मोचय च द्वयम् ॥१३५८॥

१—समाकलय ङ ।

प्रभञ्जनादीनि सप्त बीजानि तदनन्तरम् ।
अडाकिन्यमहारात्रि ततः कूर्चास्त्रयोस्त्रयम् ॥१३५६॥
हृदयं च शिरः शेषे सम्पूर्णकरणो मनुः ।

[अनाख्याकाल्याः प्रकारभिधानपूर्वकः समन्त्रः पूजाविधिः]

अथानाख्याकुलप्राप्ताः कालिकास्त्वं निशामय ॥१३६०॥
ऊर्णनाभः शरारिश्च ततः शतपदोऽपि च ।
वृश्चिको नकुलश्चापि मण्डूकस्तैलपाय्यपि ॥१३६१॥
पतङ्गशङ्खशलभभ्रमरास्तदनन्तरम् ।
मयूरश्चापि हारीतस्ततः कारण्डवप्लवौ ॥१३६२॥
सम्बूकाश्वतरौ चापि मणिन्त्यस्तित्तिरिस्तथा ।
करभालर्कदंशाश्च वर्करः कारकोऽपि च ॥१३६३॥
एषाननीया कथिता रीतिः कमललोचने ।
कालीनामभिधानं ते वर्णयाम्यधुना पुनः ॥१३६४॥
विरंचिश्च विभूतिश्च विनयश्च विचित्रयुक् ।
ततो रक्तमुखोत्साहो कादम्बः खेचरोऽपि च ॥१३६५॥
डामरश्च करङ्कश्च सुमेरुरपि तत्परम् ।
मन्थानसन्तानघटा दुर्मरो विह्वलोऽपि च ॥१३६६॥
फेरुः सुपर्णोऽग्निरपि पिशाचो भूत एव च ।
वीरघुर्घुरवेतण्डाश्चतुर्विंशतिरित्यमूः ॥१३६७॥
अथानाख्याकालिकाया मन्त्रानभिदधामि ते ।
मूलबालेयपूर्णीयान् क्रमेणैव सुरेश्वरि ॥१३६८॥

भौवनेशी योगिनी च क्रोधवध्वौ ततः परम् ।
अनाख्याकालि तदनु रावो डाकिन्यनन्तरम् ॥१३६९॥
फेत्कारी हृच्छिरो मन्त्रा एतन्मूलमुदीर्यते ।
उपचाराननेनैव सर्वान् दत्वा यथाविधि ॥१३७०॥
बलिं दद्याद्वक्ष्यमाणमनुना जगदीश्वरि ।
मैधपाशाङ्कुशक्रोधशाकिनीडाकिनीस्त्रियः ॥१३७१॥
षट्चक्रं पुष्पमाला च देशीयं कूटमेव च ।
अनाख्याकालि चाभाष्य ततो वै वागगोचरे ॥१३७२॥
भगवत्यनिर्वचनीयस्वरूपे सन्धिवर्जितम् ।
ततश्च निगमावेद्याकारे त्रिगुणरूपिणि ॥१३७३॥
इमं बलिं तुभ्यमहमर्पयामि समुद्धरेत् ।
गिरद्वयं ग्रसयुगं भक्षयद्वितयं तथा ॥१३७४॥
स्वपदप्रकाशिनीत्युक्त्वा कह वला युग युगम् ।
मन्दसंमोहपतनसंहारास्तदनन्तरम् ॥१३७५॥
सैवात्रापि प्रयोक्तव्या चरमीया दशाक्षरी ।
पूर्णताकारकमनुं वदामि तव साम्प्रतम् ॥१३७६॥
तारमैधे पाशकले कुलिकं हाकिनी तथा ।
हारिण्युत्कोचिनी पद्मं कूटं चानाख्यनामकम् ॥१३७७॥
भगवत्यनाख्याकाल्युक्त्वा सन्धिहीन ततः परम् ।
अनाख्येयपदाद्रूपे रूपिण्यपि रजोगुणात् ॥१३७८॥

निगमावेद्यमहिमाकारे च तदनन्तरम् ।
त्रिगुणावतार आभाष्य महाविभव ईरयेत् ॥१३७९॥
जन्मस्थितिनिरोधार्णाल्लक्षणीत्यथ कीर्तयेत् ।
ततः परमतत्त्वाच्च रहस्याच्च प्रकाशिनि ॥१३८०॥
जगद्बीजाकार इति विलिखेत्तदनन्तरम् ।
दण्डादिपञ्चकं प्रोच्य चरमस्था दशाक्षरी ॥१३८१॥

[भासाकाल्याः प्रकारकथनपूर्वकः समन्त्रः पूजाविधिः]

अथ भासाक्रमगताः कालिका वच्मि पार्वति ।
लावकश्च चकोरश्च वार्ध्रीनस इतः परम् ॥१३८२॥
शतपत्रस्ततो जीवंजीवो मत्स्यस्तथैव च ।
वर्तकश्च करङ्कश्च भारुण्डः कालिकाश्वयुक् ॥१३८३॥
खेचरश्यामवीभत्सपातालंतानवस्तथा ।
पिशाचकूष्माण्डचन्द्रनाभाः शोणाङ्ग एव च ॥१३८४॥
सुवर्णरत्ने विद्युच्च उज्ज्वलंतदनन्तरम् ।
सर्वज्ञेषे परिज्ञेयं त्रैलोक्यं वरवर्णिनि ॥१३८५॥
अथाननोत्तरपदं कथ्यमानं निबोध मे ।
घर्घरश्च प्रभा चापि महाशंखः प्रकाशयुक् ॥१३८६॥
किर्मीरो रोहितोऽन्वस्य विवर्णश्च विशालयुक् ।
करकश्चापि मन्दारः सिद्धिरङ्गार एव च ॥१३८७॥
केशरो मर्ममुकुलभैरवाः कुणपोऽपि च ।
मातङ्गमर्मरौ चापि विज्ञेयौ तदनन्तरम् ॥१३८८॥

मुकुटं मुक्तिशक्तौ च त्रयोविंशतमो मणिः ।
सर्वशेषे तु देवेशि गुह्य इत्यभिधीयते ॥१३८९॥
एता भासाकुलायाताः कालिकां पूजयेद्बुधः ।
मन्त्रमस्याधुना वक्ष्ये तारो दीर्घप्लुतान्वितः ॥१३९०॥
महाभासाकालि ततो योगिनी डाकिनी वधूः ।
नृहरिक्रोधफेत्कार्यः शेषे हृच्छिरसी अपि ॥१३९१॥
अनेन मनुना सर्वानुपचारान् प्रदाय वै ।

[भासाकाल्या बल्यर्पणमन्त्रः]

उदीर्यमाणमनुना बलिं देव्यै निवेदयेत् । १३९२॥
त्रितारी च त्रिमैधी च गारुडक्षेत्रपक्रुधः ।
योगिनीरङ्गनृहरिरुचिदीपाः सश्रृङ्खलाः ॥ १३९३॥
भासाकूटं सर्वशेषे भासाकालि ततः परम् ।
सन्धानरहिताऽनिर्वचनीयमहिमार्णतः ॥ १३९४॥
वतारे परमानन्दरूपिणीति ततः परम् ।
सामरस्यपदाच्चापि चारिणि प्रतिकीर्तयेत् ॥ १३९५॥
इमं बलिं समाभाष्य ददे स्वदयुगं ततः ।
आस्वादय युगं चापि खाद भक्ष युगं युगम् ॥ १३९६॥
महाभोगरसा चापि लोलुपे इति कीर्तयेत् ।
सामरस्यानन्दरसपायिनीति ततः परम् ॥ १३९७॥
पाटवं पिप्पलं चाथ विकलोऽपि विजम्भयुक् ।
उत्तानं चरमे सैव परिज्ञेया दशाक्षरी ॥ १३९८॥

इति दत्वा बलिं देव्यै गृहीत्वा कुसुमाक्षते ।
पञ्चारपूजापूर्णत्वहेतवे मनुमुच्चरेत् ॥१३६६॥
तारो मैधं पाशमाये शाकिन्यमृतविद्युतः ॥
डाकिनी हाकिनी चैव ककुच्छैशुककर्णिकाः ॥१४००॥
व्ययसारसघट्यश्च शेष उत्कोचिनी मता ।
बीजानीत्थं षोडशैव कूटानि शृणु साम्प्रतम् ॥१४०१॥
बृहद्रथन्तरं कूटं गुह्याकूटमनन्तरम् ।
भासाकूटं सत्वकूटमेकविंशतिरित्यमी ॥१४०२॥
भासाकालि ततः प्रोच्य भगवत्यनु कीर्तयेत् ।
निगमागमागोचरे च प्रपञ्चातीत इत्यपि ॥१४०३॥
ब्रह्मज्योतिः समाभाष्य पुनराकारधारिणि ।
प्रकशिनीति प्रवदेत्तुरीयापदतस्ततः ॥१४०४॥
ओंकाराकार उल्लिख्य सर्वाप्यायनकारिणि ।
जन्ममृत्युपदाद् ब्रूयात्ततश्च भयमोचिनि ॥१४०५॥
स्वं प्रकाशय युग्मं च कैवल्यं दर्शय द्वयम् ।
अमृतं योजय द्वन्द्वं जय जीव युगं युगम् ॥१४०६॥
निर्विकारे इति प्रोच्य निरञ्जन इतीरयेत् ।
सर्वैश्वर्यवतीत्युक्त्वा सर्वपापप्रमोचिनि ॥१४०७॥
कूर्चस्यास्त्रस्य च त्रिस्त्रिर्नमः स्वाहा तथैककम् ।
इत्येष भासाकाल्यास्तु समष्टिव्यष्टिपूजने ॥१४०८॥

महामन्त्रो निगदितः सर्वकर्मप्रदायकः ।
सृष्टिकालिव्यष्टिपूजामन्त्रान्ते यः प्रकाशितः ॥१४०९॥
मन्त्रः स सर्वत्र योज्य ऊहं कृत्वा वरानने ।
ऊहः स्थितिश्च संहारोऽनाख्या भासा तथैव च ॥१४१०॥
प्रत्येकमेवं चत्वारो मन्त्राः स्युस्त्रिदशेश्वरि ।
पिण्डीकृता विंशतिः स्युः कालीसंख्यामथो शृणु ॥१४११॥
अङ्काः पिण्डीकृताः सर्वे षडशीतिः शतद्वयम् ।
पञ्चारस्यैव हि शतं पञ्चविंशतिरेव च ॥१४१२॥
एकषष्टिः शतं चान्यो भागभेद इतीरितः ।

[समन्त्रः काल्यास्त्र्यारपूजाविधिः]

त्र्यारपूजाधुना देवि कथ्यते नातिविस्तरा ॥१४१३॥
तारेणैवादिभूतेन चरमस्थेन वै हृदा ।
तिस्रस्तु वै काल्यो ङेन्ता वै मध्यतः स्थिताः ॥१४१४॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिपाद्या कालिका पुरः ।
स्वर्गो मर्त्यश्च पातालपदतस्ताः पुनः क्रमात् १४१५॥
प्रातर्मध्याह्नसन्ध्यातस्ता एव हि पुनर्वदेत् ।
भूतं च वर्तमानं च भविष्यत्तदनु स्मृतम् ॥१४१६।
परं ततोऽपरं चापि परापरमतः परम् ।
नादो बिन्दुश्च शक्तिश्च तदनन्तरमिष्यते ॥१४१७॥
अकारश्च उकारश्च मकारस्तदनन्तरम् ।
पूरकः कुम्भकश्चापि रेचकस्तदनन्तरम् ॥१४१८॥

शाम्भवं च तुरीया च निर्वाणमपि च त्रयम् ।
सप्तविंशतिरेवं स्युरारत्रितयपूजने ॥१४१९॥
अथ त्र्यारस्य एकैकारार्चाविधिरनूद्यते ।
तारो रावो डाकिनी च प्रासादो नृहरिस्तथा ॥१४२०॥
हारपद्मव्ययत्र्यस्त्र एकविंशेऽथवा त्रयः ।
मेखलादिचतुष्कञ्च षोडशैवं प्रकीर्तिताः १४२१॥
चण्डचण्डातितरतो वज्रकापालिनीरयेत् ।
पुनर्भगवति प्रोच्य गुह्यकालीत्यपीरयेत् ॥१४२२॥
ततो विकटतुङ्गार्णात्कोकामुखि तथैव च ।
जालन्धरि समाभाष्य ऋक्षकर्णि ततः परम् ॥१४२३॥
सृष्टिस्थितिप्रलयतः कारिणि प्रति कीर्तयेत् ।
लम्बमानोदरि प्रोच्य घोराट्टाट्टहासिनीत्यपि ॥१४२४॥
आदिसर्गात्कालि चापि कूर्चास्त्रहृदयं शिरः ।
मनुं द्वितीयस्यारस्य देवेशि कलयाधुना ॥१४२५॥
मैधपाशत्रपालक्ष्मीपारिजातशिखाक्रमाः ।
भोगसृष्टी ईश्वरश्च वेतण्डः कञ्चुकादिमः ॥१४२६॥
मन्दसम्मोहपतनसंहाराः षोडशैव हि ।
संबुद्धिर्भगवत्याश्च डामर्याश्च महार्णतः ॥१४२७॥
संबोधनं तथा सिद्धिविकराल्यास्ततः परम् ।
चराचरजगद्रूपिण्याश्च संबोधनं ततः ॥१४२८॥

त्रैलोक्यव्यापिका चापि सर्वभूतात्मिका तथा ।
कुण्डला नरमुण्डाच्च त्रितयस्यापि बोधनम् ॥१४२९॥
मधुसर्गात्कालि ततो रोषास्त्रे हृदयं शिरः ।
अथ तार्तीयकारस्य पूजने मनुरुच्यते ॥१४३०॥
माया रावो डाकिनी च प्रासादः कमला स्मरः ।
तारः पाशो योगिनी च प्रेतश्च परया सह ॥१४३१॥
वधूः कूर्चोऽमृतं शक्तिः फेत्कारी सर्वशेषगा ।
ततो महाचण्डयोगेश्वरी संबोधनं चरेत् ॥१४३२॥
ततो महाचण्डवेगा मुण्डमालिन्यनन्तरम् ।
कापालिनी महाकालीपूर्विका तदनन्तरम् ॥१४३३॥
तथा जगद्ग्रासिनी च नरमुण्डाच्च कुण्डला ।
महाट्टाट्टाद् हासिनी च स्वपदाच्च प्रकाशिनी ॥१४३४॥
महाराद्भैरवा रावा व्याघूर्णन्मानलोचना ।
लेलिहानाच्च रसनाकराला तदनन्तरम् ॥१४३५॥
महाभीमा भीमतराकारा तदनु च प्रिये ।
पापिनी परमानन्दाच्छिवपर्यंकशायिनी ॥१४३६॥
शेषेऽन्तसर्गकाली च संबुद्धया षोडशोद्धरेत् ।
शेषे षडक्षरी सैव द्वयोर्या समुदाहृता ॥१४३७॥
त्र्यारपूजा समाप्यैवं विदध्याद्बिन्दुपूजनम् ।

[बिन्दुपूजाविधिः]

नित्ये तस्य महानुक्तो विस्तरस्त्रिपुरारिणा ॥१४३८॥

नैमित्तिकेऽल्प इत्येवं व्यवस्था कथिता मया ।
आद्यन्तौ ताहृन्मन्त्रौ पदानि सुबहूनि हि ॥१४३९॥
मध्ये ङेन्तानि देवेशि विग्रहाच्च वपूंषि च ।
स च पूर्वपदैर्वक्ष्यमाणैर्विद्यापदस्य च ॥१४४०॥
विगृहीते पुनस्ते द्वे स्यातां कालिकया ततः ।
पदानि योगो वेदश्च व्रतं दीक्षा तथैव च ॥१४४१॥
यज्ञो मन्त्रश्च सिद्धिश्च कुलमात्मा ततः परम् ।
समयः सामरस्यं च धर्मो दानमतः परम् ॥१४४२॥
युद्धं तपो ज्ञानमिति षोडशैवोदितानि हि ।
इमं समाप्यान्यदपि बिन्दुपूजनमाचरेत् ॥१४४३॥

[प्रकरान्तरेण बिन्दुपूजा]

तद्रीतिं कलयेदानीं मन्त्रक्रमसमुद्भवाम् ।
प्रथमं तारशाकिन्यौ चरमे केवलं नमः ॥१४४४॥
मध्ये पदानि भिन्नानि तैः स्वरूपापदस्य हि ।
विग्रहः स च वै ङेन्तो गुह्यकाली च तत्परम् ॥१४४५॥
ङेन्तानि भिन्नान् प्रत्येकं शब्दानथ निशामय ।
निर्विकारश्च कूटस्थश्चिदानन्दस्तथैव च ॥१४४६॥
निराभासस्तथाद्वैतं निवृत्तिश्चाक्षरं तथा ।
अव्यक्तसत्ता परमार्था भासा नित्यमित्यपि ॥१४४७॥
शुद्धं निरञ्जनं चापि निस्त्रैगुण्यमतः परम् ।
कैवल्यबुद्धिमुक्ताश्च प्रबोधः सत्यमित्यपि ॥१४४८॥

प्रत्यग्विज्ञानचैतन्यसूक्ष्मकारणमित्यपि ।
आशयः सदसच्चापि लयानावृत्तिरेव च ।।१४४६।।

अविग्रहैकात्म्यमपि प्रशान्तागम्यमित्यपि ।
तुरीया तदनु ज्ञेया सर्वशेषेऽपुनर्भवा ।। १४५०।।

षड्त्रिंशत्संख्यकानीत्थं पदानि वरवर्णिनि ।
बिन्द्वर्चायाः सर्वशेषे मूलमन्त्रं त्रिरुच्चरेत् ।।१४५१।।

गुह्यकाल्यै नमो ब्रूयात्ततो व्यष्टिसमष्टिकम् ।
मन्त्रं पठन् गन्धपुष्पमाल्यदूर्वाङ्कुराक्षतम् ।।१४५२।।

गृहीत्वा पूर्णतां कुर्यादर्चां देव्याः सुरेश्वरि ।
स च तारत्रयं मैधत्रितयं योगिनीत्रयम् ।।१४५३।।

लज्जायुगं रोषयुगं कमला मन्मथो वधूः ।
प्रासादाङ्कुशपाशाश्च कुलिकश्चाश्रमा अपि ।।१४५४।।

चतुर्विंशतिबीजानि समुच्चार्य प्रिये पुनः ।
नवापि हि क्रमेणैव नवार्णानीरयेत्ततः ।।१४५५।।

ततो भगवतीशब्दो वज्रकापालिनी तथा ।
गुह्यकाली तथा साङ्गा सायुधा च सवाहना ।।१४५६।।

ततः सपरिवारा च पुनः सानुचरा तथा ।
अष्टावेते प्रकर्तव्याः शब्दाः ङेन्ताः क्रमेण हि ।।१४५७।।

पुनस्त्रयस्त्रिंशदपि प्रतिलोमत ईरयेत् ।
शेषे कूर्चत्रयं चास्त्रत्रितयं हृदयं शिरः ।।१४५८।।

त्रयोदशाधिकशतं वर्णा अस्मिन्मनौ मताः ।
एवं समाप्य निखिलां पूजां कमललोचने ॥१४५९॥
बलिर्देयः स चौरक्षो[?] न पाशव इति स्थितिः ।

[पात्रार्पणविधिः]

बलेः पूर्वं तु पात्राणि सर्वाण्येव समर्पयेत् ॥१४६०॥
तन्मन्त्रो मैधमायास्त्रीनृहृरिक्षेत्रपक्रुधः ।
शाकिनी डाकिनी हारकर्णिकाशृङ्खलाशिखाः ॥१४६१॥
सस्वं हैरण्यगर्भं च पौष्करं कूटमन्वतः ।
भगवत्यै ततः सिद्धिविकराल्यै समुच्चरेत् ॥१४६२॥
पुनश्च भीमरावायै महाचण्डपदादनु ।
योगेश्वर्यै समाभाष्य ङेन्तां मुक्तजटामपि ॥१४६३॥
वज्रकापालिनीं तद्वत्तदनन्तरमीरयेत् ।
ततो महाकालरात्र्यै गुह्यकाल्यै तथैव च ॥१४६४॥
तत्तत्संख्याद्यपात्राणि त्रिरावां डाकिनीं ततः ।
समर्पयामि च ततो गृह्ण भक्ष युगं युगम् ॥१४६५॥
सामरस्यं गच्छ युगं पिबयुग्मं हसद्वयम् ।
परविद्यानाकृष्यानु त्रुट छिन्धि युगं युगम् ॥१४६६॥
मां रक्ष युगलं चापि सर्वसिद्धिमितीरयेत् ।
देहि दापय सङ्कीर्त्य मायाबीजात्तुरुद्वयम् ॥१४६७॥
रुडस्त्रहृच्छिरास्यन्ते मनुः पात्रसमर्पणे ।

[अष्टधाबलिदानविधिः]

ततो बलिः प्रदातव्यो द्रव्यैरुक्तैः पुरा मया ॥१४६८॥

अष्टधा स प्रदातव्यो मूलायादौ ततः परम् ।
गणाधिपतये पश्चाद् बटुकाय निवेदयेत् ॥१४६९॥
क्षेत्रपालाय मातृभ्यो योगिनीभ्यस्तथैव च ।
डाकिनीभ्यस्ततो दद्यात्स्थानेभ्यस्तदनन्तरम् ॥१४७०॥
पृथक् पृथक्तया देव्याः पुरः संस्थाप्य वै बलिम् ।
समांसमीने ससुरा बिन्दुदातुरनुक्रमात् ॥१४७१॥
पूजितं गन्धकुसुमाक्षतसिन्दूरयावकैः।
धूपदीपान्वितं मूर्ध्नि ताम्बूलादिभिरन्वितम् ॥१४७२॥
समुत्सृजेयुश्चत्वारः कौलिका मद्यधारया ।
अनुकल्पप्रदाः स्मार्ता वारिणा केवलेन हि ॥१४७३॥
एक एव मनुर्ज्ञेय उभयत्रापि पार्वति ।
क्रमेण तेषां कलय मन्त्रान् बलिसमर्पणे ॥१४७४॥
मैधं माया भूतिनी च डाकिनी योगिनी स्मरः ।
भूतदैवतशब्दश्च बलिशब्दश्च तत्परम् ॥१४७५॥
बहुत्वेन च तुर्यायाः विभक्तेः परिकीर्तयेत् ।
नमो हूं फट् ततः स्वाहा मन्त्रेणानेन तान् बलीन् ॥१४७६॥
मन्त्रेण वाथ प्रत्येकं पूजयित्वा वरानने ।
तस्मै तस्मै बलिं दद्यात् तत्तन्मन्त्रं समुच्चरन् ॥१४७७॥
बलिर्यो दीयते देव्यै तन्मूलमभिधीयते ।
तच्चतुष्पात्रमथवा द्विपात्रं चैकमेव वा ॥१४७८॥

तन्मन्त्रं कलयेदानीं नैमित्तिकसमर्हणे ।

[मूलदेव्याः बलिदानमन्त्रः]

तारत्रयं रमा माया योगिनी शाकिनी वधूः ॥१४७९॥

डाकिनी नृहरिः प्रेतभैरव्यौ हारकर्णिके ।

चामरव्यजने चापि माले च मणिपुष्पयोः ॥१४८०॥

सृष्टयादि पञ्च कूटानि ततः परमुदीरयेत् ।

गुह्यकाली भगवती विपरीतक्रमेण हि ॥१४८१॥

वज्रकापालिनी सिद्धिकराली तदनन्तरम् ।

महार्णाड् डामरी सिद्धिविकराली च पूर्ववत् ॥१४८२॥

वाच्यानि संबुद्धितया षडिमानि पदानि हि ।

विसन्धीमं बलिं गृह्ण गृह्णापय युगं युगम् ॥१४८३॥

खाहि द्वयं स्वाद युगं भक्ष भक्षय च द्वयम् ।

जय जीव कह हस चतुर्णां युगलं वदेत् ॥१४८४॥

परमानन्दाद्रूपिणि च सामरस्यं भज द्वयम् ।

तुरु द्वयं हिलि द्वन्द्वं किलियुग्मं स्फुर द्वयम् ॥१४८५॥

शाकिनी रुट् तथास्त्राणां त्रितयं हृदयं शिरः ।

अनेन मनुना दद्यान्मूलदेव्यै बलिं प्रिये ॥१४८६॥

[गणेशबलेर्दानमन्त्रः]

अथो गणेशाय बलिमाहरेन्मन्त्रपूर्वकम् ।

तारो रमा स्मरो नारी माया योगिन्यमारुषः ॥१४८७॥

शब्दो महागणपतिस्तथा विघ्नविनाशनः ।

सूर्पकर्णो महालम्बोदरो देवीप्रियोऽपि च ॥१४८८॥

सर्वसिद्धिप्रदश्चापि महाबलपराक्रमः ।
महाभासुरशब्दानु प्रकाशानु च शक्त्यनु ॥१४८९॥
युक्तो भग्नैकदन्ताय मृत्युञ्जयसुतस्तथा ।
ङेऽन्ता दश प्रकर्तव्या शाकिनी डाकिनी तथा ॥१४९०॥
तत आप्सरसं बीजं मात्सर्यं वैश्वदेवकम् ।
ऋषभं च प्रयाजं च बीजं गाणेशमेव च ॥१४९१॥
वासुकेयं च सप्तैव बीजानि समुदीरयेत् ।
इमं बलिं गृह्णयुगं सुमुखो भव च द्वयम् ॥१४९२॥
विघ्नं छेदय युग्मं च सर्वसिद्धिं दद द्वयम् ।
मनोरथान् पूरय द्विः कूर्चास्त्रहृदयं शिरः ॥१४९३॥
बलिदाने मनुरसौ प्रोक्तो गणपतेरपि ।

[बटुकनाथेभ्यः बलिदानमन्त्रः]

मन्त्रं वटुकनाथेभ्यो दानाय कलयाधुना ॥१४९४॥
मैधं माया पाशकामौ सान्वक्षौ शक्तिविद्युतौ ।
शृङ्खलाहारयोगिन्यो बीजान्येकादशैव हि ॥१४९५॥
महावटुकनाथाय ततः सिद्धिप्रदाय च ।
ततो महाजटाभारभासुराय प्रकीर्तयेत् ॥ १४९६॥
पुनर्महाभीषणाय वासिने च श्मशानतः ।
घोराट्टहासाय ततो विकटोद्र्ध्वजटाय च ॥१४९७॥
देवीसहचरायापि विसंन्धीमं बलिं ततः ।
तुभ्यं समर्पयाम्युक्त्वा खाद भक्ष युगं युगम् ॥१४९८॥

ततः सर्वसमयतः पालनाच्च कराय च ।
सिद्धिविद्रावकायापि त्रैलोक्यडामराय च ॥१४९९॥
चित्तसंत्तर्जनायोक्त्वा रुडस्त्रहृदयं शिरः ।

[क्षेत्रपालानां बलिदानमन्त्रः]

अथातः क्षेत्रपालानां बलिदाने मनुं शृणु ॥१५००॥
मायापाशांकुशक्रोधकमलाचण्डविद्युतः ।
काकिनीमेखलागर्भशृङ्खलासुरसाः क्रमात् ॥१५०१॥
त्रयोदशतमस्तारो हृन्मन्त्रस्तदनन्तरम् ।
भ्यसन्ताः क्षेत्रपालाश्च तथा देव्यनुयायिनः ॥१५०२॥
ससन्धीमं बलिं गृह्ण युगं भुञ्ज द्वयं तथा ।
खाद भक्षय च द्विर्द्विरविघ्नं कुरु सन्धिहृत् ॥१५०३॥
पूरकादीनि पञ्चापि बीजानि तदनन्तरम् ।
पूर्वमन्त्रान्तगा शेषेऽत्रापि वै वषडक्षरी ॥१५०४॥

[मातृणां बलिदानमनुः]

मातृणां बलिदानाय मन्त्रमाकलयाधुना ।
मैधतारौ रमाकामौ प्रेतश्च परया सह ॥१५०५॥
नृहरी रावडाकिन्यौ फेत्कारी प्रलयादिमा ।
अदसीयाङ्कुरश्चेत्थं बीजानि द्वादशैव हि ॥१५०६॥
सर्वाशब्दो मातृशब्दो भ्यसन्तौ तदनन्तरम् ।
देवीसहचरीभ्यश्च प्रदाभ्यः सर्वसिद्धितः ॥१५०७॥

इमं बलिं सन्धियुक्तं ददे गृह्णयुगं ततः ।
गृह्णापयद्वयं चाथ सिद्धिं देहि दद द्वयम् ॥१५०८॥
भयं नाशय युग्मं च शत्रून् विध्वंसय द्वयम् ।
ततश्च खेचरी मुद्रां युग्मं प्रकटयोच्चरेत् ॥१५०९॥
अरिष्टं नाशय द्वन्द्वं सन्धिहीनं समुद्धरेत् ।
शेषे पौर्वतनी ज्ञेया सुरेश्वरि षडक्षरी ॥१५१०॥

[योगिनीनां बलिदानमन्त्रः]

योगिनीनां बलिमनुं प्रवदामि तवाधुना ।
चैतन्यं प्रणवो लक्ष्मी रावः प्रासाद एव च ॥१५११॥
क्षेत्रपालो नृसिंहश्च सारसव्यजने तथा ।
डाकिनी योगिनी चैव बीजानि तानि वै पुरः ॥१५१२॥
वज्रकापालिनी शब्दाः सहचर्यादिमं पदम् ।
सर्वा च योगिनी चापि भ्यसन्तं त्रितयं वदेत् ॥१५१३॥
तत्तत्सन्धानसहितमिमं बलिमथापि च ।
लां खां खां लां समाभाष्य भक्ष खाद युगं युगम् ॥१५१४॥
समाधिव्याधीनुच्चार्य शमय द्वितयं वदेत् ।
शत्रून् संहर युग्मं च विघ्नं नाशय च द्वयम् ॥१५१५॥
निद्रा च योगिनी पूर्णा धूमो ललितया सह ।
पूर्वोदिता सर्वशेषे प्रदातव्या षडक्षरी ॥१५१६॥

[डाकिनीनां बलिदानमन्त्रः]

डाकिनी बलिदानस्य मन्त्रः साम्प्रतमुच्यते ।
तारः पाशो वधूः कामः प्रेतश्च परया सह ॥१५१७॥

योगिनीनरसिंहौ च फेत्कारी प्रलयादिमा ।
शाकिनी डाकिनी चापि बीजानीमानि वै पुरः ॥१५१८॥

गुह्यकाली सहचरी सर्वा डाकिन्यनन्तरम् ।
भ्यसन्तं त्रितयं प्रोच्य इमं बलिमथापि च ॥१५१९॥

समर्पयाम्यनु तथा गृह्ण भक्ष युगं युगम् ।
सर्वान् कामान् पूरय द्विः सर्वसिद्धिं दद द्वयम् ॥१५२०॥

सागरो गुप्तिसन्तोषौ हायिपाकौ ततः परम् ।
पूर्वोदितात्रापि मता शेषे देवि षडक्षरी ॥१५२१॥

[स्थानबलेर्मन्त्रः]

अथ स्थानबलेर्मन्त्रं व्याहरिष्यामि शेषगम् ।
मैधयोरन्तरे लज्जायोगिनीकूर्चसंज्ञकाः ॥१५२२॥

वधूरावौ डाकिनी च नृहरिर्मन्मथो रमा ।
उत्कोचिनी सर्वशेषे एवं द्वादशबीज्यथ ॥१५२३॥

अत्र तेभ्यो नु सर्वेभ्यो देवेभ्यस्तदनन्तरम् ।
स्त्रीलिङ्गत्वेन देवेशि तां स्त्रीनेव समुद्धरेत् ॥१५२४॥

एतत्स्थानाधिपतिभ्य इमं बलिमुदीरयेत् ।
निवेदयामि सङ्कीर्त्य सौम्या अनुभवन्तु च ॥१५२५॥

धनपुत्रैश्वर्यमुक्त्वा द्विः प्रयच्छत कीर्तयेत् ।
शेषे षडक्षरी सैव ज्ञेयात्रापि सुरेश्वरि ॥१५२६॥

इत्यष्टविध उद्दिष्टो बलिः सिद्धिविधायकः ।
एतैर्मन्त्रैर्बलीन्दद्यादष्टभ्यः साधकोत्तमः ॥१५२७॥

अतः परं महागोप्यं विशेषं कमपि ब्रुवे ।

[पुनः बिन्दुपूजाविधिनिरूपणम्]

बिन्दुपूजां समाप्यैव नित्ये दद्यात् बलिं सदा ॥१५२८॥

नैमित्तिके तु देवेशि बलिदानादनन्तरम् ।
नानाविधैर्महामन्त्रैर्बिन्दुपूजा समाप्यते ॥१५२९॥

इयान् विशेषो विज्ञेयो नित्यनैमित्तिकार्चयोः ।
तस्मिन् विशेषे सर्वेषां श्रुतिस्मृत्यध्वचारिणाम् ॥१५३०॥

चतुर्णां कौलजातीनामैकमत्यं न भिन्नता
अथ तत्तन्मन्त्रगतरीतिं वै कठिनोद्धृतिम् ॥१५३१॥

प्रवदामि शृणुष्वैकमना देवेशि सादरा ।
तारो लज्जा योगिनी च रोषो नारी च शाकिनी ॥१५३२॥

षडेतान्येव बीजानि सर्वत्र प्रथमं वदेत् ।
तत्तन्नामभिरुक्तोक्तैरुपासितपदस्य च ॥१५३३॥

विग्रहः सन्धिसहितस्तत्तत्संख्याभिरप्यथ ।
विग्रहोऽक्षरमन्त्रेति पदस्य च सुरेश्वरि ॥१५३४॥

पूर्वोदित द्विशब्दाभ्यां पश्चोक्तत्रिपदस्य च ।
समानः ससटान्तश्च पुनस्तत्तद्ग संख्यया [?] ॥१५३५॥

विग्रहो वज्रशब्दस्य टावन्तामन्त बृंहितः ।
गुह्यकालीमिति ततः पुनराद्यां षडक्षरीम् ॥१५३६॥

निस्तारां तदनूद्धृत्य पूजयामि नमः शिरः ।
सर्वादिमं षडक्षर्य्या आदौ तत्तन्मनुं स्मरेत् ॥१५३७॥
शाम्भवादिषु मन्त्रेषु षट्स्वपि प्रेयसि ध्रुवम् ।
अमुकोपासितत्वेन नैव वाच्यं कथञ्चन ॥१५३८॥
विग्रहीभूतसंख्याभिरक्षरेण प्रकीर्त्य वै ।
तत्तन्नामाद्यमन्त्रेण सविशेष इयान्मत. ॥१५३९॥
सहस्रार्णमनूच्चारं नात्र कुर्याद्वरानने ।
महानिर्वाणमन्त्रेण बिन्दुपूजा समाप्यते ॥१५४०॥
उपदिष्टा इमे मन्त्रा येषां स्युर्गुरुवक्त्रतः ।
इत्थंरूपा बिन्दुपूजा तेषामेवोपदिश्यते ॥१५४१॥
ऋते तत्तन्मनोराप्ति न कुर्यादीदृशार्चनम् ।
इत्थं समाप्य बिन्द्वर्चा तत्तत्पूर्वोक्तमालया ॥१५४२॥

[मन्त्रजपविधानम्]

यावच्छक्यं जपं कुर्यात्साधको मीलितेक्षणः ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण जपं देव्यै ततोऽर्पयेत् ॥१५४३॥
सर्वान्तर्यामिनि शिवे गुह्यकालि परापरे ।
इमं जपं गृहाण त्वं वरं सिद्धिं च यच्छ मे ॥१५४४॥
पुनरारात्रिकं दद्यान्मन्त्रेण ह्युदितेन हि ।

[स्तोत्रादिपाठविधानम्]

ततः स्तोत्रं पठेद्धीमान् किमप्येकं समाहितः ॥१५४५॥

नाम्नां सहस्रं गद्यं च कवचं विश्वमङ्गलम् ।
आवश्यकतया पाठ्यं त्रयं नैमित्तिकार्चने ॥१५४६॥
त्रयाणामप्यपठनादङ्गहानिः प्रजायते ।

[पात्रस्थापनपूर्वकः शक्तिपूजाविधिः]

ततः कुर्याच्छक्तिपूजां पात्रस्थापनपूर्वकम् ॥१५४७॥
मन्त्रैः पूर्वोदितैरेव ध्यानन्यासावृतिक्रमैः ।
पात्रस्थापनमन्त्रास्तु दोषातन्यर्हणाध्वनि ॥१५४८॥
ये वक्ष्यन्ते मया देवि त एवात्र समीरिताः ।
शक्तेरर्चा रतं शक्तेः शक्त्या सार्द्धं भुजिक्रिया ॥१५४९॥
यस्मादावश्यकं तस्मात्किमप्यधिकमीरये ।
नित्ये ध्यानं गुह्यकाल्यास्तत्रैवात्रोपयुज्यते ॥१५५०॥
अतो विशेषात्कलय शक्तिध्यानं वरानने ।

[शक्तिध्यानम्]

धातुर्या सृष्टिशक्तिर्जगदवनविधौ स्थैर्यशक्तिश्च विष्णोः ।
शम्भोः संहारशक्तिर्युवतिजनहृदुन्माथशक्तिः स्मरस्य ॥
ज्ञानेच्छाकर्मशक्तिस्त्रिपुरविजयिनः सर्वगा सर्वशक्तिः ।
सर्वेषामादिशक्तिर्मम हृदि वसताद्गुह्यकाल्यादिशक्तिः॥१५५१॥

[आवाहनमन्त्रः]

आवाहनं न पूर्वोक्तमन्त्रभिन्नं तदुच्यते ।
चैतन्यरावयोगिन्यो मायारामास्मरास्तथा ॥१५५२॥
डाकिनीप्रलयौ चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ।
नव बीजानि संलिख्यं एह्येहि भगवत्यपि ॥१५५३॥

वज्रकापालिनि ततः शक्त्यङ्गे समुदीरयेत् ।
स्वाधिष्ठानं प्रकटय रमाताक्ष्यौं नृकेशरी ।।१५५४।।
ततो महाचण्डयोगेश्वरिशब्दं विनिर्दिशेत् ।
शक्तितत्त्वावतारे च शक्तिं दर्शय च द्वयम् ।।१५५५।।
शक्तिं शोधययुग्मं च शक्तिं पावय युग्मकम् ।
सामरस्यात्सिद्धिमिति देहियुग्मं ततो वदेत् ।।१५५६।।
मारण्डं कर्णिका कौन्तं बीजत्रितयमुद्धरेत् ।
कुलसम्प्रदायशब्दात् प्रवर्तिनि समालिखेत् ।।१५५७।।
गुह्यानन्ताच्छक्तिचक्रेश्वरिवर्णान् समुच्चरेत् ।
तारप्रेतपराश्चैव सान्निध्यं कुरु च द्वयम् ।।१५५८।।
त्रिस्त्रीरुडस्त्रयोश्चापि नमः स्वाहा च पश्चिमे ।
नैमित्तिकार्चाविषये शक्तेरावाहने मनुः ।।१५५९।।
अयमेव समुद्दिष्टो न तु पूर्वो वरानने ।
अस्मिन् मनौ तु वर्णानामष्टाविंशतिकं शतम् ।।१५६०।।
न्यासः पूर्वोदितो ग्राह्यो गायत्रीमनुरेव च ।
षोडशावरणार्चायां भवेयुः शक्तिशक्तयः ।।१५६१।।
वधूवोजातपदानि स्युः ङेन्तानि हृदयं ततः ।
ललिता प्रमदा वामा मुदिता हर्षिता तथा ।।१५६२।।
मोहिनी कामुका चापि भगमालिन्यनन्तरम् ।
उन्मादिनी ततः श्रेष्ठा दर्पिता वरदापि च ।।१५६३।।
विह्वला भगवत्यस्मात् भवेत्कामातुरापदम् ।
सर्वशक्तिः सर्वशेषे षोडशैवं प्रकीर्तिताः ।।१५६४।।

[कौलिकरीत्या शक्तिपूजाविशेषविधिवर्णनम्]

कुर्वते किञ्चिदधिकं चत्वारोऽत्रैव कौलिकाः ।
प्रोक्तावरणपूजायां या नामाली स्मरस्य हि ॥१५६५॥
पञ्चाशत्संख्यकानां हि नाम्नां शक्तेश्च पार्वति ।
श्रीकण्ठादिवदस्यापि न्यासं तत्त्वेन कीर्तनम् ॥१५६६॥
कुर्वन्ति पूजां शक्तेर्हि तामपि व्याहरामि ते ।
अबला सुन्दरी श्यामा युवती मदनालसा ॥१५६७॥
महिला चित्तमथनी कामिनी वरवर्णिनी ।
मनोहरा भामिनी च सुरूपाऽनङ्गलालसा ॥१५६८॥
ललना प्राणदा कान्ता रमणी रागवर्द्धिनी ।
विलासिनी रङ्गभूमिर्गर्विता मोददायिनी ॥ १५६९॥
वरारोहा मदाधारा वधूर्भव्या रसोत्कटा ।
चञ्चला व्रीडिता बाला गौराङ्गी च प्रियम्वदा ॥१५७०॥
हेलावती भारवती प्रौढा विभ्रमवत्यपि ।
आह्लादिनी सुखकरी सुवेशा वेशवत्यपि ॥१५७१॥
सुस्वरा मोहनकरी विचित्रा पीवरस्तनी ।
क्षोभणी द्राविणी चापि हसन्ती च मृगाक्ष्यपि ॥१५७२॥
प्रीतिदात्री महामाया पञ्चाशत्संख्यका इमाः ।

[भाण्डिकेरमते कर्तव्यताधिकाभिधानम्]

अधिकं कुर्वते किञ्चत् भाण्डिकेराश्चतुर्ष्वपि ॥ १५७३॥
प्रसाधनान्यर्चयन्ति मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
उद्वर्तनालक्तके च कज्जलं तिलकं तथा ॥१५७४॥

सिन्दूरं पत्रलेखा च कटाक्षोऽधररागयुक् ।

[मौलेयमते कर्तव्यताधिकाभिधानम्]

इतोऽप्यधिकमिच्छन्ति मौलेयाः किञ्चिदेव हि ॥१५७५॥

अङ्गप्रत्यङ्गवच्चासां वेशं संपूजयन्ति हि ।

वेणीसीमन्तहसितचोलशाटीदुकूलयुक् ॥१५७६॥

चण्डातकं तथा भावो मनुमाकलयाधुना ।

चैतन्यमायाकमलापाशस्त्रीकूर्चमन्मथाः ॥१५७७॥

शाकिनी चेति पूर्वेषां बीजानि क्रमतः पुरः ।

मध्ये ङेन्तानि तान्येव शेषे हृन्मन्त्र इष्यते ॥१५७८॥

पाश्चात्यानां तु वै काली प्रासादो डाकिनी तथा ।

योगिनी नृहरिः सानुर्हरिस्तदनु शृङ्खला ॥१५७९॥

अस्याप्यन्यत्सर्वमपि पूर्ववत्त्रिदशेश्वरि ।

पूजार्थं मूलमन्त्रस्तु पुरैव प्रतिपादितः ॥१५८०॥

जपार्थं शक्तिगायत्री सा चैवोद्धृत्य दर्शिता ।

नित्ये वै शक्तिपूजायास्तथा नैमित्तिके प्रिये ॥१५८१॥

इयान् विशेषः कथितः पौर्वापर्यभिदापि च ।

[रतोत्सवविषयकनिर्णयः]

शक्ते रतोत्सवो नित्यपूजायामैच्छिको मतः ॥१५८२॥

आवश्यकतया ज्ञेयो नैमित्तिकसमर्हणे ।

सर्वं नित्यस्य वै ग्राह्यमेतन्नैमित्तिकस्य च ॥१५८३॥

उभाभ्यामेव निर्व्यूढा शक्तिपूजा प्रजायते ।

इत्थमनाकुलो[1] भूत्वा शक्तिपूजां समाप्य हि ॥१५८४॥

[पात्रतर्पणविधिः]

पात्राणां तर्पणं कुर्यात् पृथक् पृथगुदारधीः ।
क्रमेणैव प्रवक्ष्यामि पञ्चानां पात्रतर्पणम् ॥१५८५॥
अगम्यं मूढबुद्धीनां सुबोधं सुधियां तथा ।
पात्राणां च स्थापनानामन्योन्यस्य यथाभिदा ॥१५८६॥
तर्पणग्रहणानाञ्च तथैव हि महाभिदा ।

[कापालिकमते समन्त्रषट्त्रिंशत्पात्रतर्पणम्]

अथ कापालिकमते षड्त्रिंशत्पात्रतर्पणम् ॥१५८७॥
विशेषेण प्रवक्ष्यामि तन्मन्त्रोद्धारमीश्वरि ।
मीनस्य पललस्यापि शकले द्वे निपीडिते ॥१५८८॥
उपर्यधोभावतयाऽङ्गुष्ठाऽनामिकया ततः ।
अविज्ञाताऽधोगतिके खण्डे करतले तथा ॥१५८९॥
नैतन्नित्यवदग्न्यादौ नाप्सु नैवान्यभाजने ।
पातनीयं सुरेशानि नैव भूमौ कदाचन ॥१५९०॥
एकस्माद्भाजनादन्यभाजने तर्पणं चरेत् ।
पुनस्तदमृतं पीठे दद्यादेवं विधिक्रमः ॥१५९१॥
द्वयोर्मन्त्रद्वयं भिन्नं सर्वत्रैवं प्रकीर्तितम् ।
यावत् षड्त्रिंशसंख्यानि पात्राणि स्युरनुक्रमात् ॥१५९२॥
मन्त्रा द्विसप्ततिमितास्ततः कर्म समाप्यते ।
विधानमेतदुदितं मन्त्रानाकलयाधुना ॥१५९३॥

१—मध्याकुलो ङः ।

सतारं तदमत्राख्यातस्तत्त्वं संहितात्मकम् ।
तदग्निमाभिधाने तु युक्ते तत्त्वपदेन हि ॥१५९४॥
ङ्यन्ते जुहोमि शीर्षञ्च पौरस्त्यो मनुरीदृशः ।
चरमीयं मन्त्रमपि समाकलय पार्वति ॥१५९५॥
पुनस्तत्तन्नामयुततत्त्वशब्दैर्विगूहितैः ।
तारादिमे रूपस्तरणमसि स्वाहान्त्यगो मनुः ॥१५९६॥
तत्तद्विग्रहयुक् सर्वमुभयत्रापि वुध्यते ।
इत्येवमेकपात्रस्य तर्पणं समुदीरितम् ॥१५९७॥
द्वितीयादिषु विज्ञेये द्वे नाम्नां विग्रहान्विते ।
तस्मात्तत्त्वमिति प्रोच्य सतत्त्वेऽग्निमनामनि ॥१५९८॥
पूर्ववत्सकलं कुर्यात् द्वितीयेऽपि मनौ तथा ।
द्विपदात्तत्त्वशब्दस्य तदग्रस्य च विग्रहः ॥१५९९॥
एवं तातीर्यके तुर्ये पञ्चमादिष्वपीरयेत् ।
यावत् षड्त्रिंशहेतूनां तर्पणं प्रसमाप्यते ॥१६००॥
तावन्मन्त्राः प्रवर्द्धन्ते उत्तरोत्तरतः प्रिये ।
एवमेव द्वितीयेऽपि मन्त्र ऊहः प्रकल्प्यते ॥१६०१॥
उद्धारक्रमतोऽदस्तु स्वल्पमेव प्रदृश्यते ।
क्रिया च भूयसी ज्ञेया मन्त्रदैर्ध्यमपि ध्रुवम् ॥१६०२॥
विस्तराद्विस्तरं वोध्यमिति कर्तव्यतोभयोः ।
पूर्वो मनुः परिज्ञेयः पात्रे तर्पणहैतुकः ॥१६०३॥

पीठमूर्त्योस्तर्पणकृद् द्वितीयः समुदाहृतः ।
न बीजगतबाहुल्यं न च मन्त्रगतं तथा ॥१६०४॥
परिपाटीगतं ज्ञेयं बाहुल्यमुभयोरपि ।
कापालिकमते ज्ञेयमीदृशं पात्रतर्पणम् ॥१६०५॥
पात्रग्रहणरीतिस्तु सर्वान्ते कथयिष्यते ।

[त्रिंशत्पात्रतर्पणविधिः]

अथ त्रिंशदमत्राणां दिगम्बरमतस्थितौ ॥१६०६॥
तर्पणं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वागमसुगोपितम् ।
भिन्नरीत्या परिगतं दुरूहोद्धारमर्थवत् ॥१६०७॥
मन्त्राः सर्वेऽपि देवेशि एकरूपतया स्थिताः ।
एकैकस्मिन् मनौ देवि भिन्नं नामद्वयं स्थितम् ॥१६०८॥
एतद्गता भिन्नता तु नान्यरूपा कदाचन ।
उद्धारमधुना वच्मि सावधाना निशामय ॥१६०९॥
वेदादिलज्जारावेभ्यः स्थितेभ्यः प्रथमं मनोः ।
त्र्यर्णातमोपपदासङ्गिवत्यम्वामुपगूहिता ॥१६१०॥
प्रयोजकतया पश्चान्त्रियामा च तृयेरपि[?] ।
तदादिमविभागादि वचनं स्त्रीत्ववृंहितम् ॥१६११॥
प्रयोज्यत्वे नादिधातोर्लेडितरपदस्थितम् ।
सर्वादिभूतं वचनं ससन्ध्येतत्पदं ततः ॥१६१२॥
पुनः सविग्रहं तत्तत्पात्राणां नाम तैः पुनः ।
पात्रं विगृह्य तच्छब्दो ङेन्तस्त्रीलिङ्गसंहितः ॥१६१३॥

बोध्या सर्वावसानीया तर्जनी सुरवन्दिते ।
विहायामत्राभिधानं सर्वस्मिन्नपि वै मनौ ॥१६१४॥
न न्यूना नाधिकाश्चापि वर्णाः स्युः पञ्चविंशतिः ।
नामधेयान्यमत्राणां पूर्वमेवोदितानि ते ॥१६१५॥
वत्यादिमपदानीह साम्प्रतं कलय प्रिये ।
समयो निगमश्चापि प्रमोदो मङ्गलं तथा ॥ १६१६॥
आनन्दो विजयश्चाथ चाण्डालो भैरवोऽपि च ।
सुकृतं विभवोऽस्यानु प्रमाणप्रत्ययावपि ॥१६१७॥
विज्ञानञ्च शरीरञ्च प्रकाशो लक्षणं तथा ।
कारणं च निदानञ्च विग्रहः संग्रहोऽपि च ॥१६१८॥
सन्तानं पाण्डरश्चाथ संभेदः सङ्गमोऽपि च ।
ततश्चैतन्यकैवल्ये विशेषोन्मादनामकौ ॥१६१९॥
वैराग्यमपि निर्वाणं त्रिंशदेते प्रकीर्तिताः ।
सर्वेऽप्यदन्ता विज्ञेयाः शब्दास्त्रिदशवन्दिते ॥१६२०॥
वतेर्धातोऽन्यथा स्याद्वै युहलन्तादिभिः पदैः ।
एकैकस्मादमत्रात्तु हेतुं पूर्वोक्तमुद्रया । १६२१॥
गृहीत्त्वा जुहुयात्पीठे पञ्च वारान् पठन्मनुम् ।
वारान्सार्द्धशतान्येवं तर्पणानि भवन्ति हि ॥१६२२॥
नैव पूर्वपदस्यापि पात्रे भुव्यपि तर्पणम् ।
एतद्वैगम्बरीयाणां त्रिंशत्पात्रगतर्पणम् ॥१६२३॥

इति कर्तव्यतायाश्च मन्त्रस्य च सुविस्तरम् ।
विद्यते खलु बाहुल्यमत्र तर्पणकर्मणि ॥१६२४॥

[चतुर्विंशतिपात्रतर्पणविधिः]

अथ मौलेयकानां ते चतुर्विंशत्यमत्रगम् ।
तर्पणं सम्प्रवक्ष्यामि स्थिरा भूत्वा शृणु प्रिये ॥१६२५॥
मौलेयानां तु देवेशि षडाम्नायस्थदेवताः ।
तत्तन्मन्त्राश्च सर्वेषां उपदिष्टा भवन्ति हि ॥ १६२६॥
अत एवाधिकारोऽत्र तेषामेव प्रजायते ।
मया कामकलाकाल्या अयुताक्षरनामनि ॥ १६२७॥
मन्त्रे मृत्युञ्जयप्राणे सर्वा एव प्रदर्शिताः ॥
आदौ तत्तन्मूलमनुं वारमात्रं निगद्य वै ॥१६२८॥
योगिनीशाकिन्यमृतबीजानि तदनन्तरम् ।
तत्तदाम्नायपंक्तौ च तदनन्तरमीरयेत् ॥१६२९॥
तत्तदाम्नायदेवी च तत्तन्नाम ततः परम् ।
श्रीपादुकां तर्पयामि नमस्तदनु कीर्तयेत् ॥१६३०॥
इत्थमस्य दुरूहत्वं सुगमत्वं च दर्शितम् ।
एकैकस्मादमत्रात्तु त्रिवारं तर्पणं चरेत् ॥१६३१॥
तर्पणं पीठ एव स्यान्नैवान्यत्र शुचिस्मिते ।
चण्डेश्वरी तु सर्वाद्या हरसिद्धा च बाभ्रवी ॥१६३२॥
पिङ्गला च चतस्रोऽमूः पूर्वाम्नायगताः प्रिये ।
दक्षिणाम्नायसंसिद्धा मातङ्गी सङ्कटा तथा ॥ १६३३॥

तृतीया शूलिनी मुण्डमधुमत्यथ कथ्यते ।
कुब्जिकाप्यथ चामुण्डा चण्डघण्टा ततः परम् ॥१६३४॥
मायूरी चेति विज्ञेयाः पश्चिमाम्नायगा इमाः ।
सिद्धिलक्ष्मीस्तथा चण्डयोगेश्वर्यनन्तरम् ॥१६३५॥
वज्रकापालिनी कामकलाकाली तथैव च ।
उत्तराम्नायगा एता देव्यस्ते परिकीर्तिताः ॥ १६३६॥
भीमादेव्यध आम्नाये हाटकेश्वर्यनन्तरम् ।
कालरात्रिर्महामाया श्रृणूर्द्ध्वाम्नायगा अतः ॥१६३७॥
सर्वादिभूता विज्ञेया महात्रिपुरसुन्दरी ।
कामाख्या विश्वरूपा च मोक्षलक्ष्मीरिति क्रमात् ॥१६३८॥
पञ्चविंशतमा मध्ये गुह्यकाली प्रकीर्तिता ।
एकैकस्याः प्रिये देव्या मन्त्रा नव दश स्थिताः ॥१६३९॥
कः समुच्चारणीयोऽत्र पूर्वपक्षे श्रृणूत्तरम् ।
मया मृत्युञ्जयप्राणे यो यो मनुरुदीरितः ॥१६४०॥
तस्या देव्या स स मनुर्ग्राह्यस्तर्पणकर्मणि ।
कुत्रापि हि विशेषोऽस्ति स मया परिवर्ण्यते ॥१६४१॥
सिद्धिलक्ष्म्याः परिज्ञेयः षोडशाक्षरिको मनुः ।
चण्डयोगेश्वरी मन्त्रो डाकिन्याद्यो नवाक्षरः ॥१६४२॥
वज्रकापालिनीमन्त्रो ब्रह्मोपास्यैव गृह्यते ।
तथा कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणो मनुः ॥१६४३॥

महात्रिपुरसुन्दर्याः षोडशार्णोऽभिधीयते ।
कुब्जिकामन्त्रमध्ये तु ज्ञेया समयकुब्जिका ॥१६४४॥

मूलदेव्यास्तर्पणे तु दशवक्त्रगतो मनुः ।
शेषे स्वस्वेष्टगो मन्त्रो विधेयः पूर्त्तिकर्मणि ॥१६४५॥

[भाण्डिकेरमते पात्रतर्पणविधिः]

अधुना भाण्डिकेराणां तर्पणं कथयामि ते ।
नित्येषु यानि पात्राणि षडुक्तानि मया तव ॥१६४६॥

तान्येव गुणभेदेन भवन्त्यष्टादश प्रिये ।
नित्ये संहारमार्गेण तर्पणं कुर्वते बुधाः ॥१६४७॥

नैमित्तिके सृष्टिरीत्या तर्पणं परिचक्ष्यते ।
एकैकस्य त्रिभेदेन कर्तव्यं तर्पणं सदा ॥१६४८॥

तदुद्धारं प्रवक्ष्यमि बीजवर्णससन्वितम् ।
सारस्वतस्मरवधूः प्रथमं समुदाहरेत् ॥१६४९॥

ततो वदेत् सत्त्वरजस्तमपदपुरःसरम् ।
श्रीपात्रामृतशब्देन टाबन्तेन विगृह्लता ॥१६५०॥

तत्तद्गुणात्मिकां तत्तत्सन्धिना परिवृंहिताम् ।
गुह्यकालीं तर्पयामि वर्णानष्टाविमान् वदेत् ॥१६५१॥

ततश्च सामृतीभूयामृतं मयि समुद्धरेत् ।
चरमे दिशतु स्वाहा प्रोक्तस्तर्पणकृन्मनुः ॥१६५२॥

एतन्मन्त्रावसाने तु पुनरन्यं मनुं स्मरेत् ।
प्रणवादमृतं प्रोच्य वर्णं नो बीजमीश्वरि ॥१६५३॥
स्वदस्व शिर इत्यन्ते नवार्णघटितो मनुः ।
प्रत्येकं तन्मनोरन्ते मन्त्रमेनं समुच्चरेत् ॥१६५४॥
प्रत्येकं सप्तवारं तु प्रथमः परिकीर्तितः ।
कल्पो द्वितीयः पञ्चैव त्रिवारमधमः स्मृतः ॥१६५५॥
एवं शक्त्यादिपात्रेऽपि गुणभेदेन तर्पयेत् ।
मुख्ये षडेकसंख्याको मध्यमे खाङ्कसंमितः ॥१६५६॥
उभयोरपि देवेशि वेदवाणमितोऽधमे ।
तर्पणं पूर्ववत्पीठे नान्यत्र परिकीर्तितम् ॥१६५७॥
पूर्वोदितैव मुद्रा स्यादत्रापि त्रिदशेश्वरि ।
ऊर्ध्वाधोभावघटिता यथा पात्रस्य निर्मितिः ॥१६५८॥
तद्वदेव प्रकर्तव्यं पात्राणामपि तर्पणम् ।
इत्येतत्कथितं देवि तत्तन्मन्त्रगतर्पणम् ॥१६५९॥
चतुर्णामपि कौलानां मन्त्रचर्याविधिक्रमैः ।

[द्वादशपात्रतर्पणविधिः]

अथ द्वादशपात्राणां प्रोक्तानां श्रुतिवर्त्मनि ॥१६६०॥
तर्पणं कथयिष्यामि मनुरीतिक्रमागतम् ।
आनुकल्पेन विधिना मधुदुग्धादिभिः प्रिये ॥१६६१॥
विहिते भाजने यद्यत्कार्यं श्रुतिपथस्थितैः ।
पूर्वोदिता ये प्रकाराश्चत्वारः कुलमार्गगाः ॥१६६२॥

कौलिकानामेव ते स्युः स्मार्तानां न कदाचन ।

[पात्रतर्पणे स्वमतश्रेष्ठता]

इदं मदीयमयनमुभयोरपि युज्यते ॥१६६३॥

द्वादशामत्रविधिना येऽर्चयन्ति सुरेश्वरीम् ।
कौला वाप्यथवाऽकौलास्तेषामेष क्रमः प्रिये ॥१६६४॥

महादुरूहो विषमकर्तव्यत्वो विशेषतः[?] ।
निशामयार्पितस्वान्ता ततो बोधमवाप्स्यसि ॥१६६५॥

[स्वमते पात्रतर्पणविधिः]

आदौ सामान्य उद्धारः कथ्यते तदनन्तरम् ।
विशेषेण प्रवक्ष्यामि स्फुटस्तेन भविष्यति ॥१६६६॥

परमात्मा च समयभावनाचक्रसिद्धयः ।
जीवारम्भसृष्टी च ततः स्थितिः संहार इत्यपि ॥१६६७॥

अनाख्या च तथा भासा मुक्तिः शेषे प्रकीर्तिता ।
इति द्वादश पात्राणां नामानि कथितानि ते ॥१६६८॥

षडेव सृष्टिमार्गेण षट् संहारवर्त्मना ।
अथ मन्त्रप्रकारौ ते वर्णयामि सुरेश्वरि ॥१६६९॥

भिन्नभिन्नानि बीजानि पञ्च पञ्चक्रमात्पुरः ।
तत्तत्पात्राभिधानेन पात्रशब्दस्य विग्रहः ॥१६७०॥

तच्च ङेन्तं प्रकर्तव्यं चलं पूर्वं स्थिरं परम् ।
ततोऽनु भिन्नभिन्नानि पदानि सुरवन्दिते ॥१६७१॥

स्वरूपिणी पदस्यापि विग्रहस्तैरमान्वितः ।
पुनर्विभिन्ननामानि तच्चामासंहितानि च ॥१६७२॥
त्रीणि क्रियापदानि स्युस्तदनन्तरमीश्वरि ।
आद्यद्वयं ससन्धानं शेषं सन्धानवर्जितम् ॥१६७३॥
पञ्च बीजादनुशिवे यद्यत्पदमुदीरितम् ।
तैरमामृतशब्दस्य विग्रहष्टान्त ईरितः ॥१६७४॥
ततोऽनु ये पदेऽमन्ते विधेये ते सुबन्तिमे ।
क्रियापदानां त्रितयं पुनरप्यमरेश्वरि ॥१६७५॥
एकरूपं पदद्वन्द्वं टावन्तं तदनन्तरम् ।
पूर्वापराभ्यां टान्तं हि कर्तव्यं सन्धिसंहितम् ॥१६७६॥
पुनः क्रियापदं चैकं शिरश्च तदनन्तरम् ।
मन्त्रमेकं समुच्चार्य मामैकं ङेऽन्तिमं स्थिरम् ॥१६७७॥
हृन्मन्त्रः सर्वशेषे च सामान्योद्धृतिरीदृशी ।
विशेषोद्धारमधुना प्रवदाम्यवधारय ॥१६७८॥
कुलस्त्रीयोगिनीकूर्चवधूरावाः क्रमेण हि ।
कामकामलपक्षीन्त्र प्रासादक्षेत्रपास्ततः [?] ॥१६७९॥
पाशप्रेतपराविद्युदमृतानि ततः परम् ।
फेत्कारीकिन्नरहरिप्रलयाडाकिनी तथा ॥१६८०॥
शृङ्खलार्कणिकाहारगर्भदीपास्ततः परम् ।
हाकिनीचञ्चुकुलिकक्षुरप्राः प्रास एव च ॥१६८१॥

तारकेश्वरशैशुक्यहलसूत्राणि तत्परम् ।
दुष्कृतभ्रामरीमन्दताटङ्कसुरसास्ततः ॥१६८२॥
कुटिलापद्मसमरमणिमालाः सचामराः ।
रञ्जिनीरागकुशिकहारिण्यौपह्वरास्ततः ॥१६८३॥
ततश्च नान्दिकघटीसारसोत्कोचिनीव्ययाः ।
चिच्छक्तिशाम्भवपरापरब्रह्मकपालकम् ॥१६८४॥
महाकल्पस्थायिबीजं सर्वशेषे निगद्यते ।
इति षष्टिर्हि बीजानि क्रमेण कथितानि ते ॥१६८५॥
एकैकस्मिन् मनौ पञ्च पञ्च देयान्यनुक्रमात् ।
पात्राणां नाम कथितं पुरैव त्रिदशेश्वरि ॥१६८६॥
स्वरूपिण्याः पूर्वपदं भिन्नं भिन्नं यदीरितम् ।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि क्रमयोगेन पार्वति ॥१६८७॥
चैतन्यञ्च प्रपञ्चञ्च विज्ञानं तदनन्तरम् ।
निरञ्जनं निर्विकल्पं परमानन्द एव च ॥१६८८॥
सप्तमं स्थूलदेहञ्च परमैश्वर्यमष्टमम् ।
नवमञ्च निराकारं विषयातीतमेव च ॥१६८९॥
एकादशतमं ज्ञेयं कैवल्यमिति वै पदम् ।
पदद्वयात्मकं सत्यं नित्यं तदनु कीर्तितम् ॥१६९०॥
तस्या एवोत्तरपदमधुना कथयामि ते ।
आदौ महाचण्डयोगेश्वरी सिद्धिकराल्यपि ॥१६९१॥

ततश्च सिद्धिविकराल्यपि मारी महापदात् ।
महामाया चण्डकापालिनी च तदनन्तरम् ॥१६६२॥
संहारमार्गारम्भे तु सप्तमी भीमडामरी ।
सर्वेश्वरी चाष्टमी स्यान् महाग्रासेश्वरी ततः ॥१६६३॥
प्रबोधेश्वर्यथो ज्ञेया शुद्धसत्त्वेश्वरी ततः ।
वज्रकापालिनी बोध्या सर्वशेषे वरानने ॥१६६४॥
क्रियापदत्रयमथो पौरस्त्यं प्रब्रवीमि ते ।
आवाहयामि प्रथमं पूर्वशब्देन संहितम् ॥१६६५॥
अवस्थापयामि ततः पूर्ववत् पूर्वसंहितम् ।
पश्चात् सन्निधापयामि त्रितयं चैतदीरितम् ॥१६६६॥
पदद्वयात् सुबन्तात्तु त्रयं यच्च क्रियापदम् ।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि दत्तचित्ता निशामय ॥१६६७॥
तृप्यतां प्रथमं ज्ञेयं द्वितीयं च समृद्धयताम् ।
प्रसीदतां तृतीयं च त्रीण्येव कथितानि हि ॥१६६८॥
एकरूपं पदं यत्तट्टाबन्तत्वेन कीर्तितम् ।
विज्ञेयममृतं तच्च तस्य पश्चात् क्रियापदम् ॥१६६९॥
साधयाम्येकमेवात्र न द्वितीयतृतीयके ।
भारती षोडशार्णस्तु मूल मन्त्र उदाहृतः ॥१७००॥
ङेन्तं परं गुह्यकाली परिपाटीमथो शृणु ।
यस्येयं भारतीविद्या नोपदिष्टा भवेत्प्रिये ॥१७०१॥

स हि स्वेष्टमनुं प्रोच्य ततः शेषं समापयेत् ।
क्रियापदत्रयं पूर्वमुच्चरन् पात्रमध्यगम् ॥१७०२॥
त्रिकोणं विलिखेद्धीमान् मुद्रया पूर्वमुक्तया ।
सुबन्तद्विपदोच्चारसमये बिन्दुमालिखेत् ॥१७०३॥
भाजनान्तर्गताकार त्रिकोणान्तर्गतत्वरः ।
क्रियाणां तिसृणां मध्यगतानां घटनक्षणे ॥१७०४॥
त्रिवारं तर्पयेत्पीठं शेषस्थानक्रियां पठन् ।
स्वमूर्ध्न्येकवारं च तर्पयेत् परमेश्वरि ॥१७०५॥
ङेन्तं नाम हृदन्ते च प्रत्येकं पुनरेव हि ।
वारत्रयं पुनः पीठं तर्पयेत् साधकोत्तमः ॥१७०६॥
एकैकस्य हि पात्रस्य त्रिवारं विदधीत वै ।
एकैकभाजने चैवमेकविंशतितर्पणम् ॥१७०७॥
सर्वं मिलित्वा द्विशतं द्विपञ्चाशद्भवन्ति हि ।
स्वशीर्षे तर्पणं यत्तु तदन्तर्यामिणीश्वरि ॥१७०८॥
गृह्णाति तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं मीलितेक्षणैः ।
यद्यत्पात्रस्य यद्दत्तं मीनं मांसं वरानने ॥१७०९॥
तत्तदादाय कर्तव्यं तर्पणं मुद्रया तया ।
तत्परित्यज्य चान्यस्य पात्रस्यातर्पणं चरेत् ॥१७१०॥
पूर्वस्य पूर्वभागस्थं पश्चिमस्य तु पश्चिमम् ।
[स्मार्ततर्पणक्रमनिरूपणम्]
इतिकर्तव्यता चान्या पुनरेकास्ति सुन्दरि ॥१७११॥

समापितं यया रीत्या तर्पणं साधकोत्तमैः ।
रीत्या तयैव कर्तव्यः कुलसंव्यत्ययः परः ॥१७१२॥
तद्रीतिमवगच्छ त्वं धिया परमसूक्ष्मया ।
तारो तत्तत्पात्रनाम न तु पात्रपदं पुनः ॥१७१३॥
तदमन्तं संविधाय ङ्यन्तेऽग्रिमपदे तथा ।
केवलं नाममात्रे तु जुहोमि शिर एव च ॥१७१४॥
एवमुत्तरतः कुर्यात्सृष्टिमार्गेण देशिकः ।
पुनः संहारमार्गेण क्रमयोगेन तेन हि ॥१७१५॥
क्रिया समापनीया हि परमात्मनि कोविदैः ।
उपर्यधोभावतया ये द्वे वै तिष्ठतः खलु ॥१७१६॥
तयोरपीदृशं कर्म कर्तव्यं हि परस्परम् ।
एवं भवेत् चतुस्त्रिंशदावृत्तिर्जगदीश्वरि ॥१७१७॥
चैतन्यादिपदानाञ्च पुनरेवं विधिक्रमः ।
तदपि स्याच्चतुस्त्रिंशत् संख्यकं कुलमेलनम् ॥१७१८॥
पुनश्चैतन्यशब्दस्य देवीनां नामभिः सह ।
कुलसंव्ययं कुर्यात् स्वबुद्ध्या द्वादशात्मकम् ॥१७१९॥
एवं द्वात्रिंशदधिकं त्रिशतं परिकीर्तितम् ।
इत्येवं कथितो देवि स्मार्ततर्पणगः क्रमः ॥१७२०॥
पात्रसंस्थापनस्यैवं पञ्चधा परिकीर्तितम् ।
नानामतप्रभेदेन तर्पणं चापि पञ्चधा ॥१७२१॥

पात्रग्रहणरीतिस्तु सर्वेषामेकरूपिणी ।
बलिदानानन्तरं तां कथयिष्यामि विस्तरात् ॥१७२२॥
एवं समाप्य सौहित्यं स्वत्यागमपरिष्ठितम् ।

[बलिविधिः]

ततो दद्याज्जीवबलिं यथालाभं यथाविधि ॥१७२३॥
विधिस्तु द्विविधः प्रोक्तः श्रौत आगमगस्तथा ।
श्रौतः श्रुत्युक्तमन्त्रेणागमगस्तन्त्रमन्त्रकैः ॥१७२४॥
श्रौतोऽपि स्वस्वगृह्योक्तविधिना संप्रदीयते ।
तान्त्रिकी मन्त्ररीतिस्तु एकैव वरवर्णिनि ॥१७२५॥
षडाम्नायस्थदेवीभ्यो विधिनैकेन दीयते ।
पशुजातिविशेषेण तत्राप्यस्ति भिदाऽधिका ॥१७२६॥
श्रौतः श्रुतिषु सन्धेयो योऽध्वरेषु निरूपितः ।
वक्ष्याम्यागमिकं सर्वं योगस्थानक्रमागतम् ॥१७२७॥
यो यो यस्य बलिः प्रोक्तः स आदौ विनिगद्यते ।

[बलेः धाराविषयिका कथा]

स्वल्पामाख्यायिकां काञ्चिदस्मिन्नर्थे ब्रवीमि ते ॥१७२८॥
विवादं चक्रिरे पूर्वमृषिभिः सह देवताः ।
बालेयद्रव्यनिष्कृत्यै तत्तद्युक्तिनिदर्शनैः ॥१७२९॥
ऋषयः प्रोचुरखिला हिंसामिषविवर्जिता ।
व्रीह्यौषधिमूलफलपुष्पपत्रादिकान् बलीन् ॥१७३०॥
आहुः क्रतुभुजः सर्वे पशुपक्षिझषादिकान् ।
ऋषयस्त्रिदशाश्चापि विवदन्तः परस्परम् ॥१७३१॥

निर्णयार्थमपृच्छन्त धर्मार्थज्ञं वसुं नृपम् ।
विज्ञाय हिंसाजनितमधर्मं स महीपतिः ॥१७३२॥

व्रीह्यौषधीर्बलित्वेन जगाद सुरसंसदि ।
ऋषयो जयमापुर्हि देवाश्चापि पराजयम्॥१७३३॥

सुराः सर्वे शप्तवन्तस्तं भूपं जातमन्यवः ।
रसातलं गच्छ नेष्टाहारः सत्कारवर्जितः ॥१७३४॥

तस्य शापं समालक्ष्य धर्म्यं स्वमतभाषिणः ।
ऋषयः कल्पयामासुर्वृत्तिं तस्य महीपतेः ॥१७३५॥

वसुधारेति या ख्याता होमकर्मणि दीयते ।
तस्मात् सदा सुराः सर्वे पशुमिच्छन्ति वै बलिम् ॥१७३६॥

न स देवो न सा देवी देवयोनिभिदा न सा ।
न स कालो न तद् हुतं यो नेच्छति बलिं प्रिये ॥१७३७॥

अमूर्ता ये च कालांशा माससंवत्सरर्तवः ।
पक्षायनाहोरजनीतिथिप्रहरसंक्रमाः ॥१७३८॥

एतेऽपि बलिमिच्छन्ति किं पुनर्देवयोनयः ।
वनस्पत्योषधिलतातरुगुल्मलतादयः ॥१७३९॥

स्थावराः जंगमाश्चापि बल्याकांक्षां प्रकुर्वते ।

[देवविशेषस्य बलिविशेषप्रियत्वकथनम्]

यस्य यस्य हि देवस्य यो यो बलिरुदीरितः ॥१७४०॥

एतत् प्रसङ्गेन शिवे स स कश्चन कथ्यते ।
स्वयंभुवो बलिः सिंहो विष्णोर्वार्ध्रीनसः स्मृतः ॥१७४१॥

अश्व इन्द्रस्य कथितो गण्डकः परमेष्ठिनः ।
शूकरो भैरवस्यापि प्रमथानां च जम्बुकः ॥१७४२॥

श्रियो द्वीपी वेधसश्च चित्रको बलिरिष्यते ।
गणाध्यक्षस्य भल्लूको यक्षाणां रोहितो मृगः ॥१७४३॥

स्कन्दस्य गोधा विश्वेषां देवानां चमरोऽपि च ।
विनायकानां च बलिः कृष्णसार उदीरितः ॥१७४४॥

वेतालानां च महिषो गुह्यकानां च सम्बरः ।
शच्याः शल्यो रोहितस्तु तुषितानां प्रकीर्तितः ॥१७४५॥

कृकलासो दानवानां दैत्यानां श्येन उच्यते ।
हिरण्यगर्भस्य बलिरष्टापद उदीर्यते ॥१७४६॥

ईशानस्य परस्वच्च रुरू रुद्रस्य कथ्यते ।
बलिर्ममापि गोकर्णः साध्यानां गवयस्तथा ॥१७४७॥

सृमरो भासुराणां च वसूनामृश्य इष्यते ।
वृहस्पतेस्तु गवयो हस्ती चैव प्रजापतेः ॥१७४८॥

कुलुङ्गो गणसाध्यानां नक्षत्रष्ट्रो निगद्यते ।
श्राद्धीयविश्वेदेवानां पृषतः परिकीर्तितः ॥१७४९॥

अग्नेस्तु कुटरुः पक्षी चक्रवाकः प्रचेतसः ।
पारुश्नो गार्हपत्यस्य दक्षिणाग्नेश्च धीवकः ॥१७५०॥

चमूरुराहवनीयस्य शशोऽर्यम्न उदीरितः ।
वायोर्बलाका सोमस्य हंसश्चन्द्रस्य वैनवः ।।१७५१।।
वरुणस्य तथा नक्रो मित्रस्य वकलीयकः ।
चाषोऽग्नीषोमयोर्ज्ञेय इन्द्राग्न्योः क्रौञ्च एव च ।।१७५२।।
मित्रमित्रस्य मद्गुः स्यात् कुलीकस्त्वषुरेव हि ।
आदित्यानां तथा न्यङ्कुः कृष्णोऽपि हि यमस्य हि ।।१७५३।।
स्यात् प्रजापतिवायोश्च गोमृगो बलिरीश्वरि ।
नासत्ययोर्मयूरोऽपि पूष्णो जहेक [?] उच्यते ।।१७५४।।
गर्दभो निर्ऋतेर्मित्रावरुणस्य कपोतकः ।
गोषादी देवपत्नीनां मालीकः सवितुस्तथा ।।१७५५।।
कुलीको देवजीवीनां राजंगाप्सरसामपि ।
अन्तरीक्षस्य पांक्त्रास्तु भूमेराखुर्दिवः कशा ।।१७५६।।
दिशां बलिस्तु नकुला विदिशां बभ्रुरेव च ।
अपां मत्स्यस्तेजसस्तु हामायाख्यो विहङ्गमः ।।१७५७।।
लजः सानान्यकालस्य तथा काशल्यविल्लिका ।
सुपर्णश्चापि दात्यूहो बलिर्वत्सरमासयोः ।।१७५८।।
कपिञ्जलो वसन्तर्तोर्ग्रीष्मस्य कलविंककः ।
वर्षाणां तित्तिरिर्ज्ञेयो शरदो वर्तिका तथा ।।१७५९।।
क्रमरश्चापि हैमन्तः शैशिरो वैककर्यपि ।
पक्षस्य खञ्जरीटः स्यादयनस्य च सारसः ।।१७६०।।

पारावतो दिनस्यापि रात्रेः सीवापुरुच्यते ।
सन्ध्यायां जतुका प्रोक्ता पैङ्गराजस्तिथेरपि ॥१७६१॥
यामस्य सुखिलीकश्च संक्रान्तेरन्यवापकः ।
चिचीवाको ग्रहाणां च नक्षत्राणां शरव्यकः ॥१७६२॥
राशीनामपि साकल्यो लग्नानामपि चञ्चुटः ।
शिशुमारः समुद्रस्य नदीनां च तिमिङ्गिलः ॥१७६३॥
आवर्तानां च मकरो बीचीनां शकुलोऽपि च ।
उद्रः पातालदेशस्य शङ्कुर्वै वाडवस्य च ॥१७६४॥
पर्जन्यानां च मण्डूको वृष्टेरपि महीलता ।
विद्युतामपि शंबूका भरद्वाजोऽशनेरपि ॥१७६५॥
सिनोवालीकूहूराकानुमतीनां क्रमेण हि ।
शरारिकंकुहारीतजीवंजीवाः प्रकीर्तिताः ॥१७६६॥
बलिः कलिङ्गः प्रेतानां पिशाचानां वकोऽपि च ।
भूतानां कुवरश्चापि कुक्कुटो ब्रह्मरक्षसाम् ॥१७६७॥
गन्धर्वाणां कोकिलोऽपि धोरणकानां च वायसः ।
वर्तकः क्षेत्रपालानां वटुकानां च कुक्कुरः ॥१७६८॥
यावत्यो जातहारिण्यस्तासां भारुण्ड उच्यते ।
छुच्छुन्दरिः यक्ष्मणः स्यात् ज्वरस्य शरभो बलिः ॥१७६९॥
चिल्मो बलिर्डाकिनीनां किन्नराणां च चातकः ।
भूलिङ्गो योगिनीनां स्यान्निधीनां टिट्टिभोऽपि च ॥१७७०॥

इन्द्रियाणामथो वच्मि चक्षुषोर्मशको बलिः ।
श्रोत्रयोर्भ्रमरश्चापि घ्राणस्य सरघा तथा ॥१७७१॥

रसनायाः बलिश्चिक्का मक्षिका च त्वचो बलिः ।
पतङ्गो मनसश्चापि प्लुषी वाचो बलिर्मतः ॥१७७२॥

झिल्ली कीटो बलिः पाण्योः खद्योतः पादयोरपि ।
पायोर्यूका समुद्दिष्टा उपस्थस्य शिलीपठिः ॥१७७३॥

वनस्पतीनां मधुको लतानां तैलपायिका ।
मत्कुला ओषधीनां स्युस्तरूणां च पिपीलिका ॥१७७४॥

गुल्मानां गन्धकीटोऽपि शैलानां वुहुडस्तथा ।
शवो बलिः पूतनायाः राक्षसीनामहिर्बलिः ॥१७७५॥

जातमात्रः शिशुः षष्ठयाः शंखो बालग्रहस्य च ।
चकोरो गरुडस्यापि मातॄणां तैलपायिका ॥१७७६॥

विद्याधराणां काकोला यज्ञानां शुक एव च ।
गृध्रोऽरुणस्य च बलिर्मरुकस्य करेन्दुकः [?] ॥१७७७॥

राज्ञो बलिर्मर्कटोऽपि कान्तारस्य प्लवः खगः ।
सर्वेषामेव देवानां देवीनां च विशेषतः ॥१७७८॥

बलित्वेन विनिर्दिष्टा महिषच्छगलावयः ।
जलजाः स्थलजाश्चपि ग्रामजारण्यजास्तथा ॥१७७९॥

पशवः पक्षिणः कीटास्तिर्यग्योनय एव च ।
इमे विधात्रा विहिता बलित्वेन दिवौकसाम् ॥१७८०॥

नान्यैर्नैवेद्यसंभारैस्तथा तुष्यन्ति देवताः ।
यथा पशूनां बलिभिर्विहगानां तथैव च ॥१७८१॥
अत एव हि देवेशि मीमांसावेदयोरपि ।
देवानां प्रियशब्दस्तु पशुपर्याय उच्यते ॥१७८२॥
एवं विज्ञाय सिद्धान्तं देव्याः सन्तोषहेतवे ।
पशून् दद्याद् बलित्वेन मेध्यानपि विहङ्गमान् ॥१७८३॥
कृमिकीटादयः सर्वे ये तिर्यञ्चः प्रकीर्तिताः ।
न ते देवीबलित्वेन विधात्रा विहिताः प्रिये ॥१७८४॥
आलभेत वृषं श्वेतं यज्ञे गोमेधनामनि ।
नरमेधे नरं चापि गजक्रान्ते गजं तथा ॥१७८५॥
अश्वमेधे तथैवाश्वं शङ्खचूड़े च हस्तिनम् ।
ब्रवीति यत्र वेदोऽपि तत्र कैव विचारणा ॥१७८६॥
तस्मान्नैमित्तिकार्चायां बलिरावश्यकः प्रिये ।
विशेषेण प्रदातव्यो देवीसन्तोषहेतवे ॥१७८७॥
बलिं विना नैव देवीपूजामङ्गीकरोति हि ।
तत्राप्युभौ प्रशस्येते महिषश्छाग एव च ॥१७८८॥
अन्यदेवोचितबलिविचारैः किं प्रयोजनम् ।
येन सन्तुष्यते काली तं विचारं ब्रुवेऽधुना ॥१७८९॥
याः काश्चिद् गुह्यकाल्यै तु विहिताः पशुजातयः ।
अरण्या अथवा ग्राम्या जलजानां च जातयः ॥१७९०॥

खगानां जातयश्चापि ता एवादौ ब्रवीमि ते ।
मत्स्या मृगाः वराहाश्च कच्छपा महिषास्तथा ॥१७६१॥
गण्डका गोधका ग्राहाः शार्दूलाः हरयोऽपि च ।
नकुलाः शरभाश्चापि गवयश्छगलास्तथा ॥१७६२॥
मनुष्याः पक्षिणश्चापि तेषां काशा अपि प्रिये ।
भगवत्याः बलित्वेन विधात्रा परिकल्पिताः ॥१७६३॥
एतेषां बलिदानेन सर्वकार्याणि साध्येत् ।
बलिभिर्बर्द्धते ह्यायुर्बलिभिः शात्यते[1] रुजः ॥१७६४॥
जयत्यरातीन् बलिभिर्बलिभिः प्राप्यते धनम् ।
बलिभिः सिद्धिमाप्नोति बलिभिस्त्रिदिवं व्रजेत् ॥१७६५॥
निष्कामनां बलौ दत्ते प्राप्यामोक्षापि यज्ञवत् ।
जातिभेदानथो वक्ष्ये समासा[2]दवधारय ॥१७६६॥
अष्टादश भिदा मत्स्याश्चतुर्विंशतिधा मृगाः ।
वराहाः पञ्चधा प्रोक्तास्त्रिभेदाः कच्छपा अपि ॥१७६७॥
द्विभेदाः महिषास्तद्वद् गशुकाश्च चतुर्विधा ।
गोधिका च त्रिभेदा स्याद् द्विविधो ग्राह एव च ॥१७६८॥
त्रिविधौ व्याघ्रसिंहौ च नकुलो द्विविधोऽपि च ।
सरभश्चैकजातिः स्यान्नास्य भेदो वरानने ॥१७६९॥
गवयस्त्रिविधः प्रोक्तश्छागः पञ्चविधो मतः ।
चतुर्विधाः मनुष्याश्च षट्त्रिंशत्जातयः खगाः ॥१८००॥

१—शाम्यते ङ ।　　२—दुपधारय ङ ।

क्रमेण नामान्येतेषां व्याहरामि तव प्रिये ।
शकुलो रोहितः शालः पाठीनो राघवोऽपि च ॥१८०१॥
प्रोष्ठीनालशिशूड्यङ्गमेवेटागुलिचाम्बटाः ।
तिमिभाकूटसजीवगडकाः शस्तजातयः ॥१८०२॥
गोकर्णकृष्णसारश्यं रुरुस्यंकुचमूरवः ।
प्रियवातप्रमीचीनशमूरुसृमरभषाः ॥१८०३॥
रंकुसंवरकन्दल्यः सुमरोहिषोवटः[?] ।
कदल्येणविशालाक्षपतङ्कोल्लाटरोहिताः ॥१८०४॥
वराहस्तब्धकाक्रोऽकुशालाक्षीणजल्वलाः ।
कूर्मश्छत्री चित्रकटो वामनश्चेति वै त्रिधा ॥१८०५॥
अर्करः क्षीरिलश्चापि महिषो द्विविधो मतः ।
कौञ्जरो वारिलश्चर्मी वैशः खड्गाश्चतुर्विधाः ॥१८०६॥
हिरण्या किलिकामीना गोधिका त्रिविधा मताः ।
दीर्घग्रीवश्चर्मपूरो ग्राहो द्विविध ईरितः ॥१८०७॥
तरक्षुस्तरुगश्चित्रो व्याघ्रास्त्रिविध उच्यते ।
शरलः कृशयुर्मेदी सिंहोऽपि त्रिविधो मतः ॥१८०८॥
स्थूलः कलिङ्गश्च तथा नकुलोऽपि द्विधेरितः ।
एकजातिं विना नैव सरभोऽन्यः प्रजायते ॥१८०९॥
लाटिको विङ्करः सास्नी गवयोऽपि त्रिधोच्यते ।
त्रिपिरः पारितः क्षौरी वर्करो मारिषस्तथा ॥१८१०॥

पञ्चभेदो भवेच्छागोऽविरपि त्रिविधो मतः ।
द्रम्मिकः पारिशो भेटो मनुष्यानपि मे शृणु ॥१८११॥
न मनुष्यत्वसामान्ये चातुर्विध्यं हि वर्तते ।
प्रकारभेदतस्तस्यां भिन्नता परिकल्प्यते ॥१८१२॥
चण्डिकानुगृहीतस्य वितृष्णस्य भवाम्बुधौ ।
तत्तल्लोकावाप्तिफलश्रवणोत्कण्ठितस्य च ॥१८१३॥
स्वतः प्रवृत्तिर्देव्यास्तु बलिरूपो भवाम्यहम् ।
आगत्य च स्वयं ब्रूते मां बलित्वेन योजय ॥१८१४॥
प्रत्यक्षमेव सर्वेषां नृपस्य च विशेषतः ।
स एक उदितो देवि द्वितीयमवधारय ॥१८१५॥
बहुवित्तस्य रत्नादेः स्तेनो लोप्त्रधुतस्तथा ।
निर्णीय परिषन्मध्ये प्राड्विवाकेन कीर्तितः ॥१८१६॥
शीर्षच्छेद्यतया देवि द्वितीयः स निगद्यते ।
युद्धे जितो धृतः शत्रुः कूटयोधिभटाकृतिः ॥१८१७॥
स तृतीयो विनिर्दिष्टश्चतुर्थमवधारय ।
य आततायी पान्थानां कान्तारेऽप्यथवा गृहे ॥१८१८॥
विदितश्चापि निर्णीतः साक्षिभिः सत्यवादिभिः ।
स हि तुर्यः समाख्यातः पञ्चमो नोपपद्यते ॥१८१९॥
वक्ष्ये विहङ्गान् ये देव्यै बलित्वेन निरूपिता ।
पारावतास्ताम्रचूड़ा हंसा वार्ध्रीनसास्तथा ॥१८२०॥

उलूका लोहपृष्ठाश्च दार्वाघाटाश्च सारसाः ।
कलविंकाश्चकोराश्च चक्रबाकाः शुका अपि ॥१८२१॥
शतपत्रा भरद्वाजा भूलिङ्गाश्चातकास्तथा ।
कारण्डवाश्चक्रकराः पारुश्नाश्च कुलीयकाः ॥१८२२॥
प्लवाः कुटरवश्चापि वर्तकाः कुक्कुटा अपि ।
तित्तिर्युलूकक्रौञ्चाश्च लवचाषशिखण्डिनः ॥१८२३॥
पांक्तंदात्यूहशाकल्यपैङ्गराजान्यवायकाः ।
जिह्वीकासुखिलीकाश्चमद्गुहारीतवर्तिकाः ॥१८२४॥
जीवंजीवाश्च वारीताः कोयष्टयश्मटटिट्टिभाः।
वककोकिलगृध्राश्च करेन्दुश्येनखंजनाः ॥१८२५॥
चिरीवांकाश्च जहकासीवापूजतुमेकला ।
कशाः सुपर्णा भारुण्डा हामायाश्चापि पार्वति॥१८२६॥
इति ते कथिताः सर्वे षष्टिभेदा विहायसाम् ।
देव्यै योग्यबलित्वेन नान्य उक्ता विहङ्गमाः ॥१८२७॥
एतेषां जातिभेदास्तु वर्तन्ते डामरादिषु ।
बहुत्वात् ते न कथ्यन्ते ग्रन्थगौरवभीतितः ॥१८२८॥
कपोतभ्रामकारङ्कमनिस्थतुरुकादयः ।
पारावतास्तु दशधा हंसाः पञ्चविधा अपि ॥१८२९॥
राजहंसा मल्लिकाक्षा धार्तराष्ट्राः परिस्पदाः ।
साहेया एवमन्ये तु ज्ञेया विहगजातयः ॥१८३०॥

अदेयानधुना वक्ष्ये पशूनपि विहङ्गमान् ।
भल्लूकान् मर्कटान् फेरून् सर्पानाभूच्छुनस्तथा ॥१८३१॥
क्रमेलकांश्च बालेयांछल्यान् विड्वरशूकरान् ।
जलजेष्वपि मण्डूकानुद्रान्सशिशुमारकान् ॥१८३२॥
कुलीरान् दीर्घपृष्ठादीन् मीनानपि च भूरिशः ।
खगेषु वायसांश्चिक्कान् वर्दुडान् कुलिकानपि ॥१८३३॥
एवमन्येऽपि विज्ञेया नानाशास्त्रागमादिषु ।
देव्यदेयाः पशुखगास्तथा कीटपतङ्गकाः ॥१८३४॥
अधुना संप्रवक्ष्यामि बलिना येन येन हि ।
यं यं कालमभिव्याप्य तुष्टा भवति कालिका ॥१८३५॥
अष्टादशविधैर्मत्स्यैः कच्छपैरपि चण्डिका ।
तृप्यते मासमात्रं हि बलित्वेन नियोजितैः ॥१८३६॥
ताम्रचूडस्य बलिना हंससारसयोरपि ।
तृप्ता भवति मासौ द्वौ त्रीन् मासान् द्वीपिनक्रयोः ॥१८३७॥
कलविङ्कैरुलूकैः स्यात् तृप्ता मासचतुष्टयम् ।
पञ्च मासान् भवेत्तुष्टा शुकैः पारावतैरपि ॥१८३८॥
दार्वाघाटैश्चकोरैश्च षण्मासांस्तृप्तिमश्नुते ।
तृप्यते सप्तमासान् सा जिह्वीकैश्च कुलीपकैः ॥१८३९॥
चतुर्विंशतिभेदैश्च कुरङ्गैर्गवयैरपि ।
मासानष्टौ भवेत्तृप्ता नवमासान् पिकैरपि ॥१८४०॥

हारीतबलिना देवि दशमासांश्च तृप्यते ।
तथा दात्यूहभारुण्डपैङ्गराजैर्वरानने ॥१८४१॥
मासानेकादश शिवे तृप्तिमाप्नोति सिद्धिदा ।
गोधिकाबलिना काली तृप्ताब्दं चापि जायते ॥१८४२॥
अविना नकुलेनापि त्र्यब्दं तृप्ता भवेदपि ।
आजेन बलिना चापि तुष्टा स्यात् पञ्चवत्सरम् ॥१८४३॥
जीवंजीवेन पांक्त्रेन तुष्यतेऽष्टौ च हायनान् ।
पार्षतैणेन बलिना वाराहबलिनापि च ॥१८४४॥
द्वादशाब्दमभिव्याप्य तुष्टा भवति कालिका ।
हामायनामा यः पक्षी सिंहाकृतिधरोऽरुणः ॥१८४५॥
तद्दानात्तुष्यते देवी पञ्चविंशतिवत्सरम् ।
त्रिविधैरपि शार्दूलैर्महिषैर्द्विविधैरपि ॥१८४६॥
चतुर्विधैस्तथा खड्गैर्बलित्वेन समर्पितैः ।
शतं संवत्सरं यावच्चण्डिका तृप्तिमश्नुते ॥१८४७॥
एको वार्ध्रीनसो वस्तु विशेषः परिकीर्तितः ।
अपरः पक्षिजातीयो हिमवच्चरणस्थितः ॥१८४८॥
वृद्धः श्मश्रुधरः श्वेतः पादस्फोटीन्द्रियो स्मितः ।
त्रिपिबो रक्तरसनो निःश्रृङ्गस्वरभंग्यजः ।
पीतचञ्चू रक्तशिराः सितपक्षो सितांघ्रिकः ।
नीलग्रीवः पाटलाभ गलो वार्धीनसः खगः ॥१८४९॥

अजवाध्रीनसैस्तुष्टा भवेत्त्रिशतवत्सरम् ।
निरङ्कसामान्यशशैर्बलित्वेन निरूपितैः॥१८५०॥
जायते गुह्यकाली सा तुष्टा पञ्चशतं समाः ।
सरभैरथ सिंहैश्च शोणितैश्च स्वदेहजैः ॥१८५१॥
दत्तैः सन्तुष्यते काली सहस्रपरिवत्सरान् ।
वाध्रीनसविहङ्गेन दत्तेन विधिना प्रिये ॥१८५२॥
अब्दं द्वादशसाहस्रं तुष्यते जगदम्बिका ।
चौराततायिरूपेण नारेण बलिना तथा ॥१८५३॥
त्रीणि लक्षाणि वर्षाणां प्रीयते गुह्यकालिका ।
एते ते कथिता देवि बलयस्तृप्तिहेतवः ॥१८५४॥
कांश्चिन्निषिद्धान् वक्ष्यामि विहितेषु बलिष्वपि ।
ग्राम्याणामथ वन्यानां पशूनां पक्षिणां तथा ॥१८५५॥
स्त्रियं नैव प्रयुञ्जीत बलिकर्मणि साधकः ।
ज्ञानपूर्वं बलिं दत्त्वा नरकं प्रतिपद्यते ॥१८५६॥
अज्ञानेन वितीर्यापि किञ्चित्पापं समश्नुते ।
अत्रिमाससमुत्पन्नं पशुं न विनियोजयेत् ॥१८५७॥
न्यूनं तदर्द्धाच्च खगं जातु देव्यै समर्पयेत् ।
भग्नशृङ्गं भग्नदन्तंश्छिन्नलाङ्गूलमेव च ॥१८५८॥
काणं व्यङ्गं रोगिणं च शृङ्गाहतनरं तथा ।
दुष्टं गलितरोमणं क्षीरयुञ्च गलद्विशम् ॥१८५९॥

पशुं न दद्यादीदृक्षं तथा चैव विहायसम् ।
विण्भूत्रोटीं छिन्नपक्षं रुग्णमाहारवर्जितम् ॥१८६०॥
अनुड्डीनं तथाकाशे मातुरङ्के परिस्थितम् ।
विहितावप्यविज्ञातौ न दद्यात् पशुपक्षिणौ ॥१८६१॥
यस्य यस्य निषिद्धो यः स इदानीं निरूप्यते ।
नरकेशरिणं व्याघ्रं चाषं खञ्जनमेव च ॥१८६२॥
स्वकीयरुधिरं मद्यं न दद्यात् ब्राह्मणः क्वचित् ।
तौ द्वौ खगौ तथा सिंहं द्वीपिनं मानुषं तथा ॥१८६३॥
दत्वा रोगी च हीनायुर्भूत्वा नरकमश्नुते ।
आत्महत्यामवाप्नोति दत्वा स्वरुधिरं द्विजः ॥१८६४॥
दत्वा देव्यै द्विजो मद्यं ब्राह्मण्याद्विच्युतो भवेत् ।
चाण्डालत्वमवाप्नोति सर्वकर्मविवर्जितः ॥१८६५॥
न कृष्णसारं वितरेद्बर्हिणं तु नराधिपः ।
कृष्णसारं ददद्देव्यै द्वितीयो वर्ण ईश्वरि ॥१८६६॥
ब्रह्मघ्नत्वमवाप्नोति हीनायुरपि जायते ।
न चार्याः शूकरं दद्युः न वर्तककुलीपकौ ॥१८६७॥
ददतां तत्क्षणादेव महापातकिता भवेत् ।
वर्णावरो नो वितरेद्गोधिकाशुकखड्गिनः ॥१८६८॥
मोहाद् हठाद्वा ददतां सद्यो ब्रह्मघ्नता भवेत् ।
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी गृहस्थो वा दयापरः ॥१८६९॥

सात्त्विको[1]व्रतनिष्ठश्च यश्च हिंसाविवर्जितः ।
ते न दद्युः पशुबलिमनुकल्पं चरन्त्यपि ॥१८७०॥
तत्तत्पशुप्रदानानां फलावाप्त्यै वरानने ।
घृतगोधूमैक्षवाद्यैः फाणितैरन्नजैस्तथा ॥१८७१॥
कृत्वा तं तं पशुं दद्यात् [दद्युस्] तत्तत्फलमवाप्नुयुः ।
कूष्माण्डपनसालाबूकर्कटीबिल्वदाड़िमाः ॥१८७२॥
द्राक्षाखर्जूरलकुचरसालामलजम्भलाः ।
नारिकेलेक्षुदण्डाश्च मोचाम्रातकतीर्करा: ॥१८७३॥
बीजपूरा रांगरङ्गा[श्च नारङ्गाः ?]तालानां च फलान्यपि ।
बलितुल्यानि चैतानि छागतुल्यानि तृप्तिषु ॥१८७४॥
अथ छेदविधिं वक्ष्ये शस्त्रास्त्राणि च तत्कृते ।
बलिः पूर्वमुखः स्थाप्यः स्वयं चैवोत्तरामुखः ॥१८७५॥
कृतस्नानो धौतवासा आचान्तोऽकृतभोजनः ।
उत्थाय मनसा ध्यायन् देवीं तद्गतमानसः ॥१८७६॥
असिना वाथ कर्तर्याऽप्यसिधेन्वा कदाचन ।
छिन्द्यात् प्रहारेणैकेन मुक्तं मृतमथापि वा ॥१८७७॥
दात्रैः खनित्रैः कुद्दालैः क्रकचैश्च ससंकुलैः ।
हननं यन्मध्यमं त दागमज्ञैरुदीरितम् ॥१८७८॥

१—ब्रह्मनिष्ठश्च ङ ।

नाराचैरथवा भल्लैः क्षुरप्रैश्च क्षुरैस्तथा ।
गदाभिः पट्टिशैः प्रासैः भुशुण्डीभिश्च पर्शुभिः ॥१८७९॥

अधमं छेदनं प्रोक्तं किञ्चिद्[1]वाधावहं तथा ।
शलाकाभिस्तथा वाणैः शक्तिभिर्भिन्दिपालकैः ॥१८८०॥

न कदाचित् पशुं हन्यात् पलायनपरं न च ।
अन्यायेन पशोर्घाते कृते त्वज्ञानशालिभिः ॥१८८१॥

निरयो गम्यतेऽत्यर्थं किं न गृहणात्युमावलिम् ।
मन्त्रोत्सृष्टं पशुं यस्तु हन्याद्धस्तेन मूढधीः ॥१८८२॥

विहङ्गानथवा देवि स तद्धत्यामवान्पुयात् ।
बहूनां पशुसंघानामथवापि विहायसाम् ॥१८८३॥

क्रमेण तेनैव भवेत् प्रोक्षणं मन्त्रपूर्वकम् ।
क्रमेण तेनैव पुरश्छेदयेत् पशुपक्षिणी ॥१८८४॥

व्यत्यये तु कृते देवि महान् दोषः प्रजायते ।
सहस्रायुतलक्षाणां बलीनां सम्भवे सति ॥१८८५॥

द्वौ त्रीन् पञ्च तथाष्टौ वा दश वा द्वादशापि वा ।
एभ्योऽधिकन्नैव कुर्यादेकीभावतया स्थितान् ॥१८८६॥

प्राच्याशाभिमुखान् कृत्वा युगपन्मन्त्रमुच्चरन् ।
तन्त्रेणैव बलीन् सर्वान् प्रोक्षयेद् देशिकोत्तमः ॥१८८७॥

१—दोषावहं ङ ।

छेदका अपि भूयांसः कर्तव्या कमलानने
हरिद्वीप्यजकोरभ्रलुलापाकाशगामिनः ॥१८८८॥
दद्यादेतान् वामभागे पानकानि च यानि हि ।
मत्स्यान् ग्राहांच्छशान् खड्गान् कमचा[ठा]न्
कोलगोधिकौ ॥१८८९॥
यावतो मृगभेदांश्च दद्यात् सम्मुख एव हि ।
ये न स्वरुधिरं दद्युस्ते चापि पुर एव हि ॥१८९०॥
नैवेद्यं पुरतो दद्याद्दक्षिणे वा न पृष्ठतः ।
एष एव विधिर्दीपे धूपो वामेऽथवा पुरः ॥१८९१॥
पात्रातिरिक्तां मदिरां पृष्ठभागे निवेदयेत् ।
नारं शिरोऽसृगपि च दक्षभागे निवेदयेत् ॥१८९२॥
[पशुविहङ्गमादेरधिष्ठातृदेवताविवरणम्]
पशूनां च विहङ्गानामन्येषामपि वस्तुनाम् ।
ब्रवीमि देवताः सर्वाः क्रमेणोत्सर्गकर्मणि ॥१८९३॥
प्राजपत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः ।
तथा चैकशफाः सर्वे कथिताः यमदेवताः ॥१८९४॥
महिषश्च ततो याम्य उष्ट्रो वै नैर्ऋतो मतः ।
गोवृषौ रुद्रदैवत्यौ छाग आग्नेय उच्यते ॥१८९५॥
मेषस्तु वारुणो ज्ञेयो वराहो वैष्णवो मतः ।
गौरीदेवौ व्याघ्रसिंहौ गण्डको ब्रह्मदैवतः ॥१८९६॥
यावन्तो मृगभेदाः स्युः कथिता वायुदेवताः ।
यावन्तः पक्षिणः सर्वे वायव्याः परिकीर्तिताः ॥१८९७॥

प्राजापत्यास्तथा मत्स्याः कच्छपाः साध्यदैवताः ।
गोधा वरुणदैवत्याः ग्राहा अपि च तादृशाः ॥१८९८॥
तथा च बभ्रुशरभावादित्येशानदैवतौ ।
कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्या नरास्तथा ॥१८९९॥
अभयं शिवदैवत्यं धरित्री विष्णुदेवता ।
तथा समुद्रदैवत्यं रत्नमुक्ताफलादिकम् ॥१९००॥
जलाशयास्तथा सर्वे वारिधानी कमण्डलुः ।
प्रपा कुम्भश्च करकं ज्ञेयं वरुणदैवतम् ॥१९०१॥
सुवर्णमग्निदैवत्यं लौहं भैरवदैवतम् ।
रङ्गं नासत्यदैवत्यं शीशकं वायुदैवतम् ॥१९०२॥
ताम्रं च सूर्यदैवत्यं पित्तलं कुजदैवतम् ।
रजतं चन्द्रदैवत्यं खर्परं पितृदैवतम् ॥१९०३॥
गुडं कुवेरदैवत्यं शर्करा मित्रदैवता ।
जाङ्गलं वह्निदैवत्यं मधु स्याद् यक्षदैवतम् ॥१९०४॥
ताम्बूले देवता ज्ञेया शक्रो विद्याधरोऽथवा ।
तथा मृत्युञ्जयो देवो घृतेषु परिनिष्ठितः ॥१९०५॥
तैलं तु राहुदैवत्यं कार्पासं केतुदैवतम् ।
क्षीरं च तारादैवत्यं दधि चौषधिदैवतम् ॥१९०६॥
पिष्टं शचीदैवतं च सिन्दूरमपि पार्वति ।
लवणं चाब्धिदैवत्यं जलं वरुणदैवतम् ॥१९०७॥

देवः स्मरश्च गन्धर्वो मधुपर्के च चन्दने ।
पुष्पं च लक्ष्मीदैवत्यं धूपे देवो वनस्पतिः ॥१६०८॥
अप्सरोदैवतं चैव सर्वं मृगमदादिकम् ।
दीपोऽपि वह्निदैवत्यो नेवेद्यं विष्णुदैवतम् ॥१६०६॥
पादुका सोमदैवत्या छत्रं स्यादिन्दुदैवतम् ।
देवता कामधेनुः स्यात् चामरे त्रिदशेश्वरि ॥१६१०॥
व्यजनं वायुदैवत्यं मित्रः सिंहासनस्य च ।
माला च रतिदैवत्या डाकिनी दैवता सुरा ॥१६११॥
मांसं निर्ऋतिदैवत्यं वितानं च खदैवतम् ।
प्राजापत्यानि शस्यानि पक्वान्नानि च सर्वशः ॥१६१२॥
वार्हस्पत्यानि वासांसि वादराणि सितानि च ।
मयूदैवानिरुक्तानि दुर्गा दैवं च पट्टजम् ॥१६१३॥
विद्या ब्रह्मी विनिर्दिष्टा विद्योपकरणानि च ।
सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकाद्यानि पार्वति ॥१६१४॥
पात्राणामपि सर्वेषां विश्वकर्मा तु दैवतम् ।
द्रुमाणां च लतानां च शाकानां हरितैः सह ॥१६१५॥
फलानामपि सर्वेषां देवो ज्ञेयो वनस्पतिः ।
अजिनानि तथा शय्या रथ आसनमेव च ॥१६१६॥
उपानहौ तथा दोला यच्चान्यत् प्राणवर्जितम् ।
उत्तानाङ्गिरो दैवत्यं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१६१७॥

ध्वजो वै धर्मदैवत्यः सीरं पर्जन्यदैवतम् ।
पाषाणादि तथा रत्नं कथितं शक्रदैवतम् ॥१६१८॥

गृह्णन्तु सर्वदैवत्यमनुक्तं यन्मया प्रिये ।
तत्सर्वं रुद्रदैवत्यं ज्ञेयमुत्सर्गकर्मणि ॥१६१९॥

[पात्रविवरणम्]

अथ पात्राणि वक्ष्येऽहं स्थाप्यते यत्र शोणितम् ।
हैमे वा राजते पात्रे ग्राह्यं रक्तं महीभृता ॥१६२०॥

सामन्तैर्मण्डलीकैश्च ताम्रे वा कांस्यरीतययोः ।
दरिद्रगृहिभिश्चापि मार्तिके वाथ दारवे ॥१६२१॥

अथवा पत्रपुटके नैव लौहे कदाचन ।
न रङ्गे सीसके नापि नारिकेलफलत्वचि ॥१६२२॥

कौलानां सर्वपात्रेभ्यः कपालं नारमिष्यते ।
येषां पशूनां पललैर्यावती तृप्तिरीरिता ॥१६२३॥

भगवत्याः प्रिये तृप्ती रुधिरैरपि तावती ।
नित्ये नैमित्तिके वापि कात्यायन्याः प्रपूजने ॥१६२४॥

विना बलिं नैव दद्यादामे पललशोणिते ।
पशोर्वा पक्षिणोर्वापि नरस्यापि विशेषतः ॥१६२५॥

न भूमौ स्थापयेच्छीर्षं न चैव विपरीतकम् ।
शिरः सलोहितं दद्यात् पुर एव न चान्यतः ॥१६२६॥

रुधिरादानकाले तु पात्रे स्वविभवाहृते ।
सैन्धवं स्थापयेत् किञ्चित् फलानामेकमेव च ।।१६२७।।
तद्रक्तं हविरेव स्यात् पुरोडाशं च तच्छिरः ।
नासाग्रीवागण्डपुच्छपललानि निकृत्य हि ।।१६२८।।
पशूनां वदने क्षेप्यं ततः संस्थापयेत् पुरः ।
तथा पक्षतिपत्रं च वीनां त्रोटौ विनिःक्षिपेत् ।।१६२९।।
पशुवच्च नरस्यापि शीर्षे कमललोचने ।
बलीनां मस्तके दद्यात् प्रदीपं धूपवर्तिकाम् ।।१६३०।।
दहनाल्लोमकेशानां यो गन्ध उपतिष्ठते ।
घ्रातितं चण्डिका देवी सन्तुष्टा च प्रजायते ।।१६३१।।
तस्मिन्नेव ह्यवसरे आधिक्यं धूपदीपयोः ।
यथा विभवतो देवि कर्तव्यं भक्तितत्परैः ।।१६३२।।
बल्याधिक्ये तु शीर्षाणां विधेया पंक्तयस्तथा ।
सधूपदीपाः कुसुमाक्षतपुञ्जान्वितास्तथा ।।१६३३।।
दिक्पालमेधो हि भवेदङ्गं विश्वजितः क्रतोः ।
स कर्तव्यो महीपालैश्चतुर्दिग्विजये कृते ।।१६३४।।
ब्रह्महत्यापनोदार्थं बाजिमेधस्तथा क्रतुः ।
तत्र नैमित्तिकत्वेन देव्याः पूजनमाचरेत् ।।१६३५।।
तौ सवौ तु विना नैव प्रदद्याद् गजवाजिनौ ।
तस्मिन् यज्ञे तयोः शीर्षे देया दीपावली तथा ।।१६३६।।

तोरणानि च कार्याणि नानापुष्पस्रजापि च ।
तन्मुण्डोपरि संस्थाप्यं नरमुण्डं वरानने ॥१९३७॥

यन्त्रं लेख्यं तदुपरि गुह्यकाल्या यदीरितम् ।
तस्मिन् संपूजयेद्देवीं महाविभवविस्तरैः ॥१९३८॥

तदर्चायाः फलं वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ।
दिक्पालमेधं हि विना वाजिमेधं विना तथा ॥१९३९॥

नैष प्रयोगः कर्तव्यो न देयौ गजवाजिनौ ।
पशूनां प्रोक्षणं पक्षिप्रोक्षणादधिकं मतम् ॥१९४०॥

अतः सामान्यरूपेण पक्षिणं प्रोक्षयेद्बुधः ।
पशुं विशेषरूपेण क्रव्यरक्ताधिको यतः ॥१९४१॥

पशूनामिह सर्वेषां प्रोक्षणं चैकमेव हि ।
कश्चिद् विशेष उत्सर्ग फलं दैवाद्युदीरणे ॥१९४२॥

उत्सर्गानन्तरं मन्त्रपाठेऽपि च समीरितः ।
स्नानसिन्दूरदानादिप्रोक्षणे न भिदा तथा ॥१९४३॥

यद्यद्यत्राधिकं किञ्चित्तिष्ठत्यमरवदिते ।
तत्तत्क्षणे तत्तत्सर्वं मया वाच्यं विशेषतः ॥१९४४॥

इदानीमेकरूपेण सर्वेषां प्रोक्षणं शृणु ।
देव्या देयविचारस्तु एतावानुपवर्णितः ॥१९४५॥

स्थानपात्राधिकारीष्टशस्त्रकालक्रमोऽपि च ।
पशूनां यत्र बाहुल्यं भवेद् वित्तानुसारतः ॥१९४६॥

तत्रैकं प्रथमं देवि सर्वलक्षणलक्षितम् ।
ऊर्जस्विनं सुन्दरं च बलिनं पशुमुत्सृजेत् ॥१६४७॥

अनन्तरं क्रमेणैव न च तत्र विचारणा ।

[बलिपशुस्नापनमन्त्रः]

चैतन्यपाशरावेभ्यः आपस्ते परिकीर्तयेत् ॥१६४८॥

पुनः पशुत्वमपनयन्तु स्वाहा समुदीरयेत् ।
अमुं मन्त्रं समुच्चार्य जलेन स्नापयेत् पशुम् ॥१६४६॥

[बलिपशोः माल्यार्पणमन्त्रः]

ततो माल्यं प्रसूनं वा करेणादाय लोहितम् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण प्रदद्यात्पशुमस्तके ॥१६५०॥

प्रणवो योगिनी कूर्चगरुडौ तदनन्तरम् ।
गन्धर्वास्ते समुच्चार्य गन्धर्वत्वं दिशस्तु फट् ॥१६५१॥

शिरोऽष्टादशवर्णात्मा मनुरेष उदाहृतः ।

[बलिपशोः सिन्दूरार्पणमन्त्रः]

पुनर्गृहीत्वा सिन्दूरं मन्त्रमन्यमुदीरयन् ॥१६५२॥

शृङ्गयोरपि तन्मध्यं भूषयेद्देशिकोत्तमः ।
सारस्वतं तथा पाशं कामलं बीजमन्वतः ॥१६५३॥

इमं लोकं जहि परं लोकं तदनु कीर्तयेत् ।
प्रजापतिस्ते कल्पयति पशो तं प्रविशापि च ॥१६५४॥

मा क्रुधस्तर्जनो चास्ते मनुः सिन्दूरदानकृत् ।

[बलिपशोः सामान्यार्घाभिषेचनम्]

पूजाकाले स्थापितं यत् सामान्यार्घं वरानने ॥१९५५॥

तत्स्थितेनोदकेनैव वक्ष्यमाणान् मनून् गृणन् ।
शनैः शनैरेव सिञ्चेत् पशूनां मस्तकं प्रिये ॥१९५६॥

मन्त्रास्तेऽष्टौ विनिर्दिष्टा अभिषेचनकर्मणि ।
तान्युद्धरामि देवेशि सामान्याच्च विशेषतः ॥१९५७॥

पञ्च बीजानि पुरतः स्थिराणि प्रतिमन्वपि ।
ततोऽनु च्छन्दसां नाम भिन्नभिन्नमुदीरितम् ॥१९५८॥

छन्दः पदैश्च तेषाँ च विग्रहष्टान्त ईरितः ।
सर्वत्रेदं निश्चलं च विज्ञेयं जगदीश्वरि ॥१९५९॥

ततः पशुत्वमित्येतत् पदं सर्वत्र च स्थिरम् ।
सुबन्तास्तत्परं शब्दा भिन्ना भिन्नाः ससन्धयः ॥१९६०॥

पञ्चवर्णास्त्रिबीजी च पञ्च वर्णाः पुनस्ततः ।
त्रयोदशार्णाः सर्वत्र एकरूपतया स्थिताः ॥१९६१॥

सन्धिना सहिताः सर्वे सन्धियोग्यस्थलादयः ।
एष सामान्य उद्धारो विशेषमधुना शृणु ॥१९६२॥

तारमैधौ कामकूचौ नृहरिस्तदनन्तरम् ।
एतानि पञ्च बीजानि छन्दसामभिधां शृणु ॥१९६३॥

गायत्र्यनुष्टुबुष्णिक् च बृहती पंक्तिरेव च ।
जगती शक्वरी त्रिष्टुबिति छन्दांसि पार्वति ॥१९६४॥
अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च चन्द्रो यम इतः परम् ।
वरुणो रुद्रदेव्यौ च क्रमेणाष्टौ समीरिताः ॥१९६५॥
ते व्ययोऽहमित्येवं पञ्च वर्णाः प्रकीर्तिताः ।
कुलाङ्गना योगिनी च तारश्चेति त्रिबीज्यपि ॥१९६६॥
प्रतिष्ठ शिर इत्येवं पश्चात् पञ्चाक्षराणि हि ।
इत्येवमष्टभिर्मन्त्रैः प्रोक्षणं पशुमस्तके ॥१९६७॥
विधाय तत्तन्मन्त्रेण तत्तत्स्थानं पशोः स्पृशेत् ।
तन्मन्त्ररीतिमधुना कलय प्रेयसि क्रमात् ॥१९६८॥
आदौ बीजत्रयं स्थाणु ततोऽङ्गानि पृथक् पृथक् ।
स्थिरमेकाक्षरं तस्मात् ततो देवगणाः पृथक् ॥१९६९॥
नव वर्णाः पुनर्देवि सनातनतया स्थिताः ।
इत्येष गौण उद्धारः साम्प्रतं मुख्य उच्यते ॥१९७०॥
प्रणवो भौवनेशी च योगिनी तदनन्तरम् ।
बीजत्रयमिदं देवि सर्वेषामादिमं मतम् ॥१९७१॥
शिरो ग्रीवा च पृष्ठं च जंघा पादस्तथैव च ।
वृषणो जठरश्चापि हृदयं चेत्यनुक्रमात् ॥१९७२॥
कथनीयं ततस्तेऽर्णं सन्धियुक्तमुदीरयेत् ।
चामुण्डा योगिनी चापि भैरवी डाकिनी तथा ॥१९७३॥

पञ्चमो वटुको ज्ञेयो विनायक इतः परम् ।
तत मातृगणः काली क्रमशः प्रतिपादिताः ॥१६७४॥
भगस्तं शोधयाम्युक्त्वा शिरः शेषे नियोजयेत् ।
इत्येवमष्टौ कथिता मनवो भगकल्पने ॥१६७५॥
वक्ष्यमाणैः पुनः मन्त्रैः पशुं कुसुमवारिभिः ।
अभिषिञ्चेत् वपुस्तत्तत्स्थानपूर्वकमीश्वरि ॥१६७६॥
तन्मन्त्रोद्धारमधुना प्रवदामि शुचिस्मिते ।
स्थिराणि त्रीणि बीजानि प्रथमं कथितानि ते ॥१६७७॥
भिन्नभिन्नानि नामानि ततोऽनन्तरमेव हि ।
एको वर्णः पूर्ववच्च स एव तदनन्तरम् ॥१६७८॥
पृथक् पृथक् ततो नाम ङ्यन्तं स्वस्वस्वरूपि हि ।
एकं क्रियापदं पश्चात् स्वस्वकर्तृपदक्रमात् ॥१६७९॥
एकद्वित्रबहुत्वे च वर्तते जगदीश्वरि ।
पुनर्वर्णाः पञ्च शेषे गौणोद्धृतिरियं मता ॥१६८०॥
मुख्योद्धारं शृणिवदानीं येन व्यक्तीभविष्यति ।
चैतन्यकामडाकिन्यो बीजत्रयमिदं स्थितम् ॥१६८१॥
वाक्पादास्ततपरं पायुरुपस्थश्चक्षुषी ततः ।
कर्णौ सर्वाङ्गानि ततो नमः शेषे निगद्यते ॥१६८२॥
सरस्वती च पृथिवी मित्रश्च जलमेव च ।
तेजो नमो दिशः काली लीयतां च क्रियापदम् ॥१६८३॥

हृदन्तशीर्षाण्यन्ते च मनवोऽष्टौ स्फुटा मताः ।
पाद्यार्घाचमनीमाद्यैर्गन्धपुष्पैर्बलिं ततः ॥१६८४॥
पूजयेद्देवताबुद्धया प्रणमेन्मनसा तथा ।
पुष्पाञ्जलित्रयेणैव मूलमन्त्रमुदीरयेत् ॥१६८५॥
भक्त्या देवीं समभ्यर्च्य श्लोकान् बद्धाञ्जलिः पठेत् ।
अग्निर्वायू रविश्चन्द्रो यमो वरुण एव च ॥१६८६॥
आसन् पूर्वमिमे सर्वे सर्गादौ पशवः सुराः ।
ददौ देव्यै भक्तिभावाद्बलित्वेन प्रजापतिः ॥१६८७॥
प्रापुर्देवत्वमखिलाः पशवो बलिरूपिणः ।
ददामि कालिकायै त्वां बलित्वेन पशोऽधुना ॥१६८८॥
दैवरूपश्रिया युक्तस्त्वमप्याशु भविष्यसि ।
चण्डिकाबलिरूपस्त्वं देवत्वं प्राप्य हे पशो ॥१६८९॥
विपत्तिं नाशय क्षिप्रं सिद्धिं मह्यं प्रयच्छ च ।
चत्वार एते मन्त्रास्तु साधारणतयेरिताः ॥१६९०॥
यावन्मात्रं पशोर्दाने न विशेषतया प्रिये ।
तत्तत्पशुविशेषेण भिन्नो भिन्नो मनुः प्रिये ॥१६९१॥
केशरिद्विपदाने तु मनुरन्यो निगद्यते ।
तव रूपं समास्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१६९२॥
पुरा कृतयुगे दैत्यो हिरण्याक्षो निपातितः ।
त्वत्तो नान्यो बली कश्चित्पशुयोनौ महीतले ॥१६९३॥

अतस्त्वामर्पयाम्यद्य चण्डिकायै मृगाधिप ।
ममापदः समाहृत्य दत्वा राज्यमकण्टकम् ॥१९९४॥
महदायुः समाधाय मयि लक्ष्मीश्च निश्चलाम् ।
पशुदेहमिमं त्यक्त्वा भूत्वा विष्णुसमो बले ॥१९९५॥
चण्डिकावाहनं भूयास्तुभ्यं केशरिणे नमः ।
अन्यो मनुः सुरेशानि कृष्णसारे प्रकीर्तितः ॥१९९६॥
देवयज्ञक्रियारूप द्विजतेजोविवर्धन ।
सितकृष्णविमिश्राङ्ग देशपावित्र्यकारक ॥१९९७॥
कृष्णसार विशालाक्ष ब्रह्मचर्यप्रदत्व वा ।
मयि धेहि श्रियं प्रज्ञां ब्रह्मरूपाय ते नमः ॥१९९८॥
ब्रवीमि सारभं मन्त्रं जायते येन सद्गतिः ।
अष्टपाद महामूर्ते महादंष्ट्र भयंकर ॥१९९९॥
रूपं तव समास्थाय महारुद्रेण वै पुरा ।
वराहरूपधृग्विष्णुस्तथा नृहरिरूपधृक् ॥२०००॥
सगणः सानुबन्धश्च समुद्रान्तर्निपातितः ।
तादृशं त्वां चण्डिकायै बलित्वेन ददाम्यहम् ॥२००१॥
मम कल्याणकृद् द[भ]त्वा प्रविशाशु महेश्वरम् ।
दिक्पालमेधे वा वाजिमेधे यत्र सुरेश्वरि ॥२००२॥
दीयते हस्तितुरगौ तत्र भिन्नो मनुर्मतः ।
मतङ्गज महाकाय महाबलपराक्रम ॥२००३॥

महाजव श्यामकर्ण हयराज बलाधिक ।
युवां सग्रामजयदौ लक्ष्मीभवनरूपितौ [णौ ?] ॥२००४॥
राजेति नाम दातारौ बहुकल्याणकारकौ ।
समस्तविघ्नहर्तारौ शत्रुसंहारकारकौ ॥२००५॥
बलित्वेन प्रयच्छामि भगवत्यै युवामहम् ।
नाशयित्वा विपत्तीर्मे दत्वा भोगानभीप्सितान् ॥२००६॥
देव्याः पारिषदौ भूत्वा मोदेतां कल्पपञ्चकम् ।
खड्गमन्त्रं समाख्यास्ये गण्डको येन दीयते ॥२००७॥
द्विपदेहाकृते खड्गशस्त्राभेद्यकलेवर ।
तृप्ता भवेयुः पितरस्त्वन्मांसेन सुरा अपि ॥२००८॥
न च त्वत्तोऽधिकः कश्चित् पवित्रः पृथिवीतले ।
त्वत्करोटिजपात्राणि शस्तानि श्राद्धकर्मणि ॥२००९॥
मया देव्यै बलित्वेन त्वमद्य विनिवेदितः ।
मम विघ्नान् समुत्सार्य सद्यो देवीगणो भव ॥२०१०॥
अथान्येषां यावदेकपशूनां मनुरुच्यते ।
विना वत्सं कासरं च देवि त्वं च निशामय ॥२०११॥
विधात्रा विहिता यूयं बलित्वेन दिवौकसाम् ।
तस्मादद्य प्रयच्छामि शिवायै भवतो बलीन् ॥२०१२॥
स्वकर्मफलपाकेन योनिमेतामुपागतः ।
पुनः प्राप्स्यथ सैषात् स्वात् कष्टात् कष्टतरामितः ॥२०१३॥

देवीप्रीतिं समुत्पाद्य मम चाभीप्सितं फलम् ।
गच्छध्वं दुर्लभांल्लोकान् सर्वैरपि सुरासुरैः ॥२०१४॥

भविष्यथ पुनर्नैव तिर्यग्योनौ कदाचन ।
मन्त्रपूतास्तनुं त्यक्त्वा प्रविशध्वं सुरालयम् ॥२०१५॥

मृगमत्स्यखगादीनामन्येषामपि जन्मिनाम् ।
एते मन्त्राः परिज्ञेयाः ज्ञाताङ्गो तस्य चैव हि ॥२०१६॥

छागावयोरथो वच्मि सामान्यत्वेन सिद्धयोः ।
ज्योतिष्टोमादिको यज्ञस्त्वयि सर्वः प्रतिष्ठितः ॥२०१७॥

अग्नेस्त्वं यानरूपोऽसि पवित्रः सर्वकर्मसु ।
छाग त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ॥२०१८॥

प्रणमामि ततो देवरूपिणं बलिरूपिणम् ।
कालिका प्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनः ॥२०१९॥

देवीनां[1] बलिरूपाय छाग तुभ्यं नमो नमः ।
यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥२०२०॥

अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ।
इमं देहं परित्यज्य भूत्वा देववपुर्द्धरः ॥२०२१॥

मोदस्व प्रमथैः सार्द्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
विशेषः कश्चिदधिको महिषे तं ब्रुवेऽधुना ॥२०२२॥

१—देवानां ख ग ङ ।

तदङ्गे देवताः सर्वाः पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ।
प्रणवादिनमोऽन्तैश्च मध्ये ङेऽन्तैः पदैस्तथा ॥२०२३॥

स्थानानि देवताश्चापि क्रमेण कथयामि ते ।
ब्रह्मरन्ध्रे च नासायां कर्णयोः रसने तथा ॥२०२४॥

नेत्रयोर्वदने चैव ललाटे तदनन्तरम् ।
दक्षगण्डे वामगण्डे ग्रीवायां केश एव च ॥२०२५॥

दक्षभ्रुवि वामभ्रुवि तथा चैव वरानने ।
ओष्ठेऽधरे च स्कन्धे च हृदये पृष्ठ एव च ॥२०२६॥

जठरे चरणे पुच्छे सर्वस्मिन् देह एव च ।
ब्रह्मा मेदिन्यथाकाशौ सर्वतोमुख एव च ॥२०२७॥

ज्योतींषि विष्णुश्चन्द्रश्च शक्रो वह्निर्महेश्वरः ।
निर्ऋतिर्मित्रवरुणौ तथा लक्ष्मीः सरस्वती ॥२०२८॥

धनेश्वरः सर्पराज आदित्यः साध्य एव च ।
गन्धर्वश्च तथा सिद्धाश्चामुण्डा सर्वशेषगा ॥२०२९॥

अनेनैव प्रकारेण नरस्यापि प्रपूजयेत् ।
क्रमसिद्धं पूर्वगतमतोऽधिकमिहार्हणम् ॥२०३०॥

अथोभयोः शेषगतान् मन्त्रानाकलय प्रिये ।
यमस्य वाहनत्वेन ख्यातस्त्वमसि कासर ॥२०३१॥

वसतः शृङ्गयोरग्रे मृत्युकालौ सदा तव ।
भवानेव परिद्वेष्टि जवनांस्तुरगानपि ॥२०३२॥

तव रूपं समास्थाय रम्भासुरसुतः पुरा ।
भगवत्या समं युद्धं कृतवान् दर्पमोहितः ॥२०३३॥

देव्या त्वं निहतश्चासि तथाक्रान्तं शिरस्तव ।
वहस्यतश्चण्डिकां त्वं शिरसा भङ्गुरेण च ॥२०३४॥

त्वत्तो नान्यो बलिः कश्चिद् देव्याः प्रीतिप्रदायकः ।
अतो ददामि काल्यै त्वां भक्तियुक्तेन चेतसा ॥२०३५॥

मयि कल्याणमाधाय गच्छ कासर सद्गतिम् ।
मनुष्यबलिदाने तु विशेषं किञ्चिदीरये ॥२०३६॥

पूर्वेद्युरकृताहारं संपरित्यक्तमैथुनम् ।
स्नातं रक्ताम्बरधरं नरं मुण्डितमस्तकम् ॥२०३७॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गं कृत्तश्मश्रुनखं तथा ।
अजाताश्रुकमुद्रिक्तं न दीनं नाप्यधोमुखम् ॥२०३८॥

न वाडवं न चाण्डालं न क्लीवं पतितं न च ।
चतुर्विधेभ्योऽपि शिवे स्वयमागतमुत्तमम् ॥२०३९॥

प्रोक्षयेत् पशुसामान्यरूपेण प्रथमं ततः ।
महिषोक्तप्रकारेण पश्चादेतान् मनून् जपेत् ॥२०४०॥

सर्वेषु प्राणिषु श्रेष्ठस्त्वं मनुष्य इति स्थितः ।
बलिश्रेष्ठ महाभाग देवगर्भश्रियावृतः ॥२०४१॥

रक्ष मां सर्वभीतिभ्यः सिद्धिं देहि तथोत्तमाम् ।
राज्यं देहि यशो देहि देहि चानुत्तमां गतिम् ॥२०४२॥

आरोग्यं दीर्घमायुश्च प्रजावृद्धिं रणे जयम् ।
कल्याणं विपुलान् भोगान् दारानपि हृदीप्सितान् ॥२०४३॥
कात्यायन्यां दृढां भक्तिं लक्ष्मीमप्यधिकां स्थिराम् ।
दत्वा मह्यं परित्यज्य शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥२०४४॥
देवीलोकं व्रज क्षिप्रं सज्ञातिसुतबान्धवः ।
महादानैर्महायज्ञैस्तपोभिरतिदुष्करैः ॥२०४५॥
यत्स्थानं नाप्यते लोकैस्तत् त्वं गच्छ नरर्षभ ।
अङ्गीकृतो महाकाल्या मांसशोणितलिप्सया ॥ २०४६॥
देवीलोकं सुदुष्प्रापं प्राप्नुहि त्वं द्रुतं गतः ।
तत्र गत्वा शिवं ध्याहि मामकीनं जगत्पते ॥२०४७॥
देवीलोकगतिः काम्यो मत्प्रसादात्तवेदृशः ।
त्वत्प्रसादादहं शत्रून् जयेयं रणमूर्द्धनि ॥२०४८॥
श्लोकानष्टाविमान् देवि पठेन्नरबलिक्षणे ।
तत्तत्पशुबलिच्छेदे तांस्तान् मन्त्रानुदीरयेत् ॥२०४९॥
नान्यजातिपशव्यांस्तु मनूनन्यत्र योजयेत् ।
उक्ताः पशुशिरःपुष्पसमर्पणकराः क्रमात् ॥२०५०॥

[संकल्पविधिः]

कलयातः परं देवि संकल्पकरणे विधिम् ।
तदशुद्धतया देवि अशुद्धं सर्वमुच्यते ॥२०५१॥
प्रणवात् तत्सदुच्चार्य मासपक्षतिथीः स्मरेत् ।
संभवे सति राश्यङ्कं ङ्यन्तं भास्करमीरयेत् ॥२०५२॥

सगोत्रं तत्तन्नामापि ङसन्तं तदनन्तरम् ।
यस्य यस्य पशोर्यो यः कालस्तृप्तिकृदीरितः ॥२०५३॥
तत्तद्वर्षाद्यवच्छिन्नतत्तद्देव्याख्यया सह ।
प्रीतिकामलया प्रोच्य मूलमन्त्रं प्रकीर्त्य च ॥२०५४॥
ह्रींयोगिनीकूर्चवधूशाकिन्यस्तदनन्तरम् ।
भगवत्यै गुह्यकाल्यै विसन्ध्येष बलिर्नमः ॥२०५५॥
ततस्तत्तत् पशोराख्यामिदमं तस्य दैवतम् ।
कृत्वामन्तं त्रयमपि ङेन्तां देव्यभिधामपि ॥२०५६॥
घातयिष्ये समुच्चार्य सुवन्तात्प्राक् त्रिपद्यपि ।
पशोः कर्णे चापि पशुगायत्रीं तदनूच्चरेत् ॥२०५७॥
तत्परं तन्मनुं चापि समुद्धारं शृणु द्वयोः ।
योगिनीबीजतो ङेऽन्तं बलिरूपं तु विद्महे ॥२०५८॥
देवीप्रिये पूर्ववच्च धीमहीति ततः परम् ।
तत्त्वं पशुरिति प्रोच्य वदेच्चाथ प्रचोदयात् ॥२०५९॥
द्वितीयस्तारचैतन्यमायारुट् कामशाकिनी ।
डाकिनी चापि फेत्कारी बीजान्यष्टाविमानि हि ॥२०६०॥
हिलिद्वयं किलियुगं द्वयं धक कह द्वयम् ।
बहुरूपधरा ङेन्ता योगिनीस्त्रीनृकेशरी ॥२०६१॥
इमं पशुं च स्वपदं दर्शय द्वितयं तथा ।
मुक्तिं नियोजय नमः स्वाहा च चरमे वदेत् ॥२०६२॥

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तत आवाहयेदसौ ।
कालीं कृतान्तसदृशीं येन च्छेद्याद् बलिः प्रिये ।।२०६३।।
माया कूर्चः शाकिनी च एह्येहि भगवत्यपि ।
चामुण्डे चाथ सान्निध्यं कुरुयुग्ममधिष्ठिता ।।२०६४।।
भवद्वयं सन्धिहीनं फट्युग्मं हृदयं शिरः ।
खड्गस्य मूलमन्त्रेण खड्गं समभिपूजयेत् ।।२०६५।।
तारपाशत्रपाकूर्चशाकिनीभिः स उच्यते ।
ध्यायेत् कुसुममादाय खड्गमादौ वरानने ।।२०६६।।
कृष्णं पिनाकपाणिं च कालरात्रिस्वरूपिणम् ।
उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।।२०६७।।
रक्ताम्बरधरं चैव पाशहस्तं कुटुम्बिनम् ।
पिबमानं च रुधिरं भुञ्जानं क्रव्यसंहतिम् ।।२०६८।।
क्षोभयन्तं जगत्सर्वं कम्पनादिप्रचालनैः ।
वेष्टितं मृत्युकालाभ्यां वामदक्षिणभागतः ।।२०६९।।
पूर्वोदितेन मन्त्रेण प्रत्येकं कीर्तितेन हि ।
गन्धपुष्पाक्षतैः धूपदीपैः पाद्यादिभिर्यजेत् ।।२०७०।।
ततो बद्धाञ्जलिः मन्त्रं पठेत् खड्गं निरीक्ष्य वै ।
रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधकः ।।२०७१।।
भुङ्क्ष्वैतस्य पशो रक्तं क्रव्यसंहतिमेव च ।
छिन्धीममिव मे शत्रुं मङ्गलानि प्रयच्छ च ।।२०७२।।

दैत्यदानवरक्षोसृङ्मदोन्मत्त नमोऽस्तु ते ।
एतेन खड्गमामन्त्र्य तत्त्वामाष्टकमुच्चरेत् ॥२०७३॥
गृह्णीयान्निशितं खड्गं येन सद्यो भवेद्वधः ।
असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ॥२०७४॥
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ।
निकर्तने तु मन्त्रं यं पठेत्तं कलयाधुना ॥२०७५॥
वेदादिलज्जाशाकिन्यो डाकिनीकूर्चमेव च ।
कालिद्वयं च विकटदंष्ट्रेतो डाकिनीद्वयम् ॥२०७६॥
फेत्कारिण्यनु युग्मं स्यात् खादय च्छेदय द्वयम् ।
सर्वदुष्टान् समाभाष्य मारय द्वयमेव च ॥२०७७॥
पशुं खड्गेन युगलं छिन्धि युग्मं किलीत्यपि ।
चिकि द्वयं पिब युगं रुधिरं तदनन्तरम् ॥२०७८॥
भूतबीजद्वयं प्रोच्य किरिद्वितयमेव च ।
कालिकायै हृदस्त्रे च सर्वपश्चिमगं शिरः ॥२०७९॥
छिन्ना[त्वा]नेन पशुं सद्यस्तदीयं रुधिरं प्रिये ।
पूर्वोदितेषु पात्रेषु गृह्णीयादुष्णफेनिलम् ॥२०८०॥
शिरश्च संमुखे स्थाप्यं सदीपं पात्रवर्जितम् ।
स चापि हविरक्तः स्यादथवा तिलजोक्षितः ॥२०८१॥
सार्षपं न प्रदातव्यं न चान्यफलसंभवम् ।
मूर्धाभिषिक्तो हविषा तैलेन बहुसिद्धिभाक् ॥२०८२॥

अन्यबीजोद्भवैः रोगं शोकं मृत्युं च बिन्दति ।
यथा लोमानि दह्यन्ते यत्नात् कार्यं तथा नरैः ॥२०८३॥
ततः पात्रं पुरः कृत्वा देव्याः सपशुशोणितम् ।
अष्टधा विभजेद् विष्वग् मध्ये चैकं कुशादिभिः ॥२०८४॥
दत्वा किञ्चिद् घृतं तत्र कुर्यात्तर्पणमुद्रया ।
तर्पणं भागभाजाँ वै देवीनां द्विर्द्विरेव च ॥२०८५॥
आद्यन्तिमौ तारहृदौं मध्य आदिमनोरपि ।
तत्तन्नामामन्तमपि तर्पयामीति संयुतम् ॥२०८६॥
द्वितीयरूपं ङे ऽन्तं च तद्द्वितीयपदान्वितम् ।
मध्ये नित्योदितश्रयाख्यपात्रवत् पीठगा क्रिया ॥२०८७॥
पूर्वस्यां दिशि चामुण्डा दक्षिणस्यां तु योगिनी ।
डाकिन्युक्त्वा पश्चिमायामुत्तरस्यां तु भैरवी ॥२०८८॥
विदारिकाग्नेयकोणे नैर्ऋते पापराक्षसी ।
पूतना चापि वायव्ये ऐशाने कालिका तथा ॥२०८९॥
ततः स्तुतिं प्रकुर्वीत बद्धाञ्जलिपुटोऽग्रतः ।
जय देवि जगन्मातर्जय पापौघहारिणि ॥२०९०॥
जयजन्मजराव्याधितृष्णादावानलाकृते ।
जय सर्वविपत्तिघ्ने जय त्रिदशबन्दिते ॥२०९१॥
जय नित्यानन्दरूपे जय कल्याणदायिनि ।
जय भूतेशगृहिणि जयसिद्धिप्रदायिनि ॥२०९२॥

जय शत्रुक्षयकरे जय रोगप्रणाशिनि ।
जय भीमे जय घोरे जय संकटतारिणि ॥२०६३॥
जयामृतरसास्वादतुन्दिलानन्दविग्रहे ।
त्रिनेत्रे विकरालास्ये मुण्डमालाविभूषिते ॥२०६४॥
सर्वासुरक्षयकरि खड्गखट्वाङ्गधारिणि ।
महाघोरे महारावे दैत्यदर्पनिसूदनि ॥२०६५॥
इमं पशुबलिं देवि गृहीत्वा कालरात्रिके ।
प्रीता भव महाचण्डे रक्ष मां शरणागतम् ॥२०६६॥
आयुर्देहि धनं देहि भाग्यं कीर्तिं च देहि मे ।
स्त्रियं देहि सुतान् देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ॥२०६७॥
उग्रचण्डे प्रचण्डासि प्रचण्डकरबालिनि ।
महाचण्डोग्रदोर्दण्डे विश्वेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥२०६८॥
रक्ष मां शरणापन्नं त्वत्पादार्पितमानसम् ।
हर पापं हर क्लेशं हर शोकं हरासुखम् ॥२०६९॥
हर रोग हर क्षोभं हर दैन्यं हरप्रिये ।
स्तुतिमेतां पठित्वैवं दण्डवद् प्रणमेद्भुवि ॥२१००॥
गुह्यकालि जगद्धात्रि सर्वान्तर्यामिनीश्वरि ।
गृहीत्वेमं पशुबलिं यथोक्तफलदा भव ॥२१०१॥
कायेन मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ।
अन्तश्चरसि भूतानां द्रष्ट्री त्वं परमेश्वरि ॥२१०२॥

एवं दत्वा बलिं देव्यै बलिदानविधिर्यया ।
शुभाशुभं स्वं जानीयाद्राज्यस्य च नृपस्य च ॥२१०३॥
भूमौ संस्थापितं छिन्नं नारं शीर्षं हसेद्यदि ।
राज्ञो जयस्तदा ज्ञेयो राज्यलाभस्तथैव च ॥२१०४॥
म्रियतेऽश्रुनिपातेन राष्ट्रभङ्गश्च जायते ।
उत्सर्गं मूत्रमलयोः कुणपः कुरुते यदि ॥२१०५॥
महामारी च दुर्भिक्षं जायतेऽग्निभयं तथा ।
छागादीनां यदि शिरः परिवर्तेत भूतले ॥२१०६॥
हास्यवत् तत्फलं ज्ञेयं खगानामपि चेदृशम् ।
पशोस्तनुश्चेत् चलति चरणान्यूर्द्धगानि चेत् ॥२१०७॥
विपरीतफलं ज्ञेयं नरशीर्षाश्रुपातवत् ।
इत्यादिफलबाहुल्यं **यामलादौ** प्रकीर्तितम् ॥२१०८॥
ग्रन्थगौरवभीत्याहं न तद् वच्मि वरानने ।
स्वगात्रासृक्प्रदानस्य देहे दीपेन्धनस्य च ॥२१०९॥
तथैव पशुशीर्षाणां करयोर्मस्तकेऽपि च ।
स्थापनस्य विधानानि सन्ति भूयांसि पार्वति ।२११०॥
फलान्यमीषां च तथा योगाश्च फलदायिनः ।
कपालडामरे तन्त्रे शाबरे यामले तथा ॥२१११॥
भैरव्यां संहितायां च पृथक् पृथगुदीरिताः ।
निरूपितास्ते न मया ग्रन्थगौरवभीतितः ॥२११२॥

द्विजात्यनुपयोगित्वादाधिक्यात् साहसस्य च ।
तथा च शूद्रकृत्यत्वात् स्मृतौ निन्द्यतया तथा ॥२११३॥
एतस्यानन्तरं यद्यत् कृतं तत्तद् ब्रुवेऽधुना ।
इत्थमुक्तविधानेन दत्वा पशुबलिं बुधः ॥२११४॥
साधकान् साधिकाः शक्तीरन्यानपि च कौलिकान् ।
संस्थाप्य पुरतो देव्याः पात्रग्रहणमाचरेत् ॥२११५॥
सर्वेभ्य एव दात्व्यः स्युः पात्राणां शक्तयः प्रिये ।
स्वयं च देशिकः शक्तिपात्रं शक्त्यै समर्पयेत् ॥२११६॥
वामहस्ततले कृत्वा पात्रं शक्तिसमर्पितम् ।
दक्षेणाच्छाद्य तद्भूमौ स्थापयित्वा विलोकयेत् ॥२११७॥
तन्मध्ये तु सुधादेवीं ध्यायेत् पूर्वोक्तरीतितः ।
आनन्दभैरवेणैव सामरस्यमुपागताम् ॥२११८॥
प्राणसंयमनं कृत्वा षडङ्गन्यासमेव च ।
नमस्कृत्य ततो योनिमुद्रया पात्रमालभेत् ॥२११९॥
शिरः स्वकं वदन्नित्थं त्रिवारमुभयत्र हि ।
तन्मन्त्रस्ताररावह्नीवधूस्मरशिरांसि च ॥२१२०॥
गृहीत्वाथ समाघ्राय दक्षहस्ते निवेश्य तु ।
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां समादाय झषामिषे ॥२१२१॥
त्रिकोणान्तर्लिखेद् बिन्दुं मन्त्रावप्यथ कीर्तयेत् ।
ओं न त्वं सुरा किन्तु सुधा न नरोऽहं सुरः परम् ॥२१२२॥

नेदं पापं किन्तु पुण्यमित्येवं मे विनिश्चयः ।
शुक्रपापविनिर्मुक्ते त्वं देव्यास्वादिता सुरे ॥२१२३॥
गृह्णतस्त्वां तदुच्छिष्टां नैनो मे जायतेऽण्वपि ।
कराभ्यां पात्रमुत्तोल्य तान्त्रिकं मन्त्रमुच्चरन् ॥२१२४॥
तत्पात्रं स्पर्शयेत्तस्य मस्तके साधकोत्तमः ।
तारमैधसुधारावयोगिनीह्लीवधूस्मराः ॥२१२५॥
सुधे देवि समाभाष्य गन्धान् द्विः संहरोच्चरेत् ।
त्रिकारान् नाशय द्वन्द्वं ज्ञानं द्विश्च प्रकाशय ॥२१२६॥
कूर्चास्त्रशिरसामुक्तिः सर्वशेषे प्रकीर्तिता ।
पात्रं पुनर्वामकरे संस्थाप्यावरमव्ययम् ॥२१२७॥
निमील्य चक्षुषो ध्यायेदेतद्रूपेण कालिकाम् ।
ममान्तर्हृदयाम्भोजोपविष्टा सिद्धिदायिनी ॥२१२८॥
स्थापयित्वा पुनर्दक्षवामानामिकया शनैः ।
मूलमन्त्रं पठन् कुर्याल्ललाटे कुलचित्रकम् ॥२१२९॥
स्थापयित्वा करे वामे तत्स्थं क्रव्यं विगृह्य च ।
पूर्वोक्तमन्त्ररीत्यैव जुहुयादाहुतीर्दश ॥२१३०॥
पाययेच्च स्वयं शक्तीः शक्तयः पाययन्ति तम् ।
समवेताः कौलिकाश्च कुर्युरेवं परस्परम् ॥२१३१॥
आपानेन परां प्रीतिं प्राप्नोति जगदम्बिका ।
तस्मात्तदर्चयेद्धीमान् भक्ष्यैरपि चतुर्विधैः ॥२१३२॥

लोलाकटाक्षहसितानीक्षितं किलकिञ्चितान् ।
शक्तयः साधकैः सार्द्धं साधकाश्चापि शक्तिभिः ॥२१३३॥
आपानावसरे कुर्युः प्रीता स्यात्तेन कालिका ।
नैत्यकोऽन्यः क्रमो ज्ञेयोऽस्यान्यस्य च सुरेश्वरि ॥२१३४॥
बलिवैश्वदेवविधिवैकल्पिक इह स्थितः ।
नाङ्गहानिस्त्वकरणे करणे फलभूमता ॥२१३५॥
कापालिकादयः सर्वे शक्त्युच्छिष्टं सुराद्रवम् ।
पिबन्ति ताः स्वकोच्छिष्टं पाययन्ति मदोद्धताः ॥२१३६॥
नैतादृशो विधिर्देवि स्मार्तानामानुकल्पिनाम ।
यस्य यत्पात्रमुदितं तद्गृह्णन्ति ददत्यपि ॥२१३७॥
वेदाविरुद्धं कुर्वन्ति यद्यदागमचोदितम् ।
आगमादेशितमपि जहति श्रुत्यदेशितम् ॥२१३८॥
वेदानादेशितमपि वद्ध्वागमसमीरितम् ।
केवलं कुर्वते शक्तिसंबन्धमनुकल्पवत् ॥२१३९॥
शान्तिपाठादिकं सर्वं पूर्ववत् तदनन्तरम् ।
कर्तव्यं शेषभागोऽपि भैरवायार्प्यते तथा ॥२१४०॥
विशेषार्घगतैस्तोयैरभ्यषिञ्चेत् परस्परम् ।
पूजावशिष्टं स्रग्गन्धताम्बूलकुसुमादिकम् ॥२१४१॥
विभज्य सर्वं गृह्णीयुः साधकाः शक्तयस्तथा ।
ततोऽन्न पाकनिष्पत्तौ जातायां बहुधा प्रिये ॥२१४२॥

च[1]तुर्विधान्नसामग्रीं पुरो देव्याः समाहरेत् ।
एतादृग्रचनोपेतामन्यां संस्थापयेत् पृथक् ॥२१४३॥

शिवावलिविधानार्थं भुक्तशेषां न चाहरेत् ।
ताम्बूलमङ्गसंयुक्तं हिममामोदिवार्यपि ॥२१४४॥

तस्मिन्नपि क्षणे कार्यं बाहुल्यं धूपदोपयोः ।
तदन्नं वारिणाभ्युक्ष्य सामग्री विविधा अपि ॥२१४५॥

अमृतीकृत्य सकलं मुद्रया धेनुसंज्ञया ।
पाणिभ्यां समवच्छाद्य विनिमीलितलोचनः ॥२१४६॥

तिष्ठेत् क्षणं भगवतीं ध्यायन् कुञ्चित्वाङ्मनाः ।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा धूपदीपौ निवेद्य च ॥२१४७॥

चतुर्विधान्नसामग्रीमुत्सृजेत्तदनन्तरम् ।
पूर्वसंस्थापिताघ्यर्भिभः समादायावलोकयन् ॥२१४८॥

वामेन पाणिना स्पृष्ट्वा मूलान् चामत्रमुत्तमम् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तान्त्रिकेण वरानने ॥२१४९॥

तारमैधत्रपाकामवधूकूर्चामृताङ्कुशाः ॥२१५०॥

योगिनीडाकिनीरावप्रणवक्षेत्रपालकाः ।
फेत्कार्यक्षे कलामाली षोडशैवं भवन्ति हि ॥२१५१॥

ततो भगवति प्रोच्य वज्रकापालिनीरयेत् ।
सन्ध्यूनमिदमन्नं च गृहणयुग्ममतः परम् ॥२१५२॥

गृहणापय द्वयं चाथ भुञ्ज खाहि युगं युगम् ।
महाप्रलयकारिण्यनु जगद्ग्रासिनीरयेत् ॥२१५३॥
महाट्टहासिन्यपि च सन्धिहीनं समुच्चरेत् ।
ज्वलदुल्काफेरुमुखि घोररावे ततः परम् ॥२१५४॥
प्रभञ्जनादीनि सप्त बीजानि तदनन्तरम् ।
निर्डाकिनी महारात्रिः सर्वसिद्धीश्वरीत्यपि २१५५
मम शत्रून् मर्दय द्विर्नाशयद्वितयं तथा ।
संहरद्वितयं प्रोच्य सर्वसिद्धिं ददद्वयम् ॥२१५६॥
देहि द्विर्दापय द्विश्च कूर्चानां त्रितयं ततः ।
अस्त्रत्रयं ततोऽङ्गुष्ठतर्जनी सर्वशेषगा ॥२१५७॥
पुनरन्यं मनुं प्रोच्य स्वच्छमामोदिशीतलम् ।
पानीयमुत्सृजेद्देत्रि यथाविभवपात्रगम् ॥२१५८॥
चैतन्यकमलाकामयोगिनी रुड्वधूरुषः ।
नृसिंहामृतसंज्ञे च बीजानि पुरतो नव ॥२१५९॥
चण्डकापालिनी ङेन्ता सन्धिहीनमिदं जलम् ।
पिब स्वद युगं युग्मं फडङ्गुष्ठशिरांसि च ॥२१६०॥
निमील्य लोचने वध्वाः ग्रासमुद्रां करेण हि ।
भोजयेत् कालिकां तत्तद्भावरूपेण देशिकः ॥२१६१॥
तद्वदाचमनीयं च रीतिं सर्वां प्रदर्शयेत् ।
पूर्वोदितेन मन्त्रेण ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥२१६२॥

कालीनिवेदितान्नानि साधकैः सह देशिकः ।
भुञ्जीत पूर्वकथितप्रकारेणैव पार्वति ॥२१६३॥
बलीन् भोजनकालीनान् स्थालीसंस्थापनादिकान् ।
प्राणाहुतिविधानानि नित्यवत् परिकल्पयेत् ॥२१६४॥
मयात्र यद्यन्न प्रोक्तं बाहुल्यभयतः प्रिये ।
तत्सर्वं नैत्यकीनं हि परिग्राह्यमशङ्कया ॥२१६५॥
यावन्न नैशिकी पूजा देव्याः परिसमाप्यते ।
तावत् पशूनां शीर्षाणि स्थापनीयानि दीपवत् ॥२१६६॥
भुक्त्वा देव्युपभुक्तान्नं शिष्टैः कुसुमलेपनैः ।
वासोऽलङ्कारताम्बूलैर्भूषयित्वा कलेवरम् ॥२१६७॥
विहरेद् विहसद्वक्त्रो नानाकौतुकलीलया ।
पुनरस्तं गते सूर्ये व्यतीते सायमेव च ॥२१६८॥
व्यतीतायां च शर्वर्यां स्वल्पायां जगदीश्वरि ।
पुनः प्रक्लृप्तबहुलपूजासंभारसंभृतः ॥२१६९॥
नैवेद्यधूपदीपादीनुपचारान् विधाय च ।
मीनमांससुराकुम्भं पुरतः सन्निवेश्य च ॥२१७०॥
कौलिकान् साधकान् सर्वान् शक्तीः कृत्वा पुरस्तथा ।
प्रारभेत पुनः पूजां नैमित्तिकां निशोद्भवाम् ॥२१७१॥
विना नैमित्तिकीं पूजां चतुर्दश्यष्टमीदिने ।
कर्तव्यैतत्प्रकारीया पूजा काली मुदावहा ॥२१७२॥

बद्धाञ्जभलिरथाचान्तो मन्त्रमेतत् पठेत् पुरः ।
संसारसागरसमुत्तरणप्लवस्य ।
सद्यस्त्रिवर्गफलसंभवलग्नकस्य ॥
नैमित्तिकार्चनविधेः परिपूरणाय ।
मातः करोमि तव पार्वणनक्तमर्चाम् ॥२१७३॥
भूतशुद्धिं ततः कुर्यात् प्राणायामत्रयं तथा ।
अक्षतानि गृहीत्वाथ मन्त्रानेतान् समुच्चरन् ॥२१७४॥
उत्सारयेत् विघ्नकर्तॄन् दिक्षु षट्स्वपि सुन्दरि ।
अपसर्पन्तु वेतालाः गुह्यकाः वामभागगाः ॥२१७५॥
प्रेताः पिशाचाः नश्यन्तु भूताः दक्षिणभागगाः ।
रक्षांसि यक्षा नागाश्च नश्यन्तु पुरतः स्थिताः ॥२१७६॥
असुराः दानवाः दैत्याः पृष्ठस्थाः यान्तु च क्षयम् ।
खेचरा ये महारौद्रा रौद्रकर्मणि योजिताः ॥२१७७॥
जम्भकाः घोणकाः सर्वे क्षयं यान्तूर्ध्वगामिनः ।
ये ब्रह्मराक्षसाः क्रूड़ाः सूर्पकर्णगणोद्भवाः ॥२१७८॥
अधोगताः विनश्यन्तु मन्त्रपूताः क्षताहताः ।
एवं षट्स्वपि काष्ठासु विघ्नानुत्सार्य साधकः ॥२१७९॥
पुनः कृताञ्जलिपुटो मन्त्रानेतान् समीरयेत्

१ सूपकर्णं० ङ ।

देवा देव्यश्च डाकिन्यो योगिन्यो मातरस्तथा ।
सिद्धाः साध्याः क्षेत्रपाला भैरव्यो भैरवास्तथा ॥२१८०॥
चामुण्डा शिवदूत्यश्च द्वारपालाः विनायकाः ।
आदित्याः वसवो रुद्राः दिक्पालाः मरुतस्तथा ॥२१८१॥
सर्वा अप्सरसो याश्च गन्धर्वाः किन्नरा अपि ।
देव्याः पारिषदीभूताः याः काश्चित् देवयोनयः ॥२१८२॥
मण्डलान्यासनानि स्युर्वाहनान्यायुधानि च ।
सर्वे सन्निहिता यत्र पर्वनक्तन्तनार्चने ॥२१८३॥
चतुरोऽमून् मनून् स्मृत्वा प्राणायामं विधाय च ।
ऋष्यादिकं च तदनु कुर्यान्न्यासत्रयं ततः ॥२१८४॥
मातृकां योगरत्नं च वक्त्रन्यासं तथैव च ।
आवश्यकतया कार्यौ द्वौ न्यासौ तदनन्तरम् ॥२१८५॥
तादात्म्याद्वैतनामानौ प्रशस्तौ नैशपूजने ।
शक्तौ पश्चापि देवेशि विधेया देशिकोत्तमैः ॥२१८६॥
अशक्तौ तु परित्याज्यमग्र्यं न्यासत्रयं प्रिये ।
न त्वेतावक्तौ नैशार्चाङ्गहानिकराविमौ ॥२१८७॥

[तादात्म्यन्यासोद्देशः]

एकीभावविधानत्वाच्छिवशक्त्योः परस्परम् ।
तादात्म्यकरणाच्चापि तादात्म्यन्यास उच्यते ॥२१८८॥
कापालिकान् विना नान्ये जानन्त्येनं विपश्चितः ।
डामराब्धेः समुद्धृत्य मयास्यां विनिवेशितः ॥२१८९॥

[तादात्म्यन्यासस्य षडङ्गविधिः]

उद्धारमधुनामुष्य वक्ष्यमाणं निशामय ।
अस्य तादात्म्यसंज्ञस्य न्यासस्य परमेश्वरि ॥२१६०॥
आत्रेय ऋषिरुद्दिष्टः पंक्तिश्छन्द उदीरितम् ।
सदाशिवकुण्डलिन्यौ देवते परिकीर्तिते ॥२१६१॥
कामबीजं तथा बीजं स्त्रीबीजं शक्तिरेव च ।
डाकिनीबीजमुदितं कीलकत्वेन पार्वति ॥२१६२॥
शिवशक्त्योरेकीभावकरणे विनियोगता ।
दण्डत्रपागोंऽशुशुक्लैर्न्यसेदङ्गुष्ठयोर्हृदि ॥२१६३॥
केशरैः काकिनीनेमिच्छन्दत्रिश्वैस्ततः परम् ।
तर्जनीयुग्मयोः शीर्षे न्यसेत् कमललोचने ॥२१६४॥
सनिद्रैर्योगिनी पूर्णा धूमैर्ललितयान्वितैः ।
न्यसेद् द्वयोर्मध्यमयोः शिखायां तदनन्तरम् ॥२१६५॥
विभावधूविराड्बीजैः सफैरवकुमारिकैः ।
न्यसेदनामिकायुग्मे कवचाय ततः परम् ॥२१६६॥
नृसिंहान्तैः पञ्चबीजैः कल्पमुक्तामहाक्रमैः ।
कनिष्ठायुग्मयोर्नेत्रत्रये च परिविन्यसेत् ॥२१६७॥
प्रभञ्जना भूतिनी च प्रचण्डा केकराक्ष्यपि ।
कालरात्रिरमीभिस्तु बीजैः पञ्चभिरीश्वरि ॥२१६८॥
करद्विपृष्ठतलयोरस्त्राय तदनूच्चरेत् ।
अन्ते तत्तन्मन्त्रयुतैः ऋष्यादिविधिरीदृशः ॥२१६९॥

अतः परं निबोध त्वं न्यासोद्धारं शुचिस्मिते ।
आदौ सामान्यरूपेण विशेषेण ततः परम् ॥२२००॥
ज्ञातव्यान्यचलत्वेन पञ्च बीजानि वै पुरः ।
भिन्नभिन्नानि नामानि स्थितानि तदनन्तरम् ॥२२०१॥
द्वन्द्वाख्यो विग्रहस्तेषां नरसिंहपदैः स्थिरैः ।
ततः पृथक् पृथग्रूपनामानि पुनरेव हि ॥२२०२॥
तेषां च विग्रहो ज्ञेयः पूर्ववत्कालिकापदैः ।
पूर्वोदितपदद्वन्द्वापरोदितपदद्वयैः ॥२२०३॥
प्रागुक्तविग्रहयुतैरीसन्तैरुपगूहनम् ।
शेषे षड्विंशतिर्वर्णाः सर्वत्र समरूपिणः ॥२२०४॥
योग्यायोग्यस्थले चेतै सन्धानत्रितयान्विताः ।
इति सामान्य उद्धारो विशेषमधुना श्रृणु ॥२२०५॥
ताररावस्मरवधूडाकिन्यः प्रथमं स्थिताः ।
ज्वालामाली क्षोभणश्च तथा चैवापराजितः ॥२२०६॥
स्थितिश्चतुर्थी कल्पान्तानन्तौ चैव परापरः ।
विश्वमर्दनभद्रौ च सहस्रभुज एव च ॥२२०७॥
विद्युज्जिह्वो घोरदंष्ट्रो महाकालाग्निरेव च ।
मेघनादश्च विकटस्ततः पिङ्गसटोऽपि च ॥२२०८॥
प्रदीप्तो विश्वरूपश्च विद्युद्दशन एव च ।
लक्ष्मीर्विद्रावणश्चापि कृतान्तो भ्रामकस्तथा ॥२२०९॥
प्रतप्तश्चरमीयस्तु सर्वतेजोमयः प्रिये ।
पंचविंशतिसंख्याका एते ज्ञेयाः क्रमेण हि ॥२२१०॥

नरसिंहपदात्पूर्वशब्दाः श्रुतिमनोहराः ।
कालिकापदतः पूर्वपदानि शृण्वतः परम् ॥२२११॥
धूमश्च घोरनादश्च ज्वाला कल्पान्त एव च ।
वेतालकङ्कालसंज्ञौ दुर्जयस्तदनन्तरम् ॥२२१२॥
संहाररौद्रावपि च कृतान्तो दशमस्ततः ॥
महारात्रिश्च संग्रामभीमौ शव इतः परम् ॥२२१३॥
चण्डो रुधिरघोरौ च भयङ्कर इतोऽप्यनु ।
ऊनविंशतमः संत्रासाख्यः कामकला ततः ॥२२१४॥
दक्षिणो भद्र इत्येवं श्मशानं सिद्धिरेव च ।
सर्वशेषे परिज्ञेयमुन्मत्त इति वै पदम् ॥२२१५॥
पंचविंशतमं श्रुत्वा वर्णान् षड्विंशतिं शृणु ।
पदान्यष्टौ भवन्त्येतावद्भिरक्षरसञ्चयैः ॥२२१६॥
एकोभावं भवेदाद्यं द्वितीयं भावयामि च ।
तार्तीयकमभिन्नौ च भूयास्तां तुर्यमेव च ॥२२१७॥
पञ्चमं सामरस्यं स्यात् षष्ठं चैवोपगच्छताम् ।
समः सप्तममुद्दिश्य स्वाहा चाष्टममीरितम् ॥२२१८॥
एते षड्विंशतिर्वर्णाः स्युः सन्धानेन च संहिताः ।
न्यसनीयस्थानमतः कथयामि वरानने ॥२२१९॥
भ्रुवोर्लोचनयोर्नासापुटयोश्च कपोलयोः ।
कर्णयोरथ हन्वोश्च सृक्कणोस्तदनन्तरम् ॥२२२०॥
ततोऽनु चोष्ठाधरयोर्दन्तपंक्त्योस्तथैव च।
ततः सूपटयो[?]र्ज्ञेयं जत्रुणोः स्कन्धयोरपि ॥२२२१॥

कक्षयोः पार्श्वयोश्चानु कथितं स्तनवृत्तयोः ।
ततः परं परिज्ञेयं कफोण्योर्मणिबन्धयोः ॥२२२२॥
कराग्रयोश्च कटयोः पुनर्वंक्षणयोरपि ।
ऊर्वोर्जान्वोर्जंघयोश्च पार्ष्ण्योः प्रपदयोरपि ॥२२२३॥
ईदृगुक्ता वरारोहे तादात्म्यन्यासकोद्धृतिः ।

[अद्वैतन्यासोद्धारः]

अद्वैतन्यासमधुना कथयाम्यवधारय ॥२२२४॥
अस्याद्वैताभिधानस्य न्यासस्य जगदीश्वरि ।
नारायण ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽतिजगती तथा ॥२२२५॥
समुद्दिष्टे शक्तिशक्तिमत्यौ दैवत इत्यपि ।
अकारोकारमकारा बीजानि कथितानि हि ॥२२२६॥
शक्तयश्च कलानादबिन्दवः परिकीर्तिताः ।
तमो रजश्च सत्त्वानि कीलकानि तथैव च ॥२२२७॥
बाह्यसंवित्तिराहित्ये जपे च विनियोगता ।
नादपाशौ क्षेत्रकले स्थाणुशर्वौ तथैव च ॥२२२८॥
उद्धर्षवाग्भवौ चापि प्रणवाश्वत्थसंज्ञकौ ।
नियोजनीयौ विदुषा स्थाने करषडङ्गयोः ॥२२२९॥
अथाद्वैतसमुद्धारं प्रवदामि महाफलम् ।
कृतेन येनैकवारं जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥२२३०॥
बीजत्रयं प्रथमतः स्थिररूपतया स्थितम् ।
ततो नामानि भिन्नानि सर्वत्रैव क्रमेण हि ॥२२३१॥

तैश्चक्रशब्दस्य पुनः विग्रहो ङन्त ईश्वरि ।
पुनर्नामानि भिन्नानि तैः पीठस्य च पूर्ववत् ॥२२३२॥
ततः परं पुनर्नाम भिन्नं भिन्नं सुरेश्वरि ।
तै रूपिणोपदस्यापि विग्रहो ङेविभक्तिकः ॥२२३३॥
भिन्नं भिन्नं पुनर्नाम देव्याः पूर्वविभक्तिकम् ।
स्थिरा पञ्चाक्षरी शेषे सामान्योद्धृतिरीदृशी ॥२२३४॥
विशेषस्तारयोर्मध्ये शाकिनीबीजमेककम् ।
अतः परं चक्रपदपूर्वशब्दान्निशामय ॥२२३५॥
ब्रह्मरन्ध्रं ततः सोममनसी आज्ञयान्विते ।
ललना च विशुद्धिश्च स्यादनाहतमेव च ॥२२३६॥
मणिपूरकमस्यानु स्वाधिष्ठानमतः परम् ।
सर्वशेषे परिज्ञेयो मूलाधारो वरानने ॥२२३७॥
अथ पीठपदात् पूर्वपदानि परिवर्णये ।
सदाशिवो महादेवः सर्वज्ञश्च महेश्वरः ॥२२३८॥
मृत्युञ्जयो महारुद्रः सर्वेश्वर इतः परम् ।
वामदेवो व्योमकेशोऽघोरश्च दशमो मतः ॥२२३९॥
अथातो रूपिणीशब्दपूर्वशब्दान्निशामय ।
ब्रह्म नादः कला बिन्दुः सिद्धिर्योगस्तथैव च ॥२२४०॥
आनन्दश्च तथा सत्ता निस्त्रैगुण्यमतः परम् ।
दशमं सर्वशेषीयं निर्वाणमिति कथ्यते ॥२२४१॥

रूपिणीपदतो ङेऽन्ताङ् ङेऽन्तां देव्यभिधां शृणु ।
गुह्यकाली चण्डयोगेश्वरी सिद्धिकराल्यपि ॥२२४२॥

सिद्धितो विकराली च वज्रकापालिनी तथा ।
चित्कला च कलातीता सप्तमी विनिगद्यते ॥२२४३॥

चैतन्यरूपा तदनु ज्योतिर्मय्यथ सुन्दरि ।
ततः कुण्डलिनी सर्वशेषीया त्रिदशेश्वरि ॥२२४४॥

हृदस्त्रशीर्षाण्यन्ते च ज्ञेया पञ्चाक्षरी त्वियम् ।
अथ स्थानं ब्रवीम्येषां ज्ञातपूर्वमपि प्रिये ॥२२४५॥

ब्रह्मरन्ध्रे महाशंखे कपाले चान्तरे भ्रुवोः ।
घण्टिकायां च कण्ठे च हृदये नाभिमण्डले ॥२२४६॥

उपस्थे च तथाधारे न्यसनीयाः क्रमेण हि ।
अद्वैतन्यास ईदृक्षोद्धारेण परिकीर्तितः ॥२२४७॥

ईदृक्तयेयत्तया च महिमा नास्य शक्यते ।
वर्णितुं सकलैर्देवैः किं पुनर्मानुषैः प्रिये ॥२२४८॥

एतस्य महिमानं हि शिवो वेद सनातनः ।
अहं वा वेद्मि देवेशि त्वं वा वेत्थाकलय्य मे ॥२२४९॥

एतस्य सतताभ्यासान् मुक्तिः करतले स्थिता ।
सर्वोऽपि सांख्ययोगोऽस्मिन् समासेनोपवर्णितः ॥२२५०॥

अतो विशेषतः कार्यो न्यासो द्वैताभिधः सदा ।
तारमैधे ततो विश्वभूतधात्रि समुद्धरेत् ॥२२५१॥

विश्वम्भरे समाभाष्य पात्राधारं ततः परम् ।
धारय द्वितयं प्रोच्य कूर्चास्त्रहृदयानि च ॥२२५२॥
मन्त्रेणानेन कुसुमाक्षताभ्यां पूजयेत् स्थलम् ।
पुनस्त्रपाशाकिनीभ्यां त्रिलोकीसंभवा पदम् ॥२२५३॥
त्रिपादिका पदं चापि ङेऽन्तमन्ते च हृच्छिरः ।
पात्राधारमनेनैव प्रक्षाल्य परिपूजयेत् ॥२२५४॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कृत्वा वामकरस्थितम् ।
योगिनीकूर्चरावेभ्यो ङेऽन्तं स्यात् कुलकीलकम् ॥२२५५॥
स्वाहा ततस्तदाधारं भूमौ संस्थापयेच्छनैः ।
मनुमेनं पठन् कूर्चरावाभ्यामस्त्रमेव च ॥२२५६॥
ततः प्रपूजयेद्देवि त्रिकोणेषु त्रिपादिकाम् ।
कामबीजं हृदोर्मध्ये ङेन्तं लोकत्रयं पठन् ॥२२५७॥
स्वर्गलोको मर्त्यलोकः पातालो लोक एव च ।
मूलपात्रं ततोऽनेन मनुनाक्षालयेत् प्रिये ॥२२५८॥
चैतन्यपाशतारेभ्यो मालिन्यमिति कीर्तयेत् ।
ततश्चापनयामीति एनांसि च धुनोमि च ॥२२५९॥
स्वाहा सर्वत्र सन्ध्याद्याः सन्धियोग्यस्थलादयः ।
डाकिनीशाकिनीभ्यां च मूलपात्रमितीरयेत् ॥२२६०॥
आमोदयाम्यत्र वधू नयामि शिर एव च ।
सन्धायानेन संधूप्य मूलेन परिपूजयेत् ॥२२६१॥

प्रणवो योगिनी रामा मूलाधारं धरद्वयम् ।
स्वाहानेन त्रिपाद्यां तत् स्थापयेद्देशिकाग्रणीः ॥२२६२॥
तारः पुरो नमः शेषे भ्यसन्तैश्च त्रिभिः पदैः ।
अर्चयेत् मूलपात्रं तत् क्रमेणैव सुरेश्वरि ॥२२६३॥
नक्तश्चरी खेचरी च दिक्चरी तदनन्तरम् ।
तत आनीय पुरतः कुलकुम्भं समर्हयेत् ॥२२६४॥
तारो रावो योगिनी च सुधा नरहरिस्तथा ।
कुलकुम्भायास्त्रहृदौ मूलं वारत्रयं गृणन् ॥२२६५॥
वक्ष्यमाणेन मनुना पात्रं द्रव्येण पूरयेत् ।
तारमैधत्रपाकामवधूकूर्चास्त्रशाकिनी ॥२२६६॥
डाकिन्यमे ततो ज्योतीरूपेऽसन्ध्यऽमृतेऽपि च ।
विसन्धि चामृतं प्रोच्य जुहोमि शिर एव च ॥२२६७॥
मीनमांसे ततो भिन्नपात्रे तस्याग्रतो न्यसेत् ।
विलिख्य च सुरामध्ये त्रिकोणं बिन्दुमेव च ॥२२६८॥
सुरा कलाषोडशभिः प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ।
ताराद्याभिर्नमोऽन्ताभिर्मध्ये ङेऽन्ताभिरेव च ॥२२६९॥
तारस्थाने च केषाञ्चिन्मते बीजं त्रपाह्वयम् ।
तन्द्रा निद्रा तथा चिन्तातुराप्यावेशिनी ततः ॥२२७०॥
भ्रामकी केतकी गन्धवती मोहिन्यनन्तरम् ।
अरुणा रागिणी चैव तुष्टिराकर्षिणी तथा ॥२२७१॥

प्रमोदिनी पञ्चदशी प्रमाथिन्यभिधीयते ।
सिद्धिदा सर्वशेषे च षोडशैवं प्रकीर्तिताः ॥२२७२॥
भाण्डिकेराः किञ्चिदत्र प्रस्तुवन्त्यधिकं प्रिये ।
वह्निसूर्यशशाङ्कानां कला याः पूर्वमीरिताः ॥२२७३॥
ताभिः सामान्यरूपेण प्रथमं परिपूज्य वै ।
तत्तत्कलावैपरीत्यात् पुनः सर्वाभिरर्चयेत् ॥२२७४॥
हस्तेनाच्छाद्य तत्पात्रं मूलमन्त्रमथाष्टधा ।
जपित्वा दशदिग्बन्धं छोटिकाभिः समाचरेत् ॥२२७५॥
ततो बद्धाञ्जलिर्भूत्वा मन्त्रमेनमुदीरयेत् ।
क्षीराब्धिमथनोद्भूते वारुणि त्वं सुधानुजे ॥२२७६॥
आपूर्य पात्रमम्बायास्तिष्ठ पीयूषरूपिणी ।
तत्पात्रं स्पर्शयेद् यन्त्रे पुनरन्यं मनुं गृणन् ॥२२७७॥
मातरानन्दसन्दोहतुन्दिलानन्दविग्रहे ।
सुवक्त्र प्रतिबिम्बं त्वमस्यां धेहि सुरेश्वरि ॥२२७८॥
ततो गृहीत्वा कुसुमं निर्गणं ध्यानमाचरेत् ।
द्वन्द्वातीता श्रुतिकमलिनीस्वच्छमाध्वीकधारा ।
संसाराब्धिप्रतरणतरिः जन्मतृष्णादवाग्निः ॥
मोहध्वान्तच्छिदुरपरमानन्दमार्तण्डमूर्तिः ।
स्वान्ते नित्यं वसतु मम सा निर्गुणा गुह्यकाली ॥२२७९॥

पाद्यादिदीपदानान्तमूलमन्त्रेण साधकः ।
सर्वं दद्यान्महाकाल्यै नैवेद्यं चोपकल्पितम् ॥२२८०॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पात्रं तच्च समर्पयेत् ।
[1]प्रणवामामैधलज्जाशाकिनीयोगिनीस्त्रियः ॥२२८१॥
कूर्चस्मरौ नवैतानि बीजान्यादौ समुच्चरेत् ।
ततः सुधां पिबद्वन्द्वं स्वदद्वयमतः परम् ॥२२८२॥
आस्वादय द्वयं चापि शिवशक्तिपदादनु ।
सामरस्येति संकीर्त्य भावं प्रविश तर्जनी ॥२२८३॥
इत्थं समर्प्य श्रीपात्रमेकमेव वरानने ।
आवृत्यर्चां प्रकुर्वीत नातिसंक्षेपविस्तराम् ॥२२८४॥
मनसा पूर्ववत् कृत्वा बहुपत्रसरोरुहम् ।
षट्त्रिंशच्छदनं चान्यद् द्वात्रिंशद्दलमेव च ॥२२८५॥
चतुर्विंशतिपत्रं च ततो देवीः प्रपूजयेत् ।
तारं प्रथमतः प्रोच्य नमः शेषे नियोज्य च ॥२२८६॥
ङेऽन्तं तत्तन्नाम कृत्वा पुष्पैः पत्रैरथाक्षतैः ।
देव्याः पारिषदीभूताः पूजयेत् परमेश्वरीः ॥२२८७॥
कराली विकराली च ततः कात्यायनी स्मृताः ।
फेरुरावोल्कामुखी च भीषणा च कपालिनी ॥२२८८॥
श्मशानवासिनी कालरात्री रुद्राण्यपि प्रिये ।
चण्डिका कौलिनी चोग्रा कालकर्णी पतङ्गिनी ॥२२८९॥

१ प्रणवो म।० क।

जालन्धरी नागहारा ततोऽनु च शवासना ।
पुनर्महाखेचरी च महामाया च तापिनी ॥२२६०॥
लम्बोदरी पिङ्गजटा भीमा बज्रनखी तथा ।
ज्वालामालिन्यथो ज्ञेया क्षोभणा चापराजिता ॥२२६१॥
परापरा विरूपा च विद्युज्जिह्वा ततः परम् ।
घोरदंष्ट्रा मेघनादा प्रदीप्ता च कटङ्कटा ॥२२६२॥
षड्विंशतमा ज्ञेया विश्वरूपाभिधान्तिमे ।
द्वात्रिंशद्दलदेवीस्तु साम्प्रतं प्रवदामि ते ॥२२६३॥
कालेश्वरी भोगवती गौरी भैरव्यनन्तरम् ।
दुर्गा ततः कालिका च चामुण्डा शिवदूत्यपि ॥२२६४॥
माहेश्वरी कौशिकी च जयन्त्येकादशी तथा ।
ततो महामङ्गला च मेधा शाकम्भरी तथा ॥२२६५॥
शान्ताम्बिका भ्रामरी च अपर्णा च महोदरी ।
घोररूपा वेदवती क्षेमङ्कर्यथ कीर्त्यते ॥२२६६॥
महानिद्रा भवानी च विजयोमाट्टाट्टहासिनी ।
मुण्डमालिन्यथ पिशाचिनी स्यात् पूतना तथा ॥२२६७॥
कुम्भोदरी चापि जगद् ग्रासिनी सर्वशेषगा ।
चतुर्विंशतिपत्रस्थाः कथ्यन्ते शक्तयोऽधुना ॥२२६८॥
महालक्ष्मीरन्नपूर्णा मातङ्गी च सरस्वती ।
अश्वारूढा नित्यक्लिन्ना ततः पद्मावती मता ॥२२६९॥

अष्टमी चाथ महिषमर्दिनी भुवनेश्वरी ।
वगला शूलिनी चापि अघोरा त्वरिता तथा ॥२३००॥
वाग्वादिनी च धनदा किरातेश्वर्यनन्तरम् ।
कुक्कुटी चण्डिका चापि शवरेश्वर्यनन्तरम् ॥२३०१॥
तत उच्छिष्टचाण्डालिन्यथो नाकुल्यपि प्रिये ।
लवणेश्वरी जातवेदसी तथा शातकर्ण्यपि ॥२३०२॥
अथ षोडशपत्रस्थाः कथ्यन्ते शक्तयो मया ।
चण्डेश्वरी चण्डघण्टा सिद्धिलक्ष्मीरतः परम् ॥२३०३॥
कालसङ्कर्षिणी चापि छिन्नमस्ता तथैव च ।
तत एकजटा बाला महात्रिपुरसुन्दरी ॥२३०४॥
पुनर्नीलपताका च हरसिद्धा च कुब्जिका ।
राजराजेश्वरी स्वर्णकूटेश्वर्यपि कथ्यते ॥२३०५॥
अनङ्गमाला स्यान्मुण्डमधुमत्यप्यनन्तरम् ।
हयग्रीवेश्वरी चापि स्यात् षोडशतमा प्रिये ॥२३०६॥
अथवा द्वादशदले ताः क्रमेण ब्रवीमि ते ।
निर्मला कुमुदा चैव कामुका तदनन्तरम् ॥२३०७॥
स्थूलोदरी चाथ कालसुन्दरी परिकथ्यते ।
लिङ्गधारिण्यपि ततो भवेड् डमरुकापि च ॥२३०८॥
महामारी रक्तदन्ता ललिता च मदोत्कटा ।
मनःप्रमथिनी सर्वशेषे परिनिगद्यते ॥२३०९॥
देवीरष्टदलीयास्ते कथयाम्यधुना प्रिये ।

गुह्येश्वरी त्राभ्रवी च चर्चिकाऽप्यभया तथा ॥२३१०॥
मायूरी चैकवीराऽपि तामसी तदनन्तरम् ।
भीमादेवी सर्वशेषे वृत्तस्याष्टविभागतः ॥२३११॥
भैरवीः पूजयेदष्टौ ताः क्रमेण निशामय ।
सर्वेषामभिधानानां भैरवीपदमन्तिमे ॥२३१२॥
दातव्यं पूर्ववत् कार्यं तत्पश्चाद् यदुदीरितम् ।
असिताङ्गो रुरुः क्रोध उग्र उन्मत्त एव च ॥२३१३॥
चण्डः कपाली संहार इति ते परिकीर्तिताः ।
अथाष्टारस्याष्टशक्तीर्विनिबोध वरानने ॥२३१४॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपा च चण्डिका ॥२३१५॥
पुनर्वृत्तस्याष्टदिक्षु देवशक्तीः समर्चयेत् ।
ब्रह्माणी पूर्वदिग्भागान् माहेश्वर्यथ कथ्यते ॥२३१६॥
कौमारी वैष्णवी चापि वाराही नारसिंह्यपि ।
इन्द्राणी शिवदूती च वृत्तस्याष्टविभागगाः ॥२३१७॥
नव कोणस्य याः शक्तीस्तास्ते वच्मि सुरेश्वरि ।
भद्रकाली च श्मशानकाली दक्षिणकाल्यपि ॥२३१८॥
चण्डकाली सिद्धिकाली कालकाली तथैव च ।
ततः कामकलाकाली धनकाली ततः परम् ॥२३१९॥
गुह्यकाली सर्वशेषे पञ्चारस्याधुना शृणु ।

सृष्टिकाली स्थितिकाली पुनः संहारकाल्यपि ॥२३२०॥
अनाख्यकाल्यपि ततो भासाकाली च शेषगा ।
ब्रवीमि साम्प्रतं त्र्यारे देव्यादौ ब्रह्मरूपिणी ॥२३२१॥
विष्णुरूपिण्यपि ततो रुद्ररूपिण्यनन्तरम् ।
अथ बिन्दौ दशास्यानां नामभिः परिपूजयेत् ॥२३२२॥
आदौ महाचण्डयोगेश्वरी त्रिदशपूजिते ।
बज्रकापालिनी चापि महाडामर्यनन्तरम् ॥२३२३॥
ततः सिद्धिकराली च सिद्धितो विकराल्यपि ।
गुह्यकाली चण्डकापालिनी चाट्टाट्टहासिनी ॥२३२४॥
मुण्डमालिन्यपि ततः कालचक्रेश्वरी प्रिये ।
एवमावरणीयार्चा विधातव्या विपश्चिता ॥२३२५॥
नैमित्तिकसमुद्भूता नैव नित्योदितात्मिका ।
नात्र सिंहासनधराः पूज्यन्ते रुद्रशासनात् ॥२३२६॥
न च श्मशानरक्तोदा योगपीठविधिं विना ।
ततो जपं प्रकुर्वीत सहस्रं शतमेव वा ॥२३२७॥
यावच्छक्यं चापि देवि यथा नित्याधिकं भवेत् ।
पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण जपं देव्यै समर्पयेत् ॥२३२८॥
पुनरारात्रिकं दद्यात् प्रागुक्तमनुनैव हि ।
मन्त्रानेतानुच्चरेद्वै आरात्रिभ्रमणक्षणे ॥२३२९॥
जगन्मातर्जगद्वन्द्ये जगत्तारणकारिणि ।

विकरालतराकारे विरूपे विश्वविग्रहे ।।२३३०।।
भयङ्करे भीमनादे भवबन्धविमोचिनि ।
गुह्यकालि महाचण्डे दशाननविभूषिते ।।२३३१।।
श्मशाननिलये नादसन्त्रासितजगत्त्रये ।
पञ्चकालानलावासे चतुःपञ्चाशदोर्युते ।।२३३२।।
नरसिंहासनारूढे व्यालालङ्कारभूषिते ।
प्रणतार्तिहरे नित्ये दैत्यदानवनाशिनि ।।२३३३।।
संसारपाशच्छिदुरे गलद्रुधिरचर्चिते ।
गुह्यकालि नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमोनमः ।।२३३४।।
इत्यारात्रिकमावेद्य स्तोत्राणि समुदीरयेत् ।
आवश्यकतया पाठ्यं कवचं विश्वमङ्गलम् ।।२३३५।।
गद्यमावश्यकं चापि देवीसन्तोषहेतवे ।
सुधाधाराभिधं स्तोत्रमेकमन्यच्च वर्तते ।।२३३६।।
तदपाठेन देवेशि व्यर्थं नैमित्तिकार्चनम् ।
त्रिपुरारिरहं चापि स्तोत्रस्यैतस्य पाठकौ ।।२३३७।।
भूत्वा समर्चयावस्तां सर्वज्ञत्वसमीहया ।

देव्युवाच

कीदृशं तन्महत् स्तोत्रं यद् युवां पठतः सदा ।।२३३८।।
यस्य नाम सुधाधारा सुधासदृशमेव तत् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि सुधाधाराभिधस्तवम् ।।२३३९।।
प्राणाधिकप्रियतम महाकाल ब्रवीहि मे ।

[सुधाधारास्तोत्रम्]

महाकाल उवाच

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्तिः ।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४०॥

असाधारणत्वादसंबन्धकत्वा—
दभिन्नाश्रयत्वादनाकारकत्वात् ।
अविद्यात्मकत्वादनाद्यन्तकत्वात्
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४१॥

अगोत्राकृतित्वादनैकान्तिकत्वा—
दलक्ष्यागमत्वादशेषाकरत्वात् ।
प्रपञ्चालयत्वादनारम्भकत्वात्
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४२॥

यदा नैव धाता न विष्णुर्न रुद्रो
न कालो न वा पञ्च भूतानि नाशाः ।
तदा कारणीभूतसत्तैकमूर्तिः ।
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४३॥

न मीमांसका नैव काणादतर्का
न सांख्या न योगा न वेदान्तवादाः ।

न देवा [वेदा] विदुस्ते निराकारभावं
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४४॥

न ते नामगोत्रे न ते जन्ममृत्यू
न ते धामचेष्टे न ते दुःखसौख्ये ।
न ते मित्रशत्रू न ते बन्धमोक्षौ
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४५॥

न बाला न च त्वं वयस्या न वृद्धा
न च स्त्री न षण्डः पुमान्नैव च त्वम् ।
न च त्वं सुरो नासुरो नो नरो वा
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४६॥

जले शीतलत्वं शुचौ दाहकत्वं
विधौ निर्मलत्वं रवौ तापकत्वम् ।
तवैवाम्बिके यस्य कस्यापि शक्ति—
स्त्वमैका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४७॥

पपौ क्ष्वेडमुग्रं पुरा यन्महेशः
पुनः संहरत्यन्तकाले जगच्च ।
तवैव प्रसादान्न च स्वस्य शक्त्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४८॥

करालाकृतीन्याननानि श्रयन्ती
भजन्ती करास्त्रादिबाहुल्यमित्थम् ।

जगत् पालनायासुराणां वधाय
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३४६॥

महाचण्डयोगेश्वरी गुह्यकाली
कराली महाडामरी चाट्टहासा ।
जगद्ग्रासिनी चण्डकापालिनीति
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३५०॥

रवन्ती शिवाभिर्वहन्ती कपालम्
जयन्ती सुरारीन् धमन्ती प्रमत्तान् ।
नटन्ती तपन्ती चलन्ती हसन्ती
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२३५१॥

अपादापि वाताधिकं धावसि त्वं
श्रुतिभ्यां विहीनापि शब्दांछृणोषि ।
अनासापि जिघ्रस्यनेत्रापि पश्य—
स्यजिह्वापि नानारसास्वादविज्ञा ॥२३५२॥

यथा विम्बमेकं रवेरम्बरस्थं
प्रतिच्छायया यावदेकोदकेषु ।
समुद्भासतेऽनेकरूपं यथावत्
त्वमेकापि लोकत्रये तद्वदेव ॥२३५३॥

यथा भ्रामयित्वा मृदं चक्रमध्ये
कुलालो विधत्ते सरावं घटं च ।

महामोहयन्त्रेषु भूतान्यदृष्टेः
सुरान् मानुषांस्त्वं सृजस्यादिसर्गे ॥२३५४॥

यथा रज्जुरज्ज्वर्कधृष्णिष्वकस्मा-
न्नृणां रूप्यदर्वीकराम्बुभ्रमः स्यात् ।
जगत्यत्र च त्वन्मये तद्वदेव
त्वमेकैव तत्तन्निवृत्तौ समस्तम् ॥२३५५॥

महाज्योतिराकारसिंहासनं यत्
स्वकीयं सुरान् वाहयस्युग्रमूर्ते ।
अवष्टभ्य पद्भ्यां शिवं भैरवं च
स्थिता तेन मन्ये भवत्येव मुख्या ॥२३५६॥

क्व योगासने योगमुद्राभिनीतिः
क्व गोमायुपोतस्य वा लालनं च ।
जगन्मातरीदृक् तवापूर्वलीला
कथंकारमस्मद्विधैर्देवि गम्या ॥२३५७॥

विशुद्धापरा चिन्मयी स्वप्रकाशा-
ऽमृतानन्दरूपा जगद्व्यापिका च ।
तवेदृग्विधाया निराकारमूर्तेः
किमस्माभिरन्तर्हृदि ध्यायितव्यम् ॥२३५८॥

महाघोरकालानलज्वालजाला
हितात्यन्तवासा महाट्टाट्टहासा ।

जटाभारकाला महामुण्डमाला
विशाला त्वमीदृङ् मया ध्यायसेऽम्ब ॥२३५९॥

तपो नैव कुर्वन् वपुः खेदयामि
व्रजन्नापि तीर्थं पदे खञ्जयामि ।
पठन्नापि वेदं जनिं यापयामि
त्वदङ्घ्रिद्वयं मङ्गलं साधयामि ॥२३६०॥

तिरस्कुर्वतोऽन्यामरोपासनार्चे
परित्यक्तधर्माध्वरस्यास्य जन्तोः ।
त्वदाराधनन्यस्तचित्तस्य किं मे
करिष्यन्त्यमी धर्मराजस्य दूताः ॥२३६१॥

न मन्ये हरिं नो विधातारमीशं
न वह्निं न चार्कं न चेन्द्रादिदेवान् ।
शिवोदीरितानेकवाक्यप्रबन्धै
स्त्वदर्चाविधिं केवलं किन्तु मन्ये ॥२३६२॥

नरा मां विनिन्दन्तु नन्दन्तु नाम
त्यजत्वम्ब वा ज्ञातयः संत्यजन्तु ।
यमीया भटा नारके पातयन्तु
त्वमेका गतिर्मे त्वमेका गतिर्मे ॥२३६३॥

महाकालरुद्रोदितं स्तोत्रमेतत्
सदाभक्तिभावेन योऽध्येति भक्तः ।

न चापन्न रोगो न शोको न मृत्युः
भवेत् सिद्धिरन्ते च कैवल्यलाभः ॥२३६४॥

इति ते कथितो देवि सुधाधाराह्वयः स्तवः ।
एतस्य सतताभ्यासात् सिद्धिः करतले स्थिता ॥२३६५॥
एतत् स्तोत्रं च कवचं गद्यं त्रितयमप्यदः ।
पठनीयं प्रयत्नेन नैमित्तिकसमर्हणे ॥२३६६॥
त्रयाणामप्यभावात् स्यादङ्गहानिः सुरेश्वरि ।
अतः परं तु प्रकृतं कृत्यं सर्वं निबोध मे ॥२३६७॥
स्तवानेतान् पठित्वैव दण्डवत् प्रणमेद् भुवि ।
प्रदक्षिणं विदध्याच्च घण्टामुत्थाप्य वादयेत् ॥२३६८॥
कारयेच्छङ्ख पटहवाद्यान्याप्तजनैरपि ।
ततो नित्यार्चनप्रोक्तश्रीपात्रोदिततर्पणम् ॥२३६९॥
प्रकुर्वीतैकपात्रत्वात् नान्येषां वै कदाचन ।
अत्र नैवेद्यसमये स्थापितं तत् पृथक्तया ॥२३७०॥
अन्नं समीनपललं ससुरासन्नमेव च ।
तद् गृहीत्वा बलिं दद्याच्छिवाभ्यो भाषितक्रमैः ॥२३७१॥
पुरस्तादेव ददति केचिद्देव्याः शिवाबलिम् ।
पक्षोऽयमधमो देवि मुख्यः सम्प्रतिकथ्यते ॥२३७२॥
पुरा ग्रामाद् विनिष्क्रम्य गृहीत्वान्नं चतुर्विधम् ।
चतुष्पथे वा कान्तारे यत्रागच्छन्ति वा शिवाः ॥२३७३॥

असाध्वसः खड्गपाणिर्जनैः साहसिकैर्वृतः ।
निशीथे वाद्ययामे वा गृहीतार्चनसम्भृतिः ॥२३७४॥
श्मशानाभिमुखो गच्छेन्मौनी भूत्वा समाहितः ।
अथवा विपिनं घोरं निर्जनं भूतसङ्कुलम् ॥२३७५॥
अभ्यर्च्य गन्धकुसुमैर्वज्रकापालिनीं पुरः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा अनुज्ञामभियाचयेत् ॥२३७६॥
गुह्यकालि महारावे सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
अनुज्ञां देहि मे देवि प्रदास्यामि शिवाबलिम् ॥२३७७॥
इत्यनुज्ञां समादाय शिवा आवाहयेच्छनैः ।
बद्धाञ्जलिर्मुक्तकेशो माल्यभृन्नग्न उत्थितः ॥२३७८॥
तारचैतन्यह्रीरावयोगिनीकमलारुषः ।
डाकिनीनृहरिप्रेतसान्वक्षकुलिकात्रयः ॥२३७९॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी बीजानीमानि षोडश ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारः कूटत्रयमिदं ततः ॥२३८०॥
घोररावे इति पदं ततोऽनन्तरमुद्धरेत् ।
कालि कापालि च ततो महाकापालि चेत्यपि ॥२३८१॥
ततो भगवति प्रोच्य गुह्यकालि समीरयेत् ।
चण्डयोगेश्वरीत्युक्त्वा चण्डकापालिनीरयेत् ॥२३८२॥
शिवारूपिण्यनु शिवापोतधारिणि चेत्यपि ।
आगच्छ युगलं तिष्ठ युगलं तदनन्तरम् ॥२३८३॥

सान्निध्यं कल्पय द्वन्द्वं मां रक्ष द्वन्द्वमेव च ।
प्रभञ्जनादीनि पञ्च रुडस्त्रहृदयं शिरः ॥२३८४॥
इत्युच्चार्यान्नसंस्कारं कृत्वा पूर्वोदितक्रमैः ।
तदन्नमग्रतः कृत्वा गृहीत्वा पाणिना जलम् ॥२३८५॥
वक्ष्यमाणेन मनुना शिवाभ्यो बलिमुत्सृजेत् ।
प्रणवह्लीरावरोषाः ङेऽन्ता वै गुह्यकालिका ॥२३८६॥
ङेऽन्ता महाघोररावा भगमालिन्यनन्तरम् ।
तद्वच्छिवारूपिणी च ज्वालामालिन्यपि प्रिये ॥२३८७॥
इमं बलिमिति प्रोच्य प्रयच्छाम्येकमेव हि ।
गृह्ण गृह्णापय द्विर्द्विः भक्ष भक्षय पूर्ववत् ॥२३८८॥
सर्वसिद्धिं कुरुयुगं मम शत्रूनथो वदेत् ।
नाशय द्विः समाभाष्य मारय द्विरतः परम् ॥२३८९॥
स्तम्भयोच्चाट्टय हन विध्वंसय मथापि च ।
विद्रावय पच छिन्धि शोषय त्रासय त्रुट ॥२३९०॥
मोहयोन्मूलय तथा भस्मीकुरु ततः परम् ।
जृम्भय स्फोटय तथा क्रुध विभ्रामयेत्यपि ॥२३९१॥
हर विक्षोभय तुरु दम मर्दय पातय ।
चतुर्विंशतिकस्यास्य युगं युगमुदीरयेत् ॥२३९२॥
उच्चारयेत्ततो देवि सर्वभूतक्षयङ्करि ।
सर्वरोगप्रशमनि सर्वसिद्धिविधायिनि ॥२३९३॥

ज्वलयुग्मं प्रज्वलयुगं शुभं दर्शय च द्वयम् ।
चण्डयोगेश्वरीत्युक्त्वा वज्रकापालिनीरयेत् ॥२३६८॥
डाकिनीरावकूर्चाणां त्रितयं त्रितयं वदेत् ।
राज्यं मे समनूद्धृत्य द्विर्द्विर्देहि च दापय ॥२३६६॥
किलियुग्माच्च चामुण्डे यमघण्टे हिलिद्वयात् ।
मम सर्वाभीष्टपदं ततः साधय च द्वयम् ॥२४००॥
संहारिणि पदं दत्वा सम्मोहिनि पदं वदेत् ।
कुरुकुल्लेति संबोध्य किरिद्वन्द्वं किलिद्वयम् ॥२४०१॥
अन्नोत्सर्गं विधायेत्थं सुदूरमपसृत्य वै ।
तासां पन्थानमीक्षेत शिवा आयान्ति वा न वा ॥२४०२॥
आगताभ्यो नमस्कुर्यात् देवीबुद्धया वरानने ।
शिवास्तु नावमन्तव्याः कालीरूपा हि ता यतः ॥२४०३॥
फेरुरूपं हि धृत्वा च स्वयमायाति कालिका ।
शिवासु भक्षयन्तीषु भूतेभ्यो बलिमाहरेत् ॥२४०४॥
संहारभैरवायापि क्षेत्रपालेभ्य एव च ।
वटुकेभ्यो डाकिनीभ्यो मातृभ्यश्च बलिं हरेत् ॥२४०५॥
महदैश्वर्यमाप्नोति निःशेषं भक्षयन्ति चेत् ।
अर्द्धभुक्तावर्द्धसिद्धिरभोज्ये तु विपद् भवेत् ॥२४०६॥
अनागमे तु मरणं तस्माद् यत्नात् परीक्षयेत् ।

प्रत्यष्टम्यां चतुर्दश्यामेवं कुर्वीत साधकः ॥२४०७॥
शिवाबलिरयं प्रोक्तो महाफलमहोदयः ।
विस्तरक्रम एतस्य विधाने कामकालिके ॥२४०८॥
वक्ष्यते तु विशेषेण मया ते त्रिदशेश्वरि ।
आनुकल्पिकरूपेण शिवाबलिरयं मतः ॥२४०९॥
विस्तरस्तस्य बोद्धव्य उत्तरग्रन्थमध्यगः ।
मन्त्ररूपतया प्रोक्तामथ तासां स्तुतिं पठेत् ॥२४१०॥
दण्डवत् प्रणमेच्चापि वज्रकापालिनीधिया ।
दूरतो गन्धकुसुमैरर्चयेच्च मुहुर्मुहुः ॥२४११॥
शिवारूपधरे देवि गुह्यकालि नमोऽस्तु ते ।
उल्कामुखि ललज्जिह्वे भीमरावे शृगालिनि ॥२४१२॥
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ।
अरण्यचारिणि शिवे फेरो जम्बूकरूपिणि ॥२४१३॥
नमोऽस्तु ते महामाये जगत्तारिणि कालिके ।
मातङ्गि कुब्जिके रौद्रि चण्डरूपे नमोऽस्तु ते ॥२४१४॥
सर्वसिद्धिप्रदे घोरे भयङ्करि भयापहे ।
प्रसन्ना भव देवेशि भक्तस्य मम कालिके ॥२४१५॥
संसारतारिणि जये जय सर्वशुभंकरि ।
विस्रस्तचिकुरे चण्डि चामुण्डे मुण्डमालिनि ॥२४१६॥
संहारकारिणि क्रुद्धे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे ।

दुर्गे किराति शबरि प्रेतासनगतेऽभये ।२४१७॥
अनुग्रहं कुरु सदा कृपया मां विलोकय ॥
राज्यं प्रयच्छ विकटे वित्तमायुःसुतान् स्त्रियम् ॥२४१८॥
शिवाबलिविधानेन प्रसन्ना भव कालिके ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमो नमः ॥२४१९॥
इत्येतैरष्टभिः श्लोकैः शिवास्तोत्रमुदीरयेत् ।
ततस्तदुच्छिष्टमन्नं फेलया भाजने स्थितम् ॥२४२०॥
सर्वं तन्निखनेद् भूमौ प्रयत्नेनैव पार्वति ।
यदि काका मृगाः श्वानो ये चान्येऽरण्यवासिनः ॥२४२१॥
भक्षयन्ति तदुच्छिष्टं महान् दोषो भवेत्तदा ।
पुनरागत्य पुरतो देव्या बद्धाञ्जलिः पठेत् ॥२४२२॥
त्वत्प्रीतये मया दत्तः शिवाबलिरयं शिवे ।
प्रसन्ना भव देवि त्वं यथोक्तफलदायि च ॥२४२३॥
पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्पठित्वेमं मनुं सुधीः ।
भूमितलमिलन्मौलिकरश्च प्रणमेन्मुहुः॥२४२४॥
ग्रामाद्बहिरशक्तश्चेद् विधातुं विधिमीदृशम् ।
तेनैव मनुना देव्याः पुर एव निवेदयेत् ॥२४२५॥
तेनापि सिद्धो भवति शिवाबलिरनूत्तमः ।
पूर्वोक्तयाथ रीत्यैव मन्त्रैस्तैरपि च प्रिये ॥२४२६॥
श्रीपात्रग्रहणं कुर्याच्छक्तिपूजां विधाय हि ।

यो नित्यनैमित्तिकयोरुक्तः शक्त्यर्चनक्रमः ।।।२४२७।।
तमशेषविशेषेण कुर्यादालस्यवर्जितः ।
दोषातनार्चनविधिमन्त्रपात्रस्थितिक्रमैः ।।२४२८।।
संस्थापनं शक्तिपात्रप्रक्रियायाः समाचरेत् ।
देवीबुद्धया वृतेरर्चा कार्योक्तार्चनद्वये ।।२४२९।।
निदानं तत्क्रमज्ञाने द्वयमेव वरानने ।
गुरूपदेशः प्रथमः सूक्ष्मा धीरपरा स्वका।।२४३०।।
गुणदोषकरी चात्र भावना विनिगद्यते ।
देवीबुद्धिः शुभकरी कामधीरशुभावहा ।।२४३१।।
कारणं बुद्धिरेवात्र विज्ञेया पुण्यपापयोः ।
शिवशक्त्यभिधा यस्तु नैमित्तिक उदीरितः ।।२४३२।।
शिवशक्त्योर्विधेयत्वं तथा स परिकीर्तितः ।
प्रकारः प्रणवाङ्गुष्ठमध्यगं नाम ङेऽन्तिमम् ।।२४३३।।
कापालिकाद्याः कौला ये कुर्वते शक्तिपात्रवत् ।
शिवपात्रं न तैर्दोषः शक्तिकृत्यतया प्रिये ।।२४३४।।
उभयोर्बुद्धिरेकैव युक्तायुक्तं ममाप्यदः ।
इत्यादिबहुलोहेन कर्म कार्यं विचक्षणैः ।।२४३५।।
शिवं शिवाय शक्तिस्तु शिवः शक्तिञ्च शक्तये ।
दद्यात्परस्परं हस्तगतं कृत्वा च भक्तितः ।।२४३६।।
यथा यथा तु बाहुल्यं विधातुं शक्यतेऽर्चने ।

तथा तथा प्रकर्तव्यं देवीसन्तोषहेतवे ॥२४३७॥
कुलकुम्भावशिष्टञ्च सह भुञ्जीत शक्तिभिः ।
कौलिकेभ्यश्च दातव्यं समं संयोज्य शक्तिभिः ॥२४३८॥
धीरो भूत्वा च विहरेन्मदविह्वलया तथा ।
कृत्वा दिगम्बरां शक्तिं स्वयं भूत्वा दिगम्बरः ॥२४३९॥
मुक्तकेशीं मुक्तकेशः कामकेलिं समाचरेत् ।
पुनः पुनर्निषेवेत कुलद्रव्यं निजेच्छया ॥२४४०॥
पाययेच्चापि तच्छक्तीरुत्कटाः स्युर्यथा हि ताः ।
तथा केलिकलाकाले जपेतां मन्त्रमीश्वरि ॥२४४१॥
स जपः कोटिगुणितः कालीप्रीतिकृदुच्यते ।
अन्येऽपि विहरेयुर्हि शक्तिभिः सह कौलिकाः ॥२४४२॥
वात्स्यायनोदितो यावद्विधिः कामकलालये ।
स सर्वः सरहस्योऽपि विधातव्यः शिवाज्ञया ॥२४४३॥
शक्तिपूजां विना शक्तिसमागममृते तथा ।
व्यर्था नैमित्तिकार्चा स्यादेवमीश्वरशासनम् ॥२४४४॥
एवं विदित्वा कर्तव्यमावश्यकतयाप्यदः ।
कालीसन्तोषकारित्वान्न कामाकुलबुद्धितः ॥२४४५॥
इन्द्रियेन्द्रियसङ्घर्षात् स्कन्नं चूले यदिन्द्रियम् ।
चित्रकं तेन कर्तव्यं मूलेन कमलानने ॥२४४६॥
कापालिकादयः कौलाश्चत्वारो ये प्रकीर्तिताः ।

अनङ्गगन्धादानीय मनुना ते प्रसूनगम् ।।२४४७।।
विधाय देव्यै ददति निर्घृणा भैरवाज्ञया ।
स्मार्तैर्नैष विधिः कार्यो नानुकल्पप्रदैरपि ।।२४४८।।
निन्दितत्वेन कौलानामस्ति चेदस्तु पार्वति ।
पूर्वोदितस्तु सर्वेषामुत्तरार्थमिदं वचः ।।२४४९।।
एवं विधाय शक्त्यर्चां सुरतं ताभिरेव च ।
पुनरागत्योपविशेद्देव्याः पुरत ईश्वरि ।।२४५०।।
उच्छिष्टभैरवायापि शेषमुच्छिष्टमर्पयेत् ।
शान्तिपाठं तत कुर्यात् कौलिकैः सह शक्तिभिः ।।२४५१।।
समग्रमर्द्धमल्पं वा किञ्चित्सारमथापि वा ।
नित्योदितं हि संपूर्णं सारात्सारतरं शृणु ।।२४५२।।
कालि कालि महाकालि कालिके पापहारिणि ।
धर्ममोक्षप्रदे देवि गुह्यकालि नमोऽस्तु ते ।।२४५३।।
सङ्ग्रामे विजयं देहि धनं देहि सदा गृहे ।
धर्मकामार्थसंपत्तिं देहि कालि नमोऽस्तु ते ।।२४५४।।
कौलिकान् कुलमार्गञ्च कुलद्रव्यं कुलाङ्गनाः ।
ये द्विषन्ति जुगुप्सन्ते ये निन्दन्ति हसन्ति ये ।।२४५५।।
येऽसूयन्ते च शङ्कन्ते मिथ्येति प्रवदन्ति ये ।
ते डाकिनीमुखे यान्तु सदारसुतबान्धवाः ।।२४५६।।
पिब त्वं शोणितं तस्य चामुण्डा समांसत्तु च ।

अस्थीनि चर्वयन्त्वस्य योगिनीभैरवीगणाः ॥२४५७॥
या निन्दागमतन्त्रादौ या शक्तिषु कुलेषु या।
कुलमार्गे च या निन्दा सा निन्दा तव कालिके ॥२४५८॥
त्वन्निन्दाकारिणां शास्त्री त्वमेव परमेश्वरि।
न वेदं न तपो दानं नोपवासादिकं व्रतम् ॥२४५९॥
चान्द्रायणादिकृच्छ्रं वा न किञ्चिन्मानयाम्यहम्।
किन्तु त्वच्चरणाम्भोजसेवां जाने शिवाज्ञया ॥२४६०॥
शिवाज्ञां कुर्वतो देवि निन्दापि सफला मम।
कुर्वतो मे त्वदर्चाञ्चेन्निरये पतनं भवेत् ॥२४६१॥
त्वमेवोद्धारयित्री स्या इति मे निश्चिता मतिः।
राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा ॥२४६२॥
प्रभुत्वं तस्य सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि।
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं मम ॥२४६३॥
यस्य त्वच्चरणाम्भोजे मनो निविशते सदा।
गुह्यकाली शिरः पातु डामरी हृदयं मम ॥२४६४॥
कण्ठं सिद्धिकराली च चण्डयोगेश्वरीन्द्रियम्।
चण्डकापालिनी बाहू पादौ द्वौ मुण्डमालिनी ॥२४६५॥
अट्टहासेश्वरी वक्षः कालचक्रेश्वरी तनुम्।
पातूदरं महाकाली सर्वमर्माणि चण्डिका ॥२४६६॥
वज्रकापालिनी पातु सर्वाङ्गानि च सर्वदा।
नमस्ते त्रिजगन्मातर्मां रक्ष शरणागतम् ॥२४६७॥
कृते मया यथाशक्ति तव नैमित्तिकार्चने।

न्यूनातिरिक्तताज्ञानजन्यदोषान् क्षमस्व मे ।।२४६८।।
एभिः श्लोकैः शान्तिपाठं विधाय परमेश्वरीम् ।
शाययेद् दिव्यशयने नानास्तरणसंवृते ।।२४६९।।
शङ्खघण्टाध्वनिं कुर्वन् धूपदीपौ ददत्तथा ।
स्थापितो यो विशेषार्घतया शङ्खो वरानने ।।२४७०।।
तत्स्थतोयेनाभिषिञ्चेत्स्वशक्तीः कौलिकानपि ।
निर्यातयेद्बहिः पश्चाच्छिरांसि पशुपक्षिणाम् ।।२४७१।।
ततो नित्यक्रियाप्रोक्तवदन्यत्सर्वमाचरेत् ।
इतीदं कथितं देवि नैमित्तिकसमर्हणम् ।।२४७२।।
नित्योदिताद्भिन्नरूपं बाहुल्यपरिबृंहितम् ।
पशुप्रोक्षणविध्याढ्यं पूजाधिक्यपरिष्कृतम् ।।२४७३।।
नित्यातिरिक्तपूजायामेतत्प्रकृतिलक्षणम् ।
ज्ञेया विकृतयोऽमुष्य पूजा अन्या वरानने ।।२४७४।।
एतावती समस्तार्चा नैमित्तिकसमुद्भवा ।
सत्यां शक्तौ विधातव्या साधकैः फलकाङ्क्षिभिः ।।२४७५।।
अशक्तौ स्वकया बुद्धया त्यक्त्वा पल्लवितार्चनम् ।
सङ्गृह्य मूलभूताख्यं सर्वं परिसमापयेत् ।।२४७६।।
यत्त्यागादङ्गहानिर्नो तद्धेयं गुरुवाक्यतः ।
अङ्गहानिर्भवेद्येन न तत्त्याज्यं कदाचन ।।२४७७।।
तद्विज्ञानं गुरोर्वापि जायते वा स्वबुद्धितः ।
तत्रापि मुख्या कथिता उपदेशपरम्परा ।।२४७८।।
इत्येतत् कथितं सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ।

इत्यादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां
नैमित्तिकपूजाविधानं नाम
द्वादशतमः पटलः ।

शुद्धिपत्रम्

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठसंख्या	पंक्तिसंख्या
आधार	आधारं	३	८
फठ्	फट्	६	१३
ह्स्वा तदनु	ह्स्वास्तदनु	१०	१८
ततोस्ऽत्रके	ततोऽस्त्रके	११	६
वक्ष्ममाणान्	वक्ष्यमाणान्	२०	४
तत्तमन्त्र	तत्तन्मन्त्र	२२	१३
मांसकषादिकम्	मांसभक्षादिकम्	३८	११
० महं	मह	४४	१४
गुप्ताचा ०	गुप्ताचारं	६२	१३
विशेषाभाव	विशेषभाव	६३	१२
योगेश्वर्यच्यते	योगेश्वर्युच्यते	६६	६
वघ्द्वावाञ्जलिं	वद्ध्वाञ्जलिं	७३	२०
वाह्वान्तं	वाह्नन्तं	८२	१२
महाघोघ	महाघौघ	८५	४
चञ्चंल	चञ्चलं	९१	१५
स्वाहेऽति	स्वाहेति	१०२	८
प्यऽस्यानु	प्यस्यानु	१०२	२०
कूर्चा	कूर्चो	१०६	१०
विदिग्भिागादाऐ	विदिग्भागादा ऐ	११३	१३
तारही	तारह्री	१२७	६
ज्ञानश्च	ज्ञानञ्च	१३५	१
चैकेकं	चैकैकं	१३९	१०
विसन्ध्यं मृतमूर्ते	विसन्ध्यमृतमूर्ते	१४६	१४
काशी	शशी	१४७	११

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठसंख्या	पंक्तिसंख्या
स्वमित्यक्षरं ते	स्वमित्यक्षरतो	१४८	३
कालपदश्चापि	कालपदं चापि	१५१	१५
प्रेतोऽङ्कश	प्रेतोऽङ्कुश	१५३	१
एवं	एष	१५५	८
रङ्कश	रङ्कुश	१५५	१०
संगृह्य ते	संगृह्यते	१५८	८
समुत्सृजदथ	समुत्सृजेदथ	१६८	२०
बीलानि	बीजानि	१७१	८
विस्यन्त्यो	विस्यत्यो	१७८	२
कुलप्ता	क्लृप्ता	१८७	१५
गोपृच्छ	गोपुच्छ	१८८	६
अङ्गष्ठा	अङ्गुष्ठा०	१८९	१८
मुनिसंघौ:	मुनिसंघै:	१९४	११
जटाजट	जटाजूट	२०१	१३
इन्द्राण्योनिजा	इन्द्राण्ययोनिजा	२०८	२०
भवन्त्येते न	भवन्त्येतेन	२१४	१२
समून्मुलित	समुन्मूलित	२१९	१२
अनूक्तं	अनुक्तं	२२४	१७
मनुं:	मनुं	२२५	५
तू	तु	२३४	१८
पूनर्बं०	पुनर्बं०	२३५	१
मासानु	मासानु ततः (?)	२३५	२
तत्पात्रा०	तत्तत्पात्रा०	२३८	६
श्रीपात्र्दिं	श्रीपात्रार्दिं	२३८	१५
तत्वातत्वावि०	तत्वातत्वावि०	२४०	३

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठसंख्या	पंक्तिसंख्या
अङ्गुष्ठस्य	अङ्गुष्ठस्य	२४१	१८
क्षेत्रपालाः ह्वयं	क्षेत्रपालाह्वयं	२४२	११
०मुपहार०	०मुपाहार०	२४७	२०
रङ्गुलिभि	रङ्गुलिभि	२४८	९
त्वदर्चा	त्वदर्चां	२४९	१४
न	तु	२५६	२०
आपोशानं	अपोशनं	२६१	१०
पञ्चविंशाति	पञ्चविंशति	२६२	१९
आयुर्वेदी	आयुर्वेदो	२६८	५
निथीथे	निशीथे	२७६	६
त्वङ्कुराः	त्वङ्कुराः	२८०	१४
पापाङ्कुरे	पापाङ्कुरे	२८२	१६
द्वेजिह्वा	द्वेजिह्वे	२८९	८
सीमण्यः	सीमन्यः	२९०	१५
नारोणा०	नारीणा०	२९१	११
द्वचङ्गुला०	द्वचङ्गुला०	२९६	७
एकाङ्गुलं	एकाङ्गुलं	"	८
नवाङ्गुलैः	नवाङ्गुलैः	"	९
चतुरङ्गुलम्	चतुरङ्गुलम्	"	१०
भ्रमत्यम्	भ्रमत्ययम्	"	१३
०र्योगवेदिभि	०र्योगवेदिभिः	३०३	१४
एकाङ्गुलं	एकाङ्गुलं	३०८	१३
चतुरङ्गुल	चतुरङ्गुल	"	१५
कुम्भवद्	कुम्भकं	३१५	६
स्वमाविक	स्वाभाविक	"	१५

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठसंख्या	पंक्तिसंख्या
अङ्गष्ठं	अङ्गुष्ठं	३१६	११,१७
आयुविर्घातकम्	आयुर्विघातकम्	,,	१४
जङ्घा मध्ये	जङ्घामध्ये	३१९	७
मरुतं	मारुतं	३२१	१६
व्यमगो	व्योमगो	,,	१७
दलोपेता	दलोपेत	३२३	१८
व्यष्टयः	व्युष्टयः	३२८	७
मृगु०	भृगु०	३३३	१
नान्यत	नान्यत्	३३५	११
उत्पद्यनो	उत्पद्यन्ते	३४०	९
दूवाङ्करा०	दूर्वाङ्कुरा०	३४५	१३
तृतोया	तृतीया	३४७	१
पूज	पूजनं	३५४	८
पूजायां	पूजायां	३६०	२१
नेमित्तिक०	नैमित्तिक०	३६२	१५
देवेषु	वेदेषु	३६८	८
मातृकाणी	मातृकार्णा	३८६	८
कार्याण मानि	कार्याणीमानि	३८६	४
खगाधीशाँ	खगाधीशौ	३८८	१०
सूर्यमण्डलम	सूर्यमण्डलम्	,,	११
भर्भुवः	भूर्भुवः	३८९	१
चामरकणुकम्	चामरकण्टकम्	३९०	९
उक्तन्यासस्य	उक्तमन्त्रस्य	४०१	६
ततौ	ततो	४०८	१६
ङेऽन्ता	ङेऽन्तो	४१९	११

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठसंख्या	पंक्तिसंख्या
सुरसंशोवनम्	सुरासंशोधनम्	४२३	४
कापलिनि	कापालिनि	४३७	१५
त्वदम्	त्विदम्	४३९	१२
यागिनी	योगिनी	४४०	२२
कूर्चास्त्र योरपि	कूर्चास्त्रयोरपि	४४३	१०
त्वष्टसु	त्यष्टसु	४५४	८
च्छाब्दानतो	च्छब्दानतो	४५८	३
शब्दस्तुन:	शब्दस्तत:	४६३	४
मत्युर्यमा०	मृत्युर्यमा०	४६९	६
सृष्टिकाल्य:	सृष्टिकाल्या:	४७८	२०
सर्वज्ञेषे	सर्वशेषे	४८७	१५
तिस्रस्तु	तिस्रस्तिस्रस्तु	४९०	१३
त्रैलोव्यव्यापिका	त्रैलोक्यव्यापिका	४९२	१
ताह्नन्मन्त्रौ	तारह्नन्मन्त्रौ	४९३	२
तातीर्यके	तार्तीयके	५०९	१३
सृप्टि	सृष्टि	५१६	१५
साध्येत्	साधयेत्	५२९	७
ब्रह्मी	ब्राह्मी	५४१	१३
दिशस्तु	दिशन्तु	५४५	१२
कूचौ	कूर्चौ	५४६	१८
श्रयाख्य	श्याख्य०	५५९	१०
वद्धाञ्जभलि०	वद्धाञ्जलि०	५६८	१
निर्गणं	निर्गुणं	५७८	१५
समांमत्तु	मांसमत्तु	५९८	२०

———

